महाराणा कुम्भा

[१४९० से १५२५ वि०]

लेखक :
रामवल्लभ सोमानी बी० ए० साहित्यरत्न

भूमिका लेखक :
डा० गोपीनाथ शर्मा एम० ए० डी० लिट्०
रीडर, इतिहास विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

प्राक्कथन लेखक :
डा० दशरथ शर्मा एम० ए० डी० लिट्०
अध्यक्ष, इतिहास विभाग
जोधपुर विश्वविद्यालय, जोधपुर

प्रकाशक
हिन्दी साहित्य मन्दिर
मेड़ती गेट जोधपुर

दो शब्द

महाराणा कुंभा पर पुस्तक लिखने की प्रेरणा मुझे चित्तौड़ के कीर्त्ति स्तम्भ देख कर के हुई थी। कुंभा पर श्री हरबिलास जी शारदा की पुस्तक ही उपलब्ध थी जिसका संशोधित संस्करण सन् १९३२ में छपा था। यह पुस्तक आज उतनी ही पुरानी होगई जितनी मेरी उम्र। पिछले कुछ वर्षो में कुंभा पर कुछ सामग्री और प्रकाश में आई है। इसका श्रेय श्री अगरचन्दजी नाहटा को है जिन्होंने इस सम्बन्ध में कई लेख ही नहीं लिखे अपितु राजस्थान भारती का कुंभा विशेषाँक प्रकाशित कर इस सम्बन्ध में स्तुत्य कार्य किया है।

मैंने इसे १२ अध्यायों में विभक्त किया है। अध्याय १ से लेकर ५ तक में राजनैतिक इतिहास है। इसके लिए मैंने अधिकाधिक समसामयिक और प्रामाणिक सामग्री का प्रयोग किया है। अध्याय ६ शासन व्यवस्था पर है। इसमें कठिनाई यह आई कि पूर्व मध्यकाल की मेवाड़ की शासन व्यवस्थ पर कोई पुस्तक उपलब्ध नहीं थी। शिलालेखों में भी इतनी अधिक सामग्री उपलब्ध नहीं है। अतएव समसामयिक साहित्यिक साधनों का भी पर्याप्त मात्रा में उपयोग किया है। अध्याय ७ से ११ साँस्कृतिक इतिहास से सम्बन्धित है। इन पर भी पहली बार इतना अधिक विस्तार से लिखा गया है। अध्याय १२ में प्रशस्तियों का वर्णन है। इसमें केवल कुंभा की राजकीय प्रशस्तियों को ही नहीं लिया है अपितु समसामयिक जैन श्रेष्ठियों की प्रशस्तियों पर भी विस्तार से लिखने का प्रयास किया है। इसके परिशिष्ठ में कुंभा की कुछ प्रशस्तियाँ लगाई है। मुद्रण की समुचित व्यवस्था नहीं होने से मैं सारी प्रशस्तियां नहीं दे सका हूं।

इसमें सबसे अधिक खटकने वाली बात टाइप की गलतियों का रहना है। जब पुस्तक छप रही थी मुझे अधिकाँशतः बाहर रहना पड़ा अतएव इस प्रकार की गलतियाँ रह गई है जिन्हें आगे के संस्करण में ठीक कर दिया जावेगा।

पुस्तक लेखन में डा० गोपीनाथजी का बहुत ही अधिक सहयोग रहा । इन्होंने सारे ग्रंथ को कई बार देखा और प्रारूप में कई शुद्धियां की । सर्व श्री डा० दशरथजी शर्मा, पं० चैनसुखदास जी, डा० कासलीवालजी और अगरचन्दजी नाहटा ने अपने कई बहुमूल्य सुझाव दिये हैं । मैं छोटा होने के नाते धन्यवाद तो दे नहीं सकता हूं केवल गर्व ही कर सकता हूं ।

आशा है कि यह पुस्तक पूर्व मध्यकालीन राजस्थान के अध्ययन में उपयोगी साबित होगी ।

दीपावली २०२४ —रामवल्लभ सोमानी

गंगापुर (भीलवाड़ा)

(एकलिंग जी की प्रतिमा)

भगवान श्री एकलिंगजी को

सादर समर्पित

भूमिका

राजस्थान की वीर-प्रसविनी भूमि ने अनेक महान् वीरों को जन्म दिया है, जिनमें महाराणा कुंभा का एक ऊंचा स्थान है। वैसे तो उक्त महाराणा के सम्बन्ध में कर्नल टॉड, कविराज श्यामलदास, डा० गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा, रायबहादुर हरविलास शारदा आदि कतिपय विद्वानों ने बड़े अधिकार से लिखा है, परन्तु फिर भी महाराणा के इतिवृत्त सम्बन्धी कई स्थल ऐसे भी हैं जिनके बारे में हमारी जानकारी अपेक्षित है। एतद्कालीन ऐतिहासिक साधन ऐसे हैं जो यत्र-तत्र या तो बिखरे पड़े हैं या नष्ट प्राय: हैं।

हर्ष का विषय है कि मेरे शिष्य श्री रामवल्लभ सोमाना ने जो इस विषय में अधिक जागरूक हैं और जिनसे इस सम्बन्ध में मेरी बात-चीत होती रही हैं, अपने अथक परिश्रम तथा अध्ययन से इस पुस्तक को लिखने में सफल हुये हैं। इन्होंने यथासाध्य जंन-भण्डार, पुस्तकालय तथा उपासरों में जाकर सामग्री को इकट्ठा किया और उसे वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया।

कई परम्परागत मान्यताओं को प्रमाणित करने तथा उनको अमान्य ठहराने में श्री सोमानी ने विवेक से काम लिया है। जैन-साधनों के विधिवत् प्रयोग से तो इस पुस्तक की उपयोगिता अधिक बढ़ गई हैं। साथ ही साथ एतद्कालीन समाज, धर्म और शासन के सूत्रों को राजनीतिक इतिहास के ढाँचे से इस प्रकार जोड़ दिया गया है कि पुस्तक अपने ढंग से प्रमाणित रूप धारण किये हुए है। जबकि उत्तरी तथा दक्षिणी राजस्थान में इस्लामी शक्ति की गति अप्रतिहत थी तो कैसे महाराणा कुंभा ने पद-पद पर प्रतिरोध, जय और पराजय का सामना किया इसका चित्रण लेखक ने समुचित रूप से करने का प्रयत्न किया है।

प्रस्तुत पुस्तक से यदि शोध-प्रवृत्ति को जागृत करने, वीरोचित परिपाटि को बढ़ावा देने तथा राजस्थान के इतिहास की आत्मा को समझने में सहायता मिलेगी तो मैं इस पुनीत-प्रयत्न का अभिनन्दन करता हूँ।

राजस्थान विश्वविद्यालय — गोपीनाथ शर्मा

दिनांक १८-१०-६७

प्राक्कथन

राजस्थान में इतिहास लेखन की परम्परा पर्याप्त प्राचीन है। मण्डोर-राज-प्रतिहार बाउक ने अपने पूर्वजों के गुणों का उल्लेख किया, क्योंकि उसका विश्वास था कि जब तक किसी व्यक्ति विशेष के गुणों का विस्मरण नहीं होता उसका स्वर्ग में वास रहता है। सम्भवत: इसी कारण से राजस्थानियों ने अपने वीर पुरुषों के यश का अनेक रूपों से ख्यापन किया और अपनी इसी प्रवृत्ति से पवाड़ा, ख्यात, बचनिका, रासो आदि साहित्य रूपों को जन्म दिया या उन्हें नवीन स्फूर्ति देते हुए अधिक प्रसृत किया। आरम्भिक मध्यकाल में महाराणा कुंभा ने अपनी प्रशस्तियों द्वारा इतिहास को समृद्ध किया। उत्तर मध्यकाल में इससे भी अधिक सेवा नैणसी मुंहणोंत ने की। बांकीदास, सूर्यमल्ल मिश्रण, दयालदास सिंढायच आदि राजस्थान के इतिहासकार इसी समुज्जल परम्परा में है। निकट अतीत में श्यामलदास कविराज, मुंशी देवी प्रसाद, गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा और विश्वेश्वर नाथ रेऊ ने हमारे इतिहास को समृद्ध किया है। प्रसन्नता का विषय यह है कि श्री रामवल्लभ सोमानी आदि शोध प्रेमियों के कारण यह इतिहास-धारा केवल प्रवाहित ही नहीं है, अपितु परिपूर्णता की ओर भी अग्रसर हो रही है।

श्री रामवल्लभ सोमानी अनेक शोध-निबन्धों के लेखक हैं किन्तु उनकी विशिष्ट कृति महाराणा कुंभा की जीवनी है। इसके प्रथम अध्याय में मेवाड़ का प्रारम्भिक इतिहास है। दूसरे अध्याय में विद्वान लेखक ने कुंभा की जीवनी दी है। तीसरे अध्याय में कुम्भा के राज्य विस्तार और सैनिक अभियानों पर प्रकाश डाला गया है। इस विषय के सविस्तार अध्ययन के लिए लेखक ने उसे तीन विभागों में विभक्त करना उचित समझा है, प्रथम वि० १४९० से १५०० तक, दूसरा १५०० से १५१५ तक, और तीसरा १५१५ से १५२५ तक। मैं स्वयं पहले दो विभागों की अन्तिम तिथियों को क्रमश: सम्वत् १४९५ और १५१३ में रखना उचित समझता हूं। सम्वत् १४९५ तक राठौड़ और सिसोदिये एक होकर शत्रु से मोर्चा ले रहे थे। रणमल्ल की मृत्यु के बाद यह मोर्चे की एकता नष्ट होगई। सम्वत् १५१३ में जब गुजरात और मालवे के सुल्तानों ने एकत्रित होकर मेवाड़ पर आक्रमण किया तो स्थिति और अधिक भयावह हो गई। पुस्तक का दूसरा संस्करण प्रकाशित करते समय इन बातों को ध्यान में रखा जाए तो उचित होगा।

चौथे अध्याय का शीर्षक 'राठौड़ों' से युद्ध रखा गया हैं। विद्वान् लेखक का यह बताना ठीक है कि मारवाड़ की ख्यातों का वर्णन अतिशयोक्ति पूर्ण हैं, किन्तु इसी तरह

मेवाड़ की ख्यातों की अतिशयोक्तियों पर ध्यान देने की आवश्यकता है। पांचवें अध्याय का विषय 'गुजरात और मालवे के सुल्तानों से युद्ध' हे। इनका श्री सोमानी ने बहुत अच्छा वर्णन और विवेचन किया है। छठा अध्याय 'शासन-व्यवस्था' पर है। इसके पारायण से पाठक महाराणा कुम्भा के समय तक की मेवाड़ की शासन-व्यवस्था का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

सातवां अध्याय 'धार्मिक स्थिति' पर है, इसमें तत्कालीन शैव धर्म, वैष्णव धर्म, संत सम्प्रदाय, शाक्त-मत. जैन धर्म, और परम्परागत विश्वास आदि पर अच्छा प्रकाश डाला गया है।

आठवां अध्याय 'साहित्य-सर्जना' पर है। इसमें जैन और जैनेतर साहित्य के अतिरिक्त कुम्भा-कालीन अत्रि, महेश, कन्हव्यास आदि की रचनाओं का अच्छा विवरण हैं। इसमें कुम्भा साहित्यकार के रूप में प्रस्तुत है। संगीतराज पर अच्छी तरह विमर्श कर श्री सोमानी इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि इसकी रचना में कन्ह व्यास का अत्यधिक हाथ था, कुम्भा स्वयं ग्रंथ का सम्पादक था, लेखक नहीं। इसी प्रकार कुम्भा के अन्य ग्रन्थों का भी इस अध्याय में विवेचन है।

नवां अध्याय केवल सूत्रधार मण्डन पर जो उसके व्यक्तित्व और सांस्कृतिक महत्व को देखते हुए समुचित है। उसके 'प्रासाद:मण्डन', राजवल्लभ-मण्डन', देवतामूर्ति प्रकरण' और रूप-मण्डन, आदि ग्रंथो का इसमें अच्छा विवरण हैं। दसवां अध्याय 'कला-कौशल' पर है। कुम्भा-कालीन शिल्प का इतना सुन्दर और सुविस्तृत विवेचन अन्यत्र दुर्लभ है। ग्यारहवां अध्याय 'सामाजिक स्थिति' पर हैं। बारहवें अध्याय में प्रशस्तियां है।

महाराणा कुम्भा पर बहुत कुछ लिखा गया है। इनमें श्री सोमानी का ग्रंथ सर्वोत्तम है। इसमें सामग्री का सुन्दर चयन ही नहीं, उस पर संतुलित विचार भी प्रस्तुत किए गये है। आशा है कि श्री सोमानी की लेखनी से इसी तरह राजस्थानी इतिहास-साहित्य की श्री वृद्धि होती रहेगी।

जोधपुर विश्वविद्यालय, दशरथ शर्मा
१ -१०-१९६७

विषय-सूची

संकेत सूची

आ० स० इ०—आर्कियोलोजिकल सर्वे आफ इंडिया

ओ० नि० सं०—ओझा निबन्ध संग्रह

इ० ए०—इंडियन एन्टिक्वेरी

उ० इ०—उदयपुर राज्य का इतिहास (ओझाकृत)

ए० इ०—एपिग्राफिआ इंडिका

कु० प्र०—कुंभलगढ़ प्रशस्ति

की० प्र०—कीर्तिस्तम्भ प्रशस्ति

ज० ब० ब्रा० रा० सो०—जनरल बम्बई ब्रांच रायल एशियाटिक सोसाइटी

डू० इ०—डूंगरपुर राज्य का इतिहास (ओझाकृत)

तब० अक०—तबकात इ अकबरी

नै० ख्या०—नैणसी की ख्यात (रामनारायण दूगड का अनुवाद)

ब्रि० फ०—तारीख इ फरिश्ता का ब्रिग्जका अंग्रेजी अनुवाद

म० कु०—महाराणा कुम्भा शारदाकृत

मा० इ०—मारवाड़ का इतिहास (रेऊ कृत)

वी० वि०—वीर विनोद

हि० गु०—लोकल डाइनेस्टिज आफ गुजरात (श्री बैले कृत)

राज तृतीय को केरल मालवा सौराष्ट्र और चित्रकूट को जीतने वाला वर्णित किया है ।[२९] लाट और मालवे में अपने वंशजों को उसने जागीरें दी थी । मेवाड़ के धनोप और गोड़-वाड़ के हंठूड़ी ग्रामों से राष्ट्रकूटों के लेख [३०] मिले हैं । धनोप मेवाड़ में शाहपुरा के पास स्थित है । इसमें राष्ट्रकूट राजा भल्लिल और उसके पुत्र दन्तिवर्मा और दो पुत्र बुद्धिराज और गोविन्दराज का उल्लेख है । ये नाम दक्षिणी भारतीय 'राष्ट्रकूट' राजाओं के नामों से मिलते हैं । श्री बुल्हर ने राधनपुर के दानपत्र को सम्पादित करते हुए वर्णित किया है कि गोविन्दराज ने भीनमाल से मालवा जाते समय दोहद या कुंभलगढ़ का मार्ग लिया होगा । गोड़वाड़ और शाहपुरा के आसपास लेख मिलने और चित्रकूट विजय का उल्लेख होने से प्रतीत होता है कि उसने कुंभलगढ़ के आसपास से मेवाड़ प्रदेश में प्रवेश करके शाहपुरा के आसपास प्रदेश को विजय किया और वहां अपने सम्बन्धी को जागीर दी और वहां से चित्तौड़ जीतकर मालवा चला गया । श्रीजैम्स फेथफुल फ्लीट ने उक्त अमोघवर्ष के दानपत्र को सम्पादित करते हुए वर्णित किया है कि चित्रकूट दुर्ग बुन्देलखण्ड में स्थित है । लेकिन उनकी यह धारणा गलत है । मेवाड़ के चित्रकूट का कई वर्षों से दक्षिणी भारत से बराबर सम्पर्क था । जैन साधु बराबर दक्षिणी भारत से यहां आया जाया करते थे । दिगम्बर जैन सूत्रों से पता चलता है कि अमोघ वर्ष के गुरू जिनसेना-चार्य के गुरु वीरसेनाचार्य का मेवाड़ के चित्रकूट से बड़ा सम्बन्ध रहा है । इन्होंने चित्तौड़ के एलाचार्य नामक एक साधु से शिक्षा प्राप्त की थी एवं यहां से ही जाकर इन्होंने बड़ौदा में धवला [३१] टीका पूर्ण की थी । अपभ्रंश के पउम चरिउ नामक दिगम्बर जैन ग्रन्थ में मेवाड़ के चित्तौड़ का कई स्थलों पर [३२] उल्लेख है । इसमें एक बार स्त्रियों के सौन्दर्य का

---

२९. "जगतुगं इतिश्रुतः । केरलमालव सोटान् चित्रकूटगिरी दुर्गस्थान ....."
(इ० ए० जिल्द १२ पृ० १२८)

३० इ० ए० भाग ४०, पृ० १७५ में डी० आर० भण्डारकरका लेख एवं देवीप्रसाद के राजपूताने में प्राचीन शोध में प्रकाशित धनोप का लेख । ए० इ० भाग १०, पृ० २० एवं नाहर जन लेख संग्रह भाग १, पृ० २३४लेख सं ८९८ में प्रकाशित हंठूडी का लेख ।

३१. कालेगते कियत्यपि ततः पुनश्चित्रकूटतुरवासी ।
श्रीमानेलाचार्यो बभूव सिद्धान्ततत्वज्ञः ।।१७६।।
तस्यसमीपे सकलसिद्धान्तमधीत्य वीरसेनगुरुः ।
उपरितमनिबन्धनाद्यधिकारानष्टं लिलेख ।।१७७।। श्रुतावतार
देवसेन सूरि द्वारा विरचित दर्शन सार ग्रन्थ में "सिरिवीरसेण सीसो–
जिणसेणो सयल-सत्थ विण्णाणी" ।।३१।। वर्णित है ।

३२. मासे हिं चउरद्धे हि चित्तकूडु बोलीणई ।।९।। २४ वी संधि
तं चितउडू मुएवि तुरन्तई ।
दसउरपुर सीमान्तरू पत्तई ।। १५।१ ।। २४ वी संधि
भउहा जुएण उज्वेणएण ।
भालेण वि चित्ताउडएण ।। १३ ।। ४९ संधि, धत्ता ८

वर्णन करते समय चित्तौड़ और उज्जैन की स्त्रियों की तुलना की गई है। इसी प्रकार एक अन्य वर्णन में चित्तौड़ और दशपुर (मन्दसौर) का साथ २ उल्लेख किया है। अतएव प्रतीत होता है कि राष्ट्रकूट राजाओं के लेखों में पश्चिमी राजस्थान के दिग्विजय के वर्णन में जहां चित्रकूट का वर्णन आया है, वहां मेवाड़ का चित्तौड़ ही रहा है।

मेवाड़ के शिलालेखों से भी इस घटना की पुष्टि होती है। कुंभलगढ़ प्रशस्ति में जो राणा कुम्भा के समय कई प्राचीन प्रशस्तियों को शोध करके बनाई है, रावल खुमाण के लिए लिखा है कि उसने सौराष्ट्र द्राविड़ प्रदेश और दक्षिण के राजाओं[33] को विजय किया। एकलिंग माहात्म्य में भी इसी प्रकार का[34] वर्णन है। उक्त दोनों में स्पष्टतः उल्लेख है कि सौराष्ट्र से दिग्विजय करने के लिए आए हुए राष्ट्रकूट राजा से युद्ध किया। सौराष्ट्र द्राविड़ प्रदेश और दक्षिण के सबसे उल्लेखनीय उस समय राष्ट्रकूट ही ही थे एवं इनमें "सोराष्ट्रास्त्यक्त राष्ट्र नरपति" भी वर्णित है। अतएव प्रतीत होता है कि गोविन्दराज ने चितौड़ को अस्थायी रूप से विजय कर लिया और धनोप में अपने वंशजों को जागीर दे दी। रावल खुमाण ने आक्रान्ताओं से मेवाड़ प्रदेश को खाली कराया और इसी कारण मेवाड़ में इसका बड़ा आदर किया जाता है। अमोघवर्ष के दानपत्रों में उसका राज्य मालवा तक ही वर्णित हैं जिससे भी इस घटना की पुष्टि होती है। लेकिन चित्तौड़ में गुहिलातों का राज्य नहीं रहा था। वहां धरणी वराह उस समय शासक था।

हूण आक्रमण

सोमदेव कृत नीतिवाक्यामृत में एक प्रसंग वर्णित है कि हूण राजा ने व्यापारी का वेष बनाकर धोखे से चित्रकूट जीत[35] लिया। यह प्रसंग बहुत ही महत्वपूर्ण है। चित्रकूट नाम के २ दुर्ग होना मैंने पूर्व में ही वर्णित किया है। सोमदेव द्वारा वर्णित चित्रकूट मेवाड़ का चित्तौड़ है क्योंकि इनका सम्पर्क इससे बराबर रहा था। इनके कुछ ही वर्षों बाद मेवाड़ के चित्तौड़ में हरिषेण नामक एक विद्वान वि० सं० १०४४ में हुआ था। इन्होंने अपभ्रंश में "धम्म परिक्खा" नामक ग्रन्थ[36] लिखा। इस ग्रंथ में आचार्य सोमदेव के यशस्तिलक चम्पू के कई श्लोक आत्मसात किये गए हैं। उदाहरणार्थ इसकी

---

३३. सौराष्ट्रात्य [स्त्य] क्त (न)रपति तिलकप्रस्थितो—दिग्जयार्थं (चौउडा संत्यक्त चूडा रणरस पटवोद्राविडानैवगौडा (१३६) प्राच्या········ दक्षिणात्यो भवदतो वाचभ निदिता नरपते रौदीच्य कोप्पादद ··········(कु० प्र० श्लोक सं० १३६)

३४. एकलिंग महात्म्य में "सौराष्ट्रास्त्यक्त राष्ट्रा नरपति" वर्णित है।

३५. श्रूयते किल हूणाधिपतिः पुष्यपुटवाहिभिः सुभटैः चित्रकूटं जग्राह ॥८॥ नीतिवाक्यामृत में दुर्ग सम्मुद्धेश

३६. हरिषेण चित्तौड़ का रहने वाला था। इसकी धम्म परिक्खा बड़ी प्रसिद्ध है।

चौथी संधि में "अपुत्रस्य गति" आदि जो श्लोक है वह यशस्तिलक चम्पू (बम्बई १९०३) के उत्तरार्ध के पृष्ठ २८६ पर है। इसी प्रकार "पुराणं मानवो धर्म" नामक जो श्लोक है, वह यशस्तिलक चम्पू के उत्तरार्ध के पृ० ११९ पर दिया है। श्री आदिनाथ नेमी नाथ उपाध्यै ने हैदराबाद में आयोजित ओरियण्टल कान्फ्रैंस में हरिषेण [37] पर एक निबन्ध पढ़ा था। उसमें कई अकाट्ट्य प्रमाणों से यह सिद्ध किया है कि मेवाड़ के निवासी हरिषेण पर आचार्य सोमदेव का प्रभाव पड़ा था और ये भी मेवाड़ के चितौड़ से परिचित थे। सोमदेव के समसामयिक मेवाड़ के राजा नरवाहन की सभा में एक [38] शास्त्रार्थ बौद्धों, दिगम्बर जैनों और शैवों के मध्य हुआ था। काष्ठा संघ की लाट बागड की गुर्वावली में प्रभाचन्द नामक एक साधु का उल्लेख है, जिसने शैवों को विजित किया था। सौभाग्य से इसी घटना का उल्लेख एकलिंगजी के वि० सं० १०२८ के लेख में भी है। [39]

हरिषेण के ग्रंथ में चतुर्मुख स्वयंभू और पुष्पदन्त नामक कवियों को स्मरण किया [40] है। पुष्पदन्त ने भी अपने ग्रन्थ में स्वयंभू और चतुर्मुख का उल्लेख किया है। अतएव पता चलता है कि इनकी रचनाओं का पठन पाटन चित्तौड़ में बराबर होता

इसके पिता का नाम गोवर्धन और माता का नाम धनवती था। यह धाकड वंशी था और कार्यवश चित्तौड़ छोड़कर अचलपुर चला गया था।
इय मेवाडदेसि जण संकुल सिरिउजपुरनिग्गयधक्कडकुलि।
पावकरिंद कुंभदारण हरि जाउ कुलहि कुसलुणा में हरि।
तासु पुत्त् पररणाहि सहोयरू, गुण गुणगिणहि कुलगयणदिवायरू।
गोवद्धणुणामें उत्पणउं सो सम्मत्तरयण संपुण्ण उं।
तहो गोवद्धणासु पिय धणवइ जो जिणवर मुणि वरपिय गुणवइ।
ताई जणिउं हरिसेण णामें सउ, सो संजाउ विवुह वइ विस्सउ।।
(महावीर भवन जयपुर में संग्रहित धम्म परिक्खा की एक हस्तलिखित प्रति की प्रशस्ति)

३७. अनेकान्त वर्ष ८, अंक १, पृ० ४८—५३

३८. "चित्रकूटदुर्गेराजानरवाहनसभायां विकटशैवादिवृन्दवनदहनदावानलविविधाचार-ग्रन्थकर्ताश्रीमत्प्रभाचन्द्रदेव—"

अनेकान्त, वर्ष १५, किरण ३, पृ० ३८

३९. ज० ब० ब्रां० रॉ० ए० सो० के अंक २२ में डी० आर० भण्डारकर द्वारा सम्पादित, एवं वी० वि० भाग १ के शेष संग्रह में भी मुदित।

४०. "चउमुह कव्वु विरयणि सयंभुवि पुफ्फयंतु अण्णाणु णिसंभिवि"

(धम्म परिक्खामंगलाचरण)

रहा है। यहां दिगम्बरों की बड़ी बस्ती थी। जैन कीर्तिस्तम्भ का निर्माण भी लगभग इसी समय हुआ था।

सोमदेव के समसामयिक राजा अल्लट की रानी हरिया देवी हूण कुल की थी।[41] सारणेश्वर के वि० सं० १०१० के लेख में भी हूणों का उल्लेख है[42]। संभवतः यह घटना अल्लट के समय उसके शासन काल के प्रारम्भिक वर्षों में घटित हुई थी। अल्लट ने हूणों से कुछ ही वर्षों बाद वापस चित्रकूट छीन लिया।[42 A] इस सम्बन्ध में दुर्भाग्य से मेवाड़ के इतिहास और ख्यातों में कोई वर्णन नहीं है। यदि और अधिक सामग्री एकत्रित की जाए कई तो महत्वपूर्ण तथ्य प्रकाश में आ सकते हैं।

मालवे के परमारों का चित्तौड़ पर अधिकार

प्रतिहार साम्राज्य के विघटन के पश्चात् उत्तरी भारत में कई छोटे २ राज्य नये स्थापित हो गए। इनमें मालवा के परमार गुजरात के सोलंकी और अजमेर के चौहान बड़े प्रसिद्ध थे। मालवा के परमार राजा मुंज ने चित्तौड़ पर आक्रमण कर इसे विजित किया था। इस आक्रमण का उल्लेख वि० सं० १०५३ के हंठूडी के राठोड़ राजा बालाप्रसाद के लेख में है। इसमें लिखा है कि जिस समय मेवाड़ में मुंज ने आक्रमण किया था तब उसके पूर्वज धवल ने मेवाड़ की सहायता की थी। उस समय मेवाड़ में

---

४१. अभूद्यस्यामेवत्तस्यां तनयः श्रीमदल्लटः।
स भूपतिः (प्रिया) यस्यहूणक्षोणीश वंशजा :
हरियदेवी यशो यस्या भाति हर्षपुराह्वयम्।
इ० ए०, जिल्द ३६, पृ० १६१

४२. वी० वि० भाग १ के शेष संग्रह में प्रकाशित लेख।

४२ अ. कुछ विद्वान इस हूण आक्रमण को मिहिरकुल के आक्रमण से अर्थ लेते हैं जो सत्य नहीं हो सकता है। उस समय तक चित्तौड़ दुर्ग की स्थापना भी नहीं हुई थी। ९वीं-१०वीं शताब्दी में पूर्वी राजस्थान में एक प्रबल हूण रा-य विद्यमान था। नवसहसांकचरित [सर्ग IX पृ० ९०] के अनुसार इनका राज्य मालवे के उत्तरी पश्चिमी भाग में था। इनके राजा जेज्जय को सौराष्ट्र के बलवर्मा ने हराया था [ए० इ० Vol IX पृ० ८] मालवे के राजा सीयक ने भी हूणों को हराया था [हूणवरौधं वैंधव्यदीक्षदानं व्यधात्तयः] इसी प्रकार वाक्पति मूंज ने भी हूणों को हराया था {हूणप्राणहरप्रता पदहनो गात्रा त्रसन्माश्व चैदय च चैदी [इ० ए० भाग १६ पंक्ति ४१-४२] बी० सी० गंगोली—हिस्ट्री आफ परमार डाइनेस्टीज पृ० ४० और ५२ दृष्टव्य है। बाडोली का प्रसिद्ध मन्दिर हूणों का बनाया हुआ माना जाता है। अतएव इनसे ही यह सम्बन्धित होना चाहिए। हूणमंडल भी इसीके पास होना चाहिए।

शक्तिकुमार शासक था। जैन ग्रन्थ "जम्बूदीप पण्णतिक" में बारां में राजा सत्ति के समय पद्मनन्दि मुनि का उल्लेख है किन्तु यह मेवाड़ के शक्तिकुमार से भिन्न होना चाहिए क्योंकि शक्तिकुमार का उत्तराधिकार आहड़ में शासक था। चित्तौड़ पर लगभग कई वर्षों तक परमार और सोलंकियों का अधिकार होना प्रकट होता है। चन्द्रावती का राजा धंधुक भागकर चित्तौड़ में भोज के पास गया था। विमलशाह ने भोज के पास जाकर उसको समझाकर वापस गुजरात के राजा की[43] शरण में ला दिया था। वह चन्द्रावती विजय करने और आबू पर जगत्प्रसिद्ध विमलवसति नामक जैनमन्दिर बनाने के लिए विख्यात है। विविधतीर्थकल्प के अर्बुद कल्प में भी इसका उल्लेख है। इसमें वि० सं० १०८८ में आबू पर धंधुक को चित्रकूट से लाकर मन्दिर बनाने की घटना का उल्लेख है। अतएव इससे यह पुष्टि होती है कि उस सम्वत् के आसपास चित्तौड़ में परमारों का राज्य था। खरतरगच्छ पट्टावली से ज्ञात होता है कि चित्तौड़ में रहने वाले जिनवल्लभसूरि के पास मालवे के राजा नरवर्मा ने एक समस्या पूर्ति हेतु ऊंट सवार भेजा था। जब उन्होंने इसकी पूर्ति करदी तो उसे विपुल धनराशि देने को कहा तो वह इन्कार हो गया। इस पर यही मांग की कि चित्तौड़ के मन्दिर के लिए कुछ व्यवस्था करदें जिससे प्रतीत होता है कि उस समय तक यह दुर्ग परमारों के अधिकार में था।

चौहानों का अधिकार

शक्तिकुमार के पश्चात् उसका बेटा अम्बाप्रसाद मेवाड़ का शासक हुआ। चौहान राजा वाक्पतिराज द्वितीय ने आघाट पर आक्रमण किया और अम्बाप्रसाद की युद्ध में ही मृत्यु हो गई। चौहानों ने मेवाड़ का पूर्वी भाग जिसमें मांडलगढ़ तक का

---

४३. अह भीमएव नरवइ वयणेण गहीय सयल रिउविहवो चड्डावली
विसयं स बहुबलद्धं तिभुंजतो—(चन्द्रप्रभ चरित)
चन्द्रावती पुरीशः समजनि वीराग्रणीर्धंधुः ॥५॥
श्री भीमदेवस्य नृपस्य सेवाममन्यमानः किल धंधुराजः
नरेशरोषाच्च ततो मनस्वी धाराधिपं भोज नृपं प्रपेदे ॥६॥
(आबूका वि० सं० १२७८ का लेख)
राजानक श्री धांधुके क्रुद्धं श्री गुजरेश्वरं।
प्रसाद्य भक्त्वा तं चित्रकूटादानीय तद्गिरा ॥३९॥
वैक्रमे वसुस्वाशा १०८८ मतेऽब्दे भूरिरैव्ययात्
सत्प्रासादं स विमल वत्साहं व्यधापयत् ॥४०॥
विविध तीर्थ कल्प में अर्बुद कल्प
खरतरगच्छ पट्टावली का यह वर्णन कि राजा नरवर्मा ने चित्तौड़ मंडपिका से शाश्वतदान दिया उल्लेखनीय है चित्रकूट मण्डयिकातस्तत् शाश्वतदानं भविष्यतीति कृतम (युगप्रधान गुर्वावली पृष्ट १३)

भाग था, अपने अधिकार में कर लिया। इस क्षेत्र से चौहानों के कई शिलालेख मिले हैं। वि० सं० १२११ का वीसलदेव का शिलालेख जहाजपुर के पास लाहोरी ग्राम में मिला है। इसमें पाशुपताचार्य विश्वेश्वरप्रज्ञ का उल्लेख है। पृथ्वीराज द्वितीय की राणी सुहवदेवी का वि० सं० १२२४ का लेख मैनाल में लग रहा है। इसमें ब्रह्ममुनि द्वारा मठ बनाने का उल्लेख है (कारितं मठमनुत्तमं कलौ भाव ब्रह्ममुनिना) उसी राणी का लेख से वि० सं० १२२५ ज्येष्ठ विद १३ का भी प्राप्त हुआ है। वि० सं० १२२६ फाल्गुन विद ३ का बिजोलिया का प्रसिद्ध लेख है। से सोमेश्वर के समय में लोलाक श्रेष्ठि ने खुदवाया था। सोमेश्वर के राज्यकाल के कई अन्य लेख भी मिले हैं। इनमें धौड़ के सुहवदेवी के मन्दिर में वि० सं० १२२८ ज्येष्ठ सुदि १० और दूसरा वि० सं० १२२९ श्रावण सुदि १२ के लघुलेख स्तम्भों पर उत्कीर्ण है। आंवलदा में वि० सं० १२३४ भाद्रपद ४ का सती का लेख है। इसमें सिंघरा, जो डोडा का पुत्र था, की मुत्यु का उल्लेख है। लाहौरी गांव में वि० सं० १२३६ आषाढ़ बुदि १२ का पृथ्वीराज तृतीय का लेख मिला है। इसमें सलहण बागड़ी के पुत्र जलसल की मृत्यु का उल्लेख है। इसी प्रकार वि० सं० १२४५ फाल्गुन सुद ११ का एक और लेख मिला है। इसमें डोड़िया रावत जेहड़ की मृत्यु का उल्लेख है। पृथ्वीराज चौहान तृतीय से यह भू भाग मुसलमानों के अधीनस्थ हो गया। इस प्रकार दीर्घकाल तक यह प्रदेश मेवाड़ राज्य से पृथक हो गया। पंडित आशाधर मेवाड़ के मांडलगढ़ के रहने वाले थे और यहां मुसलमानों का अधिकार हो जाने से मालवा चले गए थे। ऐसा इनके ग्रन्थों की प्रशस्तियों से ज्ञात होता है।

मालवा और गुजरात का संघर्ष

मालवा और गुजरात में परम्परागत बैर बना रहा जो शताब्दियों तक चलता रहा। मूलराज के पौत्र वल्लभराज ने मालवे पर चढ़ाई की, जिसका उल्लेख सुकृत संकीर्तन कीर्तिकौमुदी और कुमारपालप्रबन्ध में है। सम्भवत: वल्लभराज की इसमें मृत्यु हो गई। किन्तु यह पारस्परिक द्वेष भीमदेव सोलंकी के समय प्रबल हुआ। जब उसने सिन्धु पर आक्रमण किया तब भोज के सेनापति कुलचन्द्र ने पाटन पर अधिकार कर लिया। इस विजय का उल्लेख उदयादित्य के लेख में है। बड़नगर से मिली कुमारपाल की प्रशस्ति में सोलंकी राजा भीम का धारा पर अधिकार होना लिखा है। प्रबन्ध चिन्तामणि में वर्णित किया है कि जब भोज की मृत्यु का समाचार चेदी के राजा कर्ण को मिला तो उसने धारा पर अधिकार कर लिया। भीम ने अपने संधिविग्रहक डामर को आज्ञा दी कि या तो वह भोज का $\frac{1}{2}$ (आधा) राज्य प्राप्त करले या कर्ण का मस्तक काट लावे। कर्ण ने लूटी हुई सम्पत्ति के विभाजन को स्वीकार कर लिया। भोज के पश्चात् जयसिंह गद्दी पर बैठा। वह कमजोर शासक था। उसके समय में भी मालवा और गुजरात के राजाओं के मध्य यथावत् युद्ध चलते रहे। विक्रमांकदेव चरित के अनुसार मालवेश्वर को सुरक्षित करने का श्रेय सोमेश्वर आहमल्ल को दिया गया

है । उ-ी समय वि० सं० १११६ में दण्डनायक कन्ह को अर्थूणा के मंडलीक ने पकड़ कर जयसिंह के सुपुर्द किया । जयसिंह के पश्चात् उदयादित्य राजा हुआ । जिसने वीसलदेव चौहान की सहायता से गुजरात के राजा को जीता । कर्ण के पश्चात् गुजरात में सिद्धराज जयसिंह शासक बना और उदयादित्य के पश्चात् मालवा में नरवर्मा । उस समय तक चित्तौड़ मालवे के राजाओं के अधीनस्थ ही था और मेवाड़ राज्य वर्तमान उदयपुर जिले के कुछ भू-भाग तक ही सीमित था । जयसिंह ने नरवर्मा पर चढ़ाई की । युद्ध १२ वर्ष तक चलता रहा । नरवर्मा की मृत्यु हो गई एवं यशोवर्मा उसका उत्तराधिकारी हुआ । उसके समय में भी युद्ध यथावत् चलता रहा । मालवा की जीत के साथ सिद्धराज ने "अवन्ति नाथ" की उपाधि धारण की एवं सम्पूर्ण मालवा गुजरात के अधीन हो गया । यह घटना वि० सं० ११९१–११९४, (११३५–११३७ ए० डी०) के मध्य हुई थी ।

गुजरात के सोलंकियों का अधिकार

ऐसा प्रतीत होता है कि सिद्धराज जयसिंह ने जब मालवा विजय किया उस समय चित्तौड़ भी जीत लिया था । कुमारपाल के शासनकाल का शिलालेख चित्तोड़ से मिला है । इस वि० सं० १२०७ के लेख में वर्णित है कि जब वह सपादलक्ष विजय करके लौट रहा था तब मार्ग में रूककर चित्तौड़ पर त्रिभुवननारायण [44] मन्दिर के दर्शन किये उस समय वहां सज्जन दण्डनायक था । यह सम्भवतः कुमार जाति का था । इसके साथ वीसलदेव चौहान का युद्ध हुआ था विजोलिया के शिलालेख में वर्णित है कि दुष्ट सज्जन को इसने दण्डित किया । चित्तौड़ दुर्ग चौहानों के पास रहा अथवा सोलंकियों ने वापस ले लिया इसके कुछ भी प्रमाण [45] नहीं है । मोहपराजय नामक नाटक से पता चलता है कि कुमारपाल का विवाह मेवाड़ की राजकुमारी कृपासुन्दरी से हुआ था । यह वि० स० १२१६ माघ सुदि २ के दिन सम्पन्न हुआ था । मेवाड़ के इतिहास में इस घटना का उल्लेख नहीं है । कुमारपाल चरितादि काव्य में चित्तौड़ को बैसर को

---

४४. सपादलक्षमामर्द्य नम्रीकृत भयानकः । (स्व) य [म] यान्महीनाथोंग्रामे शालीपुराभिधे ।। सन्निवेश्यसि (शि) विरंपृथु तत्रतासितसहन भूपतिचक्रम् । चित्रकूटगिरिपु (ष्कल) शोभां........ .... श्री समिद्धेश्वरंदेवं प्रसिद्ध-जगती–कुमारपाल देवोदाग्दादगामं । (१२०७ का कुमारपाल का लेख ए० इ० भाग २ में प्रकाशित]

प्रबन्ध चिन्तामणी के चतुर्थ प्रकाश में "कर्णाटेगुर्जरेलाटे सौराष्ट्रे कच्छसैन्धवे । उच्चायां चैव भैर्यां । मारवे मालवे तथा कौंकणेतु तथा राष्ट्रे कीरे जांगेलेके पुनः । सपादलक्षे मेवाडे ढील्यां जालंनरऽपिच .... (पृ० ९४)

४५. कृतान्तपथसज्जोऽभूत सज्जनो सज्जनोभुवः । वैकुतं कुन्तपालोऽप्राह्य तौ वैकुन्त पालकः" बिजोलिया का लेख ।

देना भी उल्लेखित है जो सज्जन के बाद दण्डनायक रहा होगा। इसके अतिरिक्त यहां से कुछ दान देना भी वर्णित है। कुमारपाल के पश्चात् अजयपाल शासक हुआ। इसके समय में मेवाड़ और गुजरात के शासकों में बराबर युद्ध चलता रहा। रावल सामंतसिंह ने एक बार चित्तौड़ स्वाधीन कर लिया था। किन्तु मेवाड़ के सामान्तों ने आबू के परमारराजा धारावर्ष के छोटे भाई प्रहलाद व गुजरात के राजा की सहायता से उसे पद्च्युत कर दिया। वह डूंगरपुर की तरफ चला गया। किन्तु वहां भी उसका वंश नहीं चला। उसे वहां से भी भीम द्वितीय ने भागने को बाध्य किया। मेवाड़ पर भी उसका अधिकार था।

इसी समय मौका पाकर कीतू सोनगरे ने चित्तौड़ वि० स० १२३६ के आसपास जीत लिया। उस समय तक सामन्तसिंह बागड़ प्रदेश में जा चुका था। कीतू को सामन्त के छोटे भाई कुमार ने हरा दिया था और शीघ्र मेवाड़ छोड़ने को बाध्य किया। गुजरात वालों को पूर्ण रूप से मेवाड़ से नहीं निकाल सके। आहड़ से भीमदेव द्वितीय चालुक्य के ताम्रपत्र मिले हैं। आट के शिवालय में विजयपाल का शिलालेख मिला है जो आमृतपाल का पुत्र प्रतीत होता है। ओझाजी ने विजयपाल को जैत्रसिंह का सामन्त [46] माना है। किन्तु यह माननीय नहीं है। बागड़ में अमृतसूरपाल देव का वि० स० १२४२ का लेख मिला [47] है। कीतू की मृत्यु १२३९ वि० के आस-पास मानते हैं। हाल ही में आट के शिवालय का १२३९ का शिलालेख मथनसिंह का मिला है। इसी का अन्य लेख वि० स० १२४२ का ईसवाल के विष्णु मन्दिर का मिला [48] है। मथनसिंह के उत्तराधिकारी पद्मसिंह का एक लेख गोगुन्दा तहसील के नरसिंह पुरा ग्राम के बल्कलेश्वर शिवालय में मिला है। इसमें उसे महाराजा ही विरुद [49] दिया है। किन्तु १२५१ के कद्माल के एक दानपत्र में पद्मसिंह को महाराजा-धिराज विरुद्ध दिया [50] गया है। इस प्रकार पता चलता है कि मेवाड़ का इन राजाओं का युग बड़ा संघर्ष मय [51] रहा है। जैत्रसिंह ने चीरवा के लेख के अनुसार मारवाड़ और

---

४६. **राजपुताना म्युजियम रिपोर्ट वर्ष १९२८ पृ० ३ संख्या ६**

४७. **ओ० नि० सं० भाग ३ में प्रकाशित**

४८. **राजस्थान भारती अक्टू० १९६१ पृ० ४७-४८ एवं इंडियन हिस्टोरिकिल क्वाटरली मार्च, १९६० पृ० ७५-७८**

४९. **एतं च पुण्ये न महाराजा श्रीपद्मसिंहदेवोगृहपति [वरदा वर्ष ९ अंक १ पृ० ५६]**

५०. **"स्वास्ति श्री सं १२५१ वर्ष महाराजाधिराज श्रीं पद्म स्यंह (सिंह) देवः (उपरोक्त पृ० ५७)**

५१. **"घाघसा और चीरवा के लेखों में वंशावली प्रस्तुत करते समय पद्मसिंह से ही वंशावली दी है। इसमें बहुष्वतीतेषु महीश्वरैषु श्री पद्मसिंहपुरुषोत्तमोभूत्" ही वर्णित किया है। पूर्व के पुरुषों की वंशावली नहीं दीगई है।**

गुजरात के राजाओं से कई युद्ध किये गये[52] थे। किन्तु सुल्तान अल्तमश के आक्रमण के कारण उसे वापस गुजरात के राजाओं से सहायता प्राप्त करने के लिए बाध्य होना पड़ा। इस आक्रमण का आखों देखा हाल जयसिंह सूरि ने "हमीरमदमर्दन" नामक नाटक[53] में दिया है। यह आक्रमण वि० स० १२८३–८४ के मध्य सम्पन्न हुआ था। वि० स० १२९५ के भड़ोंच के युद्ध में वीरधवल घायल हुआ और धवलक्कपुर जाते ही वीर गति को प्राप्त हो गया। उसके बाद वीरमदेव गद्दी पर बेठा। इसने वस्तुपाल से युद्ध किया और हार कर जालोर भाग गया। इसके पश्चात् वीसलदेवबाघेला राज्यासीन हुआ। इसके समय[54] में भी मेवाड़ के राजाओं से बराबर युद्ध चलता रहा था। जैत्रसिंह के वि० स० १२७० और १२७९ के २ शिलालेख और १३८४ में लिखी ओघनिर्युक्ति नामक ग्रंथ की एक प्रति मिली है। इसके पश्चात् वि० स० १३०९ के पूर्व तेजसिंह मेवाड़ का शासक हो गया था। वीसलदेव के एक दानपत्र में मेदपाट को नष्ट करने का उल्लेख है। चीरवा की प्रशस्ति में चित्तौड़ के तलारक्ष क्षेम के पुत्र रत्न[55] के विषय में लिखा है कि वह शत्रुओं का संहार करता हुआ चित्रकूट की तलहट्टी में भीमसिंह सहित काम आया। यह युद्ध संभवतः गुजरात के राजा वीसलदेव के साथ हुआ था।

सुल्तान अल्लाउद्दीन खिलजी का चित्तौड़ पर अधिकार—

दिल्ली के सुलतानों में अल्लाउद्दीन बड़ा उल्लेखनीय था। इसने २ बार मेवाड़ पर आक्रमण किया था। पहला १३५६ वि० में और दुसरा वि० स० १३६० में। पहले

---

५२. चीरवा के लेख का श्लोक ६
वरदावर्ष ५ पृ० ४ में प्रकाशित घाघसा का लेख
हमीदमदमर्दन की यह पंक्ति भी उल्लेखनीय है :—
वीर धवल—"तं पुनः पार्थिववायुर्वायुकवलन प्रसर्पदसित सर्पायमाण-कृपाणदर्पास्मितमस्मदमिलितं मेदपाटपृथिवीललाटमंडनजयतलंविग्रहीतुं ..."

५३. हमीरमदमर्दन वि० स० १२८६ आसाढ़वदि ९ को पूर्ण हुआ था। अत-एवं इसमें दिया गया वर्णन प्रामाणिक मानना चाहिए। ओझाजी ने उदयपुर राज्य के इति० भाग १ पृ० १६२ में इस पर शंका प्रकट की है। इसमें कुछ वर्णन उल्लेखनीय है। लोगों के भागने का वर्णन—" तओ कयसकतिणभवहारेसु कुकइ कव्वेसु व बहुव बालबंभणगोडलमहिलामहण पयपट्टिएसु तेसु हा रक्खध रक्खध पधावद पधावद धूर्त्तेहि व मिच्छअहिदेवएहि मारिज्जंतं सयल लोयमिमं—"

५४. मेदपाटकदेशकलुषराज्यवल्लीकंदोच्छेदनकुद्दाल—
(इ० ऐ० जिल्द ६ पृ० २१०)

५५. चीरवा का लेख श्लोक २६। ओझा० उ० इ० भाग १ पृ० १६८–१६९

आक्रमण के समय मेवाड़ का शासक महारावल समरसिंह था । जिन प्रभसूरि ने विविध तीर्थ कल्प के सत्यपुर कल्प में प्रसंगवश इस आक्रमण[56] का उल्लेख किया है । किन्तु फारसी तवारीखों में इस चित्तौड़ आक्रमण का उल्लेख नहीं है । इसका कोई दीर्घ कालीन प्रभाव भी नहीं पड़ा । इसी कारण न तो मेवाड़ की ख्यातों में और न फारसी तवारीखों में इस आक्रमण का उल्लेख किया गया है । दूसरा महत्वपूर्ण आक्रमण रावल रत्नसिंह के शासन काल में हुआ था । इसका वर्णन अमीर खुसरों ने तारीख-इ-अलाई और खजाइन उल फतुह में किया है । वह सुल्तान अल्लाउद्दीन के साथ चित्तौड़ पर आक्रमण करने आया था । उसने लिखा है कि सुल्तान चितौड़ विजय के लिये दिल्ली से ८ जम्मादि उस्सानी हि० सं० ७०१ (माघ सुदी ६ वि० १३५६) को रवाना हुआ । ११ मुहरम हि० स० ७०३ [भादवा सुदी १४ वि० स० १३६०] को यह किला विजयी हुआ । अमीर खुसरों के अनुसार राजा भाग खड़ा[57] हुआ । परन्तु पीछे शरण में आ गया और राजा को क्षमा कर दिया । समसामयिक जैन ग्रंथ नाभिनन्दन जिनोद्धार प्रबन्ध में प्रसंगवश वर्णित है कि अल्लाउद्दीन ने चित्तौड के राजा को बन्दी बनाकर गांव-गांव बन्दर की तरह घुमाया[58] । इनसे चित्तौड़ दुर्ग में सुल्तान के आतिथ्य पाने रतनसिंह को बन्दी बनाने और गोरा बादल के कथानक की पुष्टि हो जाती है ।

मेवाड़ की ख्यातों आदि में इस प्रकार का वर्णन नही मिलता है । लेकिन ये दोनों कृतियां समसामयिक होने से अधिक विश्वासनीय हैं । एकलिंग माहात्म्य और कुंभलगढ प्रशस्ति[59] में रत्नसिंह का युद्ध में मारा जाना वर्णित है । इनसे विदित होता है कि रत्नसिंह की मृत्यु के पश्चात् लक्ष्मणसिंह अपने सात पुत्रों सहित काम आया । ऐसा प्रतीत होता है कि रत्नसिंह को सुल्तान अल्लाउद्दीन ने युद्ध में बन्दी बना लिया था । अतएव उसके स्थान पर उसके परिवार के अन्य राजपूतों ने लक्ष्मणसिंह को युद्ध जारी

---

५६. विविध तीर्थ कल्प में सत्यपुर कल्प पृ० ९५ । उपरोक्त टिप्पणी सं०४ पृ०१

५७. तारीख इ अलाई (इ लियट जिल्द ३) पृ० ७६—७७ । ए० एल० श्रीवास्तव सुल्तानेत आफ देहली पृ० २३८

५८. श्री चित्रकूट दुर्गेशं बद्धवा लात्वा च तद्धनम् ।
कण्ठबद्ध कपि मिवा भ्रामयत्तं च पुरे पुरे ।।३।।४ नाभिनन्दन जिनोद्धार प्रबंध

५९. कु० प्र० श्लोक सं० १७६ । एकलिंग माहात्म्य के राजवंश वर्णन का श्लोक सं० ७५ और ७६

रखने का आग्रह किया होगा[६०]। क्योंकि रत्नसिंह समरसिंह का पुत्र नहीं बल्कि शीशोदा शाखा का था। अमरकाव्य वंशावली से इसकी पुष्टि होती है। राणकपुर के लेख में वंशावली में इसका नाम नहीं है। लक्ष्मणसिंह के पुत्रों के नाम अरिसिंह, अभयसिंह नरसिंह कुक्कड माकड, ओझड, पैथड आदि हैं। अरिसिंह ज्येष्ठ पुत्र था और खरतर-गच्छ पट्टावली के अनुसार यह किसी महत्वपूर्ण पद पर नियुक्त था। अल्लाउद्दीन ने यह दुर्ग खिज्रखां को दे दिया।

पद्मिनी की ऐतिहासिकता

पद्मिनी की ऐतिहासिकता को लेकर विद्वानों में बड़ा[६१] मतभेद रहा है। कुछ विद्वान इसे कपोल कल्पित[६२] मानते हैं। उनकी मान्यता है कि समसामयिक किसी भी फारसी तवारीख में इसका उल्लेख नहीं है। इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि मुगल-कालीन तवारीखों की तरह खिलजी-कालीन तवारीखें विस्तार से नहीं लिखी गई है। इनमें प्रत्येक दिन की घटनाओं का विस्तार से उल्लेख नहीं है। इसे स्वयं कानूनगो जी ने भी माना है। खजाइनउल फतुह में कुरान की कथा का भी उल्लेख है जों हजरत सुलेमान नबी से सम्बन्धित है जिसमें "हुद हुद" नामक एक पक्षी का उल्लेख है जो शेबा

---

६०. श्री कानूनगो जी ने रतनसिंह के सम्बन्ध में कई आपतियां उठाई हैं। उन्होंने ४ चार रतनसेन का उल्लेख किया है (१) जायसी के पद्मावत का (२) कुंभलगढ़ के शिलालेख का (३) चीरवा के लेख का और (४) रणथंभोर के हमीर का पुत्र। इनमें से प्रथम दो तो एक ही व्यक्ति हैं। चीरवा के लेख का रतनसिंह घटना काल ५५ वर्ष पूर्व ही मर चुका था। इसके साथ वह केवल मात्र तलारक्ष था। राज परिवार से उसका कोई संबंध ही नहीं था। चौथे रतनसिंह का उल्लेख उन्होंने वंशभास्कर के आधार पर लिखा है जो भी गलत है। कानूनगोजी ने चित्तौड़ को ही इलाहाबाद के पास माना है। उन्होंने, प्रतीत होता है कि जायसी का पद्मावत पढ़ा नहीं था। इसमें मेवाड़ के महत्वपूर्ण दुर्ग मांडलगढ़ और कुंभलगढ़ का भी उल्लेख है। चित्तौड़ को हिन्दुओं का मुख्य स्थान भी उल्लेखित किया है। रतनसिंह का दरीबे का लेख वि० सं० १३५६ माघ सुदि ५ बुधवार का है। अतएव इसके राजा होने में संदेह नहीं किया जा सकता है।

६१. मेरा लेख—पदमिणी री ऐतिहासिकता
मरु वाणी (मार्च १६६७) पृ० २१ से २४

६२. श्री कानूनगो—स्टडीज इन राजपूत हिस्ट्री में छपा "ए क्रिटिकल ऐनेलेसिस ऑफ पद्मिनी लिगेंड" दृष्टव्य है।

की रानी की सूचना लाता था। इस कथा को यहां देने से कई विद्वान् इसमें पद्मिनी का उल्लेख मानते है।[63]

जायसी के पद्मावत के कतिपय अंशों को लेकर समस्त कथानक में बड़ी भ्रांति पैदा हो गई है। उदाहरणार्थ इसे लंका की राजकुमारी मानना और राजा का विवाह के लिये वहां जाना उल्लेखनीय है। कथा ग्रंथों में नायक के लंका जाने और वहां से राजकुमारियों से विवाह करके लौटने की कई कथायें मिलती हैं। रयणसेहरी कहा, भविसयतकहा श्रीपाल चरित करकण्डुचरिउ आदि ग्रंथ इसी कोटि के हैं। रयण सेहरी कहा और पद्मावत के कथानकों में भी कुछ साम्यता है।

यह भी सही नहीं है कि इस कथा को सबसे पहले जायसी ने लिखा है। उन्होंने पद्मावत में स्पष्टतः "बेन" कवि का उल्लेख किया है जिसके द्वारा उन्होंने यह कथा सुनी है। "छित्ताई चरित" नामक एक ग्रंथ भी प्रकाश में आ गया है, जिसमें पद्मिनी का उल्लेख है। इस ग्रंथ पर जायसी का कोई प्रभाव नहीं है।[64] कठिनाई यह है कि कई विद्वान इस प्रकार की हठ करते हैं कि इसका नाम ख्यातों में और लोक कथाओं में प्रचलित होते हुये भी समसामयिक ग्रंथों में नहीं होने से यह काल्पनिक है। इनका तर्क आश्चर्यजनक है। समसामयिक फारसी तवारीखों में १३५६ वि० के चित्तौड़ आक्रमण का भी उल्लेख नहीं मिलता है। इसी प्रकार नागपुर के लेख में गुहिलोत विजयपाल के लिये लिखा है कि "जो चित्तोड़हुं जुज्झिअउ जिण ढिल्लीदलजित्तु"। यह अल्लाउद्दीन के समसामयिक था और चित्तौड़ आक्रमण के बाद दक्षिणी भारत चला गया था। अतएव इन सब तथ्यों को दृष्टिगत रखते हुये हमें इस कथानक पर विचार करना चाहिये। इस प्रकार का विचार नहीं करने पर हम मीरा, पन्ना धाय और हाड़ी करमेती की ऐतिहासिकता में भी संदेह कर सकते हैं क्योंकि इनका उल्लेख किसी शिलालेख में नहीं मिलता है। इससे अधिक आश्चर्य यह है कि श्री कानूनगोजी जैसे विद्वान ने पद्मावत को बिना पढ़े ही कई भ्रमात्मक मत प्रस्तुत किये हैं।

राघवचेतन की ऐतिहासिकता

पद्मिनी कथानक से सम्बन्धित एक उल्लेखनीय पात्र राघवचेतन है। इसे चित्तौड़ से निष्कासित किया जाने के कारण अल्लाउद्दीन को उस पर आक्रमण करने को प्रेरित करता है। यह पात्र ऐतिहासिक है। खरतरगच्छ पट्टावली के अनुसार यह

---

६३. जरनल ऑफ इन्डियन हिस्ट्री जिल्द ८ पृ० ३६६–७१
डा० दशरथ शर्मा—पद्मिनी चरित चोपाई की भूमिका पृ० ११–१२

६४. डा० दशरथ शर्मा—जरनल ऑफ ओरियन्टल रिसर्च सोसाइटी जिल्द सं०१४
अंक १ पृ० ८१
पद्मिनी चरित चोपाई की भूमिका पृ० १६

जिनप्रभसरि का समकालीन था और मोहम्मद तुगलक द्वारा सम्मानित था। उस समय दिल्ली में विद्यमान था। इसे मंत्र तंत्र में पारंगत और १४ विद्यानिदान बतलाया है। यह हमेशा बादशाह के पास जाया करता था और दुष्ट स्वभाव का था। इसने ६४ योगनियों की भी साधना कर रक्खी थी। उक्त ग्रन्थ के अनुसार उसने उनको जिनप्रभसूरि के समीप भी भेजा किन्तु वे सफल नहीं हो सकी। इस प्रकार पता चलता है कि यह पात्र अवश्यमेव ऐतिहासिक है।[65]

खिज्रखां का शासनकाल

खिज्रखां के समय में सबसे उल्लेखनीय कार्य चितौड़ में गम्भीरी नदी का पुल बनाना था। मलिक कफूर और इसके मध्य बैर था। वह सुलतान को इसके विरूद्ध भड़काया करता था। सुल्तान के अंतिम दिनों में वह दुर्ग छोड़ कर दिल्ली चला गया था और यह किला मालदेव सोनगरा को दे दिया था। कफूर ने खिज्रखां को षड़यंत्र का दोषी बतलाया। तब उसने सुल्तान के समक्ष क्षमा मांग कर अपने को निर्दोष साबित करने का उद्योग भी किया था। किन्तु मलिक कफूर का पक्ष प्रबल होता गया और उसे ग्वालियर के दुर्ग में बन्दी बना कर रख लिया गया। इस प्रकार राजसत्ता से उसे सदेव के लिए हटा[66] दिया गया। अनुमानतः खिज्रखां ने १० वर्ष तक चितौड़ पर राज्य किया था।

---

६५. राघव चेतन का उल्लेख कांगड़ के राजा संसारचन्द्र की प्रशस्ति में है और इसी प्रकार शाङ्गर्धर पद्धति में "श्रीराघवचैतन्यश्रीचरणानां" वर्णित है। खरतर गच्छपट्टावली में इसका वर्णन बहुत ही उल्लेखनीय है—

"इत्थ पत्थावे बाणारसीओ समागओ राघव चेयणो बंभणो चउदसविज्जापारगो मंत जंतजाणओ। सो आगंतूण मिलिओ भूवं। साहिणा बहुमाणो कओ। सो निच्चमेव आगच्छइ राय समीवे। एगया पत्थावे सहा उवविठ्ठा। सूरि राघवचेयणपमुहा कहाविणोयं चिठ्ठंति। तओ राघव चेयणेण चिंतियं दुठ्ठ सुहावं दोसवंतं काऊण निवरयामि इत्थ ठाणाओ ....." [जिनप्रभसूरि प्रबंध]

दिल्ली के सुल्तान मोहम्मद तुगलक के दरबार में राघवचेतन को हरा कर जिनप्रभसूरि का सन्मानित होना बड़ा प्रसिद्ध है। जैन परम्पराओं में और भी कई जगह इसका उल्लेख मिलता है। "बुद्धि विलास" में भी ऐसा ही उल्लेख है। उसमें एक अन्य जैन साधु से हारने का उल्लेख है।

६६. बि० फ० जिल्द १ पृ० ३५३-५४ एवं ३७१

हि. सं. ७०५ और ७०९ के २ शिलालेख चित्तौड़ दुर्ग से मिल चुके हैं।[67] फरिश्ता ने मालदेव सोनगरा को हि. सं० ७०४ में चित्तौड़ देना लिखा है, जो गलत है। क्योंकि उसने एक जगह हि सं० ७११ में चित्तौड़ में खिज्रखां को शासक के रूप में वर्णित किया है और लिखा है कि जब मलिक कफूर दक्षिण विजय को जा रहा था, तब वह खिज्रखां के प्रदेश से होकर गया था।[68] अतएव मालदेव को हि. सं० ७११ (१३११ ए. डी.) के पश्चात् ही दुर्ग सौंपा गया होगा।

मालदेव सोनगरा को चित्तौड़ देना

मालदेव जालोर के सोनगरा राजा सामन्तसिंह का पुत्र था। अल्लाउद्दीन ने वि. सं. १३६८ (१३११ ए. डी.) में जालोर विजय किया था। संभवतः जालोर विजय के पश्चात् मालदेव को बादशाही सेवा स्वीकार करने के उपलक्ष में यह दुर्ग दे दिया गया प्रतीत होता है। फरिश्ता ने लिखा है कि जब रतनसेन बन्दीगृह से भाग गया तब वह लूट खसोट करने लगा एवं मुल्क को उजाड़ने लगा। सुल्तान ने राणा के सम्बन्धी को किला दे दिया। सोनगरों का इस प्रकार चित्तौड़ पर दूसरी बार अधिकार हुआ। फरिश्ता के अनुसार वह सुल्तान की बड़ी सेवा करता था। उसने थोड़े दिनों में आक्रमण के पूर्व की सी स्थिति लादी थी।

महाराणा हमीर के चित्तौड़ विजय की तिथि

सुल्तान अल्लाउद्दीन खिलजी की मृत्यु ६ शव्वाल हि. सं. ७१६ (२०–१२–१३१६ ए. डी.) को सम्पन्न[69] हो गई। इसके पश्चात् ५ वर्ष तक कई शासक हुए एवं हि. स. ७२१ ता. १ शव्वान (२५–८–१३२१ ए. डी.) को सुल्तान गयासुद्दीन राजगद्दी पर बैठा। मलिक गयासुद्दीन के समय का चित्तौड़ में शिलालेख है इसमें मलिक असदुद्दीन का उल्लेख है।[70] इसमें संवत का अंश और बादशाह का नाम टूट गया है। लेकिन इसमें तुगलकशाह शब्द स्पष्टतः वर्णित है। असदुद्दीन का नाम भी दिया गया है। तारीखे फिरोजशाही से ज्ञात होता है कि यह गयासुद्दीन के समय नायब[71]

---

६७. राजपूताना म्युजियम रिपोर्ट अजमेर वर्ष १९२२ पृ० २
ओझा—उ० इ० भाग १ पृ० १९२-९३

६८. बि० फ० जिल्द १ पृ० ३७८-७९

६९. तारीख इ मुबारक शाही में यह तिथि २० मुहर्रम हि० स० ७१६ दी है।

७०. ओझा उ० इ० भाग १, पृ०१९७

७१. तारीख इ फिरोजशाही—तुगलक कालीन भारत में दिये गये अनुवाद और इलियट—हिस्ट्री ऑफ इन्डिया भाग ३ पृ० २३०

बारबक था । वह स्थान जहां से यह शिलालेख चित्तौड़ से मिला है अवश्य इस असदुद्दीन का बनाया हुआ प्रतीत होता है । अतएव उक्त बादशाह के राज्यरोहण के पश्चात् हमीर ने राज्य लिया प्रतीत होता है । इसी दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर श्री ओझा ने वि. सं. १३८३ में हमीर को चित्तौड़ का स्वामी होना वर्णित किया है ।[72] लेकिन यह वर्णन सत्य नहीं है । करेडा के जैन मन्दिर में वि. सं. १३९२ का लेख उपलब्ध है । इसमें स्पष्टतः चित्रकूट के शासक पृथ्वीचन्द्र और सिलहदार मोहम्मद देव, मालदेव के पुत्र बणवीर आदि का उल्लेख है अतः यह घटना इसके पश्चात् होनी चाहिए ।[73]

मोहम्मद तुगलक के साथ युद्ध

कर्नल टॉड ने लिखा है कि हमीर द्वारा चित्तौड़ जीत लेने से मोहम्मद खिलजी नाराज हो गया और संभवतः आक्रमण भी किया लेकिन इस कथन की पुष्टि नहीं होती है । हमीर के तुरूष्क सेना को जीतने का उल्लेख केवल[74] मात्र वि. सं. १४९५ की चित्तौड़ की प्रशस्ति में है । इसमें भी किसी विशिष्ट राजा का उल्लेख नहीं किया है इससे संदेहास्पद हैं । ऐतिहासिक दृष्टि से यह प्रशस्ति अधिक महत्वपूर्ण भी नहीं है । स्वयं राणा कुम्भा का जिसके शासनकाल में यह प्रशस्ति बनाई गई थी अतिशयोक्ति-पूर्ण वर्णन है । इस कथन को अगर सत्य भी माना जाय कि हमीर ने तुरष्क सेना से लड़ाई की तो संभव है कि तुगलक बादशाहों की कुछ सेना निश्चय रूप से चित्तौड़ में विद्यमान होंगी उससे युद्ध होना संभव है ।[75]

मेवाड़ साम्राज्य की नींव डालना

हमीर ने सबसे पहले हाडाओं को विजित किया और देवा को बून्दी का राज्य दिलाकर सदा के लिये अपनी ओर आकृष्ट कर लिया । वंश भास्कर में यह धटना वि०

---

७२. ओझा उ० इ० भाग १ पृ० १९८

७३. "संवत १३९२ पौषसुदि ७ रवौ श्री चित्रकूटस्याने महाराजाधिराजपृथ्वी-चन्द्र श्रीमालदेव पुत्र बणवीर सत्कं सिलहदार महमददेव सुहडसिंह चउंडरा सत्कं पुत्र—दिवगतं तस्य सत्कं गोमट्ट कारापितं (नाहर जैन लेख संग्रह भाग १ पृ० २४२)

७४. तौरूष्कामितमुण्डमण्डलमिथः संघट्टवाचालिता ।
यस्याद्यापि वदन्ति कीर्तिमभितः संग्रामसीमाभुवः ।।९।।
ज० ब० बां० रा० ए० सो० भाग २३ पृ० ४४ से ५२

७५. ओझा० उ० इ० भाग १ पृ० २६४-२३५
टाड-एनल्स एण्ड एन्टीक्विटीज ऑफ राजस्थान हिन्दी अनुवाद पृ० १५८-१५९

स० १२९८ के आस-पास सम्पन्न[76] होना लिखा है जो गलत है। हमीर का दूसरा महत्वपूर्ण कार्य ईडर के राजा से युद्ध करना है। युद्ध की यह परम्परा दीर्घकाल तक चलती रही। ईडर के[77] राजाओं को अपनी स्वतन्त्रता के लिये बराबर संघर्ष करना पड़ा था। इस प्रकार प्रथम बार मेवाड़ ने साम्राज्यवाद की ओर ध्यान दिया था और अपनी शक्ति बढ़ाकर सहायक राजाओं को अपनी ओर खींचना प्रारम्भ किया था।

महाराणा खेता के समय के बून्दी के हाडाओं से युद्ध शुरू हुआ था। कुंभलगढ़ प्रशस्ति के अनुसार इसने प्रसिद्ध मांडलगढ़ का दुर्ग हाडाओं से जीतकर अपने राज्य में मिला लिया। लेकिन यह विजय अस्थायी ही रही। हाडाओं ने कालान्तर में दुर्ग मोकल के अन्तिम दिनों में जीत लिया था जिसे महाराणा कुंभा ने जीतकर सदैव के लिये अपने राज्य में मिला लिया था। स्मरण रहे कि यह दुर्ग प्रारम्भ में मेवाड़ के राजाओ के अधीन ही था। श्री ओझा जी ने खेता के लिए इसे जीतने के स्थान पर तोड़ना ही लिखा है।[78] बम्बावदे के हाडा महादेव के लेख के अनुसार जिसे टॉड ने देखा था और अब प्राप्य नहीं है बून्दी के राजाओं ने खेता की आधीनता में मालवे के शासक से लड़ाई की थी। अतएव प्रतीत होता है कि इनके सम्बन्ध बाद में ठीक हो गए। ईडर के राजा रणमल के साथ भी इसका युद्ध बराबर जारी रहा था। कुंभलगढ एवं कीर्तिस्तंभ प्रशस्तियों और एकलिंग माहात्म्य में इस घटना का विस्तार

---

७६. वंश भास्कर पृ० १६२६-२७
डा० मथुरालाल शर्मा—कोटा राज्य का इतिहास भाग १ पृ० ५६—६०

७७. प्रहलादनपुरं हत्वा तथेलादुर्गनायकं।
जितवान् जितकर्णं यो ज्येष्ठं श्रेष्ठो महीभृतां ॥८६॥
एकलिंग माहात्म्य का राज वंश वर्णन
संस्कृत में ईडर के लिये इलादुर्ग और इयद्दर दोनों शब्द मिलते हैं [सोम सौभाग्य काव्य ७।१ और पीटर-सन् की ६ ठी रिपोर्ट पृ० १७-१८]

७८. ओझा—उ० इ० भाग १ पृ० २४४-४५। दक्षिण द्वार की प्रशस्ति श्लोक ३१ श्रृंगी ऋषि के लेख के श्लोक सं० ७ और कुंभलगढ प्रशस्ति के श्लोक सं० १९८ और एकलिंग माहात्म्य के श्लोक सं० १०३ में हाडोती को जीतने और मांडलगढ़ को विजय करने का उल्लेख है। श्रृंगी ऋषि के लेख में "भग्नो विश्रुतमंडलाकृतिगढो" शब्द होने से ओझाजी ने इसे जीतना नहीं लिखा है।

से उल्लेख है। इनमें लिखा है कि विजयी गुर्जर मंडलेश्वर के गर्व को चूर करने वाले वीर रणमल को उसने अपने कारागृह में रक्खा था।[७९]

मालवे के शासक दिलावरखां का चित्तौड़ पर आक्रमण

मालवा के शासक दिलावर खां ने जिसे मेवाड़ की ख्यातों और शिलालेखों में अमीशाह के नाम से वर्णित किया है चित्तौड़ पर आक्रमण किया था। यह घटना महाराणा खेता के शासन काल में घटित हुई। साम्राज्य के लिये मालवा और मेवाड़ का संघर्ष बड़ा विख्यात है। इनमें यह आक्रमण संभवतः पहला आक्रमण है। कुंभलगढ़ एवं कीर्तिस्तंभ की प्रशस्तियों में स्पष्टतः वर्णित है कि यवनों की सेना को चित्तौड़ के समीप हराकर उसे पाताल पहुंचाया। फारसी तवारीखों में इस युद्ध का वर्णन नहीं है। लेकिन मेवाड़ के लगभग सब शिलालेखों में इसका वर्णन होने से यह घटना[८०] सही प्रतीत होती है। बून्दी के हाडा महादेव के शिलालेख में वर्णित है कि उसने दिलावरखां पर तलवार का वार कर के मेदपाट के स्वामा खेता की रक्षा की और मालवा की सेना को हराकर मेवाड़ नरेश को विजय दिलाई। अतएव प्रतीत होता है कि बून्दी वालों ने भी इस अवसर पर महाराणा को सहायता दी थी। शृंगी ऋषि के लेख से ज्ञात होता

---

७९. कु० प्र० श्लोक सं० १९६ एव की० प्र० प्रशस्ति का श्लोक संख्या २३ (प्रथम शिला) में इसका वर्णन है। श्रीधर पंडित द्वारा रचित रणमल छंद और सोम सौभाग्य काव्य (७।४-५) में इस राजा की वीरता का प्रसंग वंश वर्णन है।

दक्षिणी द्वार की प्रशस्ति के श्लोक ३० में "कारांधकारमनय द्रणमल-भूपमेतन्महीमकृत तत्सुत सात्प्रसह्य।" वर्णित है। यह कुछ समय के लिये ही जेल में रहा होगा। रणमल की वीरता में संदेह नहीं किया जा सकता है। सम सामयिक जैन ग्रंथों में "संग्राम संत्रासितनैक शाखी—शूरेषु रेखा रणमल्लभूपः।" उल्लेखित है। श्रीधरने रणमल द्वारा राजस्थान जीतना वर्णित किया है।

८०. येनानर्गलभल्लदीर्णहृदया श्रीचित्रकूटाति के
तत्तत्सैनिकघोरवीरनिनदप्रध्वस्तधैर्योदया।
मन्ये यावनवाहिनी निजपरित्राणस्य हंतोरलं
भूनिक्षेपमिषेण भीपरवशा पाताल मूलं यया ॥२२॥

(कीर्त्ति स्तंभ प्रशस्ति)

है कि उसने असंख्य यवन सेना को नष्ट ही नहीं किया बल्कि उसका सारा का सारा खजाना लूट लिया।

महाराणा खेता की निधन तिथि

महाराणा खेता की निधन तिथि में बहुत विवाद है। ओझा[८१] प्रभृति विद्वान इसे वि. सं. १४३९ (१३८२ ए. डी.) के आसपास मानते हैं। श्री दत्त इसे १४०५ ए. डी. के आसपास[८२] मानते हैं। लेकिन ओझाजी द्वारा दी गई तिथि ही अधिक उपयुक्त प्रतीत होती है। श्री दत्त का आधार काल्पनिक तर्क है। उनका कहना है कि कुंभलगढ़ प्रशस्ति में यह वर्णित है कि खेता ने ईडर के राजा रणमल को हराया जिसने गुजरात के सूबेदार जफर जैसे शक्तिशाली प्रशासक को हरा दिया था। चूंकि उक्त प्रशस्ति में गुजरात के सूबेदार जफर को हराने का उल्लेख है अतएव खेता की मृत्यु उक्त तिथि के पश्चात् ही सम्पन्न होना चाहिए। फारसी तवारीखों के अनुसार रणमल और गुजरात के राजा के मध्य[८३] ३ युद्ध हुए थे। पहला हि. सं. ७९६ (१३९३–९४ ए. डी.) दूसरा हि. सं. ८०१ (१३९८–९९ ए. डी.) और तीसरा हि. सं. ८०३ (१४००–१) में इनमें से रणमल की विजय दूसरे युद्ध में हुई थी। इसी प्रकार उनके तर्क का यह भी आधार है कि खेता का मालवे के शासक अमीशाह के साथ युद्ध करना भी वर्णित है जिसकी निधन तिथि १४०५ ए. डी. के आसपास आती है। अतएव श्री दत्त खेता को १४०५ ए. डी. के आसपास तक शासक मानते हैं। लेकिन ये तर्क कुछ भी वास्तविकता नहीं रखते हैं। कुंभलगढ़ प्रशस्ति के श्लोक सं० १९६ और कीर्ति स्तंभ प्रशस्ति के श्लोक सं० २३ में जहां रणमल को विजय करने का उल्लेख है वहां इसके विशेषण के रूप में "स्फूर्जदगुर्जरमंडलेश्वरमसौ कारागृहेवीवसत्" प्रयुक्त हुआ है। यहां प्रशस्तिकार का उद्देश्य शत्रु के बल को बढाकर वर्णित करना ही प्रकट होता है। यह प्रशस्ति सम सामायिक नहीं है अतएव इसके आधार पर कोई तिथि निश्चित नहीं की जानी चाहिए। इसके विपरीत जैन ग्रंथ सोम सोभाग्य[८४] काव्य में यह उल्लेखित

---

८१. ओझा उ० इ० भाग १ पृ० २५९

८२. भारतीय विद्याभवन बम्बई द्वारा प्रकाशित "देहली सुल्तानेत" पृ० ३५९

८३. सतीश सी मिश्रा—राइज आफ मुस्लिम पावर इन गुजरात पृ० १४४–४५

८४. श्री वाचकोत्तम पदं खशराब्धिचंद्र—
संवत्सरे (१४५०) विगतमत्सरचित्तवृत्तः।
अब्दैः समस्य समभूत नखसंमिताब्दे
शाब्देन सन्मधुरिमातिशयेन तस्य ॥१४॥
श्री लक्ष भूमिपति मान्यवदान्य साधु-
श्री रामदेव सचिवोत्तम चुंड मुख्याः
श्री मद्गुरोरभिमुखं सुमुखा महेभ्या
जग्मुर्विभूषणविभूषित देहदेशाः ॥१७॥

सोम सोभाग्य काव्य पांचवा सर्ग।

है कि जब वि० सं० १४५० में सोमसुन्दर सूरि मेवाड़ के देलवाड़ा ग्राम में पधारे तब वहां के शासक महाराणा लाखा राजकुमार चूण्डा और सचिव रामदेव उनके सामने गये। यह सूचना महत्वपूर्ण है। इस ग्रंथ में वर्णित लगभग सारी घटनायें गुरू गुण रत्नाकर काव्य और वि० सं० १४६५ के चित्तौड़ के लेख से मिलती है। अतएव अधिक विश्वसनीय है। इस प्रकार जब वि०सं० १४५० में मेवाड़ में लाखा का शासन विद्यमान था तब १४६२ (१४०५ ए. डी.) तक उसके पिता खेता के जीवित रहने का प्रश्न ही नहीं उठता है। अतएव ओझा जी वाली तिथि वि. सं. १४३९ ही अधिक उपयुक्त है।

महाराणा लाखा के समय गुजरात के सूबेदार का आक्रमण

फारसी[85] तवारीखों के अनुसार हि. सं. ७९८ (१३९६ ए० डी०) में गुजरात के सूबेदार जफर ने मेवाड़ पर आक्रमण किया था। यह आक्रमण मांडलगढ़ तक ही सीमित रहा था। इस आक्रमण के सम्बन्ध में विभिन्न फारसी लेखकों में मतैक्यता नहीं है। कहीं २ इसे मांडू भी लिखा है। उदाहरणार्थ याहिया सरहिन्दी द्वारा लिखित तारीख-ए-मुबारकशाही और मिरात-इ-सिकन्दरी में मांडू वर्णित है जबकि तबकात-इ-अकबरी तारीख-इ-फरिश्ता आदि में मेवाड़ का मांडलगढ़ वर्णित है। वहां से सुल्तान का अजमेर जाना वहां से सांभर डीडवाना तक जाकर वापस देलवाड़ा (मेवाड़) और जीलवाड़ा को जीतता हुआ लोट जाना वर्णित है।

राव रणमल के मेवाड़ आने की तिथि

राव रणमल मंडोर के राव चूण्डा का बेटा था। राव का उसकी मोहिली राणी से अत्यधिक प्रेम था। उसी राणी के कहने पर उसने रणमल को निष्कासित कर उसके छोटे पुत्र कान्हा को युवराज घोषित कर दिया। यद्यपि यह बात राजपूत परम्परा के विरुद्ध थी लेकिन राव ने कोई परवा नहीं की। अतः रणमल चित्तौड़ में महाराणा लाखा के पास शरण लेने को[86] आ गया। महाराणा लाखा ने उसे धणला गांव जागीर में दिया। राव रणमल के मेवाड़ में आने से यहां की राजनीति में बड़ा महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ।

---

८५. तब० अक० का अनुवाद भाग ३ पृ० ८६। एव ब्रि०फ० भाग ४ पृ० १८०
राइज आफ मुस्लिम पावर इन गुजरात पृ० १४८

८६. रेऊ—मा० इ० भाग १ पृ० ७०। नैं० ख्या० जिल्द १ पृ० २३

ओझा—उ० इ० भाग १ पृ० २६५।

टॉड—एनल्स एण्ड एण्टीक्विटीज ऑफ राजस्थान (हिन्दी अनुवाद) पृ० ३५७

यह वड़ा प्रतिभा सम्पन्न पुरुष था। इसके मेवाड़ आने की तिथि श्री विश्वेश्वर नाथ रेऊ ने मारवाड़ के इतिहास में वि० स० १४६२ के आसपास दी है। रेऊ द्वारा मानी गई तिथियां अशुद्ध प्रतीत होती है। इन्होंने मोकल की जन्म तिथि भी इसी आधार पर गलत मानी हैं। मेवाड़ की ख्यातों के अनुसार यह घटना वि० स० १४५० में सम्पन्न हो गई थी। श्री रेऊ ने रणमल की जन्म तिथि ही वि० स० १४४६ बेशाख सुदि ४ मानी है जबकि मारवाड़ के अन्य अभिलेखों में यह तिथि बहुत पहले आ जाती है। मारवाड़[87] की ख्यात "वीरवाण" में यह तिथि १४३२ वि० दी है। इस प्रकार श्री रेऊ जी की दी हुई तिथि अशुद्ध प्रतीत होती है। इसके अतिरिक्त आगे चलकर जब महाराणा मोकल की जन्म तिथि पर विचार करेंगे तो प्रतीत होगा कि वि० स० १४५० के बाद कभी भी रणमल के चित्तौड़ आने की तिथि नहीं रखी जा सकती है।

हंसाबाई का विवाह और चूंडा का त्याग

रणमल अपने साथ अपनी बहिन हंसाबाई को भी लाया था। वह इसका विवाह राजकुमार चूंडा से करना चाहता था। उसने सगाई का दस्तूर महाराणा के पास भेजा। कहते हैं कि उस समय महाराणा ने हंसी में यह कह दिया कि सगाई के दस्तूर तो अब जवानों के ही आते है। इस बात को जब चूंडा ने श्रवण की तो उसको विश्वास हो गया कि स्वयं महाराणा विवाह करना चाहते हैं। अतएव उसने स्पष्ट रूप से इन्कार कर दिया और कहा कि आप ही इससे विवह कर लें। महाराणा ने घटनाओं की गंभीरता को उसे समझाया किन्तु वह दृढ़ प्रतिज्ञ था। उसने स्पष्ट रूप से इन्कार कर दिया। इस पर रणमल ने कहा कि अगर हंसाबाई का पुत्र ही मेवाड़ का उत्तराधिकारी हो तों यह सम्बन्ध[88] स्वीकार किया जा सकता है। इस प्रकार से रणमल का मेवाड़ में आना एवं हंसाबाई का विवाह महाराणा के साथ हो जाने से घटनाओं में बड़ा परिवर्तन हुआ। चूंड़ा को पेतृक अधिकारों से वंचित हो जाना पड़ा एवं इसी के फलस्वरूप उसको निष्कासित भी होना पड़ा। रणमल को अपनी शक्ति उपयोग का अवसर हाथ आ गया किन्तु दुर्भाग्य से वह भी षडयन्त्र का शिकार हो गया और चित्तौड़ में ही काम आया जिसका वर्णन आगे किया जा रहा है।

---

८७. संवत १४३२ राव रिडमल जी रो जन्म। संवत् १४६५ राव रिडमल जी चून्डा जी टीके बैठा (वीरवाण में राव चूडा की बात पृ० २५)

८८. वी० वि० भाग १ पृ० ३०६

महाराणा मोकल की जन्म तिथि

श्री विश्वेश्वर नाथ रेऊ ने मोकल[८९] की जन्मतिथि वि० स० १४६६–६७ दी है। ओझाजी ने इसे छोटी अवस्था में ही शासक हो जाना वर्णित किया है। किन्तु ये मान्यताएं गलत प्रतीत होती है। मेवाड़ की ख्यातों में मोकल का जन्म[९०] वि० सं १४५२ में और राज्याधिकार वि० स० १४५४ में वर्णित है। इसीलिए छोटी अवस्था में शासक होना माना गया है। हाल ही में अचलदास खींची की बचनिका नामक राजस्थानी भाषा का ग्रंथ प्रकाशित हुआ है। डा० माहेश्वरी के अनुसार इसका रचनाकाल वि०स० १५०० के आस-पास है। इस ग्रंथ से पता चलता है कि अचलदास का विवाह महाराणा मोकल की पुत्री लालादे के साथ हुआ था। वह बड़ी चतुर थी और राज्य की सारी शक्ति अपने हाथ में ले रक्खी थी। इसकी मृत्यु मालवे के सुल्तान होशंगशाह के आक्रमण के समय हुई थी। यह घटना वि० स० १४८० में[९२] सम्पन्न हुई थी। श्री रेऊ की दी हुई तिथि से अगर इसकी तुलना करें तो ज्ञात होगा कि मोकल के कभी भी विवाह योग्य पुत्री नहीं हो सकती है। लालादे कभी भी १५–१६ वर्ष से कम उम्र की नहीं थी अतएव रेऊ जी की मान्यता किन्हीं गलत आधारों पर आधारित है। संभवतः इनका उद्देश्य कुंभा के शासनकाल में रणमल के उत्कर्ष को बढ़ा चढाकर वर्णित करना प्रकट होता है। उनका लिखना है कि राणकपुर प्रशस्ति में उल्लेखित राणा कुंभा की सारी विजयों का श्रेय रणमल को है। मोकल की काल्पनिक जन्मतिथि के अनुसार ही उन्होंने कुंभा की भी जन्मतिथि मानी है। उसे राज्यरोहण के समय ८–६ वर्ष का ही वर्णित किया है जो भी पूर्ण रूप से गलत है। वि० स० १४६५ की चित्तौड़ की प्रशस्ति में महाराणा कुंभा का वर्णन बड़े ही गौरव के साथ किया गया है और उसे एक नवयुवक[९३] के रूप में

---

८६. रेऊ—मा० इ० भाग १ पृ० ७५ का फुटनोट

६०. वी० वि० भाग १ पृ० ३०६

६१. प्रथम अचलदासखीची गढ गागुरन रो धणी। गढ़ गागरूण राज करे है। तिणरै राणी लाला मेवाड़ी। दस सहस मेवाड़ रो धणी राणों मौकल सी तिणरी बेटी (पृ० ४५)। डे—मिडिवल मालवा पृ० ४६

६२. मुन्तखवाब-उत्त-तवारीख का अनुवाद (जार्ज रेंकिग) पृ० ३८४
ब्रि० फ० जिल्द ४ पृ० १८३। डे—मिडिबल मालवा पृ० ५०।

६३. "वार्तापितापविषयात्रकथंप्रजानां श्रीकुंभकर्णपृथिविपतिरद्भुतोजाः"
श्री रेऊ के अनुसार उस समय वह केवल अल्पायु का ही रहता है अतएव उसके लिये ऐसा वर्णन ठीक प्रतीत नहीं होता है।

वर्णित किया है । अतएव श्री रेऊजी की मान्यताए काल्पनिक है । हम मोकल की तिथी वि० स० १४५२ के पश्चात् नहीं रख सकते है पहले अवश्य ।

मोकल का नागौर के सुल्तान के साथ युद्ध

महाराणा मोकल और नागौर के सुल्तान फीरोज के मध्य हुए युद्धों का वर्णन फारसी तवारीखो और मेवाड़ के शिला लेखों में भी मिलता है । यह एक उल्लेखनीय घटना हैं । मेवाड़ के शिलालेखों में सुल्तान के भाग जाने का उल्लेख है जबकि फारसी तवारीखों में मोकल के हारने का । यह युद्ध एक लम्बे समय तक चलता रहा प्रतीत होता है । वीर विनोद के अनुसार एक बार महाराणा की हार और दूसरी बार विजय हुई । कुंभलगढ़ के लेख के अनुसार महाराणा ने फिरोज को उसके साथी महमूद के सहित हराया था । यह महम्मद काययमखानी था । क्यामखाँ रासो के अनुसार इसने फिरोज को सहायता दी थी । ओझाजी ने इसे गुजरात के सुल्तान अहमदशाह माना है जो गलत है । क्यामखां रासो में स्पष्टत: महम्मद का महाराणा मोकल के साथ युद्ध करने का उल्लेख है । महाराणा फिरोज की शक्ति क्षीण नहीं कर सका था ।

मेवाड़ की शक्ति का कमजोर होना

मोकल के अन्तिम दिनों में मेवाड़ की शक्ति बड़ी कमजोर हो गई थी । सिरोही के राव और बुन्दी के राजा दोनों मेवाड़ विरोधी हो गये थे । सिरोही वालों ने गोडवाड़ का इलाका दबाना शुरू कर दिया था और बून्दी वालों ने मांडलगढ़ तक का इलाका छीन लिया था । फिरोज ने भी अजमेर तक का भाग ले लिया था । मोकल के राज्य में भी भीषण फूट पड़ी हुई थी । स्वयं उसे भी इन्हीं षड़यंत्रों का शिकार बन जाना पड़ा था ।

मालवा और गुजरात की घटनाएं

मालवा और गुजरात के स्थानीय राजपूत राज्यों के विनष्ट हो जाने के पश्चात् ये भाग दिल्ली साम्राज्य के प्राधीनस्थ हो गये । तेमूर के आक्रमण के पश्चात् देहली सल्तनत का विघटन प्रारम्भ हुआ । मालवा और गुजरात के सूबेदार भी स्वतन्त्र हो गये व राज्यों की संस्थापना की । मालवे का सूबेदार दिलावरखां गौरी था, जिसका नाम अमीशाह भी था । तैमूर के भारत आक्रमण के समय वह मालवे में शांत बैठा रहा और दिल्ली के बादशाह की किसी भी प्रकार की सहायता नहीं की । उसके पुत्र अलपखां ने इसे जहर देकर मरवा डाला । (हि० स० ८०९ या १४०६ ए० डी०) एवं होशंगशाह के नाम से गद्दी पर बैठा।गुजरात का सूबेदार जफर हि०स० ८०६या १४०४ई० में स्वतन्त्र शासक बन गया । एवं अपना नाम मुज्जफरशाह रखा ।इसका पुत्र तातारखां इसे गद्दी से उतारकर स्वयं बादशाह बन गया । उसने नागौर से शम्सखां दंदानी को बुलाकर "वकील इमुमाकिल" नियुक्त किया । किन्तु तातारखां को मृत्यु का शिकार हो जाना पड़ा एवं

मुज्जफरशाह ने पुनः अधिकार कर लिया। उसने मालवे पर आक्रमण करके होशंगशाह को कैद कर लिया एवं अपनी ओर से नसरतखां नामक एक अधिकारी को मालवे में नियुक्त कर दिया। मालवे की सेना के विद्रोह के फलस्वरूप नसरतखां को हटाकर वहां मूसाखां को नियुक्त कर दिया गया। मुज्जफरशाह ने हि० सं० ८११; १४०८-९ ए० डी० में अलखां को कैद से मुक्त करके उसे मालवे का सुलतान मान लिया।

गुजरात में अहमदशाह १३ रमजान हि० सं० ८१३ या १०-१-१४११ ए० डी० में राजगद्दी पर बैठा। मालवा और गुजरात के सुल्तानों के बीच पारस्परिक बैर यथावत् बना रहा। मालवा के सुल्तान ने दो बार गुजरात पर आक्रमण किया एवं दोनों ही बार उसे हार कर लौटना पड़ा। इसी प्रकार हि० सं० ८२१ (१४१८ ए० डी०) में गुजरात के शासक अहमदशाह ने मांडू पर आक्रमण किया और उसे भी बिना ही सफलता के लौट जाना पड़ा। फारसी तवारीखों में उसके लौटने की तिथी जामद हि० सं० ८२१ या जून, जुलाई १४१८ ए० डी० दी है। उसी समय मालवे का सुल्तान हाथी लेने के लिये उड़ीसा गया। यह घटना हि० सं० ८२५ (१४२२ ए० डी०) की है। जाते समय राजधानी का भार मुगीस पर छोड़ा गया। इसी मुगीस का बेटा आगे चलकर मोहम्मद खिलजी के नाम से मालवे का सुल्तान बना। मालवे के सुल्तान को उड़ीसा गया हुआ जानकर गुजरात के सुल्तान ने उस पर आक्रमण किया। उसने सबसे पहले चम्पानेर पर आक्रमण किया। वहां के राजपूत राजा से कर लिया और वहां से १९ सफर हि० सं० ८२५ : १२।२। १४२२ ए० डी० को संखेड़ा पहुंचा। वहां से २५ रबी हि० सं० ८२५ : ५।४। १४२२ ए० डी० को मांडू विजय कर लिया। इस प्रकार उसने मालवा विजय करके स्थान २ पर अपने अधिकारी नियुक्त कर दिये। दयालपुर में मलिक मुखीस को, कैथा में मालिक फरीदइमारुल मुल्क को और महेन्द्रपुर में मलिक इफ्तिखार को लगाया। ४० दिन ठहरने के पश्चात् वह मांडू से उज्जैन की तरफ रवाना हो गया। वर्षा के बाद वापस लौट गाया। यह घटना २० रमजान हि० सं० ८२५ : ७ सितम्बर १४२२ ए० डी० है। इसी समय होशंगशाह भी उड़ीसा से लौट आया और तारापुर द्वार से गुजरात की सेनाओं से बच कर मांडू में जा पहुंचा। उसके लौट आने से स्थिति में परिवर्तन आ गया। दोनों सेनाओं का सारंगपुर नाम स्थान पर मुकाबला १२ मुर्हरम हि० सं० ८२६ : २६।१२।, १४२२ ए० डी० को हुआ। मालवे की सेना ने रात्रि के समय आक्रमण किया, जिसका दृढ़तापूर्वक मुकाबला किया गया। इसमें मलिक मुबारक और मलिक फरीद इमारुल मुल्क ने बड़ी वीरता से लड़ाई की। गुजरात के सुल्तान की विजय हुई और ४ जामद हि० सं० ८२६ : १३।१४२३ ए० डी० को वह वापस लौट गया।[१४]

---

१४. सतीश सी मिश्रा—राइज आफ मुस्लिम पावर इन गुजरात पृ० १५२—८२
सुरेन्द्र कुमार डे—मिडिवल मालवा—अध्याय १ और २ के पृ० ५१ तक

दूसरा अध्याय

जीवनी

कुंभो नन्दतु भूतले हरिहरौ कुंभं सदारक्षतां
कुंभेनैव वशीकृतावसुमती कुंभायतुष्टाःसुराः ।
कुंभादाप्तधनोजनस्त्रिभुवने कुंभस्य कीर्तिःस्थिरा
कुंभे पंडितमंडली स्थितिमतीत्वं कुंभ ! राज्यं कुरु ।

एकलिंग माहात्म्य (हस्तलिखित)

जीवनी

कुंभा महाराणा मोकल के पुत्र थे। इनकी माता का नाम सौभाग्य देवी था। मोकल और सौभाग्य देवी का उल्लेख कुंभा द्वारा विरचित कराये प्रायः सबही[1] ग्रंथों और प्रशस्तियों में है। उदाहरणार्थ संगीतराज के अन्त में "सौभाग्यनिकेतनगुणवती सौभाग्यदेवीसुतः" शब्द है। गीत गोविन्द की रसिक प्रिया टीका के अन्त में सौभाग्यदेवी हृदयनन्दनः" शब्द है। इसकी मेवाड़ी टीका में इस का नाम "सुहाग दे" दिया है। यह जेतमल सांखला की बेटी थी।[2]

मोकल की अन्य रानियाँ

शिलालेखों के अनुसार मोकल के एक रानी गौरम्बिका और थी जो बाघेला वंश की थी जिसका उल्लेख वि० सं० १४८५ के शृंगीऋषि के लेख में है। इस लेख से ज्ञात होता है कि उक्त महारानी की स्मृति में मोकल ने एक बावड़ी[3] बनवायी थी अतएव प्रतीत होता है कि वह वि० सं० १४८५ के पूर्व ही मर चुकी थी।[4] ख्यातों में महाराणा मोकल के नीचे लिखी महारानियों के नाम मिलते हैं।[5]

---

१. कु० प्र० श्लोक २३५। की० प्र० श्लोक सं० १८०

२. शारदा—म० कु० पृ० ३।
बांकीदास की ख्यात सं० ४५० और १३४०।

३. बाघेलान्वयवयदीपिकावितरणप्रख्यातहस्ता .....
भूमिपाल तनया पुष्पायुध प्रेयसी......।२२
गौरांबिकाया निजवल्लभायाः सल्लोकसंप्राप्तिफलैकहेतोः।
एषा पुरस्ता......विभाण्डसुनोर्व्वापी निबद्धा किल मोकलेन ॥२४॥
(शृंगी ऋषि का लेख)

कुंभलगढ़ प्रशस्ति के श्लोक सं० ३९ में भी इसी प्रकार का वर्णन है वहां "यदाकारि मोकलनृपः सरोवरं-" पाठ है।

४. ओझा—उ० इ० पृ० २७५-७६

५. ओ० नि० सं० भाग २ पृ० १७०। शारदा-म० कु० पृ० ३ का फुटनोट ५ भी दृष्टव्य है।

१. माया कंवर सांखला राजा जेतमल की पुत्री
२. केशर कंवर सोलंकी राव सोढ़ा की पुत्री
३. ग्रतिरूपकंवर चौहान चन्द्रसेन की पुत्री
४. हेमकंवर कछवाहा राजा महरा की पुत्री
५. मदालसा खेराड़ा मालदेव की पुत्री

माया कंवर के स्थान पर कहीं कहीं राजकंवर नाम भी है। इनमें सौभाग्य देवी और गौरम्बिका दोनों के नाम नहीं है। अतएव ये नाम काल्पनिक प्रतीत होते हैं।

संतान

कुंभा के अतिरिक्त मोकल के ६ पुत्र और[6] थे। एक पुत्री लालबाई थी जिसका विवाह अचलदास खींची के साथ हुआ था। "अचलदास खींची री वचनिका" नामक समसामयिक कृति में लालबाई (पुष्पा देवी) को बड़ी शक्ति सम्पन्न वर्णित किया है। राज्य की सारी शक्ति उसने अपने हाथ में ले रखी थी। वह कुंभा से उम्र में बड़ी थी और मोकल की पहली संतान थी।

कुंभा के जन्म संबंधी किवदन्तियां

पिछले लेखकों ने कुंभा को योगी वर्णित कर उसके जन्म के सम्बन्ध में विविध प्रकार की कल्पनाएं की है। ऐसा कहा जाता है कि एक बार महाराणा मोकल द्वारका तीर्थ यात्रा को गये। उसके राजकीय वैभव को देखकर वहां योगी कीटकनाथ के शिष्य नन्दिकेश्वर ने राजा होने की इच्छा अपने गुरु के समक्ष व्यक्त की। गुरु ने योग बल से उसके पूर्व शरीर को गुफा में रख दिया और उसे महाराणी सौभाग्य देवी के गर्भ में प्रविष्ट करा दिया। समय पाकर यही योगी कुंभा के रूप में उत्पन्न हुआ।[7]

इस कथा में सच्चाई का अंश बिलकुल भी नहीं है। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि संगीत राज में नृत्यशास्त्र का वर्णन करते समय स्पष्टतः नन्दिकेश्वर के मत को

---

६. कुंभा के अतिरिक्त अन्य पुत्रों के नाम क्षेम कर्ण, शिवा, सत्ता नाया वीरमदेव और राजधर थे। नैणसी ने राजधर और नार्यसिंह के नाम नहीं दिये हैं इनकी जगह अढू और गढू नाम दिये हैं।

७. इस सम्बन्ध में अमरकाव्य (हस्त०) ग्रं० सं० १४९३ पत्र २४। राज प्रशस्ति सर्ग ४ (१२-१४) एवं राजात्नाकर (हस्त०) ग्रंथ सं० ७१८ पत्र सं० ३०। इसके ४ थे सर्ग के श्लोक २२ में मोकल के द्वारका जाने का वर्णन है। श्लोक २३-२५ तक फीटकनाथ के शिष्य का वर्णन है एवं गुरु अन्त में शिष्य को यह कहता है "योगीतु चूडामणि कुंभतुल्योमावीनृपः- कर्ण समोवदान्यः"

मानने का उल्लेख किया है । कीर्त्तिस्तम्भ और दक्षिण द्वार की प्रशस्तियों में भी ऐसा ही उल्लेखित है । वहां "नन्दिकेश्वरमतानुवर्त्तनाराधितत्रिनयनं श्रयंति यं" उल्लेख किया गया है । यही आगे चलकर इस सम्बन्ध की सारी कल्पनाओं का आधार बना प्रतीत होता है ।

कुंभा को सम सामयिक शिलालेखों और काव्य ग्रंथों में अतिमानव वर्णित किया है जो परम्परागत परिपाटी के अनुसार ही प्रतीत होता है । इनमें इसकी तुलना[8] राम, कृष्ण, विष्णु आदि से की है । प्राचीन काल से ही राजाओं के लिये ऐसे विशेषण देना एक परिपाटी ही थी । इनका उद्देश्य संभवतः कुंभा की वीरता और महानता को वर्णित करना मात्र है । इसके अतिरिक्त कविगण आश्रयदाताओं को कई विशेषण लगाकर वर्णित करते हैं ।

विवाह और रानियां

गीत गोविन्द की मेवाड़ी टीका की हस्त लिखित प्रति के अन्त की प्रशस्ति में कुंभा को ८ प्रकार के श्रंगार रस का ज्ञाता वर्णित[9] किया है । संगीत राज में उसके लिए "श्रृंगार विश्वम्भरो" शब्द भी प्रयोगित हुआ है । इससे प्रतीत होता है कि वह सहृदय और श्रृंगार प्रिय था । कुंभलगढ़[10] प्रशस्ति में वह तीनों लोकों की रमणियों को मोहित करने वाला वर्णित है । इसी प्रकार संगीतराज में लिखा है कि स्वप्न में भी यदि किसी राज कन्या ने उसको देख लिया तो उसको वरण करने की जरूर इच्छा करेगी आदि

---

८. एकलिंग माहात्म्य में "कुंभकर्ण प्रकाशते विष्णुरिवावतीर्णः (१४३) वर्णित है । संगीतराज के पाठ्यरत्न कोश की कर्तृप्रशंसा में "भगवान श्रीकुंभकर्ण क्षमाधीशः (श्लोक ३६) एवं इसके अलंकारोल्लास में "रामादप्यधिक तवेति चरितं" एवं "वराहमाद्य यमिह स्तुन्वन्ति" पाठ है । कीर्त्तिस्तम्भ प्रशस्ति के श्लोक सं० १६५ में भगवान कृष्ण से कुंभा की तुलना की गई है एवं श्लोक सं० १७६ में वराह से । गीत गोविन्द की मेवाड़ी टीका की जोधपुर वाली प्रति की प्रशस्ति में भीम, नल, नहूष, धंधुमार, भरथ भागीरथ मांधाता आदि से तुलना की है ।

९. "अष्टविध नाटक अष्ट प्रकारे श्रृंगाररस तेह नु ज्ञाता । चार विधिनीस्त्री तेह नै अनेक प्रकारे भाव रस श्रृंगाररसतेहनोज्ञाता...

[गीत गोविन्द की मेवाड़ी की टीका की पुरातत्व मन्दिर जोधपुर की प्रति सं० २३५२५]

१०. कु० प्र० श्लोक २३८ संगीतराज का यह पद "स्वप्नलब्धमपि यं राजकन्याः कांक्षितं नु सुचिरादनुनेतुम्" वर्णित है ।

यद्यपि ये अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन हैं लेकिन इससे यह अवश्य कहा जा सकता है कि वह सुन्दर देह धारी अवश्य था। संगीत राज के रसरत्नकोश और गीत-गोविन्द की रसिक प्रिया टीका में ५ प्रकार के शृंगारी नायक बतलाये हैं। कुंभा में ये ५ गुण विद्यमान होना माने हैं और इसी कारण कीर्तिस्तंभ की प्रशस्ति में ठीक ही वर्णित है कि वह सभा में धीरोदात्त, संसदों में धीरशान्त मित्रों में उदारधीर और कान्ताओं[11] में धीरललित था। ये गुण एक योग्य नायक के अनुकूल हैं। इसके विवाह के सम्बन्ध में उल्लेख है कि उसने कई राजकन्याओं को जबरदस्ती ब्याहा था। कुछ कन्याओं के पिताओं ने स्वच्छा से ही "डोला" भेज दिया। इस प्रकार वह कई महारानियों द्वारा सेवित होता था।[12] इन सब महारानियों के नाम उपलब्ध नहीं है। कुछ महारानियों के नाम अवश्य मिलते हैं यथा—रसिक प्रिया टीका में वर्णित "महारानी अपूर्वदेवी हृदयाधिनाथेन" कीर्तिस्तम्भ प्रशस्ति में" "कुंभलदेवी प्रियाः" एवं दक्षिण द्वार की प्रशस्ति में कुंभा के पुत्र रायमल की माता के सम्बन्ध में" गौड-राजन्यवंशाभरणराणी श्री पुवाड़रेगर्भरत्नः" नाम हैं जो बांकीदास के अनुसार मोटमराव अजमेर के ठाकुर की बेटी थी। कुंभलगढ़ प्रशस्ति में हमीरपुर के राजा रणविक्रम की कन्याओं को बलात् लाना लिखा है लेकिन इनके नाम ज्ञात नहीं हो सके हैं। बांकीदास ने उदा की माता को हाड़ाओं की बेटी बतलाया है।[13]

सोलह सो रानियों की कथा

ख्यातों में कुंभा के १६०० रानियां होना लिखा है। वि० सं० १६७९ में गीत गोविन्द की मेवाड़ी टीका की प्रतिलिपि बाली नामक स्थान पर की गई थी। इसकी प्रशस्ति में "सोलह सो स्त्रीना-कान्ह गोकुली रूप" शब्द है। राज प्रशस्ति काव्य में "पोड़शशतस्त्रीयुक्त" पाठ है। राज रत्नाकर में तो यहां तक लिखा है कि वह प्रतिदिन महान सुन्दरी कन्या से विवाह करता था। ये सब वर्णन काल्पनिक हैं। कुंभा के

---

११. की० प्र० श्लोक सं० १६५। शृंगारी नायक की व्याख्या दृष्टव्य है—
"शृंगारी नायकस्त्वन्यः पञ्चमः कथ्यते तथा। विलासवाक्कायशीलः सुभगः स्थिर वाग्युवा। गतिः सधैर्या दृष्टिश्चसविलासं स्मितंवचः"।
[गीत गोविन्द की रसिक प्रिया टीका पृ० १५]

१२. कु० प्र० श्लोक सं० २५१—५२। ओझा—उ० इ० पृ० ३२२। एकलिंग माहात्म्य ५।१४६।

१३. कु० प्र० श्लोक २५० में (चोहान) हमीर की पुत्री को बलात् लाना वर्णित है। की० प्र० १८१ में कुंभलदेवी का उल्लेख है। बांकीदास की ख्यात सं० ९८८ और ९९०। ओझा—उ० इ० पृ० ३२२। शारदा—म० कु० पृ० १११।

महलों में इतने अधिक कक्ष नहीं थे कि जिनमें १६०० रानियां अपनी सेविकाओं सहित रह सके। मध्यकालीन कथाओं में राजाओं के कई हजार रानियां वर्णित करना एक परिपाटी मात्र थी। उदाहरणार्थ कुंभा के समसामयिक सोमसुन्दरसुरि द्वारा विरचित उपदेश माला की कथाओं में ऐसा ही वर्णन मिलता है। "जासासा" की कथा में अनंगसेन सुनार के ५०० स्त्रियां वर्णित की गई है। नन्दिषेण कथा में ७२००० स्त्रियां वर्णित है। इसी प्रकार ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती की कथा में ६४००० कन्याओं के साथ विवाह होना वर्णित हैं।[14] आश्चर्य तो यह है कि कुंभा के केवल १६०० रानियों की ही कल्पना की गई है १६००० हजार की नहीं। इन कल्पनाओं का आधार[15] एकलिंग माहात्म्य के राजवंश वर्णन का श्लोक ६१ वां प्रतीत होता है जिसमें कुंभा की कृष्ण से तुलना की गई है। कृष्ण के सोलह हजार रानियां होना प्रसिद्ध है। इसी कथानक के अनुरूप कुंभा के भी १६०० रानियां मानी है।

दूसरा अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन रानियां के सम्बन्ध में यह मिलता है कि कई राजकन्याओं ने स्वेच्छा से कुंभा को वरण कर लिया। संगीतराज के पाठ्यरत्न कोश के अलंकारोल्लास में वर्णित है कि जिस प्रकार नलकूबेर को रम्भा, एवं कृष्ण को रूक्मणी ने वरण किया था इसी प्रकार कई राजकन्याओं ने कुंभा को वरण कर लिया। "नृपकन्या वृणुते यमीश्वरम्" पाठ कई जगह मिलता है। लेकिन उस काल में स्वयंवर की प्रथा उठ चुकी थी। अतएव इस प्रकार का वर्णन मान्य नहीं हो सकता है।

कर्नल टॉड ने मीराबाई को भी कुंभा की रानी बतलाया है जो गलत है वह भोजराज की पत्नि थी जो सांगा का पुत्र था।

अन्तपुर की व्यवस्था

राजवल्लभ मंडन के ५ वें अध्याय में राजमहलों की व्यवस्था का उल्लेख किया गया है। इसके अनुसार वे महल त्रिशालात्मक या चतुर्शलात्मक बनते थे। इनमें चूने

---

१४. "तीणइं ७२ सहस्र कन्यानां पाणिग्रहण कीधा" (नन्दिषेणकथा)
"भाग्य लगइं ब्रह्मदति इं ६४ सहस्र कन्यानां पाणिग्रहण कीधा"
[ब्रह्मस्त चक्रवर्ती कथा प्राचीन गुजराती गद्य संदर्भ
पृ० ६६, ७३ एवं ८३]

१५. कृष्णः कुंभेन्द्रभूपः प्रमुदितकमलाकुंभलादेविकेयं,
भोगिन्यो गोपकन्याभुविनवमथुराचित्रकूटाचलस्या।
नंद श्रीमोकलेन्द्रः प्रकटित शुभ सौभाग्यलाम्नीयशोवा
रक्षोद्गणां निहंतं पुतरजनिजगद्गोपरूपोमुरारि ॥६१॥ [एक० मा०]
राजरत्नाकर के ४ बे सर्ग में जो वर्णन है वह इससे ही प्रभावित है।

के साथ भित्ति-चित्र बनाये जाते थे। चित्रों में गिद्ध, बन्दर, कौआ आदि भयोत्पादक पशु पक्षियों के चित्र नहीं बनवाने का निर्देश किया है। कुंभा ने संगीतराज में नाट्यशाला की दिवारों को विभिन्न प्रकार के दृश्यों से चित्रित होने का उल्लेख[16] किया है। महलों में राजमाता, पट्टराणी, अन्य महिषियों के स्थान अलग २ निर्मित किये हुये थे। रानियों के अतिरिक्त कई अन्य दास दासियां एवं अन्य नारियों के रहने का उल्लेख मिलता[17] है। ये महल बड़े साधारण ढंग के ही है। आश्चर्य यह है कि कीर्तिस्तम्भ का निर्माता कुंभा अपने निवास के लिये साधारण महल ही बना सका था।

इसमें कई कक्ष बने हुये थे। मंडन के अनुसार वाम भाग में वस्त्रालय, देव मंदिर, वाटिका, औषधालय, घुड़शाला, मुख्य महिषी के महल में राजमाता का कक्ष अलग बने हुए थे। कुंभा के चित्तौड़ में जो महल हैं वे अधिकांशतः खंडित हो गये हैं। इनमें भी कई कक्ष बने हुये हैं। संभवतः नृत्यागार भी बना हुआ था। संगीत राज में नृत्य शाला बनाने[18] का उल्लेख है उसमें वहां "यथा शैलगुहाकारं" लिखा है। दाहिनी भाग की ओर राजा के शस्त्र धारी सैनिक वैत्रधर, छत्र चामरधारक, गुरु आदि रहते थे। महलों के बाहरी भाग में राजकुमारों एवं युवराज के महल बने हुये थे।

राजा के क्रीड़ा करने के लिए एक छोटीसी वाटिका बनाई जाती थी। यह १०० दण्ड से ३०० दण्ड लम्बी होनी थी। इसमें एक मंडप बनाया जाता था जिसमें एक जलयन्त्र अथवा फुव्वारा भी बनाया जाता था। कीर्तिस्तम्भ की प्रशस्ति में जलयंत्र एवं बापी के चित्तौड़ में, एवं वाटिका व जलाशय के कुंभलगढ़ में निर्माण करने का उल्लेख[19] मिलता है। बाग में कई प्रकार के सुन्दरवृक्ष लगाये जाते थे। मंडन लिखता है कि वसंत और वर्षा ऋतु में सुन्दर नारियों के सुकोमल कंठों से संगीत का विधान किया जाता था। वहां झूलने के लिए सुन्दर झूले डाले जाते थे। ग्रीष्म में कूंडया सरोवर के ठंडे पानी में जलक्रीड़ा किये जाने का उल्लेख मिलता है। इस प्रकार राजा बहुत ही ऐश्वर्ययुक्त जीवन यापन करता था।

---

१६. "कर्त्तव्या चित्रिता भित्तिर्विचित्राचित्र कर्मठैः" नृत्यरत्नकोश श्लोक ९६

१७. राजकुमार और पट्टराणी के ५ प्रकार के महलों का उल्लेख मंडन करता है रा० मं० ९।३१-३२।

१८. नृत्यशाला का जो वर्णन नृत्यारत्नकोश में है वह अधिकांशतः भरत के नाट्यशास्त्रम् से मिलता है। यह दो प्रकार की बनती थी। ब्राह्मणादि वर्ग के लिये चतुरस्र और शूद्रादि वर्ग के लिये त्रिकोणात्मक। इसके लिये नृत्यरत्नकोश का श्लोक ३९ और ४० दृष्टव्य है।

१९. की० प्र० श्लोक सं० ३३। कु० प्र० श्लोक सं० १३१ एवं १४३।

कुंभा की जीवनी में अलौकिक तत्व

कुंभा के सम्बन्ध में कई अलौकिक घटनाओं का पता चलता है। एक घटना के अनुसार एक चारण ने कुंभा के संमुख कवितापाठ किया तो वह बहुत प्रसन्न हुआ और उसने मुंहमांगा पुरस्कार देने को कहा। चारण ने उससे एक महाराणी की मांग की। कुंभा ने जो वचन बद्ध हो चुका था एक महाराणी देने का वादा किया एव कहा कि मैं जिस राणी के महल में नहीं होऊं तू उसी राणी को ले जा सकता[20] है। चारण ने कुंभा की सभी राणियों के महलों में चक्कर लगाया लेकिन सब ही महलों में उसे कुंभा बराबर दिखाई दिया। अतएव वह बहुत शर्माया और लौटकर महाराणा से क्षमा याचना की। यह घटना पूर्णतः काल्पनिक है एवं भागवत में वर्णित भगवान कृष्ण की उस घटना के आधार पर लिखी गई है।जिसमें कृष्ण ने नारद को इसी प्रकार एक राणी को देने का वादा किया था।[21]

एक घटना और वर्णित की जाती है कि एक ब्राह्मण कुंभा के पास आया। उसने अपने गुरु का संदेश सुनाया और कहा कि तुम्हारी देह प्रतीक्षा कर रही है।

---

२०. राजरत्नाकर (हस्त०) के ४थे सर्ग के श्लोक सं० ३१–४०। राणारासो (हस्त० प्रति सं० ८४ विद्यापीठ उदयपुर) में इसे अधिक स्पष्ट किया है उसमें चारण द्वारा मांग का उल्लेख इस प्रकार है—

नरींद नारी राज को जिहाज पाज लाज की।
कृपा कृपाल कीजई मंगाई, मोहि दीजिई ।।१३९।।
कहन्त कुंभराणयो, प्रमाण मान दानयो।
जहां न हौं तु हों कई, स सुन्दरी तुम्हे दई।१४०।।

उसको प्रत्येक रानी के महल में कुंभा ही दिखाई दिया—

स चारणः त्वरितोऽति लुब्धो रंभावतीमंदिरमाजगाम् ।।३३।।
ततो गत सोयं बिलासवत्यां विलासनीमन्मथबद्धचितः ।।३८।।
आदि २।। [राजरत्नाकर]

२१. राजस्थानी भारती मार्च १९६३ के कुंभा विशेषांक में प्रकाशित श्री बिहारीलाल मनोज का लेख महाराणा कुंभा का अलौकिक व्यक्तित्व एवं श्री नरोत्तम स्वामी का लेख "कुंभा की जीवनी में अलौकिक तत्व" दृष्टव्य है। इस प्रकार के कथानक काल्पनिक है। चारण का महलों में जाकर रानी को ले जाने की बात तो मध्यकाल की भावना के बिल्कुल विपरीत है। उस काल में नारी का इस प्रकार से दान देना सर्वथा असत्य है। नारी की शुद्धता को कुल की शुद्धता के लिए आवश्यक माना गया है। नारियां स्वेच्छा से जौहर में इसलिए ही जली है।

राजा को अपनी सही स्थिति और पूर्व जन्म का ज्ञान होने पर पागलों की तरह बातें करने लगा। उसके पुत्र उदा के कहने पर ब्राह्मण ने महाराणा को मार दिया किन्तु वापस आकर उसको सदेह जीवित देखा। यह स्थिति देखकर ब्राह्मण बड़ा विस्मित हुआ एवं पश्चाताप करने लगा। यह घटना भी पूर्ण रूप से काल्पनिक है। महाराणा की हत्या उनके ज्येष्ठ पुत्र उदा ने की थी और इसी के अनुसार महाराणा की हत्या के लिए प्रयत्नशील उनके पुत्र का ब्राह्मण को हत्या के लिए कहना वर्णित किया है। मनुष्य का मृत्यु के पश्चात् पुनर्जीवन प्राप्त करना मध्यकाल के चमत्कार युक्त कथानकों में प्रायः वर्णित किया जाता रहा है। अतएव यह आधारहीन है।

हाल ही में नापा सांखला की वार्ता श्री नरोत्तम स्वामी ने राजस्थान भारती में प्रकाशित कराई है। इसके अनुसार नापा सांखला चित्तौड़ में रहता था। उस समय एक बार महाराणा ने एक योगी से परकाया प्रवेश की विद्या सीखी। उसने जब मरे हुये हिरण के शरीर में प्रवेश किया तो उस योगी ने जो राजकीय वैभव को भोगने का इच्छुक था कुंभा के शरीर में प्रवेश कर गया एवं चित्तौड़ जाकर राजकार्य भोगने लगा। महाराणा भी हिरण के शरीर मे इधर उधर घूमा करता था। उस समय नापा सांखला के प्रयत्न से पुनः कुंभा अपने पूर्व शरीर को प्राप्त करने में सफल हो सका। इस वार्ता में कुंभा की हार एवं राव जोधा की यशोगाथा को अतिशयोक्ति से वर्णित किया है। यह घटना इतिहास से सम्मत न होकर पूर्णरूप से कल्पना पर आधारित है। इसमें कुंभा का युद्ध न करना और राठोड़ों से डर करके भाग जाना आदि का उल्लेख है। जिस कुंभा ने मालवा और गुजरात के मुसलमान सुल्तानों की सम्मिलित सेनाओं से नहीं डर कर बराबर युद्ध किया था भला वह किस प्रकार राठोड़ों की छोटी सी सेनाओं से डरकर भाग सकता था। अतएव इस प्रकार अतिश्योक्ति पूर्ण वर्णन की सच्चाई को सिद्ध करने के लिये एक कल्पना और भी की गई है कि राणा कुंभा तो उस समय हिरण के शरीर में प्रवेश कर जंगलों-जगलों में घूम रहा था और योगी बना कुंभा लड़ रहा था। अतएव इस प्रकार की हार संभव हो सकती थी। ये कल्पनाएं हैं और आधार हीन है। राज वल्लभ विरचित समसामयिक कृति भोज चरित्र में भी इसी प्रकार परकाया[२३] प्रवेश का उल्लेख है। दोनों में बहुत ही अधिक समानता है। अन्तर केवल इतना ही है कि उसमें मदनमंजरी नामक रानी द्वारा स्वकाया प्रवेश कराया जाता है जबकि इसमें नापा सांखला के प्रयत्न से।

---

२२. पाठकराजवल्लभ द्वारा विरचित भोज चरित (ज्ञान पीठ प्रकाशन) प्रस्ताव ३ और ४।

संतान

कुंभा के ११ पुत्रों का उल्लेख[23] मिलता है। उनके नाम हैं १. उदा २. रायमल ३. नागराज ४. गोपाल ५. आसकरण ६. अमरसिंह ७. गोविन्ददास ८. जैतसिंह ९. महारावल १०. खेता और ११. अचलदास। एक पुत्री भी थी जिसका नाम रमाबाई था जिसका विवाह गिरनार के चूडासमा राजा मंडलीक के साथ हुआ था जिस पर मोहम्मद बेगड़ा ने आक्रमण किया और वह हार गया व हिन्दू धर्म छोड़कर मुस्लिम धर्म स्वीकार कर लिया। अतएव रमाबाई लौटकर मेवाड़ आगई। यहां जावर नामक ग्राम उसे जागीर में दिया हुआ था जहां उसने एक मंदिर बनवाया था जिसकी[24] प्रतिष्ठा वि० सं० १५५४ चैत्र शुक्ला ७ को हुई थी।

जावर की प्रशस्ति में इसका विस्तृत वर्णन किया हुआ है। यह संगीत शास्त्र की ज्ञाता थी। भरतादि मुनियों द्वारा वर्णित शास्त्रों में सिद्धहस्ती थी।[25] कुंभलगढ़ पर दामोदर का मदिर कुंडेश्वर के मंदिर की दक्षिण की तरफ एक सरोवर तथा जावर में रामकुंड और[26] रामस्वामी के मन्दिर भी इसने बनवाये। मेवाड़ की ख्यातों में यह वर्णित है कि मंडलीक इसे बहुत ही परेशान किया करता था अतएव यह बहुत परेशान रहती थी। एक बार कुंवर पृथ्वीराज सेना सहित गिरनार जा पहुंचा और महल में

---

२३. वी० वि० भाग १ पृ० ३३५। ओझा० उ० इ० भाग १ पृ० ३२२।
नैणसी ने केवल मात्र ५ पुत्रों के नाम ही दिये हैं जिनके नाम हैं रायमल, उदा नंगा गोयंद और गोपाल।

२४. श्री चित्रकूटाधिपति श्री महाराजाधिराजमहाराणाश्रीकुंभकर्णपुत्री‑श्रीजीर्णप्राकारे सोरठपतिमहारायां राय श्रीमंडलिक भार्या श्री रमाबाई ए प्रासाद रामस्वामीरु रामकुंड कारापिता। सं० १५५४ वर्षे चैत्र शुदि ७ रवौ।

[जावर की प्रशस्ति]

२५. संगीतागम दुग्ध सिंधुजसुधा स्वादे परादेवता।XXX
संगीतं भरतादिनोक्तविधिना ब्रह्मं कतनोपमार्गं ज्ञानंदविधायकं विलसति प्रोल्लासयंती पराम्। [उपरोक्त]

२६. श्रीमत्कुंभलमेरुदुर्गशिष (ख)रे दामोदरं मंदिरं।
श्री कुंडेश्वरदक्ष (क्षि) णाश्रितगिरेस्तीरे सरः सुंदरं।
श्रीमद्भूरिमहाब्धिसिंधु, भवने श्रीयोगीपत्तने।
भूयः कुंडमचीकारत्किल रमा लोकत्रये कीर्तये ॥२॥ [उपरोक्त]

सोते हुए मंडलीक को जा घेरा और[27] रमाबाई को मेवाड़ ले आया। किन्तु यह वर्णन गलत प्रतीत होता है। उक्त प्रशस्ति में स्पष्टतः "सद्भोगि भर्तृ" एवं 'श्री मंडलीक दर्शन परितुष्टमनामहेश्वरः सुकवि" इसका संकेत करते हैं कि रमा के और उसके पति के मध्य अच्छे सम्बन्ध रहे थे और उसकी मृत्यु हो जाने पर या मुसलमान हो जाने पर ही मेवाड़ आई थी।

रमा के लिए "वागीश्वरी" विशेषण भी प्रयुक्त हुआ है जो उल्लेखनीय है। इसी प्रकार "विद्वत् कुंभनृपो वागुणगणापूर्णप्रवीण "आदिशब्द कवि का काव्य कौशल है।

इसकी मृत्यु मेवाड़ में ही हुई थी।

जयपुर राज्य की ख्यातों में कुंभा की एक[28] पुत्री इन्द्रादे का विवाह वहां के राजा उद्धरण से होना वर्णित है। मेवाड़ की ख्यातों में इसका कहीं उल्लेख नहीं है। संगीतराज में "सुतानरपते नैपुण्यभाजोजनाः "[४-१-११८] पद आता है जो एक ही कन्या होने का संकेत करता है।

चूंडा के साथ कुंभा के सम्बन्ध

महाराणा लाखा के पुत्र रावत चूंडा अपने भाई के पक्ष में राज्य छोड़कर मालवा चला गया था। श्री रेऊ ने मारवाड़ के[29] इतिहास में "राव रणमल की मृत्यु के कारणों पर विचार" शीर्षक से लिखते हुये वर्णित किया है कि राज्याधिकार छोड़ने की प्रतिज्ञा करते समय चूंडा के चित्त में मोकल के उत्पन्न होने की संभावना न रही हो। फिर यह भी संभव है कि उसके उत्पन्न हो जाने से पूर्व प्रतिज्ञानुसार राज्याधिकार छोड़ देने को बाध्य होने पर भी उसके दिल में फिरसे उसे प्राप्त कर लेने की इच्छा उत्पन्न हो गई हो। इसके बाद जब मोकल के मारने का षडयन्त्र करने पर भी राव रणमल के कारण उसे सफलता नहीं मिली तब उसने कम से कम उनसे बदला लेने और अपने पैतृक राज्य में लौट करके बसने के लिये इनको मरवाने का उद्योग

---

२७. ओझा उ० इ० भाग १ पृ० ३४०। मंडलीक की हार हि सं० ८७६ (१५२८ वि०) में होगई थी और इसके पश्चात् वह मुसलमान हो गया। [बेले हि० गु० पृ० १९०—१९३]

२८. श्री हनुमान शर्मा द्वारा लिखित नाथावतों के इतिहास में राजा उद्धरण का वर्णन।

२९. रेऊ—मा० इ० भाग १ पृ० ८१—८२।

किया हो। यह हमारा अनुमान मात्र है। परन्तु नीचे उद्धृत घटनाओं से इसकी पुष्टि होती है—राजमाता का चूंडा से राजकार्य ले लेना। उसके बाद चूंडा का मेवाड़ के सहजशत्रु मांडू के सुल्तान के पास जाकर के रहना मोकल की हत्या होने पर भी चूंडा उसके भाई राघवदेव और मेवाड़ के सरदारों का चुपचाप बैठा रहना, मोकल के हत्यारों में से महपा का भागकर चूंडा के पास मांडू जाना और उसके द्वारा वहां के सुल्तान के यहां आश्रय पाना महपा के कारण कुंभा और सुल्तान के बीच विरोध होने पर भी चूंडा का सुल्तान के पास ही रहना आदि।"

श्री रेऊ ने उपरोक्त तर्क प्रस्तुत करते हुये घटनाओं का सही विश्लेषण नहीं किया है। चूंडा का मोकल को मारने के लिये षडयन्त्र रचना या उसका इसमें सक्रिय भाग लेना किसी भी ख्यात में उल्लेखित नहीं है। नैणसी आदि ने भी इसका उल्लेख नहीं किया है। अतएव यह तो केवलमात्र अनुमान है। चूंडा द्वारा राज्यप्राप्ति के निमित रणमल को मरवाने की बात सोचना असंगत प्रतीत होती है। उस समय रणमल चित्तौड़ का स्वामी नहीं था। कुंभा स्वामी था अतएव अगर रणमल के स्थान पर कुंभा को मारा जाता तो निश्चित रूप से चूंडा के दिल में राज्य लिप्सा की भावना मानी जा सकती थी। श्री रेऊ का यह तर्क समझ में नहीं आया कि रणमल को इसलिए मरवाया गया कि चूंडा वहां बसना चाहता था। ख्यातों से स्पष्ट है कि कुंभा की माता और महाराणा कुंभा दोनों ने मिलकर चूंडा के पास आदमी भेजा था। मांडू के सुल्तान के यहां आश्रय लेना भी मध्यकाल की भावना के विरुद्ध नहीं है। गुजरात का शाहजादा भागकर मेवाड़ में आकर वर्षों तक रहा था। उस समय राठोड़ों से उसे कोई आशा ही नहीं थी। बूंदी सिरोही गागरोण आदि छोटे राज्यों के अतिरिक्त राजस्थान में कोई उल्लेखनीय शासक नहीं था जहां कि वह शांति से रह सके। उसके सामने दो ही विकल्प हो सकते थे (१) या तो किसी भाग को जीतकर नया राज्य स्थापित करना या गुजरात और मालवा के सुल्तानों में से किसी के यहां जाकर के आश्रय लेना। अतएव उसका मांडू के सुल्तान के यहां जाकर के रहना अनुपयुक्त नहीं कहा जा सकता है। मोकल की मृत्यु के समय उसका मेवाड़ न लौटना घटनाओं के अध्ययन से ठीक माना जा सकता है। उस समय राघवदेव उसका छोटा भाई यहां विद्यमान था जो हर प्रकार की संभावित स्थिति का सामना करने में सक्षम था। सचमुच रेऊ का वर्णन एक पक्षीय है। चूंडा का मेवाड़ आना उस समय ही उपयुक्त था जबकि राघवदेव की हत्या करदी गई। महपा पंवार के कारण कुंभा ने मालवा के सुल्तान पर आक्रमण नहीं किया था जैसाकि आगे वर्णित किया जायगा।

चूंडा के साथ महाराणा कुंभा के सम्बन्ध बहुत ही अच्छे रहे थे। महाराणा सदैव उसकी बड़ी इज्जत करता था अतएव रेऊ की आलोचना में हमें अधिक बल दिखाई नहीं देता है।

कुंभा के भाइयों के साथ सम्बन्ध

कुंभा के कई भाई थे। इनमें खेमा या क्षेम कर्ण के साथ इसके सम्बन्ध अच्छे नहीं थे। ख्यातों में इसे केशरकुंवर रानी द्वारा उत्पन्न बतलाया है अतएव यह कुंभा का सौतेला भाई था। कुंभा ने इसको सादड़ी ग्राम जागीर में दे रक्खा था। कविराजा श्यामलदास के अनुसार उसने बड़ी सादड़ी के आस-पास का क्षेत्र बलपूर्वक जीता था। कुंभा ने उसे वहां से भागने को बाध्य कर दिया था। यह भाग कर मालवे के सुल्तान के पास चला गया। जहां उसे अच्छी जागीर दी गई। नैणसी के कथनानुसार खेमा और कुंभा में विरोध बना रहा। खेमा मांडू के सुल्तान के पास पहुंचा और वहां से सैनिक सहायता प्राप्त कर मेवाड़ को बड़ा धक्का पहुंचाया। राणा उसे मेवाड़ के बाहर नहीं निकाल सका। खड़ावदा की बावड़ी की प्रशस्ति[30] के अनुसार खेमा और मलिक बहरी के मध्य शंखोद्धार में युद्ध हुआ था जिसमें क्षेमकर्ण की हार हुई थी। मलिक बहरी सुल्तान मोहम्मद खिलजी के सामन्त खान सलह का एक सरदार था। ऐसा प्रतीत होता है कि जब वह मालवे में रहता था तब वहां के मुसलमान सामन्त उसके विरोधी हो गये थे। अमर काव्य[31] वंशावली के अनुसार खेमा गुजरात के सुल्तान को मेवाड़ के विरुद्ध चढ़ा लाया था यह घटना शंखोद्धार युद्ध के पश्चात् हुई थी। मालवे से अपने कार्य की पूर्ति न होने पर उसने गुजरात के सुल्तान मोहम्मद बेगड़ा के पास से सहायता चाही थी। बेगड़ा ने मेवाड़ पर आक्रमण किया था किन्तु उसे भी सफलता नहीं मिली थी। अतएव उसने मेवाड़ के युवराज उदा को भड़काना शुरु कर दिया और मोका पाकर महाराणा कुंभा की हत्या कराने में सफलता प्राप्त करली। एकलिंग जी की दक्षिण द्वार की प्रशस्ति के अनुसार उसकी मृत्यु दाडिमपुर नामक स्थान पर हुई थी। प्रतापगढ़ राज्य की ख्यातों के अनुसार वि० सं० १५३० को धुलेव के पास करमदी के खेमें इसकी मृत्यु हुई थी।

---

३०. शंखोद्धारे रंतिदेवोद्धृतायाः स्रोतस्विन्यास्तीरमध्येभ्य भावि।
षड्गाषड्गि क्षेमकर्णक्षितीशश्चान्वन्व (स्तन्वन्व) हरीशारसीकेश्वरेण ॥२६॥
क्षेमकर्ण को क्षितिश कहा गया है। इस प्रशस्ति का रचियता भी महेश भट्ट है जो कीर्तिस्तंभ प्रशस्ति, जावर की प्रशस्ति, दक्षिणद्वारकी प्रशस्ति आदि का रचियता था और मेवाड़ की इतिहास का ज्ञाता था। अतएव उसके इस शब्द के प्रयोग से प्रतीत होता है कि वह सादड़ी के आसपास भूभाग का अधिपति था।

३१. खेमादेवलियाभर्तानीतो येन रेणजितः बेगडो महुमदाख्यो गुर्जरेशपलायित ..
[अमरकाव्य पत्र सं० २४]

प्रतापगढ़ राज्य के इतिहास ग्रंथ हरि भूषण महाकाव्य[32] में इसकी बड़ी प्रशंसा की गई है। निसंदेह यह स्वाभिमानी और महत्वाकांक्षी व्यक्ति था। राज्य के लिये भाइयों के संघर्ष की यह कहानी मेवाड़ के इतिहास में बड़ी महत्वपूर्ण है। आगे चलकर रायमल के शासन काल में भी इसी प्रकार सांगा और उसके भाइयों के मध्य संघर्ष चलते रहे थे। इसी क्षेम कर्ण का वंशज बाधा देवलिया दूसरे शाके के समय चित्तौड़ का सेनापति रहा था और इस बीर पुरुष का स्मारक चित्तौड़ दुर्ग के बाहर बना हुआ है।

कुंभा द्वारा तुलादान

कुंभा के पूर्वजों द्वारा कई तुलादान कराये जाने का उल्लेख मिलता है। कुंभा द्वारा तुलादान कराने का मेवाड़ के किसी लेख में उल्लेख नहीं है। किन्तु समसामयिक कृति "राज विनोद काव्यम्" में इसका स्पष्टतः उल्लेख है कि जिस कुंभा ने स्वर्ण का तुलादान कराया था वह स्वर्ण से मोहम्मद बेगड़ा की सेवा करता था।" यह काव्य गुजरात के सुल्तान की प्रशंसा में लिखा गया है अतएव ऐसा अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन है। इसी ग्रंथ में २ स्थलों पर मेदपाट के शासक का और उल्लेख है जहां "कुनृप" विशेषण दिया है जो स्पष्टतः प्रकट करता है कि वह मोहम्मद बेगड़ा के विरुद्ध था।[33]

कुंभा ने तुलादान कुंभलगढ़ प्रशस्ति के बाद किया होगा। प्रारम्भिक वर्षों में उसको अधिकांशतः सेना और और निर्माण कार्यों पर व्यय करना पड़ा था। किन्तु पीछे के उसके वर्ष शांति से निकले थे अतएव यह कहा जा सकता है कि यह तुलादान उसके अन्तिम वर्षों में कराया गया था।

अन्तिम दिन

ऐसी मान्यता है कि कुंभा को अन्तिम दिनों में उन्माद रोग हो गया था।[34] वह तरह-तरह की बातें किया करता था। वीर विनोद में इसका वर्णन इस प्रकार

---

३२. नित्यं सत्य परायणोऽतिमतिमान्धर्म प्रतिष्ठापको।
लुब्धो नो कृपणो न रक्षणपरो नित्यं प्रजानामपि।
दण्डे पुत्रकलत्र शत्रुविषये भिन्नो न भूपवल्लभः।
क्षेमारावत सन्निभः क्षितितले भूतो न भावी विभूः।
हरि भूषण महाकाव्य सर्ग १।१४॥

३३. यः पार्थिवः पृथुतरः खलु कुंभकर्णः, कर्णेन वर्णमुचितं सहते तुलायाः।
सोऽयं करोति महमूदनृपस्य सेवां, दण्डे वितीर्णवर भूरि सुवर्ण भारः ॥४।१२॥
[राज विनोदकाव्य]

३४. नै० ख्या० भाग १ पृ० ३९। शारदा म० कु० पृ० १०७। ओझा० उ० इ० भाग १ पृ० ३२१। वी० वि० भाग १ पृ० ३३४।

है कि वि० सं० १५२५ में कुंभलगढ़ से महाराणा कुंभा एकलिंग जी दर्शनार्थ गया। उस समय एक गाय ने बड़ी आवाज के साथ जम्हाई ली। इस समय तक तो महाराणा ने कुछ नहीं कहा किन्तु वह इस घटना से अत्यन्त प्रभावित हुआ। कुंभलगढ़ लौटकर दूसरे दिन उसने दरबार किया और तलवार उठा कर "काम धेनु तांडव करिय" पद बार-बार उच्चारण करने लगा।[३५] कुछ देर पश्चात् किसी ने कुछ कार्य के लिये कहां तो भी महाराणा ने केवल मात्र यही पद उच्चारित कर दिया। दो चार रोज जब यही हाल रहा तो लोग बहुत ही अधिक घबराये और कहने लगे कि अब क्या करना चाहिये। रायमल ने हिम्मत करके अपने पिता से अर्ज कर दिया कि आप बार-बार इस पद को क्यों उच्चारित करते हैं? इस पर महाराणा अत्यन्त क्रोधित हुआ उसे देश से निष्कासित कर दिया। इस पर वह अपने सुसराल ईडर में चला गया। कहते हैं कि महाराणा ने सब चारणों को राज्य से निष्कासित कर दिया था। इसका मुख्य कारण यह था कि किसी ज्योतिषी ने उसे यह कह दिया था कि तुम्हारी मृत्यु किसी चारण के हाथ से होगी। केवल मात्र एक चारण राजपूत का वेष बनाकर रह गया था। एक दिन वह चारण महाराणा के सन्मुख उपस्थित हुआ और इस पद को पूर्ण करके महाराणा को सुनाया जिसका सारांश यह था कि नागौर में गो हत्या को मिटाकर महाराणा ने बड़ा बड़ा उपकार किया है और इसी कारण यह गाय प्रसन्न होकर तांडव कर रही है। इस छप्पय को श्रवण कर महाराणा ने कहा कि तू राजपूत नहीं है चारण हैं। परन्तु मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूं। सच बताओं तुम्हारी जाति क्या है? तब उसने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया कि महाराज! मैं चारण हूं। आपने जब मेरी जाति वालों की जागीरें जब्त करली और उन लोगों को बाहर निकाल दिया तो मुझे भी छिपकर के रहना पड़ा। इसके पश्चात् महाराणा ने वह पद कहना तो बन्द कर दिया लेकिन उसका उन्माद रोग ठीक नहीं हो सका। इस प्रकार की चारणों को देश निकाला देने की किवदन्ती झूंठी प्रतीत होती है। उस समय नागौर में गोहत्या होना भी शंका

---

३५. यह पद इस प्रकार मिलता है—

जद धर पर जोवती दीठ नागौर धरंती।
गायत्री संग्रहण देख मन मांहि डरंती॥
सुरकोटि तेतीस आण नीरंता चारो।
नहिं चरंत पीवंत मनह करती हंकारो॥
कुंभेण राण हणिया कलम आजस डरडर उतरिय।
तिण दीह द्वार शंकर तणें कामधेनु तांडव करिय।

—वी० वि० भाग १ पृ० ३३४—३५ शारदा मं० कु० पृ० १०१

—ओझा उ० इ० भाग १ पृ० ३२१

स्पद है। फिरोज खां के समय नागौर में लिखी "धर्म संग्रह श्रावकाचार" ग्रंथ की प्रशस्ति में वहां धार्मिक स्वाधीनता का उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त कुंभाके अन्तिम दिनों में मुसलमानों की शक्ति बहुत ही बढ़ गई थी। नैनवां से टोंक तक के भाग को उन्होंने जीत लिया था। अतएव वहां भी गोहत्या हो सकती थी। अतः इस प्रकार की कथायें संदिग्ध है और केवल चारणों के महत्व को प्रदर्शित करने वाली है।

हत्या

महाराणा का ज्येष्ठ पुत्र उदा राज्य प्राप्त करना चाहता था। जब महाराणा को उन्माद रोग हो गया तब उसने महाराणा को मारने की योजना बनाई। एक दिन रात्रि के समय जब महाराणा कुंभलगढ़ के मामादेव के मंदिर के समीप बैठा हुआ विचार मग्न था उदा ने कटार से उसका काम तमाम कर दिया। इस प्रकार राज्य लोभ के कारण पितृ प्रेम को तिलांजलि देकर पिता की ही हत्या कर दी गई। अमरकाव्य वंशावली में यहघटना माघ मास की दशमी को होना वर्णित है।[37]

उदा ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण राज्याधिकारी था अतएव महाराणा के मरने के बाद उसने राज्य प्राप्त कर लिया। लोगों के दिलों में फिर भी उसके प्रति सम्मान नहीं रहा था। लोग उससे दिल से घृणा करते थे। कुम्भा जैसे महान राजा का हत्यारा मेवाड़ में राजा बना रहे ऐसा लोग नहीं चाहते थे। अतएव उसे हराकर भगाने का प्रयत्न किया जाने लगा। उदा भी उन्हें खुश करने का यथाशक्ति प्रयत्न करने लगा। उसने आसपास के राजाओं से सन्धि करना शुरू कर दिया। सिरोही के राजा से सन्धि करके उसे आबू [38] प्रदेश वापस दे दिया। इसी प्रकार खेमा से भी उसने सहायता ली।

कांधल चूंड़ावत की अध्यक्षता में मेवाड़ के सब सरदारों ने एकत्रित होकर के रायमल को ईडर से बुला लिया। रायमल सेना लेकर आया और योगिनीपुर (जावर)

---

३६. पेरोजखानानृपति प्रयाति न्यायेन शौर्येन रितुन् निहन्ति च। १८
नन्दति यस्मिन् धनधान्य सम्पदा लोकाः स्वसंतान गणेनधर्म्मतः।१९
(प्रशस्ति संग्रह पृ० २४)

३७. शते पंचदशेतीते पंचाख्येब्देतु माघके पांडौदशम्यां च गुरौ पुण्ये श्री कुंभ भूपतिः— अमर काव्य (ह०) पत्र २४।

३८. आबू से डूंगरसिंह के १५२५ के लेख मिले हैं। ये लेख आबू के पित्तलहर मंदिर में है। यह देवड़ा चूंडा का जिसका अधिकार वहां १४९७ तक विद्यमान था बेटा था। डूंगरसिंह के लेखों के अंश इस प्रकार है—
"सं० १५२५ फा० शु० ७ शनि रोहिण्यां श्री अर्बुदगिरौ देवड़ा श्रीराजधर सायर डूंगरसीराज्ये सा० भीमचैत्ये गुर्जर श्रीमाल राजमान्य मं० मंडन..."

और दाड़िमपुर के पास लड़ाइयों में उदा की सेना को हराया। दाड़िमपुर के युद्ध में उदा के मुख्य सहायक खेमा [39] की मृत्यु हो गई। खेमा की मृत्यु हो जाने पर उदा का पक्ष निर्बल हो गया और धीरे धीरे सरदार उसका साथ छोड़ कर रायमल का साथ देने लगे। चित्तौड़ हार जाने के पश्चात् उदा कुम्भलगढ़ जा पहुंचा। कुम्भलगढ़ का दुर्ग अजेय था और वहां से उसे मार भगाना अत्यन्त कठिन था। अतएव उसके साथियों ने उसे धोखे से किले से बाहर निकाल दिया। किले पर रायमल का अधिकार हो गया। उदा को हमेशा के लिए मेवाड़ को छोड़ देना पड़ा।

उदा वहां से भाग कर परम्परागत शत्रु मांडू के सुल्तान के पास गया। वीर विनोद के अनुसार उसने सुल्तान गयासुद्दीन को अपनी पुत्री ब्याह ने का भी वादा किया था लेकिन उसके महल से निकलते ही मार्ग में चलते हुए उस पर बिजली गिर पड़ी और इस कारण उसकी मृत्यु हो गई [40]। उसके २ पुत्र सेसमल और सुरजमल अपने ननिहाल सोजत में ही रहे। सुल्तान गयासुद्दीन ने भी मेवाड़ में रायमल को अपदस्थ करने की कोशिश की थी और विशाल सेना लेकर आक्रमण भी किया था जिसका उल्लेख फारसी तवारीखों में तो नहीं है किन्तु दक्षिण द्वार की प्रशस्ति में उसके हारके लौटने का उल्लेख होने से यह सही प्रतीत [41] होता है।

---

३९. ओझा—उ० इ० भाग १ पृ० ३२६।

४०. ओझा—उ० इ० भाग १ पृ० ३२७। वी० वि० भाग १ पृ० ३३८।
ऐसा भी विख्यात है—
उदा बाप न मारजै लिखियो लाभै राज।
देश बसायो रायमल सरयो न एको काज॥

४१. दक्षिण द्वार की प्रशस्ति का श्लोक सं० ६८। इसमें स्पष्टतः 'श्रीचित्रकूटे-गजदुर्गं ग्यासशकेश्वरं व्यरचयत् श्रीराजमल्लोनृपः॥" वर्णित है। फारसी तवारीखों में गयासुद्दीन के किसी आक्रमण का उल्लेख नहीं मिलता है। वाकियात इ मुस्ताकी, तारीखइ फरिश्ता आदि में उसके आजन्म महल में ही बंद रहने का उल्लेख किया गया है किन्तु यह संभवतः गलत है। डूंगरपुर में वि० सं० १५३० का एक शिलालेख लगा हुआ है। इसमें "संवत् १५३० वर्षेशाके १३९६ प्रवर्तमाने चैत्रमासे कृष्ण पक्षे षष्ठयां—मंडपाचलपति सुरत्राण ग्यासदीन आवि—डूंगरपुर भाजतई..." लिखा है। मेरा लेख "सुल्तान गयासुद्दीन एण्ड राजस्थान" जो जरनल आफ राजस्थान हिस्टीरिकल इ० सं० ३ अंक ४ में छपा है दृष्टव्य है।

कुम्भा का व्यक्तित्व

मेवाड़ के शिशोदिया राजाओं में साँगा को छोड़कर अन्य कोई राजा कुम्भा के समान इतना अधिक शक्तिशाली नहीं था जिसे वर्षों तक मुस्लिम सुल्तानों के साथ बराबर युद्ध करने को बाध्य होना पड़े और उनमें भी उसकी निरन्तर विजय हो। उसकी सफलता का मुख्य कारण उसका विशिष्ट व्यक्तित्व था। उसके व्यक्तिगत गुण उसे मानव से अति मानव बना देते हैं और इसी कारण पश्चात् कालीन लेखकों ने उसमें कई अलौकिक गुणों तक की कल्पनाएं की हैं। उसके व्यक्तित्व का संक्षिप्त आलोचनात्मक विवरण इस प्रकार है :—

(१) अप्रतिम साहसी

कुम्भलगढ़ प्रशस्ति में उसको निर्भय और निशंक कहा है[४२]। निसंदेह युद्ध में वह निर्भय सा रहता था। मोकल की मृत्यु के समय मेवाड़ की स्थिति शोचनीय हो गई थी। इसके पश्चात् राठौड़ों का प्रभाव बढ़ने लग गया था। दोनों ही संकटों का सफलता पूर्वक सामना करके कुम्भा ने राज्य विस्तार का क्रम जारी रखा। उसके साहस की सबसे बड़ी परीक्षा मालवे और गुजरात के सुल्तानों के साथ साथ किये गये आक्रमण के समय हुई थी। उसके राज्य से कई गुने राज्यों के अधिपति दोनो ओर से सेनाएं लेकर मेवाड़ के राज्य को सदा के लिए विजय कर विभाजित करने को आ रहे थे। उत्तर में नागौर एवं मारवाड़ के राठोड़ों का भी उस समय असहयोग चल रहा था। अतएव ऐसी स्थिति में कुम्भा ने राज्य को बना ही नहीं रक्खा बल्कि दोनों ही सुल्तानों को हरा दिया। मालवे का सुल्तान बहुत ही महत्वाकांक्षी था। उसके समय अगर मेवाड़ में कमजोर शासक होता तो हाड़ोती एवं मेवाड़ को वह अवश्य विजय कर अपने राज्य में मिला लेता।

(२) महान वीर

कुम्भा महान वीर था। उसने राज्य विस्तार के क्षेत्र में अद्वितीय सफलता प्राप्त की। मेवाड़ की मुख्य भूमि के अतिरिक्त गोडवाड़, अजमेर, मन्दसौर, सपादलक्ष पिंडवाड़ा, आबू, मंडोर, नागौर आदि का विस्तृत भू-भाग कुछ समय तक उसके राज्य में रहा था। विभिन्न लेखों के आधार पर उसने मांडलगढ़, बूंदी, आमेर, चाकसू, नराणा सांभर, डीडवाणा, गागरोण, रणथम्भोर, मल्लारणा डूंगरपुर, जावर आदि स्थान विजय किये थे। बूंदी के हाड़ा, आमेर के कछावा, द्रोणपुर छापर के मोहिल रूण और जांगूल के सांखला, सिरोही के देवड़ा, जेतारण के सिंधल, श्रीनगर के पंवार, सोजत और कायलाणे के राठौड़ आदि राजपूत सरदार उसकी चाकरी देते थे। इस प्रकार मेवाड़ राज्य को बढ़ाकर आबू से लेकर सांभर तक, पाली और मंडोर से लेकर गागरोण रण—

---

४२. कु० प्र० श्लोक २४२

थम्भोर एवं मन्दसौर तक का भू-भाग इसके राज्य में कई वर्षों तक रहा था। इतना विस्तृत भू-भाग इसके पूर्व मेवाड़ राज्य में कभी भी सम्मिलित नहीं था। कुम्भलगढ़ प्रशस्ति का यह कथन ठीक है कि कुम्भा ने राज्य प्राप्त कर गुहिल खुंमाण शालिवाहन खेता लाखा आदि की कीर्ति को यथा स्थिर रखा। सांगा के विस्तृत राज्य की नींव कुम्भा के समय में ही स्थिर हुई थी।[४३]

(३) कुशल राजनीतिज्ञ

वह कुशल राजनीतिज्ञ था। कुम्भलगढ़ प्रशस्ति में वर्णित है कि वह सामदाम दण्ड और भेद काम में लाता था। वह योद्धाओं को आवश्यकतानुसार बल से, दण्ड देकर, अथवा सामन्तों को नवीन उर्वराभूमि देकर प्रसन्न करता था। उसने विजित राज्यों को अपने राज्य में न मिलाकर उन्हें केवल मात्र कर दाता बनाया था। कुम्भलगढ़ प्रशस्ति में बूंदी के हाड़ाओं को करदाता बनाने का उल्लेख है। केवल मात्र मन्डोर को कुछ विशिष्ट परिस्थितियों के कारण राज्य में मिलाया था। उसमें भी सोजत, कायलाणा आदि का भू-भाग स्थानीय राठौड़ों को जागीर में दिया था। इसी कारण १५ वर्ष के आसपास तक मन्डोर को अपने राज्य में रख सका था। उसकी कुशल राजनीति का पता इससे चलता है कि उसने वह मालवा के सुल्तान के विरुद्ध गुजरात और दिल्ली के सुल्तानों को सहायता देने का वादा किया और फल स्वरूप दोनों सुल्तानों ने उसे हिन्दू सुरत्ताण की उपाधि[४४] भी दी। इसी कारण गुजरात के सुल्तान अहमदशाह ने मेवाड़ में कोई आक्रमण नहीं किया एवं कुतुबुद्दीन ने भी नागौर पर आक्रमण के पश्चात् ही मेवाड़ पर आक्रमण किया था। महपा और एका चाचावत जो मोकल के थे, क्षमा करके एवं मानने से चूण्डा को बुलाकर भी उसने कुशल राजनीति का परिचय दिया था। आवश्यकता होने पर पहाड़ों में छिप कर अचानक आक्रमण किया करता था। [अज्ञात घातेषु शकेष्वकस्मात्] इसी नीति को आगे चल कर प्रताप और राजसिंह ने भी अपनाई थी।

---

४३. उपरोक्त श्लोक २४५। इसी प्रशस्तिका श्लोक "समस्त दिङ्मंडललब्धवर्ण्णः स्फुरत्प्रतापाधारिताक्कवर्ण्णः" एवं श्लोक २४३ में बड़ा सुन्दर वर्णन है। की० प्र० के श्लोक सं० १५०, १५१ और १७७ में भी इसी प्रकार का उल्लेख है।

४४. राणकपुर प्रशस्ति का यह वर्णन "प्रबलपराक्रमाक्रांतढिल्लीमंडलगूर्जरत्रा सुरत्राणस्यदत्तातपत्रप्रथितहिंदुसुरत्राणबिरुदस्य" उल्लेखनीय है।

(४) प्रजापालक

प्रजा के हित के लिए उसने कई सार्वजनिक निर्माण कार्य कराये। चित्तौड़ पर रथ मार्ग या सड़क, कई तालाब व बावड़ियें बनवाई। चित्तौड़ के अतिरिक्त कुम्भलगढ़, आबू, पिंडवाड़ा, बसन्तपुर में इसी प्रकार के निर्माण कार्य करवाये। आबू के अचलगढ़ में एक सरोवर और ४ जलाशय बनवाये। बसन्तपुर में ७ जलाशय बनवाये। और एक बाग का निर्माण कराया। अकाल के समय प्रजा की बड़ी सहायता करता था। संगीतराज के नृत्यरत्नकोश में नान्दी के मुख से जो आशीर्वचन कहलाये गए हैं उसमें समय पर वर्षा, होने गांवों में प्रसन्नता, देश को सुभिक्षवान एवं राष्ट्र के सुस्वास्थ्य की मंगल कामना [45] की हैं। इससे उसके प्रजा के हितों का ज्ञाता होने का भान होता है। कुम्भलगढ़ प्रशस्ति में उसे प्रजा पालक कहा है। वह विख्यात दानी था। उसकी दान-शीलता बड़ी प्रसिद्ध है। कुम्भलगढ़ प्रशस्ति में उसे भोज और कर्ण के समान दान से पृथ्वी की रक्षा करने का उल्लेख किया है। [46]

(५) महान साहित्यकार और आश्रयदाता

भवानी का उपासक कुम्भा सरस्वती का भी उपासक था। परमार राजा भोज और चौहान राजा वीसलदेव के पश्चात् कुम्भा भी महान संस्कृत का विद्वान् था। वह स्वयं विद्वान् ही नहीं था अपितु कई विद्वानों का आश्रयदाता भी था। उसने १६००० श्लोकों में संगीतराज नामक एक ग्रन्थ संगीत पर लिखाया था। इसके अतिरिक्त उसके द्वारा विरचित कराये ग्रन्थों में गीत गोविन्द की रसिक प्रियाटीका चण्डीशतक की टीका जिसमें ३४०० श्लोक हैं बड़े प्रसिद्ध हैं। उसके द्वारा कीर्तिस्तम्भ की प्रशस्ति में ४ नाटकों की रचना करने का भी उल्लेख मिलता है जो अब अप्राप्य हैं। कीर्ति स्तम्भ के समीप ही कुम्भा द्वारा विरचित जयस्तम्भों सम्बन्धी एक ग्रन्थ को शिलाओं पर उत्कीर्ण कराया था जिसकी एक शिला अब मिल चुकी है। निरन्तर युद्धों में व्यस्त होते हुये भी उसकी सरस्वती की साधना उल्लेखनीय है। कीर्तिस्तम्भ की प्रशस्ति एवं एकलिंग माहात्म्य में उसे वेद, स्मृति मीमांसा, नाट्य शास्त्र, संगीत, राजनीति शास्त्र, गणित शास्त्र, अष्टा-ध्यायी, उपनिषद् तर्क शास्त्र और साहित्य में निपुण बतलाया है।

---

४५. कालेवर्षतुपुण्यवारिजलदो नन्दन्तुगावश्चिरं।
देशः क्षेम सुभिक्षवान् भवतु नो राजास्तु सद्धर्मवान्॥
राष्ट्रं चास्तु निरामयं च लभतां रङ्गः प्रतिष्ठां परां।
प्रेक्षाकर्तुरिहास्तु धर्म विभवो ब्रह्मद्विषोचान्त्वधः॥

नृत्यरत्नकोश ।१।१।२६२-६३

४६. कु० प्र० श्लोक सं० २३६ एवं २६४।

वह कई विद्वानों का आश्रयदाता भी था। इन विद्वानों में कन्हव्यास, अत्रि, महेश, एकनाथ आदि मुख्य हैं। कन्हव्यास द्वारा विरचित एकलिंग माहात्म्य बड़ा प्रसिद्ध ग्रंथ है। कुंभलगढ़ की प्रशस्ति भी इसने विरचित की थी। अत्रि और महेश ने कीर्तिस्तंभ की प्रशस्ति बनाई थी। संगीतराज के नृत्यरत्नकोश के अनुसार कुंभा के दरबार में कई सम्मानित पंडित राजवैद्य, ज्योतिषी,[47] आदि रहते थे। इनके अतिरिक्त उस काल का सबसे बड़ा मूर्तिकलाविद् सूत्रधार मंडन भी कुंभा का आश्रित था। उसके द्वारा विरचित ग्रंथों में रूप मंडन व राजवल्लभ मंडन विशेष उल्लेखनीय हैं।

(६) महान निर्माता

कुंभा महान निर्माता था। कुंभलगढ़ प्रशस्ति एवं कीर्तिस्तम्भ प्रशस्ति में उसके द्वारा कराये गये निर्माण कार्यों का उल्लेख मिलता है। उस काल में निर्माण कार्य राज्य एवं श्रेष्ठि वर्ग दोनों की तरफ हुआ था। राज्य की ओर से कुछ लौकिक और कुछ धार्मिक कार्य हुये थे। कुंभा के राज्य की यह विशेषता है कि इतना अधिक निर्माण कार्य मेवाड़ के इतिहास में कभी भी नहीं हुआ। इनमें चित्तौड़ में कीर्तिस्तंभ, कुंभस्वामिका मंदिर, वराह का मंदिर, शृंगार चंवरी, जैन कीर्तिस्तंभ के पास महावीरजी का मंदिर आदि हैं। कुंभलगढ़ में मामादेव का मन्दिर, और दुर्ग में कई अन्य मन्दिर, राणकपुर का जैन मन्दिर, अचलेश्वर पर जैन और कुंभस्वामी के मन्दिर विशेष उल्लेखनीय है। मूर्तिकला के क्षेत्र में अद्भुत कार्य किया गया। सूत्रधार "मंडन" और "जइता" ने तरह २ की मूर्तियां बनाई। विष्णु की कई हाथों वाली अनन्त, विश्वरूप त्रैलोक्य मोहन, त्रिविक्रम आदि की मूर्ति बनी। ये मूर्तियां आबू के कुंभस्वामी के मन्दिर चित्तौड़ और एकलिंगजी के मन्दिर में मिलती है। कीर्तिस्तंभ हिन्दू पौराणिक देवी देवताओं की मूर्तियों का संग्रहालय है। एकलिंगजी के पास नागदा में देलवाड़ा निवासी श्रेष्ठि सारंग ने अद्भुतजी की जैन विशाल मूर्ति बनवाई। इस प्रकार कुंभा के शासन काल को वास्तु कला के क्षेत्र में मेवाड़ का स्वर्ण युग कहा जा सकता है।

(७) धर्म रक्षक

विभिन्न लेखों से ज्ञात होता है कि उसने विभिन्न धर्मों की रक्षा, वर्णाश्रम धर्म की पालना कराने आदि के लिए सतत् उद्योग किया था एवं उसने गया, काशी,

---

४७. नृत्यरत्न कोश के प्रथम परीक्षण का श्लोक ११७—११८ इसमें "प्रतिभाविशेषविजितेन्द्रज्ञाः सभापण्डिताः" शब्द विशेष उल्लेखनीय है। राजवल्लभमंडन में "देवज्ञस्य सभासदस्यगुरुतः पौरोषसंभेषजं" भी वर्णित है।

प्रयाग. आदि स्थानों से लिये जाने वाले धार्मिक करों के लिए एक साथ राशि देकर उन्हें विमुक्त[48] कराया। आबू में जैन यात्रियों से लिये जाने वाले करों को क्षमा कर[49] दिया। संगीत राज में उसने नान्दी के मुख से "ब्राह्मणों के वेरियों का नाश होने की कामना[50] की है। इसकी प्रशस्ति में "वेदान्तस्थापनचतुराननः" भी है। उसके समय में हिन्दू जैन और शैव सभी मतावलम्बियों द्वारा विशाल मात्रा में निर्माण कार्य कराया था। अतएव यह उसके कुशल धर्म सापेक्षता का सूचक है।

---

४८. एकलिंग महात्म्य के राजवंश वर्णन का श्लोक ६७-६८।
रसिक प्रियाटीका के ७ वें सर्ग की अन्त की प्रशस्ति में "गयादि विमोक्षादि विश्वजनीनकर्मनिर्मलीकृतात्मतः करण........." आदि उल्लेखनीय है। यहां गयादि स्थानों की तीर्थयात्रा से भी अर्थ ले सकते हैं।

४९. आबू का वि० सं० १५०६ के लेख का निम्न अंश—
...श्री अर्बुदाचले देलवाड़ा ग्रामे विमलवसही श्री आदिनाथ तेजलवसही श्री नेमिनाथ तथा बीजे श्रावक देहरे दाणमंडिकं वलावी रखवाली गाडा पोठयारू राणि कुंभकर्णिमहं० डूगर भोजा जोग्यं मया उधारी जिको जात्रि आवे तीहिरु सर्बमुंकावुं ज्यात्रा संमंधि आचंद्रार्क लगि पायकइको मागवा न लहि...

५०. उपरोक्त टिप्पणी सं० ४५।

तीसरा अध्याय

राज्यविस्तार और सैनिक अभियान

समस्तजगतीतलप्रबलवैरिकंठाटवी
नवीनदहनोच्चयोधरणिमंडलाखंडलः ।
कुरंगनयनामनः कुमुदवृंदशीतद्युतिः
प्रतापजित्भानुमान् जयति कुंभकर्णोद्भुत ।।१७७।।

कीर्तिस्तंभ प्रशस्ति

राज्य विस्तार और सैनिक अभियान

महाराणा कुम्भा महान विजेता था। जिस राज्य को राणा हमीर ने जीता था और महाराणा खेता ने बढ़ाने का यथाशक्ति प्रयत्न किया था उसे कुम्भा ने साम्राज्य का स्वरूप देकर इतिहास में सदैव के लिए अपना नाम अमर कर लिया है।[1] उसकी विजयों और राज्य के विस्तार के महत्व को समझने के लिए समसामयिक मेवाड़ और पड़ौसी राज्यों की स्थिति पर दृष्टि डालना आवश्यक है। सिरोही और बूंदी के राजा मोकल के अन्तिम दिनों में मालवे के सुल्तान के अधीनस्थ हो गये थे और गागरोण के युद्ध में उसे सहायता भी दी[2] थी। डूंगरपुर के महारावल गइपा ने मेवाड़ के दक्षिणी भाग को जिसमें जावर आदि सम्मिलित है मेवाड़ से छीन[3] लिया। पूर्वी राजस्थान में मुसलमानों की शक्ति बढ़ती जा रही थी। महुवा, हिंडौन, रणथम्भोर, बयाना आदि में वे संघर्ष कर रहे थे एवं टोडा, नरेना, चाटसू, आमेर आदि को भी वे हस्तगत करना चाह रहे थे। नागौर का सुल्तान शक्ति बढ़ाता जा रहा था। इसने मोकल से कई युद्ध किये थे। मेवाड़ के शिलालेखों के अनुसार इसमें मोकल की विजय[4] हुई थी।

---

१. कु० प्र० श्लोक सं० २४५।

२. अचलदास खींची री वचनिका की भूमिका पृ० ५-७ एवं राजस्थान भारती का कुंभा विशेषांक (मार्च १९६३) में डा० दशरथ शर्मा का लेख पृ० २२-२४।

३. जावर से वि० सं० १४७८ का लेख महाराणा मोकल का मिला है यथा "संवत् १४७८ वर्षे पौष शु० ६ राजाधिराज श्री मोकलदेव विजय राज्ये... [प्राचीन जैन लेख संग्रह भाग १ लेख सं० ११८]। कुंभा ने यह प्रदेश वापस डूंगरपुर वालों से जीता था।

४. चित्तौड़ का वि० सं० १४८५ का श्लोक सं० ५१। श्रृंगी ऋषि के वि० सं० १४८५ के लेख का श्लोक सं० १४। कु० प्र० का श्लोक सं० २२१। वी० वि० भाग १ पृ० ३१४-१५ इसमें २ युद्ध वर्णित है। ओझा एक ही मानते हैं। ओझा—उ० इ० भाग १ पृ० २७३। फारसी तवारीखों में मोकल का हारना वर्णित है [बेले—हि० गु० पृ० १४८ टि० ४] जो गलत है।

किन्तु वह पूर्ण रूप से उसकी शक्ति नष्ट नहीं कर सका था और उसने सपादलक्ष और अजमेर का सारा भू-भाग वापस हस्तगत कर लिया। उत्तर में राठौड़ों और सांखलों के राज्य थे जिनके साथ मेवाड़ के वैवाहिक सम्बन्ध थे। अतएव ये अवश्य मेवाड़ के सहायक थे।

मालवे और गुजरात के सुल्तान बड़ी तेजी से शक्ति बढ़ाते जा रहे थे। अतएव उनसे मुकाबला करना आवश्यक हो गया था। डा० दशरथ शर्मा[5] के अनुसार मेवाड़ कुम्भा के राज्य रोहण के समय दो भीमकाय राक्षसी जबड़ों के बीच पड़े किसी जन्तु का सा था। उस पर किसी भी समय एक साथ दोनों ओर से आक्रमण हो सकता था और वह भी इस ढंग से कि कोई हिन्दू राजा सहायता नहीं कर सके।

मेवाड़ में भी सामन्त आपस में लड़ रहे थे। चाचा और मेरा और उनके साथी महिपाल आदि मोकल से अप्रसन्न थे।

इस प्रकार की भीषण स्थिति की कुंभा ने तनिक भी चिन्ता नहीं की और कठिन परिस्थितियों का भी हंस हंस कर सामना किया।

उसके शासन काल की घटनाओं का सविस्तार अध्ययन करने के लिए उसको ३ भागों में विभक्त कर सकते हैं। प्रथम वि० स० १४९० में १५०० वि० तक—इस काल में कुम्भा को अधिकांशतः युद्धों में ही व्यस्त रहना पड़ा था। उस समय तक मुसलमान सुल्तानों के आक्रमण शुरू नहीं हुए थे। द्वितीय वि० स० १५०० से १५१५ तक—इस काल में गुजरात मालवा और नागौर के सुल्तानों से उसे बराबर प्रायः रक्षात्मक युद्ध करने पड़े थे। यह काल उसके शासन काल का बहुत ही महत्वपूर्ण अंश है। लगभग सब सृजनात्मक कार्य भी इसी काल में पूरे हुए थे। इनमें चित्तौड़ का कीर्तिस्तम्भ, कुम्भस्वामी का मन्दिर, कुम्भलगढ़, बसन्तपुर, आबू का अचलगढ़ आदि दुर्ग मुख्य हैं। कीर्ति स्तम्भ प्रशस्ति[6] में वर्णित "हिन्दूराजगजनायक" और राणकपुर प्रशस्ति[7]

---

५. राजस्थान भरती मार्च १९६३ पृ० २४।

६. "आकुंभकर्णभुजविक्रमभीमसेनहिन्दूकराजगजनायक मुंच मुंच........"
(की० प्र० श्लोक सं० १५२)।

७. राणकपुर प्रशस्ति की यह पंक्ति..." प्रबलपराक्रमाक्रांतढिल्लीमंडलगुर्जरत्राभरत्रागाढत्तातपत्रप्रथितहिंदसुरत्ताणविरुद्स्य"।

में वर्णित "हिन्दू सुरत्ताण" विरुद भी इसी काल में चरितार्थ होते हैं। तृतीय वि० स० १५१५ से १५२५ तक---इस काल में कुम्भा को अधिकांशत: शांति से जीवन व्यतीत करने का अवसर मिला था।

उसके सैनिक अभियान और राज्य विस्तार का वर्णन और तत्सम्बन्धी घटनाओं की पृष्ट-भूमि का वर्णन इस प्रकार है :—

गुजरात के सुल्तान का आक्रमण

फारसी तवारीखों के अनुसार गुजरात के सुल्तान अहमदशाह ने रज्जब हि स० ८३६ या १४८९ वि० (फरवरी मार्च १४३२ ए० डी०) में मेवाड़ पर आक्रमण किया था। फरिश्ता लिखता है कि जिस समय सुल्तान ने आक्रमण किया था मेवाड़ में मोकल राज्य [8] करता था। तारीख-इ-अल्फी में लिखा है कि सुल्तान डूंगरपुर होता हुआ देलवाड़ा और जीलवाड़ा की तरफ बढ़ा और वहां के मन्दिर तोड़ने लगा। वहां मलिक मुनीर को छोड़कर वह मारवाड़ की तरफ बढ़ गया [9]। सम्भवत: सुल्तान का उद्देश्य मेवाड़ को लूटने के स्थान पर नागौर की तरफ बढ़ना था। मेवाड़ इस समय आपसी झगड़ों में व्यस्त था। मोकल के विरुद्ध चाचा मेरा महपा पंवार आदि षड़यन्त्र कर रहे थे। मोकल सुल्तान का सामना करने को चित्तौड़गढ़ से प्रस्थान कर चुका था किन्तु उसकी षड़यन्त्रकारियों ने हत्या [10] कर दी थी जिसका विस्तृत वर्णन आगे किया जायेगा। मोकल की मृत्यु के पश्चात् मेवाड़ में अराजकता व्याप्त हो गई। सुल्तान इस परिस्थिति का लाभ नहीं उठा सका। इसका मुख्य कारण है कि डूंगरपुर में सुल्तान को राजपूतों के साथ भीषण संग्राम करना पड़ा था [11]। अतएव ऐसा प्रतीत होता है कि वह किसी

---

८. ब्रि० फ० भाग ४ पृ० ३३। तब० अक० भाग ३ पृ० २२०। सतीश सी मिश्रा—राइज आफ मुस्लिम पावर इन गुजरात पृ० २०२-३।

९. बेले—हि० गु० पृ० १२०-१२१ का फुटनोट।

१०. ओझा—उ० इ० भाग १ पृ० २७७। डा० दशरथशर्मा का राजस्थान भारती मार्च १९६३ के पृ० २० पर प्रकाशित लेख।

११. आंतरी के शांतिनाथ के मंदिर की वि० सं० १५२५ की प्रशस्ति में रावल गोपीनाथ का गुजरात की सेना को हराना लिखा है [ओझा—डू० इ० पृ० ६५-६६] मगर यह अतिशयोक्ति है। फारसी तवारीखों में भारी रकम देना उल्लेखित है जो ठीक प्रतीत होता है [तब० अक० भाग ३ पृ० २२०, । ब्रि० फ० जिल्द ४ पृ० ३३] सतीश-सी मिश्रा-राइज आफ मुस्लिम पावर इन गुजरात पृ० २०२—२०३।

बड़े युद्ध से बचने के लिए मेवाड़ के सीमा प्रान्त की पहाड़ियों के सहारे-सहारे होता हुआ नागौर चला गया शम्सखां दंदानी ने उसका स्वागत किया और तवकात इ अकबरी के अनुसार भारी रकम देकर आक्रमण से मुक्ति प्राप्त की । सुल्तान लौटते समय भी मेवाड़ के सीमाप्रान्त से ही होकर गया था । उसके आक्रमण का कोई दीर्घ-कालीन प्रभाव मेवाड़ पर नहीं पड़ा । वह तूफान की तरह आया देव मन्दिरों को विनष्ट करता हुआ, एवं नागरिकों की निमर्म हत्याएं करता हुआ चला गया । देलवाड़ा के जैन मन्दिर और एकलिंगजी का मन्दिर भी इसी समय खंडित हुए जिन्हें क्रमशः सहणपाल नवलखा और महाराणा कुम्भा ने वापस जीर्णोद्धार करा. प्रतिष्ठापित कराया था ।[12]

मोकल पर षड़यन्त्रकारियों का घातक आक्रमण

महाराणा खेता के चाचा और मेरा नामक २ पासवानिये पुत्र थे । इनकी माता का कुल खाति जाति से होने के कारण उन्हें अनुकूल पद नहीं दिया जाता था । मोकल इनसे बड़ी घृणा करता था[13] ।इनका साथी श्रीनगर (अजमेर) का ठाकुर महपां पंवार था । नैणसी के अनुसार ये तीनों मिलकर के मोकल को मारकर स्वयं राज्यसत्ता लेना चाहते थे । ये लोग कई दिनों से इस कार्य में संलग्न थे । मोकल को गुप्तचरों से इनकी गति-विधि का संवाद भी प्राप्त होता रहता था । स्वयं रणमल ने भी महाराणा को एक बार इनसे सावधान रहने का संकेत किया था । रणमल के अतिरिक्त सांवलदास ईडर वाले ने भी मोकल को इनसे सावधान किया[14] किन्तु महाराणा ने इन पर कुछ भी ध्यान नही दिया । चाचा और मेरा ने मेलसी डोडिया को अपनी ओर मिला कर महाराणा को जहर से मरवाने का उद्योग किया था । परंतु मेलसी जो महाराणा का खवास था स्पष्ट रूप से इनके षड़यन्त्र में सम्मिलित होकर इनकी योजना को कार्यान्वित करने से इन्कार कर दिया[15] । मेलसी ने भी इस घटना से महाराणा को परिचित कराया किन्तु वह इन

---

१२. कु० प्र० श्लोक २४० में स्पष्टतः "एकलिंगनिलयं च खंडितं प्रोच्चतोरण-सन्मणिचक्रं, भानुबिंबमिलितोच्चपताकं सुंदरं पुनरकायंनृ (यन्नृ) पः" वर्णित है । सहणपाल नवलखा ने वि० सं० १४६१ में देलवाड़ा में जैन मंदिर की प्रतिष्ठा कराई थी ।

१३. नैं० ख्या० भाग २ पृ० ११५-११६ ।

१४. शारदा—म० कु० पृ० ३०-३१ ।

१५. नैं० ख्या० भाग २ पृ० ११६ । शारदा० म० कु० पृ० ३२-३३ । ओझा० उ० इ० पृ० २७८ । वी० वि० भाग १ पृ० ३१५ ।

विद्रोहियों का कुछ भी नहीं बिगाड़ सका और जब वह डूंगरपुर से बढ़ते हुए गुजरात के सुल्तान की सेना का सामना करने जा रहा था उस समय इन षड़यन्त्रकारियों को मौका मिल गया। इन लोगों ने उस पर आक्रमण कर दिया। महाराणा ने इनको आता हुआ देखकर मेलसी को कहा कि ये खातण वाले आते हैं सो ठीक नहीं है। गेहूं के साथ जो का रहना ठीक नहीं है। मेलसी ने कहा कि ये आप पर "चूक" (षड़यन्त्र) करना चाहते हैं। महाराणा ने उत्तर दिया कि "ये हरामखोर लोग इस समय क्यों आये।" ये लोग इस प्रकार परस्पर वार्तालाप कर ही रहे थे कि उन लोगों ने आक्रमण कर दिया। इनमें मोकल उसकी महाराणी और मेलसी तीनों लड़ते लड़ते मारे गये। मोंकल ने ६, हाडी-राणी ने ५ और मेलसी ने भी ५ आक्रमणकारियों को यमलोक भेज कर तीनों ही सदा के लिए काल कवलित हो गये। चाचा और मेरा के भी हल्के घाव लगे। कुम्भा किसी प्रकार से बचकर निकल गया। आक्रमणकारियों ने उसका पीछा किया। उसने भाग कर के एक पटेल के घर पर शरण ली। पटेल के घर पर २ घोड़ियां थी। कुम्भा को क्षत विक्षत स्थिति में देखकर पटेल ने सारी बात पूछी और उसे पहचान कर दो घोड़ियों में से एक उसको दे दी और दूसरी घोड़ी के लिए कहा कि इसे तलवार से काट डालो अन्यथा पीछा करने वाले मुझे तग करेंगे। कुंभा ने ठीक ऐसा ही किया और भाग सकने में सफल हो गया। मोकल की मृत्यु के पश्चात् चाचा का राणा होना और महपा का प्रधान होना नैणसी ने वर्णित किया है जो सम्भवतः गलत है। उस समय कुम्भा ही शासक हुआ था।[16]

अम्म काव्य[17] और वीर विनोद में इसी घटना को कुछ[18] पाठान्तर से वर्णित की है। उनका लिखना है कि चाचा और मेरा में वैमनस्य का तात्कालीक कारण यह था कि महाराणा ने हाड़ा सरदार मालदेव के कहने पर अनायास ही चाचा से पेड़ का नाम पूछ लिया। चाचा और मेरा जिनकी माता का कुल खाति जाति था इससे अत्यन्त क्षुब्ध हो गये। उन्होंने सोचा कि उनकी माँ खातिन है इसलिए उनका तिरस्कार करने के लिए पेड़ का नाम पूछ रहे हैं क्योंकि खाति का पैसा लकड़ी सम्बन्धी होता है जो पेड़ों के बारे में अधिक बता सकता हैं। उस समय तो कुछ भी नहीं कर सके और अवसर की बाट देखने लगे। उपरोक्त मौका देखकर मोकल पर आक्रमण कर बदला लिया।

---

१६. नै० ख्या० भाग २ पृ० ११६। वी० वि० भाग १ पृ० ३१५। वि० सं० १४९० के लेख में "कुंभकर्णविजयराज्ये" शब्द होने से नैणसी का वर्णन गलत प्रतीत होता है।

१७. अमरकाव्य वंशावली (हस्त०) पत्र सं० २४।

१८. वी० वि० भाग १ पृ० ३१५। ओझा० उ० इ० भाग १ पृ० २७७-२७८।

मोकल का अन्तिम शिलालेख [19] वि० स० १४८७ ज्येष्ठ सुदि ५ का है जो उदयपुर के विद्यापीठ में संग्रहित हैं जिसमें हरियाणा ब्राह्मण सूरपाल के वंशधर विद्याधर द्वारा बावी बनाने का उल्लेख हैं। इसके बाद मोकल का कोई लेख नहीं मिला है। फारसी तवारीखों में वि० स० १४८६ में जब मेवाड़ में मोकल शासक था तब गुजरात [20] के सुल्तान का आक्रमण करना उल्लेखित हैं। कुम्भा का सबसे पहला[21] लेख वि० स० १४६० बैशाख मास का है जो श्रावणान्त होना चाहिये। अमरकाव्य वंशावली के अनुसार मोकल ने १५ वर्ष एक मास और ३ दिन राज्य किया था और साथ ही साथ इसमें कुम्भा के वि० स० १४६० में राजा होने का भी उल्लेख है। मोकल के पिता लाखा का [22] अन्तिम लेख वि० स० १४७५ आषाढ़ सुदि का है अतएव वह घटना वि० स० १४६० के आरम्भिक महिनों में ही घटित होनी चाहिये।

यह घटना बागोर में घटित हुई थी अथवा चित्तौड़ में इस सम्बन्ध में मत भेद है। अमरकाव्य [23] वंशावली में यह घटना चित्तौड़ के समीप ही घटित होना वर्णित है। मारवाड़ की ख्यातों में भिन्न भिन्न वर्णन है। श्री रेऊ में ने मदारिया नामक [24] स्थान पर इसे घटित होना लिखा है। ओझाजी ने प्रतापगढ़ राज्य के इतिहास[25] में क्षेमकर्ण के वर्णन में यह घटना बागोर में घटित होना वर्णित किया है। मदारिया और बागोर दोनों ही चित्तौड़ से उत्तरी पश्चिमी भू-भाग की तरफ जाते हुए मार्ग में आते हैं। परन्तु जो मार्ग मोकल को गुजरात के राजा के आक्रमण के लिए लेना था वह आहड़ की तरफ होना चाहिए। बागोर और मदारिया दोनों उत्तर पश्चिम में आ जाते हैं। अतएव इसे चित्तौड़ से कुछ दूरी पर ही होना माना जाना चाहिये।

---

१६. पं० कृष्ण चन्द्र शास्त्री ने इस लेख का सुपाठ्य अंश भेजा जिसके लिये मैं उनका कृतज्ञ हूं। यह लेख अप्रकाशित है। इसका संक्षिप्त विवरण राजपुताना म्युजियम रिपोर्ट वर्ष १६३२ ले० सं० ४ में छप चुका है। शारदा—म० कु० पृ० ३१ भी दृष्टव्य है।

२०. ब्रि० फ० जिल्द ४ पृ० ३३। तब० अ'क० भाग ३ पृ० २२०।

२१. राजस्थान भारती मार्च १६६३ पृ० ७६।

२२. "स्वस्ति श्री संवत् १४७५ वर्षे आषाढ़ सुदि ३ सोमे राणा श्री लाषा विजयराज्ये प्रधान ठाकुर श्री मांडण व्यापारे... (कोट सोलंकियों का लेख)

२३. अमर काव्य वंशावली पत्र २४।

२४. रेऊ—मा० इ० भाग १ पृ० ७५-७६।

२५. ओझा—प्रतापगढ़ राज्य का इतिहास पृ०।

कुम्भा का राज्य रोहण

मोकल की असामयिक मृत्यु होजाने के फलस्वरूप मेवाड़ में दो दल हो गये। कुछ विद्रोहियों के साथ हो गये और शेष सरदारों ने जिनमें राघवदेव लाखावत आदि थे मिलकर के विधिवत् कुंभा का राज्य रोहण कर मोकल की मृत्यु का बेर लेने को दृढ़ संकल्प हो गये। श्री रेऊ[२६] ने कुम्भा की राज्य रोहण के समय ८—९ वर्ष की आयु मानी है यह तिथि उनके द्वारा मोकल की कल्पित मानी गई जन्म तिथि से निकाली गई है जो पूर्णतया असत्य है। इसका विवरण अन्यत्र कर दिया गया है। कुंभा राज्य रोहण के समय अल्पायु का नहीं था। नैणसी ने उसके मोकल की हत्या के समय, कुशलतापूर्वक भागने व मार्ग मे एक पटेल के घर से घोड़ी ले लेने व दूसरी को मोत के घाट उतारने का उल्लेख किया है जो ८—९ वर्ष के बच्चे के लिए संभव नहीं है। इसके अतिरिक्त १४९५ वि० के आसपास जब रणमल को हत्या की गई तब नैणसी ने महा-राणा का संवाद प्रस्तुत किया है एवं षड़यन्त्र में सक्रिय भाग लेने का भी उल्लेख किया है। अगर राज्य रोहण के समय कुंभा ८—९ वर्ष का होता तो उस समय भी १३ वर्ष के लगभग आयु का ही हो सकता है। इसके अतिरिक्त नीचे लिखे और भी तथ्य हैं जो कुंभा को राज्य रोहण के समय वयस्क सिद्ध करते हैं :—

(i) कुंभा के ३५ वर्ष राज्य करने के पश्चात् उसकी हत्या उसके ज्येष्ठ पुत्र उदा ने की थी जिसके उस समय २ बड़े पुत्र शैषमल और सूरजमल और एक विवाह योग्य पुत्री विद्यमान थी। यह जब ही संभव हो सकता है कि राज्य रोहण के समय कुंभा की कम से कम १८ वर्ष की आयु मानी जावे।

(ii) वि० स० १४९५ और वि० स० १९४६ की जैन प्रशस्तियों में जो राज्यश्रित कवियों द्वारा विरचित की हुई नहीं है कुंभा का वर्णन अत्यन्त गौरवपूर्ण है। १४९५ वाली प्रशस्ति में स्पष्टत: यह वर्णित हैं कि चित्तौड़ में उस समय महाराणा कुंभा की वीरता की प्रशंसा[२७] हो रही थी। रेऊ के अनुसार कुंभा उस समय १२—१३ वर्ष का ही होता है अतएव यह वर्णन उसके लिये जबहि उपयुक्त हो सकता है कि वह पूर्ण वयस्क हो।

---

२६. रेऊ—मा० इ० भाग १ पृ० ७५ फुटनोट स० १।

२७. वार्त्ताधितापविषयात्र कथं प्रजानां
श्री कुंभकर्णपृथिवीपतिरद्भु तौजाः ॥

(१४९५ का चित्तौड़ का लेख)

(iii) राणकपुर की प्रशस्ति में लिखा है कि "कुंभा ने गजपति की तरह अपने बाहुबल से बहुत उन्नति की और भद्रों को अपनी ओर मिलाया। जिसने गरुड़ की तरह सर्प सदृश म्लेच्छ राजाओं को विनष्ट किया। जिसके चरणों में कई देश के राजाओं को मस्तकावली सदैव वन्दना करती थी; जो विपक्षी राजाओं को अपने बाहुबल से छिन्न भिन्न कर देता था; वह अपनी पतिव्रता लक्ष्मी के साथ विष्णु की तरह आनन्दित रहता था; उसका प्रभाव दुनिया की झाड़ी को नष्ट करने के लिए आग का काम करता था। जिसके तेज के आगे विपक्षी राजा भाग खड़े होते थे। उसे गुजरात और दिल्ली के सुल्तानों ने "हिन्दू सूरत्राण" की उपाधि दी थी। जो स्वर्ण धन का भन्डार था।[२८]

ऐसी कोई समसामयिक सामग्री उपलब्ध नहीं है जिनमें कुंभा को अल्पायु का वर्णित किया हो। इसमें "निजभुजोर्जित" शब्द विशेष उल्लेखनीय है। इसी प्रकार अपनी रानी के साथ विलासिता पूर्ण जीवन व्यतीत करने के वर्णन से स्पष्ट है कि वह इस समय पूर्ण वयस्क था।

षड़यन्त्रकारियों का दमन

कुंभा राज्य रोहण करते ही सर्व प्रथम षड़यन्त्रकारियों के दमन के लिए कटिबद्ध हुआ। उसने मेवाड़ के सभी सहयोगी और सामन्त राजाओं को सहायतार्थ बुलाया। रणमल को भी मारवाड़ से बुलाने के लिए संवाद भेजा। नैणसी ने लिखा है कि एक दिन राव जब दरबार में बैठा था तब अपने सभासदों से बोला कि कई दिन हो गए चित्तौड़ से कोई समाचार प्राप्त नहीं आ रहें हैं। इतने में ही एक आदमी ने आकर संवाद दिया कि षड़यन्त्रकारियों ने मोकल को मार डाला। राव अतीव विस्मित एवं शोकातुर होकर बोला हैं ! मोकल को मार डाला। मोकल राव की बहिन हंसाबाई का पुत्र था। अतएव अपने दिवंगत भानजे को जलांजलि दी और २१ कदम भरकर प्रतिज्ञा की पहले मोकल का बेर लूंगा पीछे और काम करूंगा और प्रण किया कि सिसोदियों

---

२८. निजभुजोर्जितसमुपार्जितानेक भद्रगजेन्द्रस्य। म्लेच्छमहीपालव्यालचक्रवाल-विदलनविहंगमेंद्रस्य। प्रचंडदोर्दंडखंडिताभिनिवेशनानादेशनरेशभालमाला-लालितपदारविंदस्य। अस्खलितलालितलक्ष्मीविलासगोविन्दस्य। कुनयगहन-दहनदवानलायमानप्रतापव्यापपलायमानसकलबलूलप्रतिकूलक्ष्मापश्वापद-वृन्दस्य।

[राणकपुर का वि० स० १४९६ का लेख पंक्ति २० से २५]

की पुत्रियों को चूण्डा के वंशजों से नहीं विवाहित करूं तो मेरा नाम रणमल नहीं। सिर से पगड़ी हटाकर शोक सूचक चिह्न "फेटा" बांध लिया। १८ वीं शताब्दी में लिखित सूरज प्रकाश ग्रन्थ में भी इस प्रकार का वर्णन है।[29]

नैणसी का वृतान्त अतिशयोक्ति पूर्ण है। सच तो यह है कि उस समय मारवाड़ में गुजरात का सुल्तान तेजी से बढ़ता हुआ[30] जा रहा था। अतएव रणमल को सर्व प्रथम मारवाड़ को गुजराती आक्रमण से रक्षित करना पड़ा था। उस समय इसका इस प्रकार प्रतिज्ञा करके मेवाड़ में जाना असंभव था। गुजरात के सुल्तान के नागौर से लौट जाने पर ही राव रणमल मेवाड़ में आसका होगा।

नैणसी ने चाचा और मेरा को मारने का मुख्य श्रेय रणमल को दिया है। नैणसी से आगे बढ़कर श्री रेऊ ने तो १४९६ के राणकपुर के लेख में वर्णित लगभग सब ही घटनाओं और दिग्विजयों का श्रेय रणमल को यह कह कर दे डाला है कि कुंभा उस समय बच्चा ही था। इतना अवश्य सत्य है कि रणमल ने मोकल के घातकों और कुंभा को अन्य युद्धों में अवश्य सहायता की थी किन्तु इस प्रकार की सहायता देना उस समय राजाओं के पारस्परिक व्यवहार में था। यह न भूलना चाहिये कि स्वयं रणमल को भी मोकल ने सहायता देकर मारवाड़ का राज्य दिलाया था। राठौड़ों की ख्यातों का वर्णन इस सम्बन्ध में अतिशयोक्ति पूर्ण प्रतीत होता है।

कुंभा के समसामयिक कीर्तिस्तम्भ के लेख में पितृ बेर लेने का मुख्य श्रेय रणमल के स्थान पर उसे ही दिया गया है[31]। इतना होते हुए भी रणमल की सहा-

---

२९. रणमल की प्रतिज्ञा सम्बन्धी एक छंद इस प्रकार हैं—

जेय चढ़े आकास ताम आयास उतारूं।
जे पैसे पताल काढ़ पाताला मारूं॥
जैथ जाय तेथ जाय खित खेलू खत्र साचौ।
जाये किम जीवतौ अति ओगारी चाचौ॥
बावन वीर बीरम हट कोय जु जुध मंडेकया।
मालवे मोकल तणा रिणमल लई प्रतंगथा॥

(राव रणमल को रूपक)

३०. तव० अक० भाग ३ पृ० २२० के अनुसार सुल्तान ने राठोड़ों के प्रदेश पर भी आक्रमण किया था।

३१. संगीतराज की प्रशस्ति में "पितृवैरिसमुद्भूतरोषपोषणमहीपतिमस्तमात्तंग-मस्तकांकुशेन अभिनवभार्गवः" लिखा है। एवं "असमसमरभूमिदारूणः कुंभकर्ण्णः, करिकलितकृपाणैर्वैरिवृंदनिहत्य। चलितरूधिरपुरोत्त[illegible] कल्लोलिनीभिः शमयतिपितृवैराद्भूतरोषानलौघं॥" की०प्र० श्लोक सं० १५०

यता बहुत ही उल्लेखनीय है। उस समय सीमावर्ती अन्यराजा मेवाड़ के राज्य को हस्तगत करने में लगे हुए थे। अतएव उस समय उसकी सहायता से मेवाड़ की सेनाओं का बल बढ़ा था। वह अपने ५०० सैनिक लेकर ही सम्मिलित हुआ था। शिशोदियों की ओर से चूंडावत राघवदेव भी था जो उल्लेखनीय योद्धा था।

नैणसी लिखता है कि महाराणा की सेना ने चाचा और मेरा का पीछा किया और पई एवं कोटड़ा के पहाड़ों को घेर लिया। यह क्षेत्र पहाड़ी एवं अत्यन्त दुर्गम है। वहां अधिकांशतः भीलों की आबादी हैं। भीलों के सरदार "गमेती" को राव रणमल ने किसी समय मरवा डाला था अतएव वे सब लोग राव से अप्रसन्न थे और स्पष्ट रूप से चाचा और मेरा की सहायता कर रहे थे। रणमल ने वह पहाड़ जा घेरा और छः माह तक घेरा डाले रहा। लेकिन वह फिर भी उस क्षेत्र पर विजय नहीं कर सका। वहां कुछ बस्ती मेरों की भी थी। एक मेर जिसे चाचा और मेरा ने निकाल दिया था राव रणमल से आकर के मिला और कहा कि अगर दीवाण" (महाराणा) की आज्ञा हो तो वह सहायता करने को तैयार है। इस पर रणमल अपने ५०० सैनिकों सहित उसके पीछे पीछे जाने लगा। ये लोग चाचा और मेरा के घरों पर जा चढ़े। रणमल स्वयं महिपाल के झोंपड़े पर गया। महिपाल स्थिति की भयकरता को देखकर अपनी रखेल डोमनी के वस्त्र पहन कर बाहर चला गया। रणमल ने बाहर से महीपाल को आवाज दी तो भीतर से डोमनी बोली कि "राज (श्रीमान) मैं नंगी बैठी हूं। ठाकुर मेरे कपड़े पहन कर चला गया है।" चाचा और मेरा को मार दिया गया। चाचा का बेटा एका चाचावत भाग निकला। उसके अन्य साथी भी भाग गये। चाचा और मेरा ने ५०० लड़कियां पकड़ रखी थीं उनको भी रणमल देलवाड़ा ले आया उनको राठौड़ों को विवाहित करने की आज्ञा दी किन्तु राघवदेव ने इनका स्पष्ट रूप से विरोध किया और बलात् इन लड़कियों को ले चला[३२] गया। इससे दोनों में परस्पर विरोध हो गया। उस समय रणमल स्पष्ट रूप से कुछ भी नहीं कर सका और अवसर की बाट देखने लगा। "राठोड़ वंश री विगत" नामक ग्रन्थ में उपरोक्त घटना के स्थान पर केवल इतना ही लिखा है कि रणमल चाचा और मेरा के विद्रोह को शांत करने को चित्तौड़ गया।

---

३२. नैं० ख्या० भाग १ पृ० २७-२८ भाग २ पृ० ११७। एवं वी० वि० भाग २ पृ० ३१८-३१९ राठोड वंश की विगत—पृ० ९।

राठोड़ों का प्रभाव बढ़ना और राघवदेव की मृत्यु

रणमल ने मोकल के घातकों को मारने में कुंभा को सहायता दी थी इसलिए वह इसका सम्मान करता था। राव रणमल को मारवाड़ की रेतीली भूमि की तुलना में मेवाड़ की शस्य श्यामला भूमि अच्छी दिखाई दी। उसकी ललचाई आंखे वहां राठौड़ राज्य के संस्थापन की कल्पना कर रही थी इसलिए उसने अपने प्रभाव को बढ़ाने की यथा शक्ति कोशिश की। राजदादी हन्साबाई अभी जीवित थी। उसकी संरक्षता में कई प्रमुख पदों पर राठौड़ों की नियुक्ति करवादी गई। इनमें भाटी शत्रुशाल को चित्तौड़ का किलेदार बनाया जो राव रणमल की मृत्यु के पश्चात् चित्तौड़ से भाग गया था और जोधा के साथ रह कर लड़ा [33] था। सिसोदियो द्वारा भी इनका विरोध किया गया था। इन विरोधियों में सबसे प्रबल राघवदेव था। जैसा कि ऊपर उल्लेखित है प्रारम्भ में चाचा और मेरा को मारने में तो इन सबका सहयोग था लेकिन देलवाड़ा-काण्ड के पश्चात् दोनों में जबरदस्त विरोध हो गया। चूंडा और अज्जा उस समय तक मांडू में ही थे अतएव रणमल उनकी तरफ से निश्चिन्त था और राघवदेव को ही मरवाने की योजना बना रहा था। वह कुम्भा के भी कान भरने लगा कि राघवदेव विद्रोही है। कहते हैं कि उसने एक ऐसा वस्त्र सिलवाया जिसकी दोनों बाहों के अन्तिम सिरोंको सिला दिया गया, जिसका उद्देश्य यह था कि जब राघवदेव इसे पहनने लगेगा तब उसके हाथ बन्द हो जायेंगे और उस पर आक्रमण किया जाकर मार दिया जा सकेगा। इस प्रकार राघवदेव को सिरोपाव देने के लिए एक दिन राज सभा में बुलया गया। जब वह अंगरखा पहनने लगा तब रणमल द्वारा नियुक्त २ राजपूतों ने दोनों ओर से आक्रमण करके उसे मरवा डाला। नैणसी ने लिखा है कि सिसोदिया राघवदेव लाखावत राणा कुंभा की धरती से बिगाड़ करता था इसलिए राणा ने उसे मारने की सोची। एक दिन राघवदेव जब दरबार में आया तब उसके अंगरखे की बांहें ढ़ीली होने के कारण नीचे की तरफ आगई। संकेतानुसार एक बांह महाराणा कुंभा ने और दूसरी बांह राव रणमल ने पकड़ ली और दोनों बगलों से कटार घुसेड़ दी। वह घायल स्थिति में घोड़े पर सवार होकर भाग रहा था कि एक राजपूत ने उसका सिर धड़ से पृथक कर दिया [34]। ऐसी मान्यता है कि बिना मुन्ड के ही उसके धड़ को

---

३३. रेऊ० मा० इ० भाग १ पृ० ८६।

३४. नै० ख्या० भाग १ पृ० ३० पर दिया गया वह पद—

राय आंगण राणा कुंभ करण रूठै हाथा ग्रहे हिन्दवंरा।
काढ़ी राघव भली कटारी, दांतां सरसी ऊपर डाय॥
इस सम्बन्ध में वी० वि० भाग १ पृ० ३१६, ओझा—उ० इ० भाग १ पृ० २८३ एवं शारदा म० कु० पृ० ४१ भी दृष्टव्य है।

लेकर घोड़ा भागता रहा। व पड़ावली गांव के पास जा गिरा जहां उसकी स्त्रियां सती हुई। राघवदेव आज भी पितृदेव के रूप में पूजा जाता है। वीर विनोद में इसकी छत्री चित्तौड़ के किले पर अन्नपूर्णा के मन्दिर के पास वर्णित की है। अतएव पड़ावली के स्थान पर चित्तौड़ में ही सती होना प्रकट होता है। यह घटना वि० स० १४६४ के लगभग सम्पन्न हुई थी।

नैणसी का उपरोक्त कथन पक्षपात पूर्ण है। उसने राव रणमल द्वारा किये गए कुकृत्य को छिपाने के लिए ही लिखा है कि राघवदेव राणा की धरती में बिगाड़ करता था। सही बात यह है कि राघवदेव ने राज्य के लिए त्याग किया था। उसने खुले रूप से रणमल का विरोध किया था और राठौड़ों के बढ़ते हुए प्रभाव में विनाश की भयंकर भूमिका देखली थी। उसकी मृत्यु से प्रत्यक्ष रूप से मेवाड़ के सरदारों का ध्यान रणमल के कुकृत्यों की ओर जाने लगा और जिसका परिणाम हुआ रणमल की मृत्यु जिसका वर्णन आगे चल कर किया जावेगा।

हाडोती विजय

उस समय बूंदी और बंबावदा के हाडाओं के राज्य बड़े प्रसिद्ध थे। ये नाडोल के चौहान राजा आमराज के छोटे पुत्र मणिकराय [35] के वंशज हैं। इन हाडाओं का मूल पुरुष हर राज था। बम्बावदा में हाडा महादेव के वि० स० १४४६ के मेनाल के लेख के अनुसार देवराज, रतपाल 'केल्हण कुन्तल, और महादेव शासक हुये थे। कुंभा के समय यहां कौन शासक था। यह ज्ञात नहीं हो सका है। बूंदी शाखा के हाडाओं में देवीसिंह, समरसिंह, नरपाल, हम्मीर, वीरसिंह, बैरीशाल और भाण नामक राजा हुए थे जिनमें से अन्तिम दो महाराणा [36] कुंभा के समकालीन थे। ये शासक दीर्घ-काल तक मेवाड़ के राजाओं के सामन्त रहे प्रतीत होते हैं किन्तु मोकल के अन्तिम दिनों में इन्होंने मांडलगढ़ और जहाजपुर के आसपास का भू-भाग मेवाड़ से छीन लिया

---

३५. नै० ख्या० जिल्द प्रथम पृ० १०४।
जगदीशसिंह गेहलोत—राजपुताने का इतिहास भाग २ पृ० ४०।

३६. नागरीप्रचारिणी पत्रिका भाग ११ पृ० १ टिप्पणी १।
गेहलोत—राजपुताने का इतिहास भाग २ पृ० ४१ से ५०।
ओझा—उ० इ० भाग १ पृ० २४० की टिप्पणी एवं २४१। वंश भास्कर भाग ३ पृ० १८७० से १८९२।

अचलदास खींची की वचनिका से प्रकट होता है कि जिस समय मालवा के सुल्तान ने सं० १४८० में गागरोण पर आक्रमण किया था तब हाडाओं ने सुल्तान को सहायता दी थी जिससे स्पष्ट ध्वनित [37] होता है कि उस समय ये मेवाड़ के आधिन नहीं रहे थे। मांडलगढ़ और जहाजपुर का यह क्षेत्र मेवाड़ के पूर्वी भाग में है और ये दोनों दुर्ग सैनिक महत्व के भी हैं। इनसे मेवाड़ की पूर्वी सीमाओं की रक्षा की जा सकती थी इसीलिए मांडलगढ़ पर कई बार मालवा के सुल्तान ने आक्रमण किया था और एक बार इसे विजित भी कर लिया था किन्तु विजय अस्थायी ही रही। कुंभा ने इसे वापस अधिकृत कर लिया। इसका सविस्तार वर्णन ५वें अध्याय में हैं।

उस समय इन हाडाओं को बड़ा सवर्ष करना पड़ रहा था। महाराणा कुंभा और मालवे का सुल्तान मोहम्मद शाह खिलजी दोनों ही इसे अपने अपने प्रभाव में लाना चाहते थे। मालवे के सुल्तान ने इस क्षेत्र में वि० स० १५०३, १५११ और १५१५ में भीषण आक्रमण किये थे। मआसिरे मोहम्मद शाही से प्रतीत होता है कि कोटा का क्षेत्र[38] भाण के भाई सांड़ा के पास था। इसने प्रकट रूप से मालवा के सुल्तान की अधीनता स्वीकार करली थी किन्तु छिपे छिपे महाराणा कुंभा को सहायता दे रहा था। सांडा और भाण के मध्य अच्छे सम्बन्ध नहीं थे। शाहीब हकीम [39] लिखता है कि भाण मोहम्मद खिजली के पास गया और कोटा का क्षेत्र सांडा से लेकर उसे दे देने का कहा। उसने अपने अधिकारियों से मंत्रणा करके कोटा भाण को दिला दिया और भाण ने एकलाख बीस हजार टंका कर के रूप में बदले में मालवे के शासक को देना स्वीकार

---

३७. "हींदू राजा कवण कवण ?—देवसीह, सारिखा।
बूंदी का चक्रवती अवर देवड़ा हींदूराइ बंदिछोड, दूसरा मालदेव समर सीह सारिखा—" (अचलदास खींची री वचनिका पृ० ५-७) यहां बूंदी का चक्रवर्ती शब्द विशेष उल्लेखनीय है।

३८. राव बैरिसाल के ७ या ६ पुत्र थे जिनके नाम हैं—भांडा, सांडा या सुभाण्ड अखेराज, ऊधव, चूडा, समरसिंह और अमरसिंह। राव भांडा से सांडा को कहीं-कहीं ख्यातों में बड़ा भी वर्णित किया गया है और लिखा है कि बैरिसाल के जीवन काल में ही इसने कोटा ले लिया था।

३९. मआसिरे—मोहम्मद शाही पत्र सं० १६३ (मिडिवल मालवा—पृ० २०० से उद्घृत)।

किया । रावभाण अधिक समय तक मालवे के सुल्तान के अधीन नहीं रहा प्रतीत होता है । कुंभा ने उसे मालवे के सुल्तान की अधीनता से मुक्त करा लिया था । बूंदी से उत्तर में स्थित [40] नैनवां ग्राम से वि० स० १५१५ से लेकर १५१८ एवं १५२८ की मालवे के सुल्तान के सामन्त अल्लाउद्दीन नामक एक शासक की प्रशस्तियां अवश्य मिली है किन्तु कुंभा का इस हाडोती क्षेत्र पर बराबर आधिपत्य रहना ख्यातों और मेवाड़ के शिलालेखों से प्रकट होता है । एवं मालवे के सुल्तान [41] का यहां पूर्ण अधिकार गयासुद्दीन के समय में ही हुआ था । उस समय यहां के शासक राव भाण को निष्कासित कर दिया था । मेवाड़ [42] की प्रशस्तियों से ज्ञात होता है कि कुंभा ने बूंदी को एक से अधिक बार जीता था । अतएव बूंदी के राजा अन्तिम समय तक उसके ही अधीन थे । इन अन्तिम वर्षों में मालवे के सुल्तान का कोई आक्रमण बूंदी पर नहीं हुआ था । गयासुद्दीन ने भी रावभाण को इसीलिए हटाया था कि वह मेवाड़ के राणा की सहायता करता था ।

बूंदी के समीप लगभग १२ मील दूर स्थित खटकड़ ग्राम को जीतना भी वर्णित है । सम्यक्त्व [43] कथा कौमुदी ग्रंथ की प्रशस्ति वि० स० १५६० माघ वदि १३ की प्राप्त हुई हैं । इसमें तत्कालीन खटकड़ के शासक का नाम राव अखयराज और उसके

---

४०. बिरधीचन्दजी जैन मंदिर जयपुर में सिद्ध चक्र कथा नामक ग्रंथ संग्रहित है । इसकी प्रशस्ति में "संवत् १५१५ वर्षे ज्येष्ठ सुदि १५ नैणवाह पतने सुरत्राण अल्लावदीणराज्ये" वर्णित है । वि० सं० १५१८ की एक अन्य प्रशस्ति में भी इसी प्रकार का वर्णन है ।

४१. वंश भास्कर (भाग ३ पृ० १६५३) के अनुसार यहां उसने वैरिसाल के मुसलमान बने पुत्र श्याम को जो समरकन्द के नाम से विख्यात है भेजा था और उसने बूंदी पर अधिकार भी कर लिया था । रावभाण गयासुद्दीन के समय मेवाड़ में रहा था जहां उसे भीलवाड़ा ग्राम जागीर में दिया गया था । षटकर्मोपदेशमाला नामक एक हस्तलिखित ग्रंथ की प्रशस्ति दृष्टव्य है "संवत् १५५६ वर्षे चैत्र बुदि १३ रविवासरे शतमिखा नक्षत्रे राजाधिराज श्री भाण राज्ये भीलोड़ा ग्रामे..." (राजस्थान के जैन भंडारों की सूची भाग ३ पृ० ७८) ।

४२. कु० प्र० के श्लोक सं० २५६ एवं २६२ से २६४ ।

४३. "वंशभास्कर के अनुसार राव बैरिसाल ने अपने जीवन काल में अखेराज को खटकड, चूंडा को बरंधणी और उदयसिंह को पीपल्दा जागीर में दे दिया था" (वंशभास्कर भाग ३ पृ० १८७७) ।

पुत्र नर्बदा हाडा का वर्णन है। वंश भास्कर के वर्णन के अनुसार यह अखयराज बून्दी के राजा बैरीसाल का ही पुत्र था। अगर यह सही है तो कुम्भा के समय में भी यही अखैराज शासक रहा होगा।

कुंभा ने इस क्षेत्र में सबसे पहले वि० स० १४९३-९४ के लगभग आक्रमण किया था जिसका उल्लेख वि० स० १४९६ के राणकपुर [44] के लेख में है। मेवाड़ के शिलालेखों में इस सम्बन्ध में जो वर्णन मिलता है उनमें "लीलामात्रेण" और "क्षणेन" शब्द बराबर मिलता है। इन युद्धों का क्रम इस प्रकार से प्रतीत होता है कि सबसे पहले कुंभा ने मांडलगढ़ पर आक्रमण किया था जहां हाडाओं के सहयोगियों ने मुकाबला किया था। संगीतराज की प्रशस्ति में "मण्डलदुर्गोद्धररणोद्धत सकलमण्डलाधीश्वरः" पद उल्लेखित है जिससे भी इसकी पुष्टि होती है। कुंभलगढ़ प्रशस्ति में "मडलकरं-दुर्गं क्षणेनजयत्" पाठ है जिससे प्रतीत होता है कि कुंभा को यहां अधिक शक्ति नहीं लगानी पड़ी होगी। इसके पश्चात् या तो बम्बावदे के मार्ग से बून्दी और खटकड़ पहुंचा होगा अथवा पहले अमरगढ़ होकर जहाजपुर जाकर फिर बून्दी गया [45] होगा। जहाजपुर में उसे भीषण संघर्ष करना पड़ा था। इसकी पुष्टि "पुरारि विक्रमो यागपुरं पुरमिवाजयत्" पद से होती है। वस्तुतः इस क्षेत्र में बड़ा उथल पुथल रहा था। कुंभा को बराबर मालवे के सुल्तान से अपने राज्य की रक्षा के लिए इस क्षेत्र को संगठित करना आवश्यक था। अतएव वह स्वयं उत्सुक था कि बून्दी के हाडा उसके सामन्त बने रहे। उसने इनको केवल मात्र "करदाता" ही बनाया [46] था। इस क्षेत्र में उसकी नीति यही रही थी कि स्थानीय राजपूत राजाओं को मुसलमानों के बढ़ते हुए प्रभाव से मुक्त करना और इसमें वह बराबर सफल रहा था।

---

४४. "विषमतमाभंगसारंगपुरनागपुरगागरणनराणकाऽजयमेरुमंडोरमंडलकरबूंदि-खाटूचाटसूजानादिनानामहादुर्गलोलामात्रग्रहणप्रमाणितजितकाशित्वाभि-मानस्य" (राणकपुर का लेख)

४५. कुंभा की प्रशस्तियों से उसके सैनिक अभियान के लिये अपनाये गये मार्गों का ठीक-ठीक विवरण नहीं मिलता है। वि० सं० १४९६ के पूर्व ही उसने नागौर से खाटू तक आक्रमण किया था और चाटसू भी जीता था। इसी प्रकार सारंगपुर से लौटते समय या बूंदी विजय के बाद उसने गागरोण जीता था। चाटसू से बूंदी भी आया जा सकता है किन्तु बूंदी विजय संभवतः पहले हुई थी और सपादलक्ष में उसका अभियान बाद में। इसलिए मैं उपरोक्त मार्ग को हीठीक समझता हूं।

४६. जित्वा देशमनेकदुर्गविषमं हाडावटीं हेलया।
तन्नाथान् करदान्विधाय च जयस्तंभानुदस्तंभयत्।
दुर्गं गोपुरमत्रषटपुरमपि प्रौढां च वृन्दावतीं।
श्रीमन्मण्डलदुर्गमुच्चविलसच्छालां विशालांपुरीम् ॥२६४॥ (कु० प्र०)

इस प्रकार से मांडलगढ़, बिजोलिया, अमरगढ़ जहाजपुर आदि का भू भाग जो मेवाड़ के पूर्वी पठार का भू भाग है, सदा के लिए मेवाड़ राज्य में सम्मिलित हो गया।

कुंभा की बूंदी विजय से सम्बन्धित वंश प्रकाश में एक रोचक घटना का उल्लेख किया है कि जब महाराणा कुंभा के समय हाड़ों ने अमरगढ़ का किला छल से छीन लिया तो महाराणा ने बूंदी पर चढ़ाई की [47]। युद्ध के लिए प्रयाण करते समय जब महाराणा को रानी ने विदाई दी उस समय तीज पर अवश्यमेव आने का आग्रह किया और कहा कि अगर आप तीज तक नहीं आवेंगे तो आपका परलोक वास हुआ समझकर स्वयं सती हो जाऊंगी। महाराणा ने भी एतदर्थ तीज पर लौट आने का वादा किया। कई दिनों तक लड़ाई होने के बाद भी तीज के पहले बून्दी विजय सम्भव नहीं हुई तब सेना में उपस्थित मुख्य सरदारों से परामर्श करके चित्तौड़ लौट जाने की उस ने इच्छा व्यक्त की। इस पर सबने प्रार्थना की कि आप पधारते हैं तो हम किसको सलाम करेंगे अतएव आप अपनी पगड़ी वहीं रखकर पधारें ताकि उसे सलाम कर हम लोग युद्ध जारी रखेंगे। एक दिन बून्दी वालों ने उस पाग को लेने के लिए रात्रि में आक्रमण किया। मेवाड़ के सैनिक रात्रि में अचैतन्यवस्था में निद्रा में थे। अतएव उन्हें सफलता मिल गई। यह सारी घटना असत्य और आत्म श्लाघा से भरी बुई है। इसमें आगे चल कर यह भी लिखा है कि जब जब समाचार महाराणा को चित्तोड़ में मिले तो वह रणवास में रहने लगा और शर्मिन्दगी के कारण वहीं उसकी मृत्यु हो गई। लेकिन राणा कुम्भा की मृत्यु वास्तविकता में कुंभलगढ़ में उनके पुत्र उदा के हाथ से हुई थी और जो बूंदी विजय के कई वर्षों के बाद हुई थी। अतएव बूंदी की ख्यातों का वर्णन असत्य है और समसामयिक राणकपुर और कुंभलगढ़ के लेखों में वर्णित घटनाओं की तुलना में अमान्य है।

गागरोण विजय

गागरोण को वि० स० १४८० में होशंगशाह ने जीतकर गजनीखां को दे दिया था। इसने यहां की चाहरदीवारी को अधिक मजबूत बजाया। उसके पतन के बाद मोहम्मद खिजली ने यह दुर्ग बदरखां को दे दिया था। इसकी गुजरात के

---

४७. वी० वि० भाग १ पृ० ३३०।

ओझा—उ० इ० भाग १ पृ० २६४-६५।

सुल्तान के साथ हुए युद्ध मे मृत्यु हो गई और इस दुर्ग को दिलसदखां को दे दिया गया। महाराणा कुम्भा ने यह दुर्ग मालवा विजय से लौटते समय अचलदास खींची के पुत्र प्रहलानसिंह को जीतकर दे दिया[48] था। यह घटना वि० स० १४६४ के लगभग सम्पन्न[49] हुई किन्तु वह इसे अधिक समय तक अपने अधिकार में नहीं रख सका। मालवे के सुल्तान ने इस पर वि० स० १५०० में आक्रमण किया था। कुंभा ने दाहिर की अध्यक्षता मे सहायता के लिए सेना भी भेजी। इसकी केवल ७ दिन के बाद युद्ध में मृत्यु हो जाने से राजपूतों का होसला ठंडा पड़ गया और मालवे के सुल्तान ने गागरोण को हमेशा के[50] लिए जीत लिया। जफर-उल-वलिह् में दाहर की मृत्यु का तो उल्लेख है किन्तु प्रहलानसिंह की नहीं। इसका विस्तृत विवरण ५वें अध्याय में भी किया गया है। इस प्रकार गागरोण दुर्ग लगभग ६ वर्ष तक ही उसके राज्य में रहा प्रतीत होता है।

उत्तरी पूर्वी राजस्थान विजय

सपादलक्ष प्रदेश जिसमें अजमेर से लेकर नागौर डीडवाना आदि तक का भू-भाग था उस समय नागौर के सुल्तान के अधीन था मेवाड़ के राजाओं और इनके मध्य संघर्ष मोकल के समय से ही चलता आ रहा था। कुंभलगढ़ प्रशस्ति और मेवाड़ के अन्य लेखों के अनुसार महाराणा मोकल ने सपादलगक्ष प्रदेश विजित किया था[51]।

---

४८. सुरेन्द्रकुमार डे—मिडिवल मालवा पृ० १७६-१७८।
प्रत्यर्थिपार्थिवपराजयजन्महेतुर्वृंदावतीपुरमदीदहदेष वीरः।
तद्गर्गराटगिरिदुर्गमपि क्षणेन संक्षोभमापयदपारपराक्रमेण ॥ कु० प्र० २५६

४९. उपरोक्त टिप्पणी सं० ४४।

५०. मासिर—इ—मोहम्मदशाही पत्र सं० १३५-१३७। सुरेन्द्रकुमार डे की पुस्तक मिडिवल मालवा पृ० १७७ के फुटनोट ४ और ५ से उद्धृत।

५१. आलोड्याशु सपादलक्षमखिलं जालंधरान् कम्पयन्।
ढिल्लीं शंकितनायिकां व्यरचयन्नादाय शाकंभरीं ॥
पीरोजं समंहमदं शरशतैरापात्य यः प्रोल्लसत्।
कुंतव्रातनिपातदीर्णहृदयांस्तस्यावधीद्दंतिनः ॥२२१॥ कु० प्र०

लेकिन फारसी तवारीखों में महाराणा मोकल के हारने का उल्लेख है। इतना अवश्य सत्य है कि मोकल के अन्तिम दिनों में मेवाड़ वालों का उक्त प्रदेश में कोई अधिकार नहीं था। कुंभा ने इसीलिए सैनिक अभियान से इस प्रदेश को जीता था। "पदातीनां पादलक्षं सपादलक्षमावृतम्" पद होने से ज्ञात होता है कि कुंभा ने इस क्षेत्र में पैदल सैनिकों का अधिक प्रयोग किया था।

इस क्षेत्र में कुंभा ने कई बार सैनिक भेजे थे। प्रथम विजय वि० स० १४९६ के पूर्व ही हो चुकी थी क्योंकि इस विजय का उल्लेख राणकपुर के लेख में है। इस लेख में नागौर नराणा अजमेर खाटू आदि की विजय का भी उल्लेख हैं। सम्भवतः यहां के सुल्तान को हराकर सांभर अजमेर नराणा आदि भू भाग को तो अपने राज्य में मिला लिया और सुल्तान को कर[52] दाता बना दिया। शाकम्भरी विजय के साथ "चारुरमांगृहीत्वा" शब्द है। यहां चारुरमा का अर्थ या तो रमा की मूर्ति लाना हो सकता है अथवा किसी सुन्दर स्त्री को लाना का भी हो सकता है। नराणा में भी उसे भीषण युद्ध करना पड़ा था। कीर्तिस्तम्भ की प्रशस्ति में इसका उल्लेख है। नागौर विजय के वि० स० १४९६ के पूर्व होने का उल्लेख फारसी तवारीखों में नहीं है। दयाल-दास की ख्यात में वि० सं० १४९५ में राव रणमल द्वारा फिरोज और उसके भाई को मारना लिखा है जो गलत है क्योंकि फिरोज की मृत्यु वि० स० १५१३ के आसपास हुई थी। सम्भवतः उस समय राव रणमल ने इसे हराया हो। अजमेर विजय का उल्लेख वि० स० १४९६ के राणकपुर के लेख के अतिरिक्त अन्य किसी प्रशस्ति में नहीं

---

५२. सपादलक्षं करदं विधाय शाकम्भरीं चारु रमां गृहीत्वा। कौ० प्र० ५

× × ×

जित्वा नागपुरं बलादथहृता शाकम्भरी हेलया,
जित्वा वाजयदुर्गमेरुसहितं नागसरन्नाङ्गदम्।
स्वस्थानं पुनरापयंस्तदधिपं वृद्धत्वशेषीकृतं।
रामादप्यधिकं तवेति चरितं श्री कुंभकर्णः प्रभो॥३७॥

पाठ्यरत्नकोश का अलंकारोल्लास (कुंभावाली प्रतिका)

अमरकाव्य में "सपादलक्षरजतमुद्रामितकरप्रदाशाकम्भरीजग्राह" वर्णित है।

है। संगीतराज की प्रशस्ति में "अजयमेरु जयाजयविभवः" अवश्य बिरुद वर्णित है। इसे मोकल के राज्य के अन्तिम दिनों में रावरणमल ने मुसलमानों से जीता था। इस सेना का अध्यक्ष पंचोली खेमसी बना करके भेजा गया था और इसे खाटू नामक एक गांव का पट्टा भी दिया गया था। लेकिन यह वर्णन ठीक प्रतीत नहीं होता है। खाटू गांव को महाराणा कुंभा ने जीता था। अजमेर भी कुंभा ने वापस जीता था। अतएव अगर राव रणमल ने जीता भी होगा तो भी इसे वापस नागौर के सुल्तान ने हस्तगत कर लिया प्रतीत होता है। कुंभा ने अपनी सेना जिसमें मारवाड़ की राठौड़ सेना भी थी नागौर के सुल्तान के विरुद्ध भेजी थी। इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि कुंभा चित्तौड़ से अजमेर और वहां से मेडता या डेगाना होकर नागौर गया। वहां के सुल्तान को हरा कर उसे वापस वहीं स्थापित कर दिया और खाटू तक आगे बढ़ा। सम्भवतः इस समय वह और उत्तर पूर्व में बढ़ नहीं सका था और उसे कायमखानियों से लोहा लेना पड़ा। क्यामखां रासो के अनुसार[53] ताजखां कायमखानी ने नागौर के युद्ध में वहां के सुल्तान की सहायता की थी और इस युद्ध में वह घायल भी हो गया था। इसने खेतड़ी और अजमेर तक एवं शेखावाटी का बहुत सा भाग जीत लिया था। अतएव कुंभा खाटू से सांभर नरेना चाकसू आदि जीतता हुआ मेवाड़ लौट गया प्रतीत होता है क्योंकि राणकपुर के लेख में इनका ही उल्लेख है।

नागौर पर महाराणा कुम्भा की चार बार चढ़ाइयां हुई थी। दूसरी और तीसरी चढ़ाई हि० स० ८६० (१५१३ वि० और १४५६) ई० में हुई थी। नागोर के स्वामी फिरोजखां के मरने पर उसका बेटा शम्सखां नागौर का स्वामी हुआ। लेकिन उसके छोटे भाई मुजाहिदखां ने वहां से निकाल दिया। अतएव वह सहायतार्थ महाराणा के पास आया। राणा के वहां पहुंचते ही मुजाहिद खां भाग खड़ा हुआ और शम्सखां को वहां का अधिकारी मान लिया। लेकिन शम्सखां ने कुंभा के साथ किए गए इकरार का पालन नहीं किया एवं किले की एक[54] बुर्ज भी नहीं गिरायी अतएव इस पर भी राणा ने आक्रमण किया। इसका सविस्तार वर्णन ५वें अध्याय में दिया है। उस

---

५३. क्यामखां रासो पद ३६३ से ३६५।

५४. बेले—हि० गु० पृ० १४८। ब्रि०—फ० जि० ४ पृ० ४०–४१। तब० अक० भाग ३ पृ० २३०। शारदा—म० कु० पृ० ६७। ओझा—उ० इ० भाग १ पृ० ३०२।

समय वह नागौर जीतकर, खाटू गया और वहां से डीडवाना[55] पहुंचा जहां नमक के व्यापारियों से कर संग्रहित किया। यहाँ से सीकर के पास स्थित कांसली को जीता और वहां से खन्डेला जीत लिया। धुंखराद्रि नामक स्थान को भी जो तोरावाटी के पास होना चाहिये, कुंभा ने जीता। इस स्थान की सही स्थिति मालूम नहीं हो सकी है। कुंभा की प्रशस्तियों में जांगल प्रदेश को जीतना लिखा है जो इसी भू भाग की विजय परिचायक होना चाहिये। इसमें कुंभा का संघर्ष झंझनू के कायमखानी शम्सखां के साथ जो मोहम्मदखां का बेटा था संभावित है। इसके समय की लिखी वि० स० १५१६ आषाढ़ सुदि ५ की झुंझनू[57] स्थान की एक ग्रन्थ प्रशस्ति भी मिल गई हैं। छापर और द्रोणपुर के मोहिल, रूण और जांगलू के सांखला पहले से ही उसके अधीन थे और नैणसी के अनुसार कुंभा का उनके साथ वैवाहिक सम्बन्ध भी था। जांगलू में नापा सांखला शासक था, जो मारवाड़ की ख्यातों के अनुसार कई वर्ष तक कुंभा के दरबार में रहा था। अतएव इनके साथ उसका संघर्ष सम्भवतः नहीं हुआ था। आमेर से वह आगे नहीं बढ़ सका होगा क्योंकि गुजरात के[58] सुल्तान के नागौर पर आक्रमण हो जाने के कारण उसे वापिस नागौर के मार्ग से ही लौटना पड़ा प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त हि० स० ८६२ (वि० स० १५१५ ई० स० १३५८) में उसने एक बार और नागौर पर आक्रमण किया था जिसका उल्लेख ५वें अध्याय में मैं।

---

५५. कुंभकर्णनृपतिः करप्रदं डिडुआणलवणकरं व्यधात्॥ की० प्र० श्लोक ६

५६. जांगलस्थलमगाहताहवे कुंभकर्णधरणीपुरन्दरः॥२३॥
—समुद्वासितवान् कासिलीं सहसाजयत्।
यस्य दुन्दुभिनिध्वनो धुंखराद्रि जयोद्भवः॥२४॥ की० प्र०।
कांसिली के सम्बन्ध में मुझे डा० मनोहरजी ने जानकारी दी है अतएव मैं उनका कृतज्ञ हूं।

५७. "स्वस्ति सं० १५१६ आषाढ़ सुदि ५ भोमवासरे झूंझण शुभस्थाने शाकी भूपति प्रजापातक सममखांन विजयराज्ये..."
(त्रैलोक्य दीपक ह० ग्रं० की प्रशस्ति)
क्यामखां रासो में "महमुदखां सुत समसखां तबहि झूंझणू माहि" (४३४) वर्णित है।

५८. ब्रि० फ० जिल्द ४ पृ० ४०–४१। बेले० हि० गु० पृ० १४८–१४६। ओझा० उ० इ० भाग १ पृ० ३०२-२। शारदा—म० कु० पृ० ६७–६८

सिरोही और आबू विजय

जैसा कि ऊपर उल्लेखित किया जा चुका है, सिरोही के देवड़ा, मोकल के समय में मेवाड़ के विरोधी हो गये थे। अतएव हाडोती के साथ साथ कुंभा ने इस क्षेत्र को भी जीतने में प्राथमिकता दी थी। राव शिवभाण ने पुरानी सिरोही बसाकर इसे सैनिक महत्व का स्थान बनाने का प्रयास किया था। इसका पुत्र सहसमल्ल (वि० स० १४८१–१५०८) हुआ था। यह बड़ा प्रतिभा[59] सम्पन्न था। इसने वर्तमान सिरोही नगर की स्थापना वि० स० १४८२ में की थी। मेवाड़ और नागौर के राजाओं के आपसी युद्ध का लाभ उठाकर उसने पिण्डवाड़ा से लगते हुए मेवाड़ के कई गांव हस्तगत कर लिए जो गोगून्दा और कोटड़ा तहसीलों के ग्राम होंगे।

महाराणा कुंभा ने वि० स० १४९४ के पूर्व ही पिंडवाड़ा के आसपास के गांवों पर अधिकार कर लिया था। नान्दिया से उसका एक[60] ताम्रपत्र भी मिला है जो वि० स० १४९४ का है। इससे भी इसकी पुष्टि होती है। सिरोही पर उसका अधिकार हुआ अथवा नहीं इसका कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता है। रसिक प्रिया की मेवाड़ी टीका की प्रशस्ति में "गाकर्ण पार्वत सिरोही न। विध्वंसणहार" उल्लेखित है। किन्तु इसकी पुष्टि अन्य प्रशस्तियों से नहीं होतीहै। कीर्तिस्तम्भ प्रशस्ति में "विग्राह्य गोकर्णगिरिं नरेन्द्रः" पाठ है वह सम्भवतः आबू के शासक के लिए प्रयुक्त हुआ है। पिंडवाड़ा के आगे बसन्तगढ़, बासा, (वायसपुर) हमीरपुर आदि को भी इसी समय जीता[61] था। हमीरगढ़ के राजा की कन्या को बलात् वह ले आया था। इस प्रकार सिरोही राज्य के पूर्वी भाग को उसने हस्तगत कर गुजरात के राजा के विरुद्ध गोडवाड़ की रक्षा के लिए महत्वपूर्ण कार्य कर लिया।

---

५९. गेहलोत—राजपुताने का इतिहास भाग २ पृ० ३७। ओझा—सिरोही राज्य का इतिहास पृ० १९४। सीताराम कृत—हिस्ट्री आफ सिरोही स्टेट पृ० १९४।

६०. "स्वस्तिराणा श्रीकुंभाआदेशता"......संवत् १४९४ वर्षे आषाढ़ वदि... [ओझा०—उ० इ० भाग १ पृ० २८४ फुटनोट सं० १]

६१. कु० प्र० को श्लोक स० २५०। की० प्र० के श्लोक स० ८ और ९। एकलिंग माहात्म्य का श्लोक स० १५७।

कुंभा ने आबू विजय कब की थी ? इस सम्बन्ध में वहां से प्राप्त शिलालेखों से पर्याप्त सहायता मिल सकती है। वहां एक देवडों का स्थानीय राज्य था। इनकी वंशावली विभिन्न शिलालेखों से इस प्रकार स्थिर की जा सकती है :—[६२]

बीसा देवडा
|
कुम्भा
|
चूंडा (१४८६, १४९४, १४९७)
|
डूंगरसिंह (१५२५)

सार्वजनिक सम्पर्क कार्यालय जयपुर में मधुआजी के वि० स० १४९४ के एक ताम्रपत्र का चित्र है। यह आबू समिति प्रतिवेदन के सम्बन्ध में लिया गया था। इसमें वर्णित हैं कि महाराणा[६३] कुम्भा ने आबू के ऋषिकेश आश्रम से आते समय वहां नैवेद्य की व्यवस्था के लिए कुछ दान दिया था। यह स्थान किले के नीचे शांति आश्रम से दो मील दूर है एवं आबू की तलहटी में है। इसे बहुत ही प्राचीन माना जाता है। यहां एक काले पत्थरों का मंदिर और एक मठ भी बना हुआ है। ताम्रपत्र में वर्णित "टबरीख" गांव सम्भवत- ऊबरनी गांव है जो ऋषिकेश के पास है। इस ताम्रपत्र में भाले का चिह्न आदि नहीं होने से शंकास्पद है। अगर यह ताम्रपत्र सही है तो ऐसा प्रतीत होता है कि कुंभा ने उक्त सम्वत के आसपास आबू तक आक्रमण किया या किन्तु इस दुर्ग को वह जीत नहीं सका था। इस की पुष्टि राणकपुर के १४९६ वि० के लेख से होती हैं क्योंकि उसमें आबू विजय का उल्लेख नहीं है। इसके साथ ही साथ दुर्ग पर

---

६२. "........ ...श्रीअर्बुदाधिपतिदेवड़ाश्रीवीसपुत्र कुंभापुत्रपवित्रश्रीराजधरसायर श्रीदेवड़ा चूंडाराजपुत्रराजधर [डूंगरसिंह].. [अर्बुद जैन लेख संदोह ले० स० ४०७]

६३. ॐ स्वस्ति श्री संवत् १४९४ वा वरखे भाद्रपदसुदी माष्टम्या [अष्टम्यां] टबरीष स्थाने...श्री राणा कुंभकर (ण) अर्बुदाचलमढतलहीदंदवादव(?) श्री रीषी केसआश्रम्येणस्य पायता भादवल करावी...

[अप्रकाशित ताम्रपत्र]

वि० स० १४६४ और १४६७ के देवडों के लेख [64] भी मौजूद है। इनमें स्पष्टतः देवडा चूण्डा को वहां का शासक वर्णित किया है। तलहटी और अर्बुदाचल के समीप स्थित भू भाग १४६७ तक इन देवडाओं के अधिकार में ही रहा प्रतीत होता है। कुंभा का सबसे पहला लेख वि० स० १५०६ का है अतएव उसका आबू पर अधिकार वि० स० १५०० के लगभग ही होना चाहिये।

इस बार कुम्भा ने आबू विजय के साथ साथ गुजरात की सीमा पर बीसलनगर तक आक्रमण किया प्रतीत होता है और कोटड़ा तहसील का भू भाग जो मेवाड़ से निकल गया था वापस हस्तगत कर लिया था।

सिरोही राज्य की ख्यातों के अनुसार उसने आबू को धोखे से विजित किया था जो गलत प्रतीत होता है क्योंकि यह भीषण युद्ध के पश्चात् प्राप्त हुआ था। कीर्तिस्तंभ की प्रशस्ति में लिखा है कि कुंभा ने शीघ्रगामी घोड़ों को भेजकर किले को अपने अधिकार में लिया और वहां सैनिक भेजकर तलवार के बल से आबू विजय किया। वीरविनोद में दिये गये वृतान्त के अनुसार महाराणा ने डोडिया नरसिंह को जो शत्रुशाल का बेटा था सेना लेकर भेजा [65]। कुंभा द्वारा आबू विजय करने का बड़ा महत्व है। गोडवाड़ मेवाड़ में पहले ही से था इसकी रक्षा करने के लिए बसतगढ़ और आबू को मेवाड़ में शामिल करना आवश्यक था। इसकी रक्षा करने के लिए राजा ने बड़ा प्रयत्न किया था। फारसी तवारीखों में उल्लेख है कि सिरोही के देवड़ा राजा ने आबू वापस प्राप्त करने के लिए गुजरात के सुल्तान से बड़ी प्रार्थना की थी। मिराते सिकन्दरी के अनुसार जब हि० स० ८६० (१४५६ एडी) में सुल्तान कुतुबुद्दीन मेवाड़ पर आक्रमण करने आ रहा था तब आबू प्राप्ति के लिए देवड़ा राजा ने सुल्तान से सहायता की प्रार्थना की [66]। सुल्तान ने जब मलिक शबान इमादुल

---

६४. "स्वस्ति संवत् १४६४ वर्षे वैशाष सुदि १३ गुरौ मूलपंत्रे-श्रीकरणसंघवी गोव्यंद प्रशस्ति लिषावी जू (ऊ) बरणी स्थाने राज श्री राजधर देवड़ा चूंडा प्रासाद नो अक्षर विधि... [दिगम्बर जैन मंदिर का लेख]
"स्वस्ति संवत् १४६७ वर्षे आषाढ़ सुदि १३ दिने राउति श्री राजधरि पीतलहरदेहरि...... [पितलहर मंदिर का एक लेख]

६५. वी० वि० भाग १ पृ० ३३२। ओझा० उ० इ० भाग १ पृ० ३२१—२२। शारदा म० कु० पृ० ९७—९८।

६६. बेले० हि० गु० पृ० १४९ इसमें राजा का नाम खातिया दिया हुआ है तबकात–इ–अकबरी में राजा का नाम गीता देवड़ा दिया हुआ है। ये नाम या तो चूंडा के लिये या सिरोही के राजा लाखा के लिये प्रयुक्त होने चाहिये।

मुल्क को इस कार्य के लिए नियुक्त किया जिसकी बुरी तरह से हार हुई। तारीख-इ-अल्फी के अनुसार सुल्तान ने जब मलिक शबान की हार का वर्णन सुना तो उसे वापस बुला लिया। तबकात-इ-अकबरी के अनुसार सुल्तान ने मलिक शबान की हार के बावजूद देवड़ा राजा को शीघ्र आबू दिलाने का आश्वासन[67] दिया। मिराते सिकन्दरी में पुनः हि० सं० ८६१ (१४५७ एडी) में आबू जीतकर देवड़ा राजा को दे देने का उल्लेख है जो गलत प्रतीत होता है।

आबू से प्राप्त कुंभा के शिलालेखों का कुछ संक्षिप्त परिचय दे देना आवश्यक है जिनसे सारी स्थिति स्पष्ट हो जायगी। सबसे पहला लेख[68] वि० सं० १५०६ का है। इस लेख के अनुसार उसने आबू पर लिये जाने वाले विभिन्न करों को जैन यात्रियों के लिये क्षमा किया था। वि० सं० १५०९ में उसने अचलगढ़ दुर्ग का निर्माण[69] कराया था। वि० सं० १५१५ के लेख खरतरगच्छ वसही में लगे हुये हैं। इस लेख में स्पष्टतः महाराणा कुंभा का आबू दुर्ग पर अधिकार होना[70] लिखा है। मैं इनमें १५१५ वि० के लेखों को महत्व देता हूं क्योंकि इनसे फारसी तवारीखों के विरुद्ध यह सिद्ध हो जाता हैं कि उसका राज्य वहां विद्यमान था। इसके बाद वि० सं० १५१८ का अचलगढ़ स्थित चतुर्मुख विहार की एक मूर्ति का लेख है। ऐसा प्रतीत होता हैं कि यह मूर्ति प्रारम्भ में आबू पर[71] ही विराजमान थी। यहां से कुंभलगढ़ ले जायी गई और वापस तपागच्छ संघ[72] द्वारा (संभवतः १५६६ के आस-पास) वहां ले आयी गई थी। अतएव यह लेख कुंभलगढ़ दुर्ग से सम्बन्धित है।

---

६७. तब० अक० भाग ३ (अ०) पृ० २३१।

६८. "संवत् १५०६ वर्षे आषाढ सुं (सु) दि २, महाराणा श्री कूं (कु) भकरण विजि (जय राज्ये श्री अर्बुदाचले.." (आबू का सुरही लेख)

६९. की० प्र० श्लोक १८७। ओझा० उ० इ० भाग १ पृ० ३१२।

७०. ..."संवत् १५१५ वर्षे आषाढ़ वदि १ शुक्रे राजाधिराज श्री कुंभकर्ण विजयिराज्ये " (खरतरगच्छ वसही में मूल नायक प्रतिमा का लेख)

७१. "संवत् १५१८ वर्षेवैशाखवदि ४ दिने मेदपाटे श्री कुंभलमेरु महादुर्गे राजाधिराज श्री कुंभकर्ण विजयिराज्ये तपापक्षीय श्री संघकारिते श्री अर्बुदानीत पित्तलमय प्रौढ श्री आदिनाथ मूलनायक प्रतिमालंकृते..."

[अचलगढ़ स्थित चतुर्मुख विहार की एक प्रतिमा का लेख]

७२. उक्त मंदिर का निर्माण कार्य वि० स० १५६६ में राव जगमाल के शासन काल में पूर्ण हुआ था ऐसा वहां से प्राप्त मूर्तियों के लेखों से प्रकट होता है।

आबू पर उसका अधिकार उसके जीवनकाल में बराबर बना रहा प्रतीत होता है। उसके मरने के बाद ही डूंगरसिंह देवड़ा ने वहां[73] अधिकार कर लिया था। उसका सबसे पहला लेख वि० सं० १५२५ का है। इस लेख से स्पष्ट है कि वह गुजरात के राजा मोहम्मद बेगड़ा का सामन्त था।

मालवे के सुल्तान के साथ युद्ध

होशंगशाह एक कुशल शासक था किन्तु उसके उत्तराधिकारियों में बड़ा संघर्ष हुआ। उस्मानखां और गजनीखां दो प्रमुख उत्तराधिकारी थे। सुल्तान ने गजनीखां को उत्तराधिकारी घोषित कर दिया। इस समय महमूदखां भी शक्तिशाली होता जा रहा था। इस प्रकार इन शाहजादों का आपसी झगड़ा साम्राज्य के विनाश कारण बन गया। कुछ झगड़ों के बाद मोहम्मद शाह गद्दी पर बैठा। मुगीस का बेटा मोहम्मद खिलजी इसको मार कर स्वयं राज्य प्राप्त करना चाहता था। एक बार उसका षड़यन्त्र विफल रहा। उसे सुल्तान के सम्मुख प्रस्तुत किया गया। सुल्तान उस समय "हरम" में था। राजभक्ति की शपथ खाने पर उसे छोड़ दिया। थोड़े दिनों में शराब में जहर मिलाकर पिलाने से मोहम्मद शाह गौरी की मृत्यु हो गई। उसके पुत्र मसूदखां को गद्दी पर बिठाया। लेकिन उसे जब षड़यन्त्र की जानकारी मिली तो वह प्राण बचाकर गुजरात भागा। होशंगशाह पुत्र ऊमरखां मेवाड़ के राणा कुम्भा के पास सहायतार्थ आया। मोहम्मद खिलजी सोमवार २९ सुव्वाल हि. स० ८३९ या १४/५/१४२६ में राजगद्दी पर बैठ गया।[75]

---

७३. सं० १५२५ वर्षे फा० शु० ७ शनिरोह्ण्यां अर्बुदगिरौ राजधर सायर देवड़ा श्री डूंगरसिंह राज्ये...पितलहर मंदिर की एक मूर्ति का लेख

७४. मेरा लेख "सारंगपुर का युद्ध" शोधपत्रिका वर्ष १६ अंक १ पृ० १ से १० दृष्टव्य है।

७५. समसामयिक कृति "मासिर-इ-मोहम्मदशाही पत्र २७६ (ब) में यह तिथि दी हुई है। किन्तु राईट महोदय को हि० सं० ८४० का मोहम्मद शाह गोरी का एक सिक्का मिला है। अतएव वे उसे ८४० हि० के पश्चात् राज्यासीन होना बतलाते हैं। (राइट—केटलाग आफ कोइन्स आफ कलकत्ता म्युजियम भाग दो पृ० २१८-१९ एवं २४७) । यह सिक्का निसंदेह पाश्चात्कालीन है। आर० सी० मजूमदार—देहली सुल्तानेत पृ० २३९ फुटनोट ६। सुरेन्द्र कुमार डे—मिडिवल मालवा पृ० ९३

कुम्भा और गुजरात के सुल्तान मध्य सन्धि

कुंभा और मालवे के सुल्तान दोनों नवयुवक थे एवं महत्वकांक्षी थे। कुंभा ने ऊमर खां को सहायता [76] देने का पूरा वादा किया और गुजरात के सुल्तान ने मसूदखां को। दिल्ली तत्कालीन शासक मोहम्मद शाह सैय्यद और बलवन भी यह नहीं चाहते थे कि मालवे में कोई बड़ा परिवर्तन हो जाय। घरेलु झगड़ों से दिल्ली सल्तनत खोखला हो चुकी थी। मेवातियों की सहानुभूति खिलजी वशजों के प्रति होने से बलवन सशंक हो गया था। [77]

कुंभा हाल ही में राजगद्दी पर बैठा था। वह नवयुवक था। मालवे के आपसी झगड़ों में पड़कर राज्य विस्तार का अच्छा अवसर नहीं खोना चाहता था। अतएव उसने ऊमर खां को सहायता का आश्वासन दे दिया।

मसूदखां भागकर गुजरात के सुल्तान के पास गया। जिसने पूर्ण रूप से उसको पुनर्स्थापित करने का वचन दिया। इस प्रकार दिल्ली और गुजरात के सुल्तान और महाराणा कुम्भा तीनों ही मालवे में पुनः गोरी वंशियों को संस्थापित कराना चाहते थे। इसकी पुष्टि वि० स० १४९६ के राणकपुर के लेख से होती है जिसमें लिखा है कि कुम्भा को दिल्ली और गुजरात के सुल्तानों ने "हिन्दू सरत्राण" की [78] उपाधि दी थी। हिन्दू सरत्राण से कभी भी अनुमानित नहीं किया जा सकता कि कुम्भा इनके

---

७६. ब्रि० फ० जिल्द चार पृ० २०४-२०६। यद्यपि फरिश्ता का इसमें चित्तौड़ से चन्देरी जाते समय ऊमर खां की सेना का वर्णन है राणा का वर्णन नहीं है लेकिन कुंभलगढ़ के आक्रमण (हि० सं० ८४५) में वह स्पष्टतः लिखता है कि राणा ने ऊमर खां को सहायता दी थी अतएव उसका बदला लेना आवश्यक था। डे—मिडिवल मालवा पृ० १०३। वी० वि० भाग १ पृ० ३२७।

७७. तब० अक० भाग ३ पृ० ३१५—१६। मेवातियों की सहानुभूति होने से हि० सं० ८४५ में मोहम्मद खिलजी ने दिल्ली पर आक्रमण किया था जहां से हारकर लौटा था। (तब० अक० भाग १ पृ० ३०७) डे—मिडिवल मालवा पृ०...

७८. "प्रबलपराक्रमाक्रांतढिल्लीमंडलगुर्जरत्रासुरत्राणस्यदत्तातपत्रप्रथितहिन्दूसुरत्राण-विरुदस्य" (राणकपुर का लेख)

आधीन था। गुजरात के सुल्तान और महाराणा कुम्भा ने साथ साथ मालवे में चढ़ाई की थी। फारसी तवारीखों में सारंगपुर में कुम्भा के विजय करने का उल्लेख नहीं है किन्तु १४९६ के राणकपुर के लेख में उल्लेख होने से इसकी पुष्टि होती है। अब प्रश्न होता है कि क्या कुम्भा और गुजरात के सुल्तान ने साथ साथ ही चढ़ाई की थी अथवा अलग अलग। सम्भव है कि दोनों अलग अलग लड़े थे। शाहजादा ऊमर खां पहले गुजरात के सुल्तान के पास गया एवं इसके पश्चात् महाराणा कुम्भा के पास आया। इसके पश्चात् यह एक बड़ी सेना लेकर मालवे में प्रविष्ट हुआ और चन्देरी तक बढ़ आया जहां हाजी कालु ने उसकी बड़ी सहायता की। इस प्रकार प्रतीत होता है कि गुजरात के सुल्तान ने ही कुम्भा से पूर्व मालवे में सम्भवतः प्रवेश कर लिया था।[79]

युद्ध का वर्णन

मिरात-इ-सिकन्दरी के अनुसार गुजरात[80] के सुल्तान ने हि० स० ८४१ (१४३७) ई० में मालवा पर चढ़ाई की। उसने अपनी सेना रमजान माह (फरवरी १० मार्च) में रवाना की थी। सर्वप्रथम जयसिंहपुर पर आक्रमण किया। मासिर इ-- मोहम्मद शाही में जनकपुर नामक स्थान का उल्लेख है जहां ठहर कर सुल्तान ने आक्रमण की सारी व्यवस्था की थी। इसने शीघ्र ने मांडू दुर्ग को घेर लिया। मालवे के सुल्तान की स्थिति बड़ी दयनीय हो गई। मासिर--इ--मोहम्मद शाही में यद्यपि यह लिखा है कि किले से बाहर जाने में उसे षड़यन्त्र की आशंका थी अतएव वह बाहर नहीं जा सका किन्तु वास्तविकता इससे भिन्न प्रतीत होती है। दुर्ग में कई विद्रोही[82]

---

७९. ब्रि० फ० जिल्द ४ पृ० २०४--२०६। तब० अक० भाग ३ पृ० ३१७। डे--मिडिवल मालवा पृ० १०३।

८०. बेले--हि० गु० पृ० १२२--१२४। सतीश सी मिश्रा--राइज आफ मुस्लिम पावर इन गुजरात पृ०।

८१. मासिर--इ--मोहम्मदशाही पत्र सं० ७२ (अ) मिडिवल मालवा पृ० १०० के फुटनोट सं० ४ से उद्घृत। यह स्थान कुंभलगढ़ प्रशस्ति में उल्लेखित जनकाचल से भिन्न है।

८२. सुरेन्द्र कुमार डे--मिडिबल मालवा पृ० १०१।

सामंतों का होना शाहीब हकीम ने भी माना है किन्तु मालवे का सुल्तान निराश नहीं हुआ। वह प्रयत्न करता रहा। इसी बीच उसे ऊमर खां और महाराणा कुंभा की सेना के मालवा में आने और चन्देरी जीतने का समाचार मालुम हुआ। उसको इसका बहुत ही दुःख हुआ। गुजरात के सुल्तान ने अपने शाहजादे को ५००० सवारों सहित सारंगपुर की तरफ भेजा।

महाराणा कुम्भा का चन्देरी जाने का मार्ग कौन सा हो सकता है? उस समय मांडू उज्जैन सारंगपुर के आसपास युद्ध चल रहे थे अतएव इन युद्धों से बचने के लिए वह सम्भवतः रणथम्भोर नरवर के मार्ग से चन्देरी आया होगा। मासिर–इ–मोहम्मद शाही में स्पष्टतः नरवर पर महाराणा कुम्भा और ग्वालियर के राजा [८३] डूंगरसिंह के आक्रमण करने का उल्लेख है। वहां उस समय बहारखां मुकेती था। चन्देरी में कुम्भा की सेना का बड़ा स्वागत किया गया। वहां के शासक मलिक इल उमरा हाजी की हत्या करा दी गई और उमरखां को वहां का शासक मान लिया। कुम्भलगढ़ प्रशस्तियों में चम्पावती जीतने का वर्णन मिलता है। अधिकांशतः चम्पावती से चाटसू अर्थ लेते हैं और समसामयिक कई प्रशस्तियों में यह प्रयुक्त भी हो रहा है किन्तु यह शब्द [८४] चन्देरी के लिए भी ले सकते हैं। चन्देरी से वह भेलसा गया। जहां से आजम हुमायूं मांडू के लिए रवाना हो चुका था अतएव इसे जीतने में अधिक श्रम नहीं करना पड़ा। वहां से सिहोर तक का भाग उसने अधिकृत [८५] कर लिया। इसी समय फारसी तवारीखों से पता चलता है कि गुजरात के सुल्तान के कुछ विद्रोही सामन्तों को मालवा के सुल्तान ने अपनी ओर मिला लिया था। इनके नाम समसामयिक लेखक शिहाब

---

८३. मासिर–इ–मोहम्मद शाही पत्र ६३ (ब)। मिडिवल मालवा पृ० ४१७ फुटनोट २ से उद्धृत। ऐसा प्रतीत होता है कि ग्वालियर के राजा डूंगरसी ने इस पर आक्रमण बाद में किया था और इस पर उसका अधिकार भी कुछ समय तक रहा था।

८४. मेरा लेख "सारंगपुर का युद्ध"—शोधपत्रिका वर्ष १६ अंक १ पृ० ६ फुटनोट २२।

८५. कु० प्र० श्लोक २६०। डा० दशरथ शर्मा का राजस्थान भारती के कुंभा विशेषांक (मार्च १९६३) में प्रकाशित लेख।

हकीम के अनुसार मलिक उस शरक, अहमद मोहम्मद सिलाह मलिक सैय्यद अहमद, मलिक कासिन आदि हैं। इनके आ जाने से उसे गुजरात की सेना की गतिविधि मालुम[८६] हो गई। तारीख–इ–अल्फी के अनुसार सुल्तान जम कर युद्ध करने की स्थिति में नहीं था। उसने अपने आपको किले में बन्द कर रक्खा था। एवं हमेशा थोड़ी थोड़ी सेना भेज कर आक्रमणकारियों के विरुद्ध गुरिल्ला युद्ध कर रहा था। एक दिन उसने रात्रि को आक्रमण करने की योजना भी बनाई किन्तु केसर खां द्वारा इसकी गुप्त सूचना गुजरात के सुल्तान को दे देने के कारण सफलता नहीं मिली।[८७]

सुल्तान मोहम्मद खिलजी इस भयावह स्थिति से बिल्कुल नहीं घबराया और सारंगपुर के आसपास गुजराती सेना और ऊमरखां और राणा की सेना को न मिलने देने की योजना बनाई। इस कार्य के लिए उसने ताजखां और मन्सूरखाँ को नियुक्त किया। इस समय गुजरात का सुल्तान मांडू से उज्जैन आ चुका था सब से पहले मालवा की सेना का मुकाबला कैंथल के स्थान पर हुआ जिसमें गुजराती सेना-नायक मलिक हाजी की हार हो गई और वह भाग कर सीधा अहमदशाह के पास उज्जैन गया और उसको सारे समाचार दिए। उसने तत्काल अपने शाहजादा को सारंगपुर से उज्जैन बुला लिया। सारंगपुर को खाली देखकर मलिक ईशाक कुतबिन मुल्क ने जो वहां का मुकेती था और गुजराती सेना से कुछ समय के लिए मिल गया था, मालवा के सुल्तान को सारी सूचना भेजी। यह सूचना निसंदेह महत्वपूर्ण थी और तत्काल मालवे के सुल्तान ने सारगपुर लेकर मलिक ईशाक को वापस राजभक्ति की शपथ दिलाई[८८]। इसी समय ई० सं० ८४२ का शुभारम्भ हुआ। इससे मालवे के सुल्तान की कठिनाइयां थी दूर होना शुरु होगई।

---

८६. तब० अक० भाग ३ पृ० ३१६। डे—मिडिवल मालवा पृ० १०२। मिश्रा राइज आफ मुस्लिम पावर इन गुजरात पृ० १८७-१८८)

८७. बेले—हि० गु० पृ० १२२-२३। डे—मिडिवल मालवा पृ० १०२-३। तब० अक० भाग ३ पृ० ३१७। मिश्रा—राइज आफ मुस्लिम पावर इन गुजरात पृ० १८८।

८८. तब० अक० भाग ३ पृ० ३१७-१८। बेले—हि० गु० पृ० १२३। डे—मिडिवल मालवा पृ० १०४। मिश्रा—राइज आफ मुस्लिय पावर इन गुजरात पृ० १८८।

ऊमरखां ने गुजरात के सुल्तान की सेना कूच की सूचना के अनुसार अपनी सेना भी सारंगपुर की तरफ रवाना करदी। शिहाब हकीम के अनुसार[89] यह सेना भेलसा के मार्ग से सारंगपुर की तरफ आई थी। गुजरात का सुल्तान भी सारंगपुर की तरफ बढ़ रहा था। मोहम्मद खिलजी ने तेजी से बढ़ते हुये ऊमरखां की सेना का पहले सामना किया और इसके कुछ सैनिकों को बन्दी बना लिया जिनसे उसकी सेना की सारी गतिविधि मालुम हो गई। सुबह के समय उसने अपनी सेना के चार भाग करके अचानक ऊमरखां पर आक्रमण किया। उसने गुरिल्ला आक्रमण की योजना बनाई थी इसलिए अपने सैनिकों को अलग अलग स्थानों पर नियुक्त कर दिया था। इससे उसको बहुत ही नुकसान हुआ एवं वह अपनी सैना की सही स्थिति नहीं जान सका। ऊमरखां को बाद में मालुम हुआ कि यह उसकी बड़ी गलती थी कि उसने अपनी सेना को एक स्थान पर नहीं रखा लेकिन फिर भी बहादुर व्यक्ति था। उसने यही सोचा कि युद्ध में वीर गति पाना लाख बार अच्छा है। वह नहीं चाहता था कि उसके पिता के बैरी के हाथ[90] बन्दी बने। लेकिन वह बन्दी बना लिया गया और उसको मोत के घाट उतार दिया गया। अगर उमरखां चन्देरी ही बना रहता तो युद्ध का परिणाम कुछ और ही हो सकता था।

इस प्रकार यह युद्ध एक निर्णायिक युद्ध साबित हुआ। गुजरात की सेना में प्लेग हो जाने से वह अपने प्रदेश में लौटने को बाध्य हो गई। ऊमरखां के मारे जाने के कारण मोहम्मद खिलजी का प्रतिद्वंदी समाप्त हो गया।

कुंभलगढ़ प्रशस्ति और मेवाड़ के अन्य लेखों में सारंगपुर में मालवे के सुल्तान मोहम्मद खिलजी को हराने का श्रेय कुंभा को दिया हुआ है। फारसी तवारीखें इस सम्बन्ध में मौन हैं। उक्त प्रशस्ति में स्पष्टतः उल्लेखित है कि महाराणा का मुकाबला मोहम्मद खिलजी स्वयं ने किया था अतएव यह परिस्थिति निसंदेह ऊमरखां के हारने के बाद की हो सकती है। कुंभा ने सारंगपुर पर अधिकार किया और इसे

---

८९. डे—मिडिवल मालवा पृ० १०५। अल किर मानी की भी यहीं मान्यता है। मिश्रा—राहज आफ मुस्लिम पावर इन गुजरात पृ० १८९। उसने ऊमरखां की सैनी की विजयों का अधिक विस्तार से वर्णन किया है।

९०. तब० अक० भाग ३ पृ० ३११। डे—मिडिवल मालवा पृ० १०६।

बाड़वाग्नि के समान जला दिया[९१]। यद्यपि श्री डे ने कुंभा की सारंगपुर विजय को स्वीकार नहीं किया है किन्तु समसामयिक मेवाड़ के शिलालेखो और ग्रंथप्रशस्तियों में इस घटना को बड़े महत्व के साथ वर्णित किया है अतएव इसमें संदेह का कोई प्रश्न ही नहीं है[९२]।

मेवाड़ की ख्यातों में यह युद्ध महपा पंवार के लिये जो मोकल का घातक[९३] था होना वर्णित है जिसकी पुष्टि नहीं होती है। कीर्तिस्तंभ प्रशस्ति में "आनीय मांडव्यपुराद्धनुमान् संस्थापितः कुंभलनेरुदुर्गे" वर्णित है। सामान्यतः यहां मांडवपुर का अर्थ मंडोर से ही लेते हैं किन्तु इसको मांडू से भी ले सकते हैं। समसामयिक कान्हडदे प्रबन्ध में "मंह लीधा मालव चन्देरी माण्डव सारंगपुर" वर्णित है। यहां मांडू के लिये माण्डव शब्द भी आया है। आबू के कई लेखों में मांडू के लिए माण्डव्य शब्द प्रयुक्त है किन्तु उपरोक्त घटनाचक्र से स्पष्ट है कि कुंभा का कार्यक्षेत्र पूर्वी मालवा तक ही सीमित था अतएव मांडू तक जाने का प्रश्न ही पैदा नहीं होता। मेवाड़ में मांडू के सुल्तान[९४] मोहम्मद

---

९१. कु० प्र० श्लोक सं० २६८-२७०। "इतीव सारगपुरं विलोड्य, महंमदं त्याजितवान् महंमदं" उल्लेखनीय है। ओझा—उ० इ० भाग १ पृ० २८६। शारदा—म० कु० पृ० ५०।

९२. कु० प्र० श्लोक सं० २६८-२७०। राणकपुर के लेख (१४९६ वि०) में स्पष्टतः—"विषमतमाभंगसारंगपुर...लीलामात्रग्रहणप्रमाणितजितकाशित्वाभिमानस्य" लिखा है। यह जैन लेख है। एक० माहात्म्य के श्लोक सं० ५६ में "खिलचि महमूदं" को जीतना लिखा है जो भी उल्लेखनीय है। दक्षिण द्वार की प्रशस्ति में "माद्यन्मालवनाथमूर्ध्नि चरणंदत्वा रणे वीरहत् श्री सारंगपुरं स पौरनिकरं कुंभोधराधीश्वरः" वर्णित है।

९३. वी० वि० भाग १ पृ० ३२०। ओझा—उ० इ० पृ० २८५-२८६। शारदा—म० कु० पृ० ४९।

९४. वी० वि० भाग १ पृ० ३२०। ओझा—उ० इ० पृ० २८६। शारदा—म० कु० पृ० ५२। आ० स० रि० भाग २३ पृ० ११२ में पद्मिनी के महल के पास स्थित स्थान को मालव के सुल्तान का बंदीगृह वर्णित किया है। टाड—एनल्स एण्ड एंटी० (हिन्दी अनुवाद) पृ० १९२-९३। डे–मिडिवल मालवा का ऐपेन्डिक्स बी।

खिलजी को बन्दी बनाकर लाने का भी उल्लेख मिलता है। यह घटना असत्य प्रतीत होता है। कुंभा ने सारंगपुर में मोहम्मद खिलजी को हराया अवश्य था किन्तु संभवतः बन्दी नहीं बना सका। कीर्तिस्तंभ के निर्माण सम्बन्धी एक भ्रांति यह प्रचलित है कि इसे कुंभा ने मालवा विजय के उपलक्ष में बनाया था किन्तु यह भी गलत है[95]। कीर्तिस्तंभ के निर्माण का मालवा विजय से कोई सम्बन्ध नहीं है। यह स्तम्भ कुंभा ने अपने उपास्यदेव विष्णु के निमित ही बनाया प्रतीत होता है[96]।

सारंगपुर से लौटते समय कुंभा गागरोण होकर मन्दसौर, जानागढ़ और नीमच आदि होता हुआ चित्तौड़ लौटा। जनकाचल को जीतने का उल्लेख कुंभलगढ़ प्रशस्ति में है ऐसा प्रतीत होता है कि मोहम्मद खिलजी ने कांथल की सुरक्षा के हेतु कुंभा के गागरोण की तरफ जाने के बाद उचित व्यवस्था की थी। प्रतापगढ़ से १० मील दूर स्थित जानागढ़[97] के पर्वतीय दुर्ग में उसने अपनी सेना एकत्रित की जहां कुंभा का भीषण संघर्ष हुआ और वहां के मुकेती की इसमें मृत्यु होगई। मन्दसौर से गागरोण तक कांथल का सारा भू-भाग कुंभा के अधिकार में आगया। इसको फारसी लेखक भी स्वीकार करते हैं। फरिश्ता उत्तरी मालवे तक कुंभा का राज्य होना

---

९५. राजपुताना म्युजियम रिपोर्ट १९२१ पृ० ५। सूत्रधार मंडन अपने ग्रंथ प्रासाद मडन ८।३२। में राजधानी में कीर्त्तिस्तंभों का होना आवश्यक मानता है। "कीर्त्तिस्तंभैर्जलारामैः—" आदि पाठ उल्लेखनीय है।

९६. कीर्त्तिस्तंभ के पास से प्राप्त एक शिला अंक पर निम्नांकित लेख है—
जयापराजितमुखैर्भणितस्यत्रिधा यथा। इंदस्यब्रह्मणश्चापिविष्णोर्नाम-मिरंकितः ॥३॥ पंचषष्टि करो (च्) छायः शक्रस्तंभो विधीयते। अष्टोतरं शतं हस्ता विष्णुस्तम्भो (य) मु (च्) छ्यः ॥४॥ [उदयपुर संग्रहालय का लेख प० कृष्ण चन्द्र शास्त्री के सौजन्य से प्राप्त]

९७. कु० प्र० श्लोक सं० २५६ से २५८। शोधपत्रिका वर्ष १६ अंक १ में प्रकाशित मेरा लेख "सारंगपुर का युद्ध के फुटनोट स० १५ में मैंने इसे मन्दसौर के आसपास ही माना है। निसंदेह यह स्थान प्रतापगढ़ से १० मील दूर स्थित जानागढ़ होना चाहिये। अमर काव्य में स्पष्टतः "जानागढ़ च जनक [illegible] लशैले मालवमूलमहत्य" उल्लेखित है। यह निसंदेह प्राचीन दुर्ग है।

स्वीकार करता है और निजामुद्दीन शादियाबाद मांडू के आसपास तक [९८]। इस प्रकार इस युद्ध से कुंभा की कीर्ति का विस्तार होगया और उसको मालवे का बहुत सा भाग भी अपने राज्य में मिल गया।

चूण्डा की वापसी

राव रणमल का प्रभाव राघवदेव की मृत्यु के पश्चात् बराबर बढ़ता गया। नैणसी लिखता है कि रणमल ने सारे अधिकार हस्तगत कर लिये थे। वीर-विनोद में भी लिखा है कि महाराणा कुंभा के समय रणमल की इज्जत बहुत बढ़ती गई। किन्तु राघवदेव की मृत्यु के पश्चात् शिशोदियों को रणमल पर सन्देह होने लगा। राजमाता और हंसाबाई को भी उस पर अब सन्देह होने लगा। राठौड़ों के इस कुचक्र से मुक्ति पाने के लिए चूंडा की आवश्यकता प्रतीत होने लगी। रावरणमल के अत्यधिक अधिकारों का जो वर्णन[९९] मिलता है वह राठौड़ों की ख्यातों का है जो १७-१८ वीं शताब्दी की रचनाएं है अतएव इन्हें निष्पक्षीय नहीं कहा जा सकता है। वास्तविकता में उस समय चित्तौड़ में २ दल हो गये थे एक दल शिशोदियों का था जो राघवदेव की मृत्यु का बदला लेना चाहता था और राठौड़ों को मेवाड़ से निष्कासित करना चाहता था और दूसरा दल राठौड़ों का था। धीरे-धीरे रणमल का विरोध बढ़ने लगा और उसके विरोधी लोग चित्तौड़ में आ-आ कर इकट्ठे होने लगें। महपा पंवार और एका चाचावत भी इसी समय चित्तौड़ में आगये। इन्हें महाराणा ने क्षमा कर दिया। रणमल के पक्ष के लोग यद्यपि इससे नाराज थे लेकिन वे कुछ नहीं कर सके। इससे पता चलता है कि नैणसी और मारवाड़ की ख्यातों का यह वर्णन कि रणमल जिसे चाहे निकाल सकता था अतिशयोक्ति ही है। ये लोग भी उसके विरुद्ध कुंभा के कान भरने लगे। एक घटना का उल्लेख नैणसी करता है कि एक दिन कुंभा सोया हुआ था और एका उसके पांव दाब रहा था। अचानक उसके पांवों पर गर्म-गर्म आंसू गिरे तो राणा ने पूछा कि एका क्यों रोता है? एका ने प्रत्युत्तर दिया कि "राज! धरती शिशोदियों के हाथ से गई और राठौड़ों ने ली" और उसने सारी घटना का सविस्तार वर्णन किया। बीरविनोद में लिखा है कि महपा ने महाराणा से अर्ज किया कि राठौड़ों का दिल साफ नहीं है। ये लोग मेवाड़ का राज्य बलात् हस्तगत करना चाहते हैं किन्तु प्रारम्भ में महाराणा ने विश्वास नहीं किया क्योंकि

---

९८. ब्रि० फ० जिल्द ४ पृ० २०९।

९९. नै० ख्या० भाग १ पृ० २८। शारदा—म० कु० पृ० ५९
"राव जतन करि रहे रछिक चीतोड़घराने" सूरज प्रकाश भाग १ पृ० २४९।

वह रणमल का शत्रु था किन्तु धीरे-धीरे संदेह[100] होने लगा। एक दिन ऐसी घटना घटित हुई जिसके कारण रणमल के कुकृत्य और महत्वाकांक्षाएं प्रकाशित हो गई। यह घटना वीरविनोद में इस प्रकार से वर्णित की गई है कि रणमल का सौभाग्य देवी की दासी भारमली के साथ प्रेम था। एक दिन वह रात को सोने के लिए देर से पहुंची। रणमल पर मद्य और अफीम के नशे का पूरा-पूरा प्रभाव था। उसने भारमली से पूछा कि देर से क्यों आई? उसने उत्तर दिया कि जिसकी मैं नौकर हूं उन लोगों द्वारा छुट्टी मिलने पर ही आई हूं। इस पर नशे के प्रभाव के कारण रणमल ने जल्दी ही कह दिया कि अब तू किसी की भी नौकर नहीं रहेगी बल्कि जिनको चित्तौड़ में रहना होगा वे तेरे नौकर होकर के रहेंगे। भारमली ने उसके मन्सूबों को प्रकटित करा दिया। दूसरे दिन उसने यह सारा वृतान्त ज्यों का त्यों महाराणी के समक्ष वर्णित कर दिया। इस भयंकर समाचार को सुनकर सौभाग्य देवी को बड़ी चिन्ता हुई। उसने कुंभा से परामर्श करके चूंडा को बुलाने के लिए योजना बनाई एवं सारा समाचार लिखकर एक सवार को उसके पास भेजा जिसे पढ़कर वह तत्काल चित्तौड़ में लौट आया। यह कथा भी भाटों की ख्यातों के आधार पर ही वर्णित की है इसमें कहां तक सच्चाई है यह नहीं कहा जा सकता है। चूंडा को भी मालवा में शासन का परिवर्तन और खिलजी वंशजों के प्रति उसकी सहानुभूति न होने से मेवाड़ आना श्रेयस्कर लगा। टॉड ने उसके चित्तौड़ में लौट आने की कथा अन्य प्रकार से वर्णित की है उसमें दीपावली के दिन रात्रि को आना[101] लिखा है। रणमल ने चूंडा का विरोध किया क्योंकि वह स्पष्ट रूप से उसके मन्सूबों में बाधक हो सकता था। किन्तु उसका पक्ष कमजोर होगया था। महाराणी सौभाग्य देवी ने भी उसकी बात नहीं मानी और कहा कि जिसने राज्य का असली हकदार होकर भी स्वेच्छा से त्याग दिया था ऐसे सत्यनिष्ठ को अगर दुर्ग में प्रवेश नहीं करने देंगे तो बड़ी बदनामी होगी। वह तो थोड़े से आदमी ही लेकर के आया है अतएव हमारा कर भी क्या सकता है। अब परिस्थितियां बदल चुकी थी। रणमल अब इन्हें मूर्ख नहीं बना सकता था। वे अब रणमल के मन्सूबों से परिचित हो चुके थे और इन्हें कुंभा की हत्या का अप्रत्यक्ष भय भी लगने लग गया था जो उस काल में एक सामान्य घटना सी थी। ५ वर्ष पूर्व ही मोकल की भी षडयन्त्र से हत्या होगई थी अतएव उनको सावधानी रखना अधिक उचित लगा।

---

१००. नै० ख्या० भाग १ पृ० २८-२९। वी० वि० भाग १ पृ० ३२०-२१
ओझा—उ० इ० भाग १ पृ० २८८। शारदा—म० कु० पृ० २८८।
रेऊ—मा० इ० भाग १ पृ० ७७-७८। राठौड़ वंश की विगत पृ० ६।
रामकर्ण आसोपा—मारवाड़ का संक्षिप्त इतिहास पृ० १५०।
ओझा—जोधपुर राज्य का इतिहास पृ० २२८-२२९।

१०१. एनल्स एण्ड एंटीक्वीटिज आफ राजस्थान (हिन्दी अनुवाद) पृ० १६४।
ओझा—उ० इ० भाग १ पृ० २८९।

रणमल की हत्या

रणमल को भी अपनी मृत्यु का सन्देह होने लगा था। चूंडा के आगमन के पश्चात् वह धीरे-धीरे अपने परिवार के सदस्यों को वहां से हटाने लग गया था। नैणसी लिखता है कि एक दिन राव रणमल जब तलहटी में आया तब उसे एक डोम ने पूछा कि आपका और "दीवाण" (महाराणा) का किस पर "चूक" (षड़यन्त्र करके मारना) करने का इरादा है? तब रणमल ने प्रत्युत्तर दिया कि हम तो किसी को भी मारना नहीं चाहते हैं। तब डोम ने कहाकि दीवाण का इरादा आपको ही मारने का है। इस प्रकार का जवाब सुनते ही वह कुछ चकित हुआ। उसने जोधा आदि पुत्रों को कहा कि तुम लोग तलहटी में ही रहना और मैं बुलाऊं तो भी मत आना। भाग्य से एक दिन इस सम्बन्ध में बात-बात करते कुंभा ने रणमल से पूछ ही लिया कि आज कल जोधा कहां है? दिखाई ही नहीं देता है। तब राव ने कहा कि तलहटी में ही है। घोड़े चराता है। कुंभा ने कहा कि उसे दुर्ग पर क्यों नहीं बुलाते हो। इस पर राव ने कहा कि आदेशानुसार शीघ्र बुला लूंगा लेकिन उसने जोधा को नहीं बुलाया।[102]

इस प्रकार एक दिन षडयन्त्रकारियों ने रणमल को यमलोक पहुंचाने की योजना बना ली। कहा जाता है कि इन लोगों का इशारा पाकर भारमली ने रणमल को खूब मद्य पिलाया और नशे में जब बेसुध हो गया तब उसकी पगड़ी से ही उसे पलंग पर कसकर बांध दिया एवं अचैतन्यावस्था में रावपर महपा पंवार आदि ने घातक आक्रमण किया। राव भी एकदम उठ खड़ा हुआ और कुछ आक्रमणकारियों को उसने भी मार गिराया। नैणसी ने १६ आक्रमणकारियों को टॉड एवं वीरविनोद में ३ तीन आक्रमणकारियों को मारना लिखा[103] है।

---

१०२. नै० ख्या० भाग १ पृ० २८-२९। वी० वि० भाग १ पृ० ३२१-२२। रामकर्ण आसोपा—मारवाड़ का संक्षिप्त इतिहास पृ० १५०। ओझा—उ० इ० भाग १ पृ० २८९।

१०३. उपरोक्त ख्यातों में कुंभा और उसकी रानी का संवाद प्रस्तुत किया गया है और उसमें लिखा है कि कुंभा को उसकी रानी ने रणमल की हत्या कराने से रोका तब उसने महपां को दासी के द्वारा कहलाया भी। लेकिन षडयंत्रकारियों दासी को अपनी ओर मिला लिया।

मारवाड़ की ख्यातों में यह घटना[104] वि० स० १५०० में होना वर्णित की गई है। टाड ने मोकल की बाल्यावस्था में चूंडा द्वारा रणमल को मारने का उल्लेख किया है जो गलत है। राणकपुर के १४९६ के लेख में स्पष्ट रूप से मंडोर विजय का उल्लेख है अतएव यह घटना इस संवत् के पूर्व ही सम्पन्न हो चुकी थी। श्री रेऊ ने यह घटना वि० स० १४९५ कार्त्तिक वदी ३० को सम्पन्न हुई लिखी है किन्तु किस साधन से यह लिखी है यह वर्णित नहीं है। मारवाड़ के कवियों ने रणमल की मृत्यु का बड़ा विषादयुक्त वर्णन किया है। बीठू सूजा ने "छंद राउ जइतसी रउ" में राव रणमल को निर्दोष बतलाया है।[105]

"राव रणमल की मृत्यु के कारणों पर विचार" नामक अध्याय में श्री रेऊ ने अपने मारवाड़ के इतिहास के पृ० सं० ८१-८२ में लिखा है कि मेवाड़ के कुछ इतिहास लेखक महाराणा कुंभा की गलती को छिपाने के लिए राव रणमल पर कुंभा को मार कर मेवाड़ राज्य हस्तगत करने का दोष लगाते हैं परन्तु यह ठीक नहीं है। इनके हिसाब से नीचे लिखे दो पहेलुओं पर विचार करना होगा।

(१) मोकल अल्पायु में राजगद्दी पर बैठा था और इसी प्रकार कुंभा भी गद्दी पर बैठा था तब अत्यन्त अल्पायु का था। राणकपुर के लेख में वर्णित सारी विजयों का श्रेय रणमल को है।

(२) चूंडा के राज्य गद्दी त्याग ने पर भी उनके मन में राज प्राप्ति की इच्छा रह गई हो और यह इसीलिए संभव नहीं हो सका कि राव रणमल विद्यमान था। इसके बदले के फलस्वरूप इसने रणमल की हत्या की थी।

स्वर्गीय विद्वान रेऊ ने जो तर्क दिये हैं वे सही नहीं हैं। पहला तर्कस्वतः दोष पूर्ण है। मैंने पूर्व यथास्थान निवेदन कर दिया है कि मोकल की एवं कुंभा की जन्मतिथि श्री रेऊ ने भ्रमात्मक मानी है।

---

१०४. ओझा—जोधपुर राज्य का इतिहास पृ २२९। रेऊ—मा० इ० पृ० ७८। आसोपा—मारवाड़ का संक्षिप्त इतिहास पृ० १५४। डा० वी० एस० भार्गव मारवाड़ एण्ड मुगल एम्परर्स पृ० ८। जोधपुर राज्य की ख्यात जिल्द १ पृ० ३६। वी० वि० भाग १ पृ० ३२१ एवं भाग २ पृ ८०५।

१०५. "गाडण पसाइत द्वारा लिखित "राव रणमल रो रूपक" सिंढायच चोभुज द्वारा लिखा हुआ एक पद भी इसी प्रकार बड़ा प्रसिद्ध है। (डा० माहेश्वरी-राजस्थाना साहित्य पृ० ११६)। "छंद राउ जइत सी रउ" पृ० २४ भी दृष्टव्य है।

चूंडा सम्बन्धी जो आरोप लगाये हैं वे रेऊ जी की कल्पना की अद्भुत सूझ है। इतिहास में चूंडा को सत्यव्रतवान् कहा गया है। इसके वंशज रत्नसिंह को खानवा के युद्ध में राज्य चिन्ह धारण करने को कहा गया था तब उसने यह कहकर इन्कार कर दिया कि चूंडा के वंशज कभी भी राज्य के लिये अधिकार नहीं चाह सकते हैं। इस आरोप का उल्लेख न तो किसी ख्यात में है और न मध्य कालीन किसी इतिहास में ही।

मेवाड़ और मारवाड़ की ख्यातों में वर्णन एक पक्षीय है। मेवाड़ की ख्यातों में लिखा है कि राव रणमल ने कुंभा को यथासमय अवश्य सहायता दी थी किन्तु वह चित्तौड़ में शक्ति एकत्रित करके सत्ता की दुरुपयोग करने लग गया था जिसे नैणसी ने भी स्वीकार किया है। उसने लिखा है कि रणमल ने चित्तौड़ में बहुत शक्ति बढ़ा ली थी जिसे वह चाहता निकाल सकता था। चित्तौड़ में सैनिक पदों पर राठौड़ों को लगा रक्खा था। उस समय एक ही प्रबल विरोधी राघव देव था जिसकी मृत्यु के पश्चात् शिशोदियों में स्पष्ट रूप से बैर लेने की भावना जागृत होगई। नैणसी भी महपां पंवार और कुंभा का इसी प्रकार के संवाद का उल्लेख करता है। अतएव राव रणमल को निर्दोष नहीं मान सकते हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि प्रारम्भ में रणमल का प्रभाव अधिक रहा हो किन्तु उसकी स्थिति मृत्यु के समय वैसी नहीं रही थी जैसी कि नैणसी और मारवाड़ के इतिहास में वर्णित है। उसके विरोधी महपां एका चाचावत चूंडा आदि आ आ कर चित्तौड़ में एकत्रित होते जा रहे थे और अगर उसका शासन तन्त्र में एकाधिपत्य होता तो वह विरोध कर सकता था। इसके विपरीत नैणसी ने उसकी कमजोरी तक प्रकट कर दी है। उसने अपने पुत्र जोधा को चित्तौड़ की तलहटी में ही विद्यमान रहने को कहा था। अतएव रणमल की मृत्यु राघवदेव की मृत्यु का बदला मात्र प्रतीत होती है जो उस युग की एक सामान्य घटना थी।

रणमल निर्दोष था या सदोष इसकी मृत्यु ने अवश्य राठौड़ों और शिशोदियों के दीर्घकाल से चले आये आपसी अच्छे सम्बन्धों में विच्छेद ला दिया और राठौड़ों को भी अपनी मुख्य भूमि से १५-१६ वर्ष तक दूर रहना पड़ा एवं वापसी के लिए बड़ा संघर्ष करना पड़ा।

मंडोवर और सोजत विजय

कहते हैं कि रणमल की मृत्यु होते ही किले पर से एक डोम ने तलहटी में रहने वाले उसके पुत्रों को इस घटना से सूचित करने के लिए एक पद पढ़ा जिसमें जोधा को भाग जाने का संकेत किया गया था[106]। इस पद को श्रवण करते ही जोधा,

---

१०६. चूंडा अजमल आविया मांडू हू धक आग।
जोधा रणमल मारिया भाग सके तो भाग॥

कांधल आदि सब वहां से भागने लगे। उनके साथ उनके विश्वस्त सैनिक भी थे। चूंडा ने उनका पीछा किया। चित्तौड़ के समीप ही उन भागते हुये राठौड़ों पर आक्रमण कर दिया जिनमें जोधा के कई योग्य राजपूत काम आये। इनमें चरडा चन्द्रावत, शिव-राज, पूना भाटी, भीमा, वैरीशाल, बरजांग भीमावत, जोधा का काका भीम चूंडावत काम आये। उसके बाकी सैनिक जान बचाकर भाग गये। वह भी भागते हुये मांडल के तालाब के समीप ठहरा था कि सामने उसका भाई कांधल दिखाई दिया। दोनों ही भाई भागकर मारवाड़ की तरफ जाने लगे। नैणसी लिखता है कि जब वह मांडल के तालाब के समीप घोड़ों को पानी पिलाने ठहरा था तब उसे सामने कांधल दिखाई दिया। विपत्ति के समय भाई को देखकर उसे साहस आया और दोनों भाई गले लगकर मिले और जान बचाकर भाग आने पर ईश्वर को धन्यवाद देने लगे। वहीं जोधा को रावताई का टीका भी दे दिया गया और ये भागने में सफल हो गये। राणा की सेना बराबर पीछा किये जा रही थी। अर्वली के पास फिर युद्ध हुआ। इसमें बचे खुचे राठौड़ सैनिक और मारे गये। मेवाड़ की सेना ने आगे बढ़कर मंडोर पर अधिकार कर लिया। चूंडा ने वहां अपने बेटे कुन्तल मांजा और सीवा को छोड़ दिया। इनके अतिरिक्त झाला विक्रमादित्य और हिंगलू आहड़ा को भी वहीं नियुक्त किया गया[107]।

मंडोर की व्यवस्था कर महाराणा ने राठौड़ों के एक पक्ष को अपनी ओर मिलाने के लिए सोजत को राघवदेव चूडावत को जो हंसमल का बेटा था दे दिया उसने कापरड़ा, बगड़ी आदि प्रदेशों को और जीत लिये। नर्बद राटौड़ अभी महाराणा के पक्ष में था। उसे कायलाणा को बड़ी जागीर मिली हुई थी। इसी समय चौकड़ी और कोसना में भी सैनिक चौकियां बनवाई गई जहां भाटी बनवीर राणा बिसलदेव रावल दूदा आदि राजपूतों को लगाया[108]।

डूंगरपुर विजय

डूंगरपुर का रावल गोपीनाथ या गैपाल वि० स० १४८० के पूर्व राज्य प्राप्त कर चुका था। इसके उत्तराधिकारी रावल सोमदास का लेख वि० स० १५०४ का

---

१०७. नै० ख्या० भाग २ पृ० १०६। वी० वि० भाग १ पृ० ३२२। ओझा उ० इ० भाग १ पृ० २६०। शारदा—म० कु० पृ० ६६-६७।

१०८. रेऊ—मा० इ० भाग १ पृ० ८५। शारदा—म० कु० पृ० ६८।

मिना[109] है। कुंभा ने रावल गैपान या गोपीनाथ पर आक्रमण कर डूंगरपुर विजय किया। कुंभलगढ़ प्रशस्ति के अनुसार रावल गोपीनाथ को विजय करने के लिये कुंभा ने अश्व सेना की सहायता ली। उसके आने के समाचार पाते ही रावल भाग गया। संगीत राज की प्रशस्ति में "गिरिपुरडूंगरग्रहणसार्थकीकृतोग्राग्रहेण" शब्द अंकित है। इस घटना का उल्लेख राणकपुर के लेख में नहीं है अतएव संभव है कि यह घटना वि०१४९६ के पश्चात् और १५०४ वि० के पूर्व सम्पन्न हो चुकी थी। सूर खंड से वि० स० १४९४ का कन्ह राठौड़ का लेख मिला है। इसमें उसे "पुण्यं बागडमंडलं भुविकृतं श्रीकन्हभूपेन" वर्णित किया है। इसमें मेवाड़ के शासकों का उल्लेख भी नहीं है जिससे यह कहा जा सकता है कि उस समय तक वहां कुंभा का अधिकार नहीं हो पाया था। कुंभा की बागड़ प्रदेश की विजय के फलस्वरूप जावर मेवाड़ राज्य मे सम्मलित[110] कर लिया गया। स्मरण रहे कि यह नगर विक्रमी संवत् १४७८ में महाराणा मोकल के राज्य में ही था। इसकी पुष्टि वहां से प्राप्त जैन लेखों से होती है[111]। कुंभा ने इस क्षेत्र को वापस डूंगरपुर के शासकों से छीन लिया। कोटड़ा भी उसने जीता था। यह या तो डूंगरपुर वालों से या देवड़ों से छीना प्रतीत होता है।[112]

मेरों के विद्रोह को दबाना

बदनोर के आसपास मेरों की बड़ी बस्ती थी। ये लोग सदैव विद्रोह किया करते थे। महाराणा लाखा ने इन्हें[113] विजित किया था। कुंभा के समय भी इन्होंने

---

१०९. "पंचप्रस्थानविषमपदव्याख्या" नामक ग्रंथ की प्रशस्ति वि० सं० १४८० की रावल गइपा के शासनकाल की है जो इस प्रकार है" स्वस्ति सं० १४८० वर्षे अद्येह श्री डूंगरपुर नगरे राउल श्री गइपालराज्ये श्री पार्श्व चैत्यालये लिखितं पचाकेन" [प्रशस्ति संग्रह पृ० १५]। इसी प्रकार सिद्ध हेमवृति की वि० सं० १५०४ की प्रशस्ति सोमदास के राज्य की मिली है "संवत् १५०४ वर्षे मार्गशिर सुदि ११ सोमे। श्री गिरिपुरे राउल श्री सोमदास विजयराज्ये......" [प्रशस्ति संग्रह पृ० ३९]

११०. वी० वि० भाग १ पृ० ३३५ में इसे दिल्ली से सम्बन्धित माना है जो गलत है। गीत गोविन्द की मेवाड़ी टीका में स्पष्टतः "योगिणी भणिये महामाया तेहनो प्रासाद पाम्यो योगिनीपुर जाउर" उल्लेखित है।

१११. उपरोक्त फुटनोट सं० ३।

११२. कु० प्र० श्लोक स० २६२।

११३. मेदनाराद्भुल्लसादुल्लसत्तद्रोधीरध्वानविध्वस्त धैर्यान्।
कारं कारं योगृहीदुग्रतेजा दग्धारातिर्वर्द्धनाख्यं गिरीन्द्रं ॥३६॥ की० प्र०

विद्रोह कर दिया था अतएव इन्हें विजित कर विद्रोहियों को दंडित किया । कुंभलगढ़ प्रशस्ति और गीत गोविन्द की मेवाड़ी टीका की प्रशस्ति में इसका स्पष्टतः उल्लेख है।[114] । किन्तु वह पूर्ण रूप से इन्हें दबा नहीं सका था और रायमल के समय में भी बराबर संघर्ष चलता रहा । इसीलिये उसने टोड़ा के सोलंकी शासक राव सुरत्राण को वि० सं० १५५१ के पश्चात् यहां नियुक्त किया था । उस समय वह मेवाड़ के पुर ग्राम का जागीरदार था । इसकी पुष्टि वहां से प्राप्त एक ग्रंथ की प्रशस्ति से होती है[115]

मेरों के कुछ नेताओं के नाम भी मिलते हैं । कुंभा के साथ संघर्ष करने वाला इनका नेता "मुन्नीर" था । यह मुसलमान था इसलिए प्रतीत होता है कि उस समय तक इन लोगों ने मुस्लिम धर्म अवश्य स्वीकार कर लिया था । कुंभलगढ़ प्रशस्ति में "मन्नीरवीरमुदवीवहदेषनीरं । यो वर्द्धमानगिरिमाशु विजित्यतस्मिन्" उल्लेखित है । संगीतराज की प्रशस्ति में "स्थान (वर्द्धमान) वलियाताने कदरीपरिसर परित्रासित मनीरवीरः" पद मिलता है । अमर काव्य वंशावली में "मनीरं हतवान् वीरो" पद दिया है । मुनीर गुजरात के सुल्तान का एक सेनापति भी था जिसे वह वि० सं० १४८६ के आक्रमण के समय डूंगरपुर आदि प्रदेश को लूटने के लिये छोड़ गया था किन्तु यह उससे भिन्न रहा होगा ।

पूर्वी राजस्थान का संघर्ष

पूर्वी राजस्थान का यह भू भाग जो आधुनिक सवाईमाधोपुर, टोंक, जयपुर, अलवर आदि जिलों के अन्तर्गत था, मुसलमानों की शक्ति का केन्द्र बनता जा रहा था । बयाना और मेवात में इनका राज्य बहुत पहले ही हो चुका था । रणथंभोर की पराजय के पश्चात् चौहानों के हाथ से भी यह क्षेत्र जाता रहा था । इस क्षेत्र को प्राप्त करने के लिये स्थानीय कछावा और मुसलमान शासकों के अतिरिक्त, मेवाड़ मालवा

---

११४. कु० प्र० श्लोक सं० २५४ ।

११५. अनेकांत दिसम्बर १९६६ में प्रकाशित मेरा लेख "मेवाड़ के पुर ग्राम की एक प्रशस्ति ।" शोधपत्रिका वर्ष १७ अंक ४ में प्रकाशित मेरा लेख "कछवाहों का प्रारम्भिक इतिहास" एवं जरनल राजस्थान हिस्टोरिकल इंस्टिट्यूट भाग ४ अंक १ में प्रकाशित "गयासुद्दीन एण्ड राजस्थान नामक मेरा लेख दृष्टव्य है ।

और संभवतः ग्वालियर के शासक भी प्रयत्नशील थे। यह संघर्ष महाराणा सांगा के समय तक चलता रहा। फरिश्ता के अनुसार रणथंभोर आदि क्षेत्र मालवे के आधीन था। कुंभा ने इस क्षेत्र में आक्रमण करके रणथंभोर, मलारणा बोंली आदि को विजित किया था। बड़ोदा के संग्रहालय में त्रिभुवनदीपक [116] भाषा नामक एक ग्रंथ संग्रहित है जिसकी प्रशस्ति वि० स० १५०१ पोष वदि १ रविवार की है। इसमें मल्लारणा में गयासुद्दीन का राज्य वर्णित किया है। कुंभा के साथ मालवा के सुल्तान के संघर्ष के वर्णनों के साथ इसको अलग से ५वें अध्याय में वर्णित किया है।

कुंभा ने इस क्षेत्र में सबसे पहले वि० स० १४९६ के पूर्व प्रवेश किया था और चाटसू के आस-पास का भाग जीता था। यह विजय उसकी नागौर विजय के साथ २ हुई होगी। चाटसू के पास स्थित टोडा में सोलंकियों का प्रबल राज्य था। कुंभा का समकालीन राव सेढूब्रदेव था जिसके समय की एक प्रशस्ति वि० स० १४९२ माघ सुदि १५ की जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति ग्रंथ की मिली है। सेढूब्रदेव के बाद वहां कौन शासक हुआ था ज्ञात नहीं हो सका है। वि० स० १५१० माघ सुदि १० के ११ मूर्त्तियों के लेख [117] टोंक से मिले हैं। इनमें राजा का नाम 'लूंगारदेव" वर्णित है। यह या तो ग्वालियर के तोमर राजा डूंगरसिंह का नाम प्रतीत होता है जो खोदने वाले ने "ल" बना दिया है। या स्थानीय सोलंकी राजा है। एकलिंग माहात्म्य से पता चलता [118] है कि कुंभा ने इस क्षेत्र को मुसलमानों ने हस्त गत कर लिया था एवं उसने वहां वापस राजपूत राजाओं

---

११६. संवत् १५०१ वर्षे पोस बदि १ दिने आदित्यवोर लिखितः—तपागच्छाधिराज श्री···सोमसुन्दरसूरि शिष्य भट्टारक पुरन्दर श्रृंगारहार चक्रकूडामणि श्रीसोमदेवसूरिशिष्य मुख्यपूजाराध्य पं०सिद्धांतसमुद्र-गणिशिष्य मुख्यकमलरत्नगणिना श्रीमल्लारणानगरे श्री पातसाह श्री ग्यासदीनराज्ये...[प्रशस्ति संग्रह पृ० २४]

मेरे हिसाब से यह तिथि गलत है। यह १५३१ वि० होना चाहिये। सोमदेवसूरि कुंभा का समकालीन था अतएव उसके प्रशिष्य उसके बाद होना चाहिये।

११७. विजयमूर्त्ति—जैन लेख संग्रह भाग ३ में वि०स० १५१० के लेख पृ०४८५-८७

११८. तोडामंडलमग्रहीच्च सहसा जित्वा शकं दुर्ज्जयं।
जीव्याद्वर्षशतं स भृत्यतुरगः श्री कुंभकर्णो भुवि ॥१५७॥ एक० माहा०

को पुनर्स्थापित किया था। उस समय नैनवां, टोंक आदि क्षेत्र में मुसलमानों का राज्य हो चुका था। रणथंभोर में फिदईखां और वहां अल्लाउद्दीन नामक एक शासक था। इसकी वि० स० १५१५ की नरसेन द्वारा लिखित सिद्ध चक्र ग्रंथ की प्रशस्ति है [119]। वि० स० १५२४ की कातंत्रमाला की प्रशस्ति है जो टोंक ग्राम की [120] है और इससे सम्बन्धित है। वि स० १५२८ की "णयकुमारचरिउ" की प्रशस्ति है जो नैनवां ग्राम की है और इससे सम्बन्धित है। टोड़ा पर सोलंकियों का अधिकार कुंभा के अन्तिम समय तक बराबर रहा होगा क्योंकि मेवाड़ के इतिहास के अनुसार यहां का सोलंकी राव सूरसेन रायमल के समय में मुसलमानों द्वारा निकाल दिये जाने के कारण मेवाड़ आया था। यह घटना वि० स० १५३७ के पूर्व ही सम्पन्न होगई थी [121]।

आमेर के कछावा भी उस समय शक्ति एकत्रित कर रहे थे। राजा उद्धरण कुंभा का समकालीन था। आमेर राज्य की ख्यातों के अनुसार [122] इसका विवाह कुंभा की पुत्री इन्द्रादे के साथ हुआ था। मेवाड़ के इतिहास में इसका उल्लेख नहीं है। कुंभा के एक ही पुत्री थी जिसका विवाह गिरनार के चूडासमां राजा मंडलीक के साथ

---

११९. विरधी चंद जी जैन मंदिर जयपुर में संग्रहित सिद्ध चक्रकथा (वे० स० २७८) की प्रशस्ति इस प्रकार है "संवत् १५१५ वर्षे ज्येष्ठ सुदि रवौ नैणवाहपतने सुरत्राणअल्लाउद्दीनराज्ये" [महावीर भवन के सौजन्य से]

१२०. आमेरशास्त्र भंडार में संग्रहित कातंत्ररूपमाला वे० स० २१४४ की प्रशस्ति "संवत् १५२४ वर्षे कार्त्तिक सुदी ५ दिने श्री टोंक पतने सुरत्राण अलावदीण राज्य प्रवर्तमाने श्री मूलसंघे..."

१२१. मेरे नीचे लिखे लेख दृष्टव्य है:—

शोधपत्रिका वर्ष १७ अंक ४ में प्रकाशित "कछावाहों का प्रारिम्भक इतिहास।" अनेकान्त दिसम्बर १९६९ में प्रकाशित "मेवाड़ के पुर ग्राम की एक प्रशस्ति" जरनल राजस्थान हिस्टोरिकल रिसर्च इन्स्टी० के भाग ४ अंक १ में प्रकाशित "सुल्तान गयासुद्दीन एण्ड राजस्थान"

१२२. हनुमान शर्मा—नाथावतों का इतिहास पृ० ३२।

हुआ था। कायमखानियों द्वारा आमेर विजय[123] कर लेने पर उसने वापस उद्धरण को दिलाया था। इसकी पुष्टि संगीतराज की प्रशस्ति से होती है। उसमें लिखा है कि "आम्रदकगिरिशिखरोपरिभावितशकनिकरः" मेवात में बहलोल लोदी ने आक्रमण कर स्थानीय शासकों को आधिन कर लिया था। इसका माचेडी से वि० स० १५०५ बैशाख सुदि ६ का लेख मिला है जिसमें स्थानीय बड गूजर राजा राजपाल के पुत्र रामसिंह का उल्लेख है जो बहलोल का सामन्त था। इस क्षेत्र में कुंभा के प्रयाण कोई उल्लेख नहीं मिलता है।

अन्य विजय

कुंभलगढ़ प्रशस्ति के अनुसार कुंभा ने कुछ अन्य नगरों को भी विजित किया था जिनकी भौगोलिक स्थिति एवं सही स्थानीय नाम ज्ञात नहीं होसके हैं। इसका कारण यह है कि स्थानीय नामों को संस्कृत में रूपांतरित करके इसमें वर्णित किया है। इस प्रकार नाम हैं नारदीयनगर, शोध्यानगरी, हमीरपुर, वायसपुर, धान्यनगर, वीसलनगर और सिंहपुरी। नारदीयनगर के लिये लिखा है कि वहां के ठाकुर को युद्ध में हराकर उसकी नारियों को हरण करके ले आया और जिन्हें दासियां बना दी गई। यह नारदीय नगर कहां है। संभवतः यह नगर गांव होना चाहिये जिसके लिये वि० स० १२९२ के वस्तुपाल तेजपाल के लेख में लिखा है "नारदमुनिविनिवेशीतेश्रीनगरवरमहास्थाने"[124]। यह सिरोही जिले का नान्दिया ग्राम भी हो सकता है जहां से कुंभा का वि० स० १४९४ का दानपत्र मिला था। यहां से कई मूर्तियां और शिला लेख भी मिले हैं जिनसे यह अनुमान किया जा सकता है कि यह १४ वीं से १६ वीं शताब्दी[125] तक श्री सम्पन्न

---

१२३. लूट लई आमेर सब गये भोमिया भाज।
नीकी विधि सो लरि मुये हों जिनके मुख लाज।।४२५।।

१२४. नाहर–जैन लेख संग्रह भाग २ पृ० १६६।

१२५. नांदिया के महावीर जैन मंदिर में वि० स० १५२१ माघ शुक्ला १३ का लेख वासु पुज्य की प्रतिमा पर एवं १५२१ का एक ही एक अन्य लेख इसी मंदिर के देवकुलिका में लग रहा है (अबुंदा चल प्राचीन जैन लेख संदोह ले० स० ४५९, ६०) सिरोही राज्य में यह ठिकाना बड़ा ख्यातिप्राप्त माना जाता था।

था। शोध्यापुरी नगरी को डा० दशरथ शर्मा सोजत का संस्कृत का रूपान्तरित नाम[126] मानते हैं। उनकी यह धारणा ठीक प्रतीत होती हैं। हमीरपुर के राजा को हराकर वहां के ठाकुर रणवीर विक्रम की "अंबुजमंजुलोचना महीमहेन्द्रोनरपालकन्यका:" से विवाह किया। यह हमीरपुर संभवतः आबू प्रदेशान्तर्गत है। अमरकाव्य नामक हस्त लिखित ग्रंथ में "जिगायहमीरपुरचौहाननृपकन्यका:" वर्णित है। इससे भी इस कथन की पुष्टि होती है. यह हमीरपुर सिरोही और आबू के आस-पास स्थित होगा क्योंकि वहां के शासक चौहान (देवड़ा) हैं। इसे सिरोही से १० मील पूर्व में स्थित मीरपुर को भी मान सकते हैं[127]। इस ग्राम से कई मूर्तियां और लेख मिले हैं जिनमें अधिकांशतः जैन हैं। यह नगर कुंभा के समय में श्री सम्पन्न था। वायसपुर भी इसी प्रकार आबू प्रदेश के अन्तर्गत वासा ग्राम प्रतीत होता है[128] क्योंकि इसे आबू विजय के साथ-साथ वर्णित किया है। जहां से भी १४ वीं से १६ वीं शताब्दी तक के कई लेख मिलते हैं। धान्यनगर की सही स्थिति का पता नहीं चला है। इस नाम के कई ग्राम मिलते हैं उदाहरणार्थ धनपुर, धणाला (मारवाड़) धनारी एवं धानेरा (आबू प्रदेश)। लेकिन इनमें से किसी के लिये कुछ नहीं कहा जा सकता है। धणाला राव रणमल की जागीर में था।

जनकाचल जो मालवे के मध्य था विजय किया। इस ग्राम को मैंने प्रतापगढ़ से १० मील दूर जानागढ़ माना हैं। राणकपुर प्रशस्ति का जाना और अमर काव्य का जानागढ़ ही कुंभलगढ़ प्रशस्ति का जनकाचल होना चाहिये। अमरकाव्य के कर्त्ता ने स्पष्टतः "जानागढ़ च जनकाचलशैलेमालवमूलं हृत्य" वर्णित किया है। सिंहपुरी को मैंने सिहोर माना है। रतनपुर नाम के कई नगर हैं। एक पश्चिमी राजस्थान में है जो

---

१२६. राजस्थान भारती मार्च १९६३ पृ० ३१।

१२७. अमरकाव्य ह० प० २४ एवं जयन्तविजयजी द्वारा लिखित "हमीरगढ़" दृष्टव्य है।

१२८. वासा ग्राम में आदिनाथ का जैन मंदिर है। इसमें १३८६ से लेकर १६०० तक के लेख हैं। वि० स० १४९३, १५०१, ज्येष्ट शुक्ला, १५०३ ज्येष्ठ शुक्ला ११, १५०८ वैशाख सुदि ३, १५१६ माघ सुदि १३, १५२१ वैशाख शुक्ला ३, १५२३ माघ शुक्ला ६ आदि के मूर्त्तियों के लेख उल्लेखनीय हैं (अर्बुदाचलप्राचीन जैनलेखसंदोह ले० स० ५३३, ५३४, ५३७, ५३८, ५४० और ५४१)।

पोकरण का पुराना नाम भी है। चम्पावती को प्रायः चाटसू माना जाता है लेकिन इसे चन्देरी भी माना जा सकता है। जहां राणा कुंभा द्वारा सहायता प्राप्त ऊमरखां लड़ रहा था।

अमरकाव्य नामक हस्त० ग्रंथ से पता चलता है कि कुंभा ने "मादेडचा" को जीता। यह संभवतः देसूरी के थे। यह बराबर विद्रोह किया करते थे। रायमल के समय इनकी जागीर लांछ के सोलंकियों को दी गई थी।

कुंभा ने पश्चिमी राजस्थान में कहां तक विजय की थी। संगीतराज की प्रशस्ति में 'सुवर्णगिरिखण्डनावनिबज्रहेस्तेन" उल्लेखित है। स्वर्णगिरि जालोर के लिए प्रयुक्त होता है। किन्तु शिलालेखों में इसका उल्लेख नहीं है। कुछ विद्वानों का संकेत कुंभलगढ़ प्रशस्ति के "जवाली दवाली शिखावच्छि खाली समालीढ़ भाली कराली प्रतापी" में जवाली को जालोर को सूचक मानते हैं किन्तु यह ठीक नहीं है अगर जवाली शब्द को नगरसूचक मानते हैं तो यह गोडवाड़ का जबाली गांव हो सकता है। जालोर को महाराणा मोकल ने अवश्य जीता था। मारवाड़ की ख्यातों के अनुसार राव रणमल ने जालोर के शासक बिहारी पठान हसनखां को हराया था। संगीतराज की प्रशस्ति के उक्त वर्णन के अनुसार कुंभा ने भी इस पठान शासक को हराया होगा।

कुंभा का प्रशस्तियों में गुजरात में आक्रमण करने का उल्लेख नहीं है। किन्तु बीसलपुर को जीतने का वर्णन मिलता है जिसे हल्दार ने गुजरात का बीसलपुर माना है। ईडर के राजा भाण को गुजरात के राजा ने हरा कर वहां अधिकार कर लिया था। उसके शासन काल की लिखी वि० सं० १५०२ की हरिविक्रममहाकाव्य[१२९] की प्रशस्ति मिली है। इसमें वहां के शासक का नाम अहमद सुत अल्लाउद्दीन वर्णित है। इसके बाद वि० स० १५२० की एक अन्य प्रशस्ति दमयन्ती कथा [१३०] की मिली है उसमें भाण को ही शासक वर्णित किया है। इससे प्रतीत होता है कि कुंभा ने ईडर के राजा को वहां पुनर्स्थापित कराया था। इसी समय में भी उसने ईडर के साथ २ अन्य भागों पर भी आक्रमण किया होगा किन्तु कुंभा के शिला लेखों में इनका उल्लेख नहीं है।

इनके अतिरिक्त चित्तौड़ की वि० स० १४९५ की प्रशस्ति के श्लोक स० १९ और एकलिंग प्रशस्ति का श्लोक ८५ में जो एक ही हैं, कुंभा की

---

१२९. "स्वस्ति श्री संवत् १५०२ वर्षे—ईडर नगर सुरत्राण अहमंद सुत सुरत्राण अल्लावदीन विजयराज्ये... [प्रशस्ति संग्रह पृ० १०]

१३०. "संवत् १५२० वर्षे माघ मासे शुक्लपक्षे सप्तम्यां रवौइलदुर्गे श्री भाणराज्ये . [उपरोक्त पृ० २४]

कर्णाट कुरू जांगल कलिंग मालव और गुर्जरों को जीतने वाला कहा है। यह अतिशयोक्ति प्रतीत होती है। अमर काव्य में जूनागढ़ पर गुर्जर सुल्तान के आक्रमण के समय से सैनिक सहायता देना वर्णित है।

ग्वालियर और जैसलमेर के राजाओं से सम्बन्ध

कुंभा के ग्वालियर और जैसलमेर के राजाओं के साथ कैसे सम्बन्ध थे इस सम्बन्ध में उसकी प्रशस्तियों से कोई सामग्री प्राप्त नहीं होती है। ग्वालियर का राजा डूंगरसिंह भी पूर्वी राजस्थान के रणथंभोर के आस-पास के भू भाग को जीतना चाहता था। मासिर-इ-मोहम्मद शाही में इसका मोहम्मद शाह खिलजी के साथ संघर्ष का कई बार उल्लेख आया है। इसी प्रकार पश्चिमी राजस्थान में कुंभा के राज्य की सीमा पोकरण फलोधी तक पहुंच गई थी और समसामयिक जैसलमेर राज्य से लगती हुई थी। जैसलमेर के राजाओं के लेखों में भी कुंभा के साथ किसी प्रकार के संघर्ष का वर्णन नहीं मिलता है। अतएव प्रतीत होता है कि इन दोनों राजाओं के साथ उसके सम्बन्ध अच्छे रहें होंगे।

राज्य विस्तार

राज्य रोहण के समय कुंभा के पास केन्द्रीय, मेवाड़ का भाग मात्र था एवं परिस्थितियां भी विषम थी। इस प्रकार की स्थिति होते हुये भी उसने राज्य को विस्तरित ही नहीं किया बल्कि उसे एक साम्राज्य का स्वरूप दे दिया। मेवाड़ के गेहलोत शासकों में यही पहिला शासक था जिसके पास इतना विशाल साम्राज्य था। सांगा के विस्तृत साम्राज्य की नींव वस्तुतः इसके समय में ही पड़ी थी। इसका राज्य दक्षिण में आबू, गागरोण एवं मन्दसौर के आस-पास कांथल में पूर्व में रणथभोर, आमेर चाटसू आदि तक उत्तर में सपादलक्ष प्रदेश पोकरण फलोधी तक और पश्चिम में बसंतगढ़ पिंडवाड़ा आदि तक रहा था। उसकी प्रशस्तियों में इसके लिये साम्राज्य शब्द प्रयुक्त किया है।

एकलिंग प्रशस्ति के राजवंश वर्णन के श्लोक स० ५४ में दिल्ली से लेकर पश्चिमी समुद्र तक के राजाओं का कुंभा की सेवा करना वर्णित है। वस्तुतः उत्तरी भारत का उस समय वह सबसे बड़ा प्रतिमा सम्पन्न हिन्दू राजा था।

चौथा अध्याय

राठौड़ों से युद्ध

येन वैरिकुलं हत्वा मंडोवरपुरग्रहे ।
घनापि शांति रोषाग्निर्नागरीनयनांबुभिः ।।२४९।।

कुंभलगढ़ प्रशस्ति

राठौड़ों से युद्ध

कुंभा के मंडोर जीतने का वर्णन तीसरे अध्याय में किया जा चुका है। उसने शीघ्र ही मारवाड़ के इस विजित प्रदेश की समुचित व्यवस्था करली। सोजत राठौड़ राघवदेव को दे दिया जिसने कापरड़ा, बगड़ी आदि का [1] भाग जीत लिया। नर्बद राठौड़ महाराणा के पक्ष में ही था और कायलाणे का जागीरदार था। इनके अतिरिक्त उसने मोहिल चौहान रूण और जांगलू के सांखला एवं जेतारण के सिंधलों को भी अपने पक्ष में कर लिया [2]। इस प्रकार कुंभा ने कूटनीतिज्ञता पूर्वक मारवाड़ के अधिकांश भाग को वापस राठौड़ों सामन्तों को जागीर के रूप में ही दे दिया। केवल मात्र मंडोर पर महाराणा की ओर से शिशोदिया चूंडा के पुत्रों का अधिकार बना रहा।

राव जोधा की स्थिति

मंडोर पर कुंभा का अधिकार वि० स० १४९६ के पूर्व ही हो चुका था [3]। अतएव जोधा अपने भाइयों सहित कोहनी में रहता था। मारवाड़ की ख्यातों के अनुसार

---

१. रेऊ—मा० इ० भाग १ पृ० ८५। श्री शारदा म० कु० पृ० ६८। इसमें वि० में इसे जागीर देना लिखा है जो गलत प्रतीत होती है।

२. नैणसी की ख्यात भाग २ पृ० १२३ के अनुसार रूण के सांखला और जेतारण के सिंधलों का नौकरी देने का उल्लेख है। मोहिलों का कुंभा के साथ वैवाहिक सम्बन्ध होने का भी उल्लेख है। शारदा—म० कु० पृ० ६८।

३. मारवाड़ की ख्यातों में यह घटना वि० सं० १५०० में घटित हुई वर्णित की गई है किन्तु राणकपुर के १४९६ वि० के लेख में मंडोर को विजित करने का उल्लेख होने से स्पष्ट है कि यह घटना वि० सं० १४
हो चुकी थी। [आसोपा मारवाड़ का संक्षिप्त इतिहास पृ० १५
मा० इ० पृ० ४।

वहां से वह बराबर मंडोवर जीतने की कोशिश करता था और बराबर हारकर लौटता था [४]। मारवाड़ की ख्यातों का यह वर्णन कहां तक सही है इसके लिये प्रमाणित आधार उपलब्ध नहीं है कि जोधा ने ऐसी स्थिति में भी मंडोर जीतने की कोशिश की हो। नर्वद को बदला लेने का अच्छा अवसर मिला और उसने कोहनी के आसपास से जोधा और उसके कुछ इने गिने साथियों को बलात् निकाल दिया। अब उसकी स्थिति बड़ी दयनीय होगई। वहां से वह उत्तरी राजस्थान की ओर बढ़कर आधुनिक बीकानेर रेतीले भागों में थली और भाडंग के आस-पास घूमा करता था। वहां भी मोहिल और कायमखानी उसे शांति से नहीं रहने देते थे। उस समय कोई जागीरदार या राजा प्रत्यक्ष रूप से राणा कुंभा के विरुद्ध सहायता देने को तैयार नहीं था। इसी प्रकार की स्थिति होते हुए भी वह दृढ़ प्रतिज्ञ था और अपने मन्सूबों को प्रत्यक्ष करने की बराबर कोशिश कर रहा था।

हंसाबाई की कथा

मेवाड़ और मारवाड़ की ख्यातों में इसका भिन्न-भिन्न वर्णन मिलता है। वीर विनोद में लिखा है कि कुंभा की दादी हसा बाई ने उसे कहा कि मेरे चित्तौड़ में ब्याहे जाने से रणमल का मारा जाना और मंडोर का राज्य नष्ट होकर के जोधा का जंगल में मारा-मारा फिरना वगैरा सब तरह से राठौड़ों का नुक्शान हुआ है। उन लोगों ने तेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ा था। कुंभा ने प्रत्युत्तर दिया कि मैं प्रत्यक्ष रूप से चूंडा के विरुद्ध जोधा को मंडोर नहीं दे सकता हूं लेकिन अगर वह उसे विजय कर लेगा तो मैं नाराज नहीं होऊंगा। हंसाबाई ने चारण डूला को उक्त संदेश लेकर जोधा के पास

---

४. कहते हैं कि एक बार हताश होकर एक जाट के घर पर ठहरा। जाट की स्त्री ने उसे गरम-गरम घाट खाने को दी। जोधा उसे बीच में से खाने लगा तो उस स्त्री ने कहा कि तू भी जोधा की तरह मूर्ख है। वह भी बार-बार मंडोर पर आक्रमण करता है। इसी तरह तू भी बीच में से खा रहा है। तब उसने किनारे से खाना शुरू कर दिया। इस घटना से वह बहुत प्रभावित हुआ। ओझा—उ० ई० भाग १ पृ० २९०-९१। शारदा—म० कुं० पृ० ६९-७० ओझा—जोधपुर का इतिहास पृ० २३७ जोधपुर राज्य की ख्यात जिल्द १ पृ० ४१-४२।

भेजा जो उस समय माडंग और पड़ाव के जंगलों में अपने कुछ सवारों और ५० घोड़ों सहित रहता था। चारण ने जोधा को तदनुसार सारे समाचार सुनाये। इससे मंडोवर लेने में उसे प्रत्यक्ष रूप से सहारा मिला [5]। मारवाड़ की ख्यातों में इस घटना का वर्णन नहीं मिलता है। इनमें मंडोर को जीतना और महाराणा की सेनाओं को हराने का उल्लेख है। मेवाड़ और मारवाड़ की ख्यातें १७ वीं शताब्दी के पश्चात् की है। लेकिन अगर निष्पक्ष रूप से विचार किया जाय तो हंसाबाई की इस कथा में कुछ सार अवश्य है। डा० दशरथ शर्मा का कथन इसके विरुद्ध है जो "छंद राउ जइत सी रउ" के आधार हैं [6]। इस ग्रंथ में कई अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन है। स्वयं डा० दशरथ शर्मा भी मानते हैं कि इसमें वर्णित कुछ घटनाएं अनैतिहासिक हैं। अगर राव जोधा की स्थिति को राणा कुंभा से तुलना करें तो ज्ञात होगा कि मेवाड़ का राज्य अत्यन्त बलशाली था। उसके समक्ष मालवे और गुजरात की सम्मिलित सेनाएं भी हार चुकी थी। अतएव महाराणा कुंभा के विरुद्ध प्रत्यक्ष रूप से विजय प्राप्त करना अत्यन्त कठिन था। अगर जोधा ने किसी प्रकार भी विजय प्राप्त कर भी ली हो तो कुंभा वापस हरा सकने में सक्षम था। कई बार आबू, मांडलगढ़ और अजमेर पर मुसलमान सुल्तानों का आक्रमण हुआ। संभवतः अजमेर एवं मांडलगढ़ कुछ समय के लिए मेवाड़ से अलग भी हो लेकिन चुके थे कुंभा ने वापस इन्हें विजय कर लिया था। क्यामखां रासो में जोधा के सम्बन्ध में एक सन्दर्भ है। इसके अनुसार राव जोधा अपने संकटों से मुक्ति पाने के लिए कायमखानी फतहखां (१५०३–१५३१ वि०) से सम्बन्ध करना चाहता था लेकिन राठौड़ कांधल ने बहुगुण कायमखानी को मारा था अतएव वह इसके लिए तैयार नहीं हुआ। अतएव उसने कायमखानी मोहम्मदखां के बेटे शम्सखां के साथ शादी का प्रस्ताव रखा। कायमखानी इस पर तैयार नहीं हुए कि वे शादी करने के लिए आवें और कहलाया कि डोला यहीं भेज दो। इस पर डोला भेज

---

५. वी० वि० भाग १ पृ० ३२३-३२४। ओझा—उ० इ० पृ० २६०-६१। जोधपुर राज्य का इतिहास पृ० २३७-३२। आसोपा—मारवाड़ का संक्षिप्त इतिहास पृ० १७६।

६. डा० दशरथ शर्मा—राजस्थान भारती मार्च १६६३ पृ० २१।

दिया गया। निश्चित सामग्री के अभाव में यह कहना कठिन है कि यह कथा कहां तक सही है। अगर यह सही है तो जोधा की सही स्थिति को प्रकाश में लाती है। कायमखानी शम्सखां के राजत्वकाल में वि० सं० १५१६ आषाढ़ सुदी ५ की लिखी त्रैलोक्य दीपक की एक प्रति भी मिली है[7] जिसमें उसे झुंझनूं में शासक माना है।

मारवाड़ पर राव जोधा का अधिकार वि० सं० १५१० के आसपास हुआ माना जाता है। कुंभा ने इस संवत के पश्चात वि० सं० १५११-१२ में नागौर में दो बार आक्रमण किया था। एक बार तो शम्सखां को सहायता देने और दूसरी बार शम्सखां के विरुद्ध चढ़ाई करके नागौर जीतने के लिए। दोनों ही बार कुंभा की विजय हुई थी। फारसी तवारीखकार फरिश्ता निजामुद्दीन आदि ने भी गुजरात एवं नागौर की सम्मिलित सेना को राणा द्वारा हराना लिखा है इसके पश्चात् भी वि० सं० १५१५ में पुनः एक बार और राणा ने नागौर विजय किया था। इस प्रकार मारवाड़ की सीमाओं में ही राव जोधा की विजय के पश्चात राणा कुंभा ने तीन बार विजय प्राप्त की थी। अतएव कुंभा मारवाड़ भी विजित कर सकता था। नैणसी ने लिखा है कि राव जोधा और मोहिलों में परस्पर विवाद होने पर राव ने अपने दामाद अजित को मरवा डाला। मेघा और इसका बेटा बेरीशाल मोहिल जो राणा कुंभा के निकट के सम्बन्धी थे कई वर्षों तक जोधा के विरुद्ध सहायता लेने को राणा के यहां भी रहे लेकिन उसने कोई सहायता नहीं दी थी अतएव प्रतीत होता है कि हंसाबाई की उपरोक्त

---

७. जोधे के जिय में परि करौं फतन सौ सुक्ख।
नातो करि हौं ज्यौं मिटे दुहू बोर कौ दुक्ख ।४३२।।
जोधे पठियो नारियर, फत्तन लीनो नाहि।
कांधल बहुगुण हन्यो हौं, रिस दाखत मन् मांहि ।।४३३।।
महमुदखां सुत समसखां तबहि झुंझनू नाहि।
उत्तहि नारियल लै गये उनहू कीनी माहि ।।४३४।।
बहुरि समसखां जो कह्यो, उत व्याहन को जाइ।
जो न रहो करवार संग डोला देहुं पठाय ।।४३५।।
यहै बात वै करि गये डोला दयो पठाय।
मीरा जो जो कह्यौ हौ मिल्यो सर्म बहु आई ।४३६।।
त्रैलोक्य दीपक की प्रशस्ति इस प्रकार है—
"स्वस्ति स० १५१६ आषाढ़ सुदि ५ भौमवासरे झुंझूण शुभस्थाने शाकी भूपति प्रजापालक समसरखान विजयराज्ये..."

कथा में अवश्यसार है। हंसाबाई के संदेश के कारण कभी भी कुंभा ने प्रत्याक्रमण नहीं किया था और शांतिपूर्वक जोधा को बसने दिया नहीं तो कभी भी कुंभा के समान बलशाली शत्रु के होते हुए जोधा शांतिपूर्वक रह कर नया नगर बसाने में सफल नहीं हो सकता था। अंतिम वर्षों में तो कुंभा का किसी भी मुसलमान सुल्तान से उल्लेखनीय युद्ध नहीं हुआ था अतएव वह इनसे निश्चिन्त था। अगर इस तथ्य में सत्य नहीं होता तो अवश्य कुंभा युद्ध करके वापस विजय करने में सक्षम था।

नर्बद राठौड़

नर्बद राठौड़ मंडोवर के राव चूंडा का पौत्र और सत्ता का बेटा था। मंडोवर का राज रणमल ने युद्ध करके इससे ले लिया तो वह चित्तौड़ में महाराणा की सेवा में आ रहा। महाराणा कुंभा के समय वह महाराणा का मुख्य विश्वासपात्र सामन्त था। नैणसी लिखता है कि नर्बद महाराणा के यहां ही रहता था। एक दिन दीवाण (राणा) दरबार में बैठे थे तब किसी ने कहा कि आज नर्बद जैसा दूसरा राजपूत नहीं है "राणा ने पूछा कि उसमें क्या खास गुण है ? उत्तर दिया कि दीवाण उससे कोई भी चीज मांगे तो वह दे सकता है। राणा ने कहा हम उससे एक चीज मंगवाते है क्या वह देगा ? अर्ज हुई कि देगा। नर्बद उस दिन मुजरा करने को नहीं आया था अतएव दीवाण ने खवास से कहलाकर भिजवाया कि "दीवाण ने तुमसे आंख मांगी है ? नर्बद बोला दूंगा। तुरन्त उसने अपनी आंख निकालकर महाराणा को भेंट में दे दी। तब महाराणा को अत्यन्त क्षोभ हुआ और स्वयं नर्बद की हवेली पर गया आश्वासन दिया और उसकी जागीर डेढ़ी करदी।

नर्बद सुप्यारदे की बात

नर्बद की सगाई रुण के स्वामी सीहड़ सांखले की पुत्री सुप्यारदे के साथ हुई थी परन्तु जब वह घायल हुआ और मंडोवर का राज छूट गया तो सुप्यारदे की सगाई जैतारण के स्वामी नरसिंह सींधल के साथ कर दी। एक दिन दरबार में खम्माइच राग गाया तब नर्बद ने लम्बी सांस खीची। तब उससे कुंभा ने उससे पूछा कि क्या बात है ? तब उसने कहा कि "ऐसे ही" राणा ने पूछा कि क्या मंडोबर के लिये ? उसने उत्तर दिया कि "नहीं" तब राणा ने पूछा कि सारी बात साफ २ कहो। तब नर्बद ने कहा कि उसकी "मांग" को सिंधल नरसिंह को ब्याह दी है। तब राणा ने सांखला से कहलाया कि नर्बद को उसकी मांग दो। सांखला ने प्रत्युत्तर किया कि उसका ब्याह तो नरसिंह सिंधल के साथ कर दिया है उसकी छोटी बहिन के साथ ब्याह किया जा सकता है। तब नर्बद ने कहा यह जब ही सकता है कि सुप्यारदे आरती उतारे। शादी तय होगई। जब यह समाचार सिंधल को मिला तो उसने सुप्यारदे को पाबंद कर दिया

कि किसी भी शर्त पर वह आरती नहीं उतारे। निश्चित दिन पर बरात पहुंची। नर्बद की आरती उतारने के लिये जब सुप्यारदे नहीं आई तब राणा की सेना के दबाव के कारण उसने आरती उतारने के लिये स्वीकार कर लिया। जब यह समाचार सिंधल के पास पहुंचा तो उसने सुधारदे कि बड़ी दुर्दशा की। सुप्यारदे ने सारे समाचार नर्बद को लिख भेजे और एक दिन समय पाकर वह नर्बद के साथ भाग निकली। 7 (बी)

राव जोधा की तैयारियां

इस प्रकार हंसाबाई का संदेश प्राप्त होने पर जोधा में कुछ साहस आया किन्तु उसके पास न तो पैसा था और न सेना। वह सेत्रावा के रावत लूणां के पास गया। रावत की रानी भटीयाणी जोधा की मोसी थी। जब राव जोधा ने रावत लूंणा से कुछ घोड़े मांगे तो वह स्पष्टतः राणा के विरुद्ध सहायता देने को इन्कार हो गया और कहा कि मैं राणा का चाकर हूं। इस प्रकार का उत्तर सुनकर वह हताश होकर बैठ गया। उसका मस्तिष्क कुछ नयी योजनाएं बनाने में व्यस्त था। इसी समय रावत की स्त्री भटियाणी ने उससे पूछा कि इस प्रकार सुस्त होकर के क्यों बैठे हो। उसने सारी स्थिति से उसे अवगत कराया। इस प्रकार का प्रत्युत्तर श्रवण कर उसने कहा कि तू ठहर मैं समुचित व्यवस्था कर देती हूं। वह औरत बड़ी चतुर थी। उसने एक युक्ति सोची कुछ जेवर देकर राव को कहा कि इसे तोशाखाना में रख आओ। तदनुसार राव जेवर लेकर तोशाखाने में चला गया तब बाहर से उसने कमरा बंद करके ताला लगा दिया एवं साईस को बुलाकर के कहा कि "ठाकुरों" का आदेश है कि जोधा को २०० घोड़ खोल करके दे दिये जावें। इस प्रकार जोधा को २०० घोड़े मिल गये। राव को कुछ समय पश्चात् कमरे से निकाला। उसे जब सारे समाचार ज्ञात हुये तो वह उसको स्त्री और सईस से बहुत अप्रसन्न हुआ। बहुत उद्योग करने पर भी घोड़े वापस नहीं आ सके [8]।

---

७ (बी) नैणसी की ख्यात जिल्द २ पृ० १२३–१२७।

८. जोधपुर राज्य की ख्यात जिल्द १ पृ० ४२। बांकीदास की ख्यात स० १५६। ओझा–उ० इ० भाग १ पृ० २६१-६२। नै० ख्या० भाग २ पृ० १३०। आसोपा–मारवाड़ का संक्षिप्त इतिहास पृ० १७५।

जोधा को हरभू नामक एक पीर से बड़ी सहायता मिली। यह सांखला जाति का था। टाड ने हरभू की चमत्कारतापूर्ण कहानी लिखी है। नैणसी के अनुसार हरभू ने जोधा को राज्य पुनः प्राप्ति के लिए आशीर्वाद दिया और कुछ मूंग मंत्र करके दिये और कहा कि जब तक ये मूंग तेरे पेट में रहेंगे और जितनी भूमि में तू फिरेगा वह सब तेरी हो जावेगी जो सदैव तेरी संतान के पास विद्यमान रहेगी [9]। जोधा ने राज्य प्राप्त करने के बाद उसे बगहटी गांव दान में दिया। बच्छराज नामक एक जैन श्रेष्ठि ने भी जोधा को बड़ी सहायता दी [10]।

कुंभा की सैनिक व्यवस्था

विभिन्न ख्यातों के अनुसार कुंभा ने मारवाड़ की मुख्य-मुख्य चौकियों पर अपने निम्नांकित सेना नायकों की नियुक्ति कर रक्खी थी—[11]

मंडोर:—सिसोदिया—कुंतल, आका और सुआ। हिंगलू आहडा और हाजा घोरणीया।

सोजत:—राघवदेव राठौड़, झाला विक्रमादित्य, सांचोरा चौहान जैसा, शेखसदू, बीसलदे पंवार।

रोहिट:—सिसोदिया—मांजा २ आसथान और नरा।

चोकड़ी:—सिघल दर माम भाटी बगवीर और रावल इदा।

मंडोर जीतना

जोधा ने हंसाबाई के संदेश से प्रभावित होकर धीरे-धीरे सेना एकत्रित की। मारवाड़ के कई सरदारों को अपने पक्ष में कर लिया। श्री रेऊ के अनुसार मल्लानी व सेतराव के राठौड़ ईदावाटी के ईदा, सांखला हरभू, सेखादे चौहान, बिकुपुर पुंगल आदि के भाटी जोधा के मुख्य सहायक थे। जैसलमेर के भाटी राजा हरजी का पुत्र श्री जैसा

---

९. नै० ख्या० भाग २ पृ० १२६। रेऊ—मा० इ० भाग १ पृ० ८६। आसोपा—मारवाड़ का संक्षिप्त इतिहास पृ० ८६।

१०. ओसवाल जाति का इतिहास पृ० ७। कल्याणजी आनन्दजी की पेढ़ी से प्रकाशित—जैन सर्व तीर्थ सग्रह भाग १ खंड ३ पृ० १६०।

११. रेऊ—मा० इ० भाग १ पृ० ८६। आसोपा—मारवाड़ का संक्षिप्त इतिहास पृ० १६६-६७।

भी सम्मिलित था। इस प्रकार राठौड़ों और भाटियों के सहयोग से सेना एकत्रित करके वह मंडोर जीतने की तैयारी करने लगा। जैसलमेर में उस समय भाटी राजा चाथकदेव था जो पूरसी का पुत्र था अतएव मारवाड़ की ख्यातों का यह वर्णन गलत प्रतीत होता है। यह चाचा संभवतः पुंगल का भाटी था। कहते हैं कि जोधा ने सेना के ३ भाग किये पहला भाग बरजांग के साथ मंडोवर पर भेजा। दूसरा चाम्पा की अध्यक्षता में कोसाना भेजा और तीसरे भाग की अध्यक्षता वह स्वयं कर रहा था। इस सेना ने चौकड़ी पर हमला किया जहां राणा कुंभा की ओर से भाटी बणवीर राव दूदा बिसलदेव आदि नियुक्त थे जो हार गये। यह घटना वि० सं० १५१० में सम्पन्न हुई[12]। इसी समय बगड़ी ठाकुर के पूर्वज अखेराज ने जो राजगद्दी का वास्तविक अधिकारी था अपने हाथ के अंगूठे को तलवार से कुछ काटकर खून से जोधा को राज्य तिलक दे दिया। जोधा ने उसे बगड़ी ग्राम जागीर में दिया। दयालदास की ख्यात में पहले मंडोर फिर चौकड़ी और कोसाणा लेना लिखा है[13]। बांकीदास ने भी चौकड़ी और बीलाड़े से राणा के थाने लेकर फिर सोजत लेना लिखा है[14]। सोजत उस समय राघवदेव राठौड़ के आधीन था। जोधा ने बरजांग को पाली के आस-पास के प्रदेश को जीतने को भेजा जहां उसे मेवाड़ की सेनाओं से कई बार सामना करना पड़ा। इस प्रकार मंडोर के आस-पास का प्रदेश जीत लेने के बाद उसने मंडोर पर आक्रमण किया और उसे विजित कर लिया। युद्ध में शिशोदिया चूंडा के पुत्र मांजा और ठाकुर हिंगलु आहड़ा की मृत्यु होगई। हिंगलु आहड़ा की छत्री बालसमन्द

---

१२. रेऊ—मा० इ० भाग १ पृ० ८६-७। नै० ख्या० जिल्द २ पृ० १२८-३१। वी० वि० पृ० ३२३-२४। सारदा—म० कु० पृ० ७६। ओझा—जोधपुर का इतिहास पृ० २३७।

१३. दयालदास की ख्यात पं० १०८-६। इस ख्यात में मेड़ता और अजमेर से राणा की सेना को भी हराकर जीतना लिखा है। अजमेर पर मालवे के सुल्तान ने आक्रमण किया था। संभवतः जोधा ने मालवे के सुल्तान को अजमेर विजय के समय सहायता दी हो। लेकिन इस सम्बन्ध—फारसी तवारीख और मारवाड़ और मेवाड़ की ख्यातें मौन हैं।

१४. ओझा—जोधपुर राज्य का इतिहास पृ० २४१। बांकीदास की ख्यात सं० ८०३।

पर अब तक बनी हुई है [15]। सोजत पर राघवदेव का अधिकार यथावत् बना रहा था। महाराणा से संधि करते समय सोजत उसे दिला दी थी क्योंकि उसके ज्येष्ठ पुत्र उदा का विवाह राघवदेव की पौत्री और कुंवर बाघा की बेटी से हुआ था एवं उदा की मृत्यु के पश्चात् उसके पुत्र सोजत में रहते थे [16]।

संधि

लगभग ३–४ वर्ष तक युद्ध होने के पश्चात् संधि होगई। इस संधि के अनुसार मारवाड़ और मेवाड़ की सीमाएं निश्चित की गई। कहा जाता है कि जहां आम और आंवली के पेड़ पैदा होते हैं वह भू भाग मेवाड़ में और जहां बबूल होते हैं वह भाग मारवाड़ को दे दिया। यह ऐतिहासिक सीमाबंदी कुछ परिवर्तन के साथ आज भी यथावत् बनी हुई है। इसके अतिरिक्त राव जोधा को अपना पुत्री श्रृंगार देवी का विवाह कुंभा के पुत्र रायमल के साथ कर देना पड़ा। इससे दोनों ही पक्षों में स्थायी शांति होगई। अत्यन्त आश्चर्य है कि रेऊ के मारवाड़ के इतिहास में श्रृंगार देवी के विवाह का उल्लेख नहीं हैं।

मारवाड़ की ख्यातों का अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन

जोधपुर राज्य की विभिन्न ख्यातों में जोधा का मेवाड़ पर आक्रमण करना और राणा का बिना लड़े ही भाग जाना लिखा है। दयाल दास की ख्यात में जोधा का कुंभा के विरुद्ध ५००० बैलगाड़ियों में २०,००० राठौड़ों को बिठाकर ले जाना और कुंभा का बिना लड़े ही भाग जाना लिखा हैं [17]। इसी प्रकार गुण जोधायण में

१५. नै० ख्या० भाग १ पृ० ३२–३३ फुटनोट। ओझा—उ० इ० भाग १ पृ० २६१।

१६. श्री रेऊ राघवदेव से सोजत लेने का उल्लेख किया है एवं राघवदेव और बर जंग के मध्य युद्ध होने एवं बरजांग के घायल होने पर बेरीशाल को भेजने का उल्लेख किया है [रेऊ—मा० इ० भाग १ पृ० ८८] सोजत के लिये बराबर झगड़ा चलता रहा था।

१७. दयालदास की ख्यात भाग १ पृ० १०६।

जोधा की प्रशंसा में लिखा हुआ वर्णन बड़ा प्रसिद्ध है [18]। इसके अनुसार राव जोधा ने चित्तौड़ पर आक्रमण कर, अजमेर से लेकर आबू तक के प्रदेश को भी लूटा एवं चित्तोड़ शहर के किवाड़ जलाये। "छन्द राउ जैतसी रऊ" में भी इस सघर्ष का वर्णन है [19]। नैणसी की ख्यात में इसका वृतान्त है कि कुंभा के दरबार में राव जोधा की तरफ से नापा सांखला रहता था। उसने जोधा को गुप्त रीति से कहलाया कि अभी आओ तो बैर लेने का अच्छा अवसर है। राव जोधा चढ़ा और मार्ग में रूण के सांखलों की बेटी से विवाह किया। जब यह समाचार कुंभा के पास पहुंचा तो उसने नापा को बुलाकर कहा कि तेरे पास कोई समाचार रावजी के आये हैं। उसने कहा कि जोधा आक्रमण करने आ रहा है। इस प्रकार के वचन सुनते ही कुंभा के चेहरे का रंग बदल गया। डर करके सांखला को कहा कि अब क्या करना चाहिये। तब नापा बोला कि "दीवाण सलामत। राठौड़ों के बैर का मामला बड़ा विकट है और वह भी बैर राव रणमल का। यह बैर धरती देने से मिट सकता है नापा अपने मकान पर पहुंचा और जोधा से कहलाया कि यहां तो कुछ भी दम नहीं है फौरन चले आओ। रावजी की फौंजे मेवाड़ में घुसी। तब राणाजी के प्रधान रावजी के पास गये और

---

१८. अजमेर आने आबू बिचै माणस दीसे चाड़िया।
कमधऊ राव कुंभतणा जोधे देश उजाड़िया।
चित्तौड़ तणै चूंडा हरा किमाड़े पर जालिये।
जौहर जाय जौधे कियो रावरिणमल पालिये।

(गुण जोधायण)

१९. जाणियार जोध जाणइ जगत्त।
हिन्दू वइ राइ जीतउ हलत्त ।२५।।
मंडलीक जोध मेवाड़ मोडि।
कूसाणइ भागा कटक कोड़ी ।२७।।
जोधि मेवाड़ काढ़िय जडांहा।
भगवट्ट दींध मोटा मडांह ।।२८।।
आका नई हाजा तणा अन्ग,
पाड़िया जेम दीवइ पतंग।
कलिमूल दीवइ मलिअ माण।
हुंसा हुरंग मन्ना विहार ।।२९।।

(छन्द राउ जइतसीरउ)

कहने लगे कि जो कुछ होना था सो होगया। यह देश तुम्हारा ही बसाया हुआ है तुम ही मारोगे तो बचावेगा कौन ? रावजी बोले कि बैर बांधना तो सहज है लेकिन छूटना बड़ा विकट है। इस पर युद्ध में ही तय करने का निश्चय करके दोनों ओर से सेनायें एकत्रित की गयी। अन्त में द्वन्द युद्ध में फैसला करने का तय हुआ। राणा की तरफ से विक्रमायत झाला और जोधा की तरफ से बीझा उदावत आया। इसमें झाला की मृत्यु होगई। इस पर नापा सांखला जो कुंभा के पास में ही था बोला ! दीवाण सलामत। खांडा एक ही धार से चलता है। जो दशा आपके सामंत की हुई वही दशा आपकी होती। परन्तु अहो भाग्य कि धरती [20] देकर युद्ध टाल दिया। नापा सांखला की वार्त्ता श्री नरोत्तम स्वामी ने हाल ही में राजस्थान भारती के कुंभा विशेषांक में प्रकाशित कराई है। वार्त्ता को देखने से ज्ञात होता है कि कुंभा को योगिक क्रियाएं आती थी और उसने परकाया प्रवेश की विद्या भी सीखी थी। एक बार एक योगी ने कुंभा को हिरण के शरीर में प्रवेश करा स्वयं महाराणा बन गया एवं उक्त घटनाएं उस योगी द्वारा कपट रूप में बने कुंभा के समय में सम्पन्न हुई थी। जब महाराणा वापस सही रूप में आया तो मंडोर को विजय कर लेने और राठौड़ों से संधि का बड़ा विरोध किया [21]। यह कथा राजवल्लभ द्वारा विरचित "भोज प्रबन्ध" से प्रभावित प्रतीत होती है। उसमें भी परकाया प्रवेश आदि का उल्लेख है।

ख्यातों की सत्यता

इन ख्यातों का वर्णन अतिश्योक्ति और चाटुकारिता से भरा है। उस समय जोधा की स्थिति नगण्य थी। उसके सामने कुंभा का बिना लड़े ही भाग जाना पूर्णतया गलत है [22]। सही स्थिति का अन्कन "क्याम खां रासो" में वर्णित है। शिलालेखों

---

२०. नं० ख्या० भाग १ पृ० ३०—३२।

२१. "जिसै में कूंकाऊ आया जो राठौड़ा गान भाटियो। तद राणो कही— राठौड़ कठै छै, कुण मारण वालौ रह्यौ छै ? तद मुसदियां अरज किवी जो राठौड़ मंडोवर छै देस बसायौ आपां सलाह किवी, पछै मंडोवर सूं परै गढ़ पाहाड़ ऊपर करावे छै। तद कद आया। नापे सारी बात हुयी त्युं कही। तद दीवाण नूं झाला लागी, रग फिर फिर गयौ। नापे कही हमें महिना पांच छह हुआ। जमीकत जमीरत उहांरी वड़ई ? कालथां बात कीवी छै आज फौज करसो तद लोक में बात जाहर हुसी तद लोक हांसो कर से .. "
(राजस्थान भारती मार्च १९६३ पृ० १४३)

२२. ओझा उ० इ० भाग १ पृ० २९१।

और साहित्यिक सामग्री के आधार पर कुंभा शत्रुओं का दृढ़कर मुकाबला करने वाला था उसकी वीरता की प्रशंसा फारसी तवारीखें-गुलशाने-इब्राहीमी, तबकात-इ-अकबरी मिरात-इ-सिकन्दरी आदि में भी है। इन फारसी इतिहासकारों ने सुल्तानों द्वारा मेवाड़ विजय कर सकने का उल्लेख नहीं किया है। अतएव जोधा द्वारा चित्तौड़ के किवाड़ जलाना आदि वृतान्त असत्य हैं। राव जोधा को किसी भी मुसलमान सुल्तान द्वारा राणा के विरुद्ध सहायता देने का उल्लेख फारसी तवारीखों में नहीं है। केवलमात्र तबकात-इ-अकबरी में एक संदर्भ है कि गुजरात के साथ संधि करने का उद्देश्य मालवे के सुल्तान का मारवाड़ को जीतना था[२३]। क्या तब जोधा को मालवे के सुल्तान ने सैनिक सहायता दी थी इसका उल्लेख न तो मारवाड़ की ख्यातों में और न अन्य फारसी तवारीखों में ही है। निजामुद्दीन ने इसमें कई स्थलों पर नामों की गलतियां की हैं। संभवतः उसका उद्देश्य यहां मेवाड़ ही रहा होगा जो फारसी लिपि की अपूर्णता के कारण मारवाड़ बन गया है। अगर स्यामखां रासो का वर्णन सही होता कायम खानी शम्साखां ने जो जोधा का दामाद था उसे अवश्य सहायता दी होगी। नैणसी का वृतान्त भी आधारहीन है। नापा सांखला की वार्ता में राणा कुंभा का तो हिरण के शरीर में प्रवेश करना और राणा के शरीर में योगी प्रवेश करना भी लिखकर उसी काल में ये घटनाएं होना माना है, जो तथ्य से परे हैं। ये सब ख्यातें १८ वीं शताब्दी के आस-पास लिखी गई प्रतीत होती है। इन ख्यातों में जोधा की पुत्री शृंगारदेवी के महाराणा कुंभा के पुत्र रायमल के विवाह का उल्लेख नहीं है। ये आश्रयदाताओं को प्रसन्न करने के लिए भाटों द्वारा मनगढ़न्त कथाएं लिखी प्रतीत होती हैं एवं इनमें जोधा और कुंभा के संघर्ष को अतिशयोक्ति पूर्ण कथाएं पूर्णरूप से काल्पनिक है।

---

२३. तब० अक० भाग ३ पृ० ५२५ यह मेवाड़ के लिये ही प्रयुक्त है क्योंकि इसमें आगे यह भी लिखा है कि गुजरात के आक्रमण और असहयोग का भय था एवं इस प्रदेश के विभाजन का प्रस्ताव भी रखा था अतएव यह मेवाड़ के लिये ही प्रयुक्त हुआ है।

पांचवा अध्याय

गुजरात और मालवे के सुल्तानों से युद्ध

गर्जन्मदोत्सिक्तगजोर्मिमालं,
तौरुष्कसैन्यार्णवमध्यमग्नाम् ।
श्रीचित्रकूटावनिमुद्धरन्तं
वराहमाद्यं यमिहस्तुवन्ति ॥१।१।२३

संगीतराज का पाठ्यरत्नकोश

गुजरात और मालवे के सुल्तानों से युद्ध

कुंभा के समय मेवाड़ राज्य बहुत विस्तृत हो गया था। मेवाड़ की मुख्य भूमि के अतिरिक्त गौड़वाड़, आबू, बसंतगढ़, पींडवाड़ा, मारवाड़ राज्य के पाली और जोधपुर जिलों का भू भाग, अजमेर, गागरोण, मन्दसौर, नराणा आदि इसमें सम्मिलित थे। इसके अतिरिक्त हाड़ोती के हाड़ा, टोडा और गागरोण के राजा, आदि कई सामंत राजा थे जो समय-समय पर कर और सेना द्वारा सहायता प्रदान करते थे। राजस्थान में मेवाड़ राज्य ही उस समय सबसे उल्लेखनीय था और नैणसी का यह कथन कि ३६ ही राजकुल उसकी चाकरी देते थे कोई अत्युक्ति नहीं है।

मालवा और गुजरात के सुल्तान बड़े महत्वाकांक्षी थे। वे अपने राज्य को राजस्थान में भी फैलाना चाहते थे। उन के लिए सबसे बड़ी बाधा महाराणा कुंभा की शक्ति थी। उस समय मेवाड़ राज्य के उत्तर पूर्व में नागौर, पश्चिम दक्षिण में गुजरात और दक्षिण में मालवा के मुसलमानी राज्य थे। इन राज्यों से मेवाड़ का बराबर युद्ध होता रहता था। कुंभा के समय कई बार इनसे युद्ध करना पड़ा था। दुर्भाग्य से इन युद्धों का वर्णन फारसी तवारीखों के अतिरिक्त तत्कालीन शिलालेखों में अल्प मात्रा में मिलता है अतएव हमें इन युद्धों के विस्तृत विवरण के लिए फारसी तवारीखों पर आश्रित रहना पड़ता है।

मोहम्मद खिलजी ने खण्डवा और सरगुजा जीत कर कीर्ति प्राप्त करली थी। उसने महाराणा कुंभा द्वारा जीते हुये हाडोती को वापस [1] अपने अधिकार में लाने के लिये हि० सं० ८४४ (१४४० ई०) में वहां प्रयाण किया। संभवतः हाडोती में कोई उल्लेखनीय सफलता नहीं मिली। इसी समय मेवाती सरदार जलालखां, अहमदखां हसनखां आदि ने उसे दिल्ली पर आक्रमण करने को प्रोत्साहित किया। यह कहीं २

---

१. मासिर-इ-मोहम्मद शाही पत्र सं० १११ (ब)—मिडिवल मालवा के पृ० ११५ के फुटनोट सं० ३ से उद्धृत।

हि० सं० ८४४ (१४४० ई०) में होना वर्णित है। [2] लेकिन मासिर-इ-मोहम्मद शाही में दिल्ली पर आक्रमण की तिथि ८४५ हि० (१४४२ ई०) दी है। सुल्तान हाडोती से हिन्डोन होकर दिल्ली गया। दिल्ली में तत्कालीन सुल्तान सय्यद मोहम्मद बहुत घबराया और पंजाब की ओर भागना चाहा किन्तु उसे आश्वासन दे दिया। इससे वह युद्ध के लिये तैय्यार होगया। इसकी तरफ से अल्लाउद्दीन और बहलोल लोदी मुख्य सेनापति थे। मालवे के सुल्तान की तरफ से गयासुद्दीन और फिदईखां थे। लेकिन रात्रि में मालवे के सुल्तान को स्वप्न आया कि मांडू में एक अपरिचित व्यक्ति ने शासन प्राप्त कर लिया है जिसने सुल्तान होशंगशाह के मकबरे पर जाकर भी अपना शीश झुका लिया और इसलिए जनता ने प्रसन्न होकर उसे सुल्तान स्वीकार कर लिया है [3]। निजामुद्दीन ने गुजरात के सुल्तान के आक्रमण का हाल जानकर बिना हार जीत के ही लौटना लिखा है। समसामयिक लेखक शहीब हकीम ने मालवा की विजय होना लिखा है। तारीख-इ-दाउदी में मालवे के सुल्तान की हार होना लिखा है। संभवतः यह युद्ध अनिर्णित हुआ था [4]। मोहम्मद खिलजी के लौटने की तैयारी करने लगा। इसी समय सैय्यद महम्मद ने अपने पुत्र को संधि हेतु भेजा। संधि होने के पश्चात् वह वापस लौट गया। बहलोल लोदी ने पीछा किया और प्रचुर मात्रा में सैनिक सामग्री लूट ली [5]।

खेमा का मालवे में जाना

जैसा कि ऊपर उल्लेखित किया जा चुका है कुंभा के एक छोटा भाई और था जिसका नाम खेमा या क्षेमकर्ण था। यह कुंभा से नाराज था और मेवाड़ का राज्य प्राप्त करना चाहता था। इसी कारण वह मालवे के सुल्तान मोहम्मद खिलजी

२, डे—मिडिवल मालवा पृ० ११५। ब्रि० फ० जिल्द ४ पृ० २०५–२६। मुन्तखबाब-उत-तवारीख (रेंकिंग) भाग १ प० ३६८। निजामुद्दीन ने भी हि० सं० ८४४ ही माना है [तब० अक० (अ०) भाग १ पृ० ३०७।

३. ब्रि० फ० जिल्द ४ पृ० २०६। मिडिवल मालवा पृ० ११६–११८।

४. पांडे—फर्स्ट अफगान एम्पायर पृ० ५०। मिडिवल मालवा पृ० ११७–१८

५. पांडे—उपरोक्त

के पास गया। मोहम्मद खिलजी कुंभा की बढ़ती हुई शक्ति से सशंकित था और वह इससे संघर्ष टालता जा रहा था। अतएव उसने खेमा का स्वागत किया और उसको यथोचित सन्मान दिया। उसे गामपुरा भानपुरा के पास कुछ जागीर दी [6]। उससे मेवाड़ के मार्ग और राजकीय गतिविधियों की सूचना मिलती रहने से वह अपने कार्यों का अधिक सुगमता से कर सकने में सफल हो सका था।

खेमा उसे मेवाड़ पर आक्रमण करने को प्रोत्साहित कर रहा था। किन्तु समसामयिक लेखक शाहिब हकीम के शब्दों में वह महाराणा कुंभा पर प्रारम्भिक वर्षों में आक्रमण को टालता जा रहा था। इसका मुख्य कारण उसने यह दिया है कि उसे यह भय था कि कहीं गुजरात का सुल्तान आक्रमण न करदें। श्री सुरेन्द्र कुमार डे ने इसे अधिक स्पष्ट करते हुये लिखा है कि सुल्तान ने हाल ही में दिल्ली आक्रमण के कारण नुकशान उठा चुका था। वह कुंभा की शक्ति से संशंकित था अतएव वह इसके साथ युद्ध को टालता रहा [7]।

इसके पूर्व मेवाड़ का राजकुमार चूंडा भी वर्षों तक मालवा रहा था किन्तु उसमें और इस खेमा में बड़ा अन्तर था। चूंडा ने कभी भी मेवाड़ पर मालवे के सुल्तान को प्रोत्साहित करके आक्रमण करने को प्रोत्साहित नहीं किया जब कि खेमा ने राज्य प्राप्ति की इच्छा से सुल्तान को प्रोत्साहित किया था।

मालवे के सुल्तान का कुंभलगढ़ पर आक्रमण (हि० सं० ८४६ या १४४२ ई०)

इस आक्रमण का मुख्य कारण सारंगपुर के युद्ध का बदला लेना था। महाराणा ने उमरखां को सहायता दी थी अतएव उससे बदला लेना भी आवश्यक था। वीरविनोद में सुल्तान [8] की गिरफ्तारी की शर्मिन्दगी को बदला लेने हेतु आक्रमण करना लिखा है जो गलत है। इस आक्रमण का वर्णन मासिर-इ-मोहम्मद शाही,

---

६. वी० वि० पृ० १०५। ओझा—प्रतापगढ़ राज्य का इतिहास पृ० ४६। डे—मिडिवल मालवा पृ० १७१।

७. डे—मिडिवल मालवा पृ० १७०।

८. वी० वि० भाग १ पृ० ३२५। ओझा—उ० इ० भाग १ पृ० २६८। शारदा—म० कु० पृ० ८६।

तबकात–इ–अकबरी और तारीख–इ–फरिश्ता में समान रूप से ही दिया गया है। सुल्तान का विचार संभवत: दिल्ली आकमरण की वापसी के बाद ही आक्रमण करने का था। किन्तु कालपी के हाकिम अब्दुल कादिर ने स्वाधीनता की घोषणा कर दी। अतएव उसको दडित करना आवश्यक था। जब उसके आगमन का समाचार कालपी की तरफ सुना तो कादिरखां ने अपने शिक्षक अलीखां को सुल्तान के पास भारी रकम लेकर मांडू भेजा जिसे स्वीकार करने पर वह २६ रज्जब ८४६ (३०।११।१४४२) को मेवाड़ की तरफ बढ़ा। उसने बनास नदी को पार करके मेवाड़ में प्रवेश किया। मासिर–इ–मोहम्मद शाही के अनुसार वह मेवाड़ के सीमा प्रान्त में होकर गया था। जहां उसने बेतम नदी को पार किया था। तबकाते अकबरी में नदी का नाम भीम दिया है और फरिश्ता द्वारा बनास [९] नाम दिया है। सुल्तान केलवाड़ा डूंगरपुर और आहड़ होकर गया प्रतीत होता है अतएव बनास नाम ही ठीक प्रतीत होता है। मासिर–इ–मोहम्मद शाही के अनुसार वह पहले सारंगपुर गया और वहां से केलवाड़ा गया। अतएव ऐसा प्रतीत होता है कि सारगपुर से कांथल में होकर वह बागड़ में आया हो।

वीर विनोद[१०] में लिखा है कि महाराणा उस समय बून्दी की तरफ गये हुये थे अतएव लौटते समय मांडलगढ़ के पास युद्ध हुआ। लेकिन यह गलत है क्योंकि सुल्तान सीधा केलवाड़ा आया था। उस समय मांडलगढ़ में युद्ध होने का उल्लेख फारसी तवारीखों में नहीं है। मासिर–इ–मोहम्मद शाही में यही लिखा है कि सुल्तान ने कुछ सेना को मुल्क को बर्बाद करने मंदिरों को विनष्ट करके उनके स्थानों में मस्जिद बनाने और नागरिकों को बंदी बनाने को भेजी और मुख्य सेना बराबरे आगे बढ़ती गई एवं वह हर मुकाम पर २–३ दिन ठहर कर बराबर देख लेता था कि मुल्क को बर्बाद किया गया है या नहीं कुंभलगढ़ जिले के केलवाड़ा ग्राम पर इस सेना ने आक्रमण किया। इसकी रक्षा वैणीराय या दीपसिंह नामक एक राजपूत सरदार द्वारा करने का

---

९. मासिर–इ–मोहम्मद शाही पत्र सं० १२८ (ब)—डे कृत मिडिवल मालवा पृ० १७३ से उद्धृत। ब्रि० फ० जिल्द ४ पृ० २०८। तब० अक० (अ०) जिल्द ३ पृ० ५१२।

१०. वी० वि० भाग १ पृ० ३२५। ओझा० उ० इ० भाग १ पृ० २९८। शारदा—म० कु० पृ० ८६। मिडिवल मालवा पृ० १७३।

उल्लेख मिलता है [11]। सुल्तान ने बाणमाता के मन्दिर पर आक्रमण किया। यह मन्दिर केलवाड़ा के द्वार के समीप अवस्थित है। यह किलेनुमा बना हुआ था और इसमें सैनिक सामग्री रखी रहती थी। वीर विनोद के अनुसार युद्ध बराबर ७ दिन तक चलता रहा। घमासान युद्ध के पश्चात् सुल्तान इसे ले सकने में सफल हो सका था। कई राजपूत काम आये। निजामुद्दीन और फरिश्ता के ग्रंथों में मन्दिर को विध्वंस करने का रोमांचकारी वर्णन मिलता है। इनमें लिखा है कि मन्दिर में आग लगा दी गई और अग्नि से तप्त प्रतिमाओं पर ठंडा जल डाल दिया गया इससे मूर्त्तियों के टुकड़े-टुकड़े हो गये। इन टुकड़ों को कसाइयों को मांस तोलने को दे दिये। एक मूर्त्ति जिसे फरिश्ता ने मेंढें की, टीकाकार ब्रिग्ज ने नन्दी की और वीर विनोद में बाण माता की लिखी है पकाकर चूना बनाया और राजपूतों को पान में खिलवाया। मासिर–इ–मोहम्मद शाही में इस घटना का उल्लेख नहीं है। इस ग्रन्थ में दुर्ग का नाम मछिन्दरपुर लिखा है जो कुंभलगढ़ का नाम है। कामराज कतिसार ग्रन्थ की प्रशस्ति में इस का नाम माहोर–दुर्ग दिया है [12]। सुल्तान इस कुंभलगढ़ को ले सकने में सफल नहीं हो सका।

केलवाड़ा से चार मील दूर रीछेड़ और पांवां ग्रामों पर सुल्तान ने आक्रमण किया और जिनको पूर्ण रूप से विनष्ट कर दिया [13] यहां तक कि पशुओं के लिये चारा तक नहीं रहा। नागरिक उक्त स्थान छोड़-छोड़ कर भाग खड़े हुये। इसी समय सुल्तान को सूचना मिली महाराणा कुंभा चित्तौड़ में पहुंच गया है अतएव उसने भी चित्तौड़ पर आक्रमण किया। यहां भी वह इस दुर्ग को जीतने में सफल नहीं हो सका था। फरिश्ता लिखता है कि महाराणा भागकर पहाड़ों में जा छिपा जहां भी सुल्तान ने पीछा किया। तबकात–इ–अकबरी के अनुसार सुल्तान ने एक सेना को तो दुर्ग पर

---

११. तब० अक० (अ०) जिल्द ३ पृ० ५१२। ब्रि० फ० जिल्द ४ पृ० २०९। वी० वि० भाग १ पृ० ३२४। डे—मिडिवल मालवा पृ० १७३–७४।

१२. ब्रि० फ० जिल्द ४ पृ० २०९ का फुटनोट। तब० अक० (अ०) जिल्द ३ पृ० ५१२। मासिर–इ–मोहम्मद शाही में मंदिर के विध्वंस करने का ही उल्लेख है। इसी को दृष्टिगत रखते हुये श्री डे इस घटना को असत्य मानते हैं—मिडिवल मालवा पृ० १७४ फुटनोट ३।

१३. मिडिवल मालवा पृ० १७४–७५।

अधिकार करने और स्वयं ने सुदढ़ स्थिति संभालकर मोर्चा ले लिया [14] एवं हमेशा मुल्क को बर्बाद करने के लिए सैनिक टुकड़ियें भेजता रहा। इसके पश्चात् उसने पिता की अध्यक्षता में मन्दसौर के आस-पास के राणा द्वारा विजित कांथल प्रदेश को वापस लेने के लिए सेना भेजी [15]। निजामुद्दीन ने मन्दसौर के स्थान पर शादियाबाद (मांडू) के आस-पास के प्रदेश को राणा से वापस लेने का उल्लेख किया है [16]। मासिर–इ–मोहम्मद शाही में इस कांथल प्रदेश में आक्रमण का मुख्य उद्देश्य विद्रोही सामंत कालबा को आधीन बनाना ही लिखा है। यह सामन्त राणा के आधीन हो गया था। सुल्तान के पिता आजम हुमायूं मुगीस की मन्दसौर में मृत्यु हो गई। शिहाब हकीम और फरिश्ता ने बीमारी से मृत्यु होना वर्णित किया है। पिता की मृत्यु पर सुल्तान मन्दसौर पहुंचा और मृत शरीर को माण्डू ले गया। निजामुद्दीन और फरिश्ता ने लिखा है कि पिता की मृत्यु पर उसे अत्यन्त दुःख हुआ यद्यपि पिता की उम्र के हिसाब से ऐसी मृत्यु पर संताप नहीं करना चाहिये था लेकिन उसने दुःख से अपने बाल नोंचना शुरू कर दिया और एक विक्षप्त पुरुष की तरह मांडू रवाना हुआ। उसने मन्दसौर के आस-पास पड़ी हुई अपनी सेना का सेनापति ताजखां को बनाया और उसे आजमखां की उपाधि भी प्रदान की व मांडू से लौटने पर सुल्तान स्वयं चित्तौड़ में अवशेष सेना के साथ जा मिला। जहां आस-पास के कुछ छोटे नगरों पर आक्रमण कर उन्हें विनष्ट कर दिया [17]।

इस सेना की दोनों ही क्षेत्रों में बुरी तरह से पराजय हुई [18] और सुल्तान घेरा उठाकर रवाना हो गया। फरिश्ता लिखता है कि वर्षा ऋतु समीप आ जाने के कारण वह घेरा उठाकर रवाना होगया। महाराणा ने उसकी सेना पर शुक्रवार तारीख

---

१४. तब० अक० (अ०) भाग ३ पृ० ५१४।

१५. ब्रि० फ० जिल्द ४ पृ० २०९।

१६. मिडिवल मालवा पृ० १७५। तब० अक० (अ०) भाग ३ पृ० ५१४।

१७. ताजखां का असली नाम मलिक बरन्बुरदार था। मोहम्मद खिलजी ने इसे हि० सं० ८३९ (१४३५ ई०) में ताजखां की उपाधि दी थी [ब्रि० फ० जिल्द ४ पृ० १९६]

१८. वी० वि० भाग १ पृ० ३२५। ओझा—उ० इ० भाग १ पृ० २९८। सारदा—म० कु० पृ० ८६।

२५ जिलहिज हि० सं० ८४६ (या २६-४-१४४३) को रात्रि में आक्रमण किया। महाराणा की सेना में १० हजार अश्वारोही और २३ हजार पैदल सैनिक थे। फरिश्ता ने १० हजार अश्वारोही और ६ हजार पैदल सैनिकों का उल्लेख किया है। सुल्तान के सैनिकों ने दृढ़ता पूर्वक सामना किया और यह आक्रमण पूर्ण रूप से विफल रहा। दूसरी रात्रि को सुल्तान ने राणा की सेना पर आक्रमण किया जिसमें तबकातें अकबरी के अनुसार महाराणा को भी चोट आई [19] एव चित्तौड़ की ओर लोटने को बाध्य होना पड़ा। सुल्तान चित्तौड़ विजय को अगले वर्ष पर छोड़कर मांडू लौट आया। मुसलमान लेखकों का यह वर्णन पक्षपात पूर्ण है। अप्रेल के मास में ही वर्षा ऋतु शुरू नहीं होकर १५ जुलाई से होती है। मई और जून दो माह में वह और युद्ध कर सकता था। सच तो यह है कि सुल्तान न तो कुंभलगढ़ ले सका और न चित्तौड़ ही। दोनों ही दुर्गों के तलहटी में युद्ध करके ही वह लौट गया। मन्दसौर के आस-पास भी उसकी सेनायें हारी थी एवं वहां युद्ध के लिये हि० सं० ८४७ (१४४४ ई०) में भी विद्यमान थी। फरिश्ता लिखता है कि जब जोनपुर के शासक ईब्राहीम शरकी के पुत्र मोहम्मद शरकी का दूत आया तब मोहम्मद खिलजी ने उसे यह प्रत्युत्तर दिया कि उसकी सेनायें मन्दसौर के आस-पास काफिरों को धर्म परिवर्तन हेतु लगी हुई है [20] इत्यादि। इससे ज्ञात होता है कि सुल्तान की सेनायें वहां राणा से युद्ध कर रही थी। संगीतराज के पाठ्यरत्नकोश के अलंकारोल्लास से मालवे के सुल्तान को युद्ध की हठ छोड़ देने का कहा गया है [21]।

गागरोण विजय (हि० सं० ८४७ या १४४३ ई०)

जब मालवे के सुल्तान ने देखा कि महाराणा कुंभा की शक्ति को तोड़ना आसान नहीं है तो वह मेवाड़ में आक्रमण करने के स्थान पर सीमावर्ती दुर्गों पर अधिकार करने की चेष्टा करने लगा। इसी दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर उसने २ शब्बान हि० सं० ८४७ या २५-११-१४४३ ई० को गागरोण को जीतने के लिये

---

१९. मिडिवल मालवा पृ० १७५। तब० अक० (अ०) भाग ३ पृ० ५१५। ब्रि० फ० भाग ४ पृ० २१०। शारदा—म० कु० पृ० ८६-८७।

२०. तब० अक० (अ०) भाग ३ पृ० ५१६। ब्रि० फ० भाग ४ पृ० २११।

२१. संगीतराज के पाठ्यरत्नकोश के अलंकारोल्लास का श्लोक सं० ६।

रवाना हुआ । ऊपर पृ० ७४–७५ पर यह वर्णित किया जा चुका है कि महाराणा कुंभा ने इस दुर्ग एवं खीचीवाड़ा को जीत लिया था । यह दुर्ग मालवा एवं हाडोती के मध्य में होने के कारण बड़ा महत्वपूर्ण है । खींचीवाड़ा पर अधिकार रखने से वह रणथंभोर और हाडोती में आसानी से जा सकता था । अतएव उसने सबसे पहले आहू नदी के किनारे पर अपना डेरा डाला । यह स्थान झालावाड़ की तरफ का भू भाग रहा होगा । इससे आगे बढ़कर सुल्तान कालीसिंध के किनारे पर जा पहुंचा । गागरोण दुर्ग के पास ही कालीसिंध में आहू नदी मिलती है । कालीसिंध पाटन की तरफ से आती है । अतएव वहीं सुल्तान का सैनिक मुकाम रहा होगा । राजपूतों ने भी दुर्ग की सुरक्षा की पूरी व्यवस्था कर रक्खी थी । मासिर–इ–मोहम्मद शाही से प्रगट होता है कि वहां रसद सामग्री इतनी अधिक जमा थी कि कई वर्षों तक चल सकती थी । आस-पास के राजपूतों के अतिरिक्त महाराणा कुंभा ने भी सैनिक सहायता दी थी । इस सेना के साथ दाहिर नामक एक सेना नायक के जाने का उल्लेख मिलता है ।

महम्मद शाह के गागरोण के पास डेरा डालते ही राजपूतों ने उस पर आक्रमण किया । युद्ध ७ दिन तक चलता रहा । इसमें दाहिर की मृत्यु होगई इससे राजपूतों के हौसले मन्द पड़ गये । खीची राजा प्रहलान सिंह दुर्ग से भागने की असफल चेष्टा करते हुये भीलों के हाथ से मारा गया । जफर–उल–वलिया में इसकी मृत्यु का उल्लेख नहीं है । इस प्रकार गागरोण दुर्ग हमेशा के लिये जीत लिया गया और वहां गयासुद्दीन को नियुक्त किया । उसके पास विशाल सेनायें भी लगा दी जिसकी सहायता से हाडोती जीता जा सके । यह बारां मासिर–इ–मोहम्मद शाही के अनुसार गागरोण के जीत लेने से २४ दूसरे किले भी जीत लिये[२२] । इस ग्रन्थ में यह भी लिखा है कि जब महाराणा कुंभा ने गागरोण की हार सुना तो उसने यह कहलाया कि इस विजय को सुल्तान बहुत बड़ी विजय नही मानें क्योंकि इतनी सी जमीन तो वह भाटों को दान में दे देता है[२३] ।

---

२२. उपरोक्त अध्याय ३ पृ० ७४-७५ । सुरेन्द्र कुमार डे—मिडिवल मालवा पृ० १७६–८ ।

२३. मिडिवल मालवा पृ० १७८ फुटनोट ३ ।

मन्दसौर अजमेर और मांडलगढ़ पर आक्रमण (हि० स० ८५६)

गतवर्ष की हार का बदला लेने के कारण सुल्तान सेना सहित मन्दसौर की तरफ बढ़ा। मासिर-इ-मोहम्मदशाही में वर्णित है कि सुल्तान पूर्वी राजस्थान और छप्पन के क्षेत्र में था तब अजमेर के कुछ नागरिक उसके पास मन्दसौर पहुंचे जिसे उसने अभी ही जीता था। उन्होंने अजमेर के हिन्दू शासक के विरुद्ध उकसाया।[45] यह स्थान कुम्भा के अधिकार में था। वहां उस समय गजाधर शासक था। सुल्तान ने सैफुल्लाह को वहां से कुछ सेना सहित जानागढ़ को जीतने के लिये भेजा। जहाँ कुछ युद्ध के पश्चात् राजपूतों की हार हो गई। स्त्रियों ने जौहर किया। इस प्रकार यह दुर्ग कुंभा के आधीन वि० सं० १४९४ से १५११-१२ तक ही रहा था। यहां से सुल्तान रणथंभोर की ओर बढ़ा। वहाँ झाइन का किला जीत लिया और वहां से टोड़ाभीम गया और वहां से अजमेर गया। इस प्रकार उसने मेवाड़ के सीमा प्रान्त का मार्ग अपनाया।[46]

अजमेर पंहुचते ही सुल्तान ने दरगाह शरीफ के सामने अपना डेरा डाला। गजाधरसिंह अपनी सेना सहित दुर्ग से निकला और मुसलमानों पर आक्रमण किया। युद्ध चार दिन तक चलता रहा। चौथे दिन राजपूतों की भागती हुई सेना के साथ मालवे के सैनिक भी मिल गये और दुर्ग के द्वार खोल दिए। अन्त में युद्ध करते हुए गजाधरसिंह की मृत्यु हो गयी और अजमेर पर मालवे के सुल्तान का राज्य हो गया। वहां उसने ख्वाजा निजामुद्दीन को शफीखां की उपाधि देकर नियुक्त किया।[47] दरगाह शरीफ में एक मस्जिद बनाई। तबकात-इ-अकबरी की कुछ हस्तलिखित प्रतियों में अजमेर के स्थान पर आम्बेर जीतना लिखा है सो गलत प्रतीत होता है।[48]

---

४५. मिडिवल मालवा पृ० १८३–८४।

४६ जफ़र उल वालिया उत्तर-तैमूर कालीन भारत पृ० १५४– १५५।

४७. मिडिवल मालवा पृ० १८५। तब० अक० (अ०) भाग ३ पृ० ५२८। ब्रि० फ० जिल्द ४ पृ० २२२। शारदा—अजमेर हिस्टोरिकल एंड डिस्क्रिप्टिव पृ० २३। शारदा—म० कु० पृ० ९०–९२।

४८. भारतीय विद्या भवन द्वारा प्रकाशित "देहली सुल्तानेत" के पृ० ४२६ का फुटनोट १५।

अजमेर को कुंभा ने शीघ्र ही वापस जीत लिया था। इसका मुख्य आधार यह है कि फारसी तवारीखों में अजमेर में मालवे के सुल्तान के प्रशासक का आगे उल्लेख नहीं मिलता है। महाराणा कुम्भा के बाद अवश्य इसे मालवे के सुल्तान गयासुद्दीन ने जीत लिया था।[49]

सुल्तान ने वहां से मांडलगढ़ पर आक्रमण किया एवं बनास नदी के तट पर डेरा डाला। राणा कुम्भा उस समय मांडलगढ़ में ही विद्यमान था। उसने अपनी सेना के तीन भाग किये। मालवा के सुल्तान ने भी अपनी सेना का इसी प्रकार से विभाजन किया। एक भाग ताजखां के निर्देशन में, दूसरा अलीखां के पास रक्खा।[50] राणा की सेना में वाण और भालो सहित कई भील सैनिक थे। राणा की इस सेना की कुशलता कारण सुल्तान की हार हो गई। फारसी तवारीखों में इस हार का वर्णन[51] एक पक्षीय है।

दूसरे दिन सब वजीरों उमरावो ने सम्मिलित होकर सुल्तान का क्षत विक्षत स्थिति की ओर ध्यान आर्कषित किया। इसी समय सुल्तान की हार हो जाने के कारण वह मांडू लौटने को बाध्य हुआ था। निजामुद्दीन और फरिश्ता दोनों में ही सुल्तान की सेना की स्थिति और यात्रा सामान की कमी के कारण माँडू लौटना लिखा है। तारीख-इ-फरिश्ता का अनुवादक ब्रिग्ज लिखता है कि यहाँ युद्ध का परिणाम संदिग्ध (Drawn) वर्णित

---

४९ मेरा लेख "सुल्तान गयासुद्दीन एण्ड राजस्थान" जो जरनल आफ राजस्थान हिस्टोरिकल इंस्टिट्यूट के भाग ४ अंक १ में प्रकाशित हुआ दृष्टव्य हैं।

५०. मिडिवल मालवा पृ० १८६। तब० तक० (अ०) पृ० ५२९। ब्रि० फ० जिल्द ४ पृ० २२३।

५१. श्री सुरेन्द्र कुमार डे ने मिडिवल मालवा में बेनी प्रसाद और डे का उल्लेख करते हुए लिखा है कि राजपूतों ने १४४० ई० में मांडलगढ़ जीतना लिखा है जब कि यह युद्ध १४५५—५६ ई० में हुआ है अतएव राजस्थान के लेखकों द्वारा मानी गई विजय संदेहास्पद है। वस्तुतः १४९६ (१४४० ई०) राणकपुर के लेख के पश्चात् कुंभलगढ़ (१५१७ वि०) के लेख में भी इसका उल्लेख है। इसके अतिरिक्त डे के तर्क आश्चर्यजनक एवं एक पक्षीय हैं। निश्चित रूप से इस युद्ध में कुंभा की ही विजय हुई थी।

किया है।[52] किन्तु यहां निसंदेह सुल्तान की हार हुई थी। मांडलगढ़ में लिखे वि० सं० १५११ वैशाख बुदि ७ (श्रावणांत) के एक जैन ग्रन्थ में जो कामां में है, मांडलगढ़ के शासक का नाम महाराणा कुम्भा दिया है।[53]

इस प्रकार इस आक्रमण में मालवे के सुल्तान को कोई स्थाई लाभ नहीं हो सका। जो प्रदेश उसने विजित किये थे वे वापस कुम्भा द्वारा विजित कर लिए गए।

नागौर का युद्ध (हि० स० ८५९-६० और १४५५ एडी)

मालवे के सुल्तान मोहम्मद खिलजी ने हि० स० ८५५ (१४५१ एडी) में नागौर पर आक्रमण किया था। उस समय नागौर का हाकिम फिरोज था। उसने गुजरात के सुल्तान से सहायता चाही जिसने शीघ्र ही सदात अल्लाखां को कियामुलमुल्क की उपाधि देकर भेजा। वह सांभर तक पहुंचा ही होगा कि मालवे का सुल्तान लौट गया। इसके कुछ समय पश्चात् फिरोज मर गया। उसके दो पुत्र शम्सखां और मुहाफिजखां थे। इनमें शम्सखां बड़ा और मुहाफिजखां छोटा था। मुहाफिजखां ने शम्सखाँ को बलात् राज्य से निकाल दिया। शम्सखां ने कुम्भा से सहायता चाही। तबकाते अकबरी के अनुसार में निजामुद्दीन लिखता है कि राणा ने उससे एक शर्त रखी थी कि विजय के पश्चात् किले की एक बुर्ज गिरानी पड़ेगी जो महाराणा मोकल के नागौर के सुल्तान से हारने के बदले के रूप में होगी। किन्तु यह कथन सर्वथा कल्पना पूर्ण है क्योंकि १४९६ के राणकपुर के लेख के अनुसार कुम्भा ने नागोर १४९६ के पूर्व ही विजय कर लिया था। अतएव अब इस प्रकार के बदले की आवश्यकता ही नहीं थी। फरिश्ता ने केवलमात्र बुर्ज गिरने की शर्त का उल्लेख किया है। तारीख-इ-फरिश्ता का अनुवादक ब्रिग्ज लिखा है कि विद्रोही एवं हठी राजाओं को हराने पर उनके दुर्ग का एक बुर्ज गिरा दिया जाता था और उसकी मरम्मत बिना स्वीकृति के नहीं की जा सकती थी। राणा की सेना के नागौर में पहुंचते ही मुआफिजखां बिना संग्राम किए ही नागौर का राज्य शम्सखां को दे

---

५२. ब्रि० फ० जिल्द ४ पृ० २२३।

५३. "संवत् १५११ वर्षे वेशाखवदि ७ गुरु पक्षे पुण्यनक्षत्रे सकलराजिशिरोमुकुटमाणिक्यमरीचियेधारिकृतचरणकमलपादपीठस्य श्रीराणाकुंभकर्णसकलसाम्राज्यधुरविभ्रामणस्य समये श्री मंडलगढ़शुभस्थाने आदिनाथचैत्यालये..."

दिया । शम्सखां ने राणा द्वारा किये गये उपकार को भुलाकर उससे ही विरोध करना शुरू कर दिया । राणा की इच्छानुसार किले का एक बुर्ज नहीं गिराया एवं इसके स्थान पर उसकी आवश्यक मरम्मत करवा दी । राणा को बड़ा क्रोध आया और उसने बड़ी सेना लेकर शम्सखां पर आक्रमण कर दिया । शम्सखां इतना अधिक शक्तिशाली नहीं था कि महाराणा की विशाल सेनाओं का सामना कर सके । अतएव वह अपने परिवार को लेकर अहमदाबाद भाग गया । वहां उसने सुल्तान को प्रसन्न करने के लिए अपनी पुत्री ब्याह दी जिसने उसे वापस नागौर में काबिज करने का आश्वासन दिया । मिराते सिकन्दरी के अनुसार सुल्तान कुतुबुद्दीन ने राय अमीचन्द और मलिक गदई को सेना लेकर लड़ने भेजा । जिसने वीरतापूर्वक युद्ध किया । लेकिन इसके पूर्व ही नागौर के कुछ उमरावों ने राणा से युद्ध किया था । इन युद्धों में विजय किसी की नहीं हुई । लेकिन तारीख-इ-अलफी में शम्सखां का सेना लेकर जाना और हारना लिखा है ।[45] फरिश्ता लिखता है कि मलिक गदई और राय रामचन्द्र की सेना एवं नागौर की सेना को राणा ने बुरी तरह से हराया । इसमें गुजरात के कई सैनिक मारे गये और भारी क्षति हुई ।[55] इसी प्रकार का वर्णन संगीतराज के पाठ्यरत्नकोश के अंलकारोल्लास में भी मिलता है ।[55 (a)] । तबकाते अकबरी का वर्णन अधिक विस्तृत है । उसमें लिखा है कि राणा ने न केवल सेना को हराया बल्कि सम्पूर्ण कृषि और नागरिकों को विनष्ट कर दिया ।[56] कुंभा के समसामयिक कीर्तिस्तम्भ की प्रशस्ति में भी घटनाओं का विस्तृत वर्णन नहीं है बल्कि इसमें नागौर में विजय के पश्चात् हुए विनाश का वर्णन है । इसमें लिखा है कि राणा ने नागौर को विजय करके फिरोजशाह की बनवाई हुई मस्जिद को नष्ट कर दिया । खाई को भर दिया । हाथियों को पकड़ लिया । नागौर

---

५४. बेले–हि० गु० पृ० १४८-४६ ।

५५. ब्रि० फ० जिल्द ४ पृ० ४१ । उपरोक्त अध्याय ३ पृ० ७५-७८ ।

५५. (ए) सम्मोचितोनागपुरं किलैकः स तादृशशार्ङ्गपुरेऽपराधः ।
एतद्विचिन्त्यास्यलभेन शर्मेत्यादिष्टवान् गुर्जरपः स्वभृत्यान् ।।२७।।

५६. तब० अक० (अ०) भाग २ पृ० १३० ।

का पतन करके किले को नष्ट कर दिया । गुजरात के राजा का तिरस्कार करते हुये दुष्ट यवनों को दंडित किया ।[57]

गुजरात के सुल्तान का आक्रमण (८६० या १४५६ ई०)

कुतुबुद्दीन को जब नागौर के विनाश के समाचार मालूम हुए तो भारी सेना लेकर वह स्वयं युद्ध करने रवाना हुआ । मिरात-इ-सिकन्दरी के अनुसार हि० सं० ८६० या १४५६ ई० में गुजरात के सुल्तान कुतुबुद्दीन ने राणा कुंभा के विरुद्ध सेना भेजी ।[58] रास्ते में सिरोही का देवड़ा राजा पेश हुआ और उसने महाराणा द्वारा बलात् छीना हुआ आबू वापस दिलाने की प्रार्थना की। इसका नाम खातिया देवड़ा था। सुल्तान ने मलिक शबान इमादुल मुल्क को भेजा । वह बुरी तरह हारा । फारसी तवारीखों में लिखा है कि वह नया आदमी था और इस क्षेत्र से अपरिचित होने के कारण बुरो तरह से हार गया । तबकाते अकबरी के अनुसार ने देवड़ा राजा को आश्वासन दिलाया कि उसे आबू दिला दिया जावेगा । फरिश्ता में आबू लेने का कोई उल्लेख नहीं है ।[59] उसमें इसके विपरीत, सिरोही पर आक्रमण करना लिखा है । आबू सिरोही के राजाओं से छीना था और उसे वे वापस प्राप्त करना चाहते थे अतएव आबू पर आक्रमण करना ही अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है ।[60] आबू के पश्चात् सुल्तान ने कुंभलगढ़ पर चढ़ाई की, राणा कुंभा उस समय किले में था । वह सेना लेकर किले से बाहर आया और कुछ युद्ध के पश्चात् वापस दुर्ग में चला गया और सदैव वहां से सेना की टुकड़ियां आक्रमण के लिए भेजा करता था । तारीख-इ-अलफी के अनुसार युद्ध ३ दिन चला । मिरात-इ-सिकन्दरी में लिखा है कि आक्रमण इतना अधिक नृशंस था कि किसी भी हिन्दू परिवार में कोई पशुधन जीवित नहीं बचा । नर और पशुओं को बलि दे दी गई एवं राणा कुंभा द्वारा क्षमा मांगने, फिर से नागौर पर चढ़ाई न करने का आश्वासन देने पर

---

५७. की० प्र० श्लोक १८–२० । ओझा–उ० इ० भाग १ पृ० ३०२ । शारदा–म० कु० पृ० ९७-९८ ।

५८. बेले० हि० गु० पृ० १४६ । उपरोक्त अध्याय ३ पृ० ७९–८१ ।

५९. तब० अक० (अ०) जिल्द ३ पृ० २३१ । त्रि० फ० जिल्द ४ पृ० ४१-४२ ।

६०. उपरोक्त अध्याय ३ पृ० ७९–८१ ।

एवं अच्छी रकम देने पर आक्रमण से मुक्ति प्राप्त की।[61] मुस्लिम इतिहासकारों के विचार पर एक पक्षीय है। इसमें किले को विजय करने क उल्लेख कहीं नहीं है। केवल मात्र मुल्क को बर्बाद करने का उल्लेख मात्र किया है। अतएव प्रतीत होता है कि सुल्तान कीं विजय नहीं हो सकी थी।[62] अगर विजय होकर सन्धि सम्पन्न हो जाती तो पुनः सन्धि करके मालवा के सुल्तान के साथ आक्रमण नहीं करता।

मालवे के सुल्तान की मांडलगढ़ पर चढाई (हि० सं० ८६० या १४५७-५७)

मआसिरे-मोहम्मदशाही के अनुसार मालवे का सुल्तान २६ मुहर्रम हि० सं० ८६१ या १३।१२।५६ को मांडलगढ़ पर आक्रमण करने के लिये रवाना हुआ। तबक़ाते अकबरी के अनुसार इसमें नागौर, अजमेर और हाड़ौती की सेनाएं भी सुल्तान को सहायतार्थ आई थी[63]। मआसिरे मोहम्मदशाही में यही वर्णित है कि सुलतान ने अजमेर, टोडा, चाटसू, रणथंभोर हाडोती आदि को जीता था इससे पता चलता हैं कि सुलतान उपरोक्त मार्ग से मांडलगढ आया था। उसने काफी भीषण संग्राम के पश्चात् तलहटी विजय करली और राजपूत सेनाओं को बाध्य होकर किले में लौट जाना पड़ा। सुलतान ने भीषण रक्तपात किया। मन्दिर नष्ट कर दिये गये[64] और हजारों नागरिकों का नृशस

६१. बेले-हि० गु० पृ० १५०।

६२. वी०वि० भाग १ पृ० ३२१। ओझा-उ० इ० भाग १ पृ० ३०४। शारदा-म० कु० पृ० ५७-५८। कुंभलगढ़ दुर्ग की अजेयता का उल्लेख फारसी तवारीखों में कई स्थानों पर किया है। तबकात-इ-अकबरी में इस सम्बन्ध में कई सन्दर्भ है। जब मालवे का सुल्तान कुंभलगढ़ पर हि० सं० ८६३ में आक्रमण करने गया तो किले की स्थिति को देखकर वह इस निश्चय पर पहुंचा कि वर्षों तक घेरा डालने पर भी विजय संभव नहीं है।

६३. तब० अक० (अ०) भाग ३ पृ० ५३०। मिडिवल मालवा पृ० १८८-८९। इसमें वर्णित हाड़ोती की सेना संभवतः नैनवां और रणथभोर के आस-पास के भाग की सेना रही होगी। बूंदी पर इस आक्रमण के पश्चात् सुल्तान की सेना ने आक्रमण किया था अतएव यह मान्यता गलत है कि यह सेना बूंदी की थी।

६४. ब्रि० फ० जिल्द ४ पृ० २२३। मिडिवल मालवा पृ० १८९-९०। आज भी मांडलगढ़ में कुंभा के समय से प्राचीन कोई मन्दिर विद्यमान नहीं है।

बध करवा दिया गया । लेकिन दुर्ग ले सकने में सफल नहीं हो सका । किले के पास की पहाड़ियों पर तोपें चढ़ा दी गई जो लगातार गोलेबारी करती रही । शिहाब हकीम और फरिश्ता के अनुसार इन तोपों की मार के कारण किले पर पानी के साधन समाप्त हो गये और किले में सुरक्षित सैनिकों को बलात् दरवाजे खोलने पड़े । राणा कुंभा को १० लाख टंके देने पड़े [65] । यह घटना १ जिलहिज हि० ८६१ या २०।११।१४५७ को सम्पन्न हुई थी । सुलतान को मांडू से लौटे ११ माह हो गये थे । यह सब वर्णन शिहाब हकिम, फरिश्ता और निजामुद्दीन द्वारा वर्णित किया हुआ है । दुर्भाग्य से राजपूत दृष्टिकोण को बतलाने वाला कोई समयायिक ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है जिसमें इन घटनाओं सविस्तार वर्णन हो । वीर विनोद में लिखा हैं कि हमको नहीं मालुम कि यह हाल सही हैं या लेखक (फरिश्ता) ने गलती से लिखा है । अगर सही है तो महाराणा ने भी जरूर हमले किये होंगे लेकिन उनका हाल तवारीखों में छोड़ दिया गया है । श्री ओझा का कथन है कि सुल्तान इस बार भी जरूर हार करके लौटा होगा क्योंकि इस प्रकार अपनी पहली हार का बदला लेने के लिए सुल्तान मोहम्मद ने पांच बार मेवाड़ पर [66] चढाई की थी किन्तु प्रत्येक बार उसको हार करके लौटना पड़ा एवं जिसके फलस्वरूप उसने चांपानेर की सन्धि के लिए प्रयत्न किया । राणा कुंभा उस समय दुर्ग में नहीं था ।

फरिश्ता में यह वर्णन संक्षिप्त है जब कि शिहाब हकीम और निजामुद्दीन ने अधिक विस्तृन लिखा हैं । दोनों में मन्दिरों को विनष्ट करके मस्जिदों के निर्माण का उल्लेख है । इन्होने वहां कादी (न्यायधीश) मुफ्ती, मुहतसिब, खातिब, मुअाधन आदि अधिकारियों की नियुक्ति का भी उल्लेख किया है [67] । अतएव प्रतीत होता है कि अस्थायी रूप से मांडलगढ़ पर मालवे के सुलतान का अधिकार हो चुका था और कुंभा ने कुछ समय पश्चात् ही वहां से मुसलमानों को मार भगाये हों ऐसा प्रतीत होता है । सुल्तान लगभग २० दिन तक मांडलगढ़ में रहा था और इसके पश्चात् वह १५ मुहर्रम ८६२ (३।१२।१४५७ ई०) को चित्तौड़ की तरफ रवाना हुआ । सुल्तान ने अपने ज्येष्ठ पुत्र गयासुद्दीन

---

६५. ब्रि० फ० जिल्द पृ० २२३-२४ ।

६६. ओझा—उ० इ० भाग १ पृ० ३०१ । शारदा—म० कु० पृ० १०४ ।

६७. तब० अक० भाग ३ (अ०) पृ० ५३२ । मिडिवल मालवा पृ० १९८-९

को कोली और भीलों के गांवों को नष्ट करने भेजा। निजामुद्दीन ने केलवाड़ा और जीलवाड़े को नष्ट करने भेजने का उल्लेख किया है। दोनों ही तवारीखों में इनको विनष्ट करके सुरक्षित लौट आने का उल्लेख किया है। संभवतः वह विजय प्राप्त करने के उद्देश्य से न जाकर केवल मात्र लूटने के लिए ही गया था। छोटे शाहजादे फिदईखां को बून्दी विजय करने भेजा। निजामुद्दीन के अनुसार ताजखां को भी इसके साथ भेजा गया। एक दिन युद्ध हुआ। राजपूत बड़ी वीरता से लड़े लेकिन अन्त में इन्हें बाध्य हो कर दुर्ग में जाना पड़ा और कई की किले में से कूद-कूद कर मृत्यु भी हो गई। इस प्रकार इस घटना के पश्चात् शाहजादा ने बून्दी विजय करके अपने एक अधिकारी को वहां नियुक्त कर वह मांडू लौट गया [68]। फारसी तवारीखों का वर्णन मुस्लिम दृष्टि-कोण को लेकर ही लिखा गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि सुल्तान बून्दी विजय नहीं कर सका था और अगर विजय भी कर ली होगी तो भी यह घटना अस्थायी थी और कालान्तर में वापस बून्दी वालों ने दुर्ग अपने अधिकार में कर लिया था। वंश भास्कर में बून्दी विजय से सम्बन्धित बड़ी ही रोचक घटना वर्णित है। इसमें राव बैरीसाल के समय मालवे के सुल्तान का आक्रमण करने और राव की मृत्यु हो जाने पर रानी और बच्चे भागकर नैनवां चले गये जहां से फिर राणा कुंभा की सहायता से बून्दी जीता था [69]।

मालवा और गुजरात के सुल्तान का सम्मिलित आक्रमण

महाराणा को जब इनके सम्मिलित आक्रमण का हाल मालुम हुआ तो इस प्रकार की तैयारी की कि मालवे का सुल्तान मन्दसौर से आगे नहीं बढ़ने पावें और उसने मन्दसौर तक ही रूकवाने के लिए पर्याप्त सेना भेज दी गई। ठीक इसी प्रकार गुजरात के सुल्तान को आबू और कुंभलगढ़ से आगे नहीं बढ़ने दिया जावे। यह समय उसके लिए बड़ी परीक्षा का समय था। उसके राज्य से कई गुने बडे राज्यों के सुल्तानों ने सम्मिलित होकर एक साथ चढ़ाई करने का आयोजन किया था। लेकिन उसने अपना धैर्य नहीं खोया था। मिराते सिकन्दरी के अनुसार हि० सं० ८६१ १४५७ (ए०डी०) में कुतुबुद्दीन सेना लेकर[70] आगे बढ़ा। उसने नादोत और बाल सेवा के मार्ग से आबू

६८. तब० अक० भाग ३ (अ०) पृ० ५३२। मिडिवल मालवा पृ० १६४।

६९. वंश भास्कर भाग ३ पृ० १६५३। उपरोक्त अध्याय ३ पृ० ७२।

७०. बेले–हि० गु० पृ० १५०–५१। ब्रि० फ० जिल्द ४ पृ० ४१–४२ शारदा-म० कु० पृ० ६८।

पर आक्रमण किया। आबू में भीषण युद्ध हुआ और वह उसे जीत नहीं सका। मिराते-इ-सिकन्दरी में उसके आबू जीत करके देवड़ा को लौटने का उल्लेख है लेकिन वि० सं० १५१५ के तीन व १५१८ का आबू पर एक कुंभा का शिलालेख मौजूद हैं [71] अतएव यह वर्णन असत्य प्रतीत होता है। इसके पश्चात् सुल्तान ने कुंभलगढ़ पर आक्रमण किया। मिरात–इ–अहमदी के अनुसार सुल्तान इसे जीत नहीं सका और इसीलिए वह आस-पास के प्रदेश को विनष्ट करके चित्तौड़ की तरफ गया [72]। राणा ४०,००० घुड़सवार और २०० हाथियों को लेकर किले से बाहर आया। पांच दिन तक युद्ध बराबर जारी रहा। युद्ध काल में पानी का भारी अभाव हो गया और एक प्याला पानी की कीमत ५ फदिये हो गई और राणा की हार हो जाने के कारण वह मुख नीचा किये किले में चला गया [73]। तबकात-इ-अकबरी में निजामुद्दीन युद्ध का परिणाम अस्पष्ट लिखता है [74]। वह कहता है कि कुतुबुद्दीन रूस्तम की तरह लड़ा और राणा कुंभा युद्ध के पश्चात् पहाड़ों में जा छिपा और माफी मांगी। इसमें गुजराती तवारीखें मिराते-इ-सिकन्दरी और मिरात-इ-अहमदी के समान युद्ध का परिणाम नहीं दिया है। फरिश्ता ने राणा [75] का पहाड़ी क्षेत्रों में भी भागना लिखा हैं। संगीतराज के पाठ्य-रत्नकोश के अंलकारोल्लास में दिये गये एक वर्णन के अनुसार कुंभा अचानक पहाड़ों से निकलकर मुसलमानों पर आक्रमण कर उन्हें हरा दिया इसमें "अज्ञातघातेषुशकेष्व-कस्मात्" शब्द है जो इसकी पुष्टि करता है। संधि के फलस्वरूप मुसलमान इतिहास-कारों के अनुसार राणा ने भारी रकम दी थी। फरिश्ता ने १४ मण सोना व २ हाथी, तबकात-इ-अकबरी में ४ मन सोना और कुछ हाथी, तारीख–इ–अल्फी में ४ मन सोना और २ हाथी देने का उल्लेख है। लेकिन गुजराती तवारीख मिरात-इ-अहमदी में इस प्रकार सोना लेने का उल्लेख नहीं है [76] जो सही प्रतीत होता है। वास्तव में सही यही

---

७१. उपरोक्त अध्याय ३ पृ० ८२।

७२. एस० एन० अली–मिरात–इ–अहमदी पृ० १९६।

७३. बेले—हि० गु० पृ० १५१।

७४. तब० अक० (अ०) भाग ३ पृ० २३३।

७५. ब्रि० फ० जिल्द ४ पृ० ४२।

७६. एस० एन० अली मिरात-इ-अहमदी पृ० १९९।

है कि सुल्तान न तो आबू जीत सका न कुंभलगढ़ और न चित्तौड़ ही। अतएव इतनी बड़ी राशि देने का प्रश्न ही पैदा नहीं होता। सुल्तान की हार छिपाने को विशाल राशि को भेंट में देने का उल्लेख किया गया है। इसी प्रकार हि० सं० ८६२ में मोहम्मद खिलजी ने भी मन्दसौर की तरफ आक्रमण किया। गुजरात का सुल्तान इस समय चित्तौड़ के आस-पास युद्ध में व्यस्त था। मालवे का सुल्तान मन्दसौर से आगे बढ़ कर हाड़ोती रणथंभोर आदि तक बढ़ गया। राजपूत दृष्टिकोण बतलाने वाले ऐसे कई विवरण मिलते हैं जिनमें कुंभा द्वारा संयुक्त सेनाओं को हराने का उल्लेख है। कीर्तिस्तम्भ की प्रशस्ति एवं गीत गोविन्द की रसिक प्रिया टीका की प्रशस्ति में इनका उल्लेख है। ये दोनों विवरण समसामयिक हैं एवं मिरात-इ-अहमदी के विवरण से मिलाने से ज्ञात होता है कि गुजरात का सुल्तान बुरी तरह से हार करके लौटा था। श्री ओझा और शारदा भी इसमें राणा की विजय मानते हैं[77]। इसकी पुष्टि इस बात से होती है कि वह शीघ्र ही वापस गुजरात से कुंभलगढ़ पर आक्रमण करने को आया था। संगीतराज के पाठ्यरत्नकोश के अनुसार कुंभा ने प्रत्याक्रमण करके मालवे और गुजरात की लौटती हुई सेना को लूटा।

महाराणा की नागौर पर चढ़ाई (हि० सं० ८६२)

हि० सं० ८६२ (१४५८ एडी) में महाराणा कुंभा ने नागौर पर आक्रमण किया था वीर विनोद में यह तिथि[78] हि० सं० ८७१ (१४६७ एडी) दी है जो गलत प्रतीत होती है क्योंकि फारसी तवारीखों में ८६२ (१४५८) तिथि दी है।

इस आक्रमण करने का कारण क्या था? वीर विनोद में नागौर के मुसलमानों द्वारा गोवध करना माना जाता है। वीर विनोद में लिखा है कि नागौर को महाराणा ने कई बार विजय किया था और कई बार महाराणा के कब्जे से निकल कर वापस इसे मुसलमानों ने छीन लिया था। महाराणा ने मुसलमानों के अत्याचार को देखकर उस पर चढ़ाई की थी। नागौर में गोवध होना शंका स्पद है। समसामयिक नागौर में

---

७७. की० प्र० श्लोक १७१। एक० माहात्म्य श्लोक ८४। ओझा—उ० इ० पृ० ३०४। शारदा—म० कु० पृ० १०३।

७८. वी० वि० भाग १ पृ० ३३२-३३। शारदा—म० कु० पृ० १०२।

लिखी जैन कृतियों में धार्मिक स्वाधीनता का उल्लेख है [79]। किन्तु इस आक्रमण का तात्कालीक कारण यह था कि मांडलगढ़ पर आक्रमण करते समय मालवे के सुल्तान को नागौर की सेनाओं ने सहायता दी थी अतएव नागौर के विरुद्ध बदला लेना आवश्यक था [80]। मिरात–इ–सिकन्दरी में इस युद्ध का बड़ा रोचक वर्णन दिया है [81]। उसमें लिखा है कि राणा के आक्रमण की सूचना जब अहमदाबाद पहुंची तो वजीर मलिक शबान इमादुलमुल्क को बड़ी चिन्ता हुई। उस समय अर्धरात्रि व्यतीत हो चुकी थी। फिर भी उसने सुल्तान के महल में प्रवेश किया और नौकर को सुल्तान को जगाने को कहा। नौकर ने स्पष्ट रूप से सुल्तान को जगाने से इन्कार कर दिया। इस पर वह स्वयं शयन कक्ष में गया। सुल्तान को उठाया। सुल्तान ने चौंक कर पूछा कि "कौन है ?" शबान ने उत्तर दिया कि "मैं आपका दास"। सुल्तान ने जगाने का कारण पूछा। इस पर उसने सारी कथा कह सुनाई और शीघ्र सेना भेजने को कहा। सुल्तान उस समय बिलासिता में डुबा हुआ था। उसे सुरा और सुन्दरी की मोहकत्ता ने प्रभावित कर रखा था। उसने उत्तर दिया कि मेरे सिर में दर्द है मैं घोड़े पर नहीं चढ़ सकता हूं। शबान ने उत्तर दिया कि मैं आपके लिए पालकी मंगवा लेता हूं। इस प्रकार सुल्तान पालकी में बिठाकर ले जाया गया। फरिश्ता ने लिखा है कि इमादुल मुल्क ही सेना लेकर गया। सेना भी तैयार नहीं थी और राणा के विरुद्ध युद्ध करने के लिए उसे सुसज्जित करनी थी। अतएव १॥ माह तक रास्ते में पड़ाव डालना पड़ा। राणा के विजय कर लौटने के समाचार मिलने पर ये लोग भी गुजरात की तरफ चले गये। फरिश्ता और निजामुद्दीन दोनों ने लिखा है कि सुल्तान की सेना नागौर न जाकर वापस गुजरात लौट गई [82]। तारीख–इ–अल्फी में लिखा है कि राणा के लौटने पर भी सुल्तान सिरोही की तरफ बढ़ता रहा। लेकिन यह घटना कुछ समय पश्चात् की है। वीर विनोद में महाराणा द्वारा नागौर के किले को विजय कर वहां से हनुमानजी की मूर्ति ले जाने

---

७९. डा० कासलीवाल प्रशस्ति संग्रह पृ० २४। उपरोक्त अध्याय २ पृ० ४६।

८०. तब० अक० (अं०) भाग ३ पृ० ५३०।

८१. बेले—हि० गु० पृ० १५१–५२।

८२. तब० अक०(अं०) भाग ३ पृ० २३३ एवं ब्रि० फ० जिल्द ४ पृ० ४३।

का उल्लेख किया है जो मंडोवर से लाई गई थी न कि नागौर से। कीर्ति स्तम्भ की प्रशस्ति में इसका उल्लेख है[८३]।

गुजरात के सुल्तान की कुंभलगढ़ पर चढ़ाई (हि० सं० ८६२)

नागौर युद्ध कुछ महिनों बाद कुतुबुद्दीन ने बदला लेने के उद्देश्य से कुंभलगढ़ पर चढ़ाई की। उसने पहले सिरोही पर आक्रमण किया। सिरोही का शासक जो पहले राणा के विरुद्ध था अब संभवतः राणा के पक्ष में हो गया था अतएव नाराज होकर उसने सिरोही नगर को विजय कर लिया और इसे जला दिया[८४]। इसके पश्चात् वह कुंभलगढ़ की तरफ बढ़ा लेकिन वह इसे विजित नहीं कर सका। एवं शीघ्र ही लौटने को बाध्य हुआ। उसके लौटने का कारण मालवे के सुल्तान का गुजरात पर आक्रमण करने की सूचना लिखी है जबकि वास्तविकता में वह हारकर लौटा था। मालवे का सुल्तान उस समय कांथल और हाडोती में युद्ध कर रहा था अतएव गुजरात पर आक्रमण करने का प्रश्न ही पैदा नहीं होता। कुतुबुद्दीन के गुजरात लौटते ही जिन-जिन सैनिकों के घोड़े मर गये थे उन्हें राजकीय राशि से घोड़े खरीदकर दिये[८५]। इससे पता चलता है कि सुल्तान को अपनी सैनिक कर्मजोरी ज्ञात हो गई थी। फरिश्ता और निजामुद्दीन द्वारा किया गया वर्णन कि राणा द्वारा क्षमा मांगना और भविष्य में आक्रमण न करना आदि एक पक्षीय है और पूर्ण रूप से असत्य है।

कुछ ही समय पश्चात् २३ रजब हि० सं० ८६३ या २५-५-१४५६ एडी को कुतुबुद्दीन मेवाड़ विजय के मन्सूबे लेकर सदैव के लिए काल कवलित हो गया।

मालवे के सुल्तान का कुंभलगढ़ पर आक्रमण (हि० सं० ८६३)

सुल्तान मोहम्मद ने हि० सं० ८६३ या १४५८ एडी में अपने ज्येष्ठ पुत्र शाहजादा गयासुद्दीन को सेना लेकर कोली और भीलों के प्रदेश को विनष्ट करने भेजा

---

८३. आनीय मांडव्यपुराद्धनुमान् संथापितकुंभलमेरूदुर्गे। की० प्र० श्लोक संख्या ३।

८४. तब० अब० (अ०) भाग ३ पृ० २३४। शारदा—म० कु० पृ० १०५। ब्रि० फ० जिल्द ४ पृ० ४३।

८५. बेले—हि० गु० पृ० १५३।

मासिर–इ–मोहम्मदशाही एवं तबकात–इ–अकबरी में इन प्रदेशों के लिए केलवाड़ा और जीलवाड़ा नाम दिया है । गयासुद्दीन कुंभलगढ़ पहुंचा और दुर्ग की स्थिति देखकर अपने पिता को आहड में आकर सारी स्थिति से अवगत कराया । दूसरे दिन सुल्तान स्वयं वहां पहुंचा और पास की पहाड़ी पर अपना घोड़ा चढ़ाकर देखा तो उसे ज्ञात हुआ कि यह दुर्ग वर्षों के आक्रमण और घेरे से भी विजय करना कठिन है तो लौट गया । स्मरण रहे कि इस दुर्ग को कुंभा ने हाल ही में बनवाया था । फरिश्ता और निजामुद्दीन दोनों ने सुल्तान के असफलतापूर्वक लौटने और कुंभलगढ़ दुर्ग की अजेयता का उल्लेख किया है । वहीं से सुल्तान डूंगरपुर की तरफ गया । जहां के शासक श्यामदास ने युद्ध के स्थान पर सुल्तान को दो लाख टंके और इक्कीस घोड़े भेंट किये [८६] ।

मालवे के सुल्तान का अन्तिम आक्रमण (८७१ हि०)

मालवे का सुल्तान छप्पन होकर कुंभलगढ़ की तरफ आया । उसे मालुम हुआ कि महाराणा जावर में ठहरा हुआ तो उसने अपने भारी सामान को पीछे रखकर अपने ज्येष्ठ पुत्र और ताजखां को साथ लेकर जावर पहुंचा । वहां से महाराणा कुंभलगढ़ चला गया । मोहम्मद ने जावर में देवी के मन्दिर को विनष्ट कर दिया एवं वह कुंभलगढ़ तरफ रवाना हुआ जहां ६ शब्बान को पहुंचा । वहां से हारकर ७ रमजान को वापस लौटा । भारी सामान तो उसने सीधा अपनी राजधानी की ओर रवाना कर दिया और ११ तारीख को चित्तौड़ पहुंचा । राणा ने उसका पीछा किया । मासिर–इ–मोहम्मद शाही के लेखक ने लिखा है कि यद्यपि राणा ने मालवा की सेना को कुछ नुकशान पहुंचाया लेकिन अन्त में विजय मालवा की सेना की ही हुई । एवं चित्तौड़ जीतना कठिन समझ कर मांडू लौट गया । इससे स्पष्टतः कहा जा सकता है कि उसकी हार हुई थी [८७] ।

मोहम्मद बेगड़ा का आक्रमण

कुतुबुद्दीन की मृत्यु हि० सं० ८६३ की २३ रज्जब (१४५८ एडी) को होते ही अहमदशाह के बेटे दाऊद को गद्दी पर बैठाया । यह बिलकुल निकम्मा था अतएव इसके

---

८६. तब० अक० भाग (अ०) ३ पृ० ५३१–३२ । त्रि० फ० जिल्द ४ पृ० २२५ । ओझा—डूंगरपुर राज्य का इतिहास पृ० ६८ । मिडिवल मालवा पृ० १६४–६५ ।

८७. मिडिवल मालवा पृ० १६५–१६६ । डूंगरपुर के रावल ने १०० घोड़े और २ लाख टंके दिये । सुल्तान ने "सोमनाथ" नामक घोड़ा भी उससे लिया जो बहुत उल्लेखनीय था ।

स्थान पर १ शब्बान रविबर हि० स० ८६३ (१४५८ एडी) को फतहखां मोहम्मद बेगड़ा के नाम से गद्दी पर बैठा। इसने वि० सं० १५२० (१४६३ एडी) में जूनागढ़ पर आक्रमण किया था। वहां का राजा मंडलीक कुंभा का दामाद था अतएव अमरकाव्य के अनुसार कुंभा ने उसे सहायता दी और गुजरात के सुल्तान को हरा दिया (गुर्जर जर्जरचक्रे जूनागढ़विभंजने)।

अमरकाव्य में एक और प्रसंग वर्णित है [८८] इसमें लिखा है खेमा देवलिया ने मोहम्मद बेगड़ा को मेवाड़ पर आक्रमण करने को प्रोत्साहित किया था, लेकिन सुल्तान जीत नहीं सका और हार करके भाग गया। स्पष्ट है कि खेमा देवलिया कुंभा का छोटा भाई था और वह स्वयं शासक बनना चाहता था। इसने ही षडयन्त्र रचकर के कुंभा को मरवाया था। इसका पुत्र सुरजमल भी जिंदगी भर तक मेवाड़ के विरुद्ध लड़ता रहा था किन्तु इसका पौत्र बाघसिंह अवश्य चित्तौड़ में लड़कर के काम आया था। राज विनोद काव्य में जिसमें मोहम्मद बेगड़ा के [८९] यश का वर्णन है राणा कुंभा के लिये वर्णित है कि वह मोहम्मद बेगडा की सेवा स्वर्ण से करता था। इसके अतिरिक्त इसी ग्रन्थ के सर्ग ७ के श्लोक २६ और २८ में भी मेदपाट के शासक द्वारा उसकी सेवा करना लिखा है कि लेकिन यह अतिशयोक्ति मात्रा है [९०]। श्लोक २८ में मालवा और मेवाड़ के शासकों को "कुनृपाः" लिखा है जो स्मरणीय है। अतएव पता चलता है कि इनके साथ उसका संघर्ष बना रहा था।

इस प्रकार कुंभा आजीवन मालवा और गुजरात के सुल्तानों से युद्ध करता रहा।

---

८८. "खेमादेवलियाभर्त्तानीतोयेनरणेजितः वेगड़ामहमूदाख्यो गुर्जरेश पलापित [पत्र सं० २५ ग्रन्थ १४९३ अमर काव्य]

८९. राज विनोद काव्यम् ४।१२। उपरोक्त अध्याय २ पृ० ४७।

९०. राज विनोद काव्यम् ७।२६ एवं २८।

छठा अध्याय

शासन व्यवस्था

यावच्चंद्रदिवाकरौ हिमगिरिर्यावच्चहेमाचलो ।
यावत्सागरभूषणा वसुमती यावच्च सेतुर्महान् ।।
तावत्तिष्ठतु कुंभकर्णनृपतेः कीर्तिप्रशस्तिस्तथा ।
नानाकारित कीर्तनानि सकला साम्राज्यलक्ष्मीरपि ।।१८३।।

"कीर्तिस्तम्भ प्रशस्ति"

शासन व्यवस्था

मेवाड़ के महाराणा प्राचीन ख्यातों में "दीवाण" के नाम से विख्यात है एवं एकलिंगजी की प्रतिमा को मेवाड़ का वास्तविक शासक वर्णित किया है। स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व मेवाड़ के सब ही राजकीय पत्रों पर "श्रीएकलिंगजी" शब्द लिखा जाता था। पूर्व मध्य कालीन मेवाड़ की शासन व्यवस्था सम्बन्धी विशेष जानकारी प्राप्त नहीं होती है। राजा को क्या अधिकार थे? मंत्री परिषद् और केन्द्रीय शासन का स्थानीय शासन में क्या हस्तक्षेप था इस सम्बन्ध में प्राप्त सामग्री अधुरी है। चौहान साम्राज्य के नष्ट होने के पश्चात् मेवाड़ का राजस्थान के इतिहास में उल्लेखनीय योगदान रहा है। कुंभा के समय मेवाड़ राज्य बहुत विस्तृत था। इसमें १०,००० गांव होना प्रसिद्ध है। अचलदास खींची की वचनिका में "दस सहस मेवाड़ रो धणी" शब्द मोकल के लिए लिखा है। आइने अकबरी में भी अजमेर सूबे के अन्तर्गत चित्तौड़ सरकार में १०,००० गांव होना लिखा है [1]। ये गांव मेवाड़ की मुख्य भूमि के थे। किन्तु कुंभा के समय मेवाड़ की मुख्य भूमि के अतिरिक्त आबू गोडवाड़, अजमेर सपादलक्ष, मन्डोर आदि का भू–भाग भी उसे के राज्य में रहा है। विभिन्न लेखों के आधार पर कुंभा ने मांडलगढ़, नागौर, बून्दी, आमेर चाटसू नराणा सांभर गागरोण आदि दुर्ग विजिते किये थे एवं द्रोणपुर छापर के मोहिल, रूण और जांगलू के सांखला बून्दी के हाडा श्रीनगर के पंवार जेतारण के सिंधल आमेर के कछावा सोजत व कायलाणे के राठौड़ आदि अधिनस्थ सांमत राजा थे जो चाकरी देते थे। संगीत राज एवं कुंभलगढ़ प्रशस्ति में इस राज्य के लिए "साम्राज्य" [2] शब्द प्रयोग में लिया है। मण्डन ने राजवल्लभमण्डन में १ लाख

---

१. अचलदास खींची की वचनिका पृ० ४५। आईन–इ–अकबरी (अंग्रेजी अनुवाद) भाग २ पृ० ३६८।

२. संगीतराज के पाठ्यरत्न कोश में "पञ्चवक्त्रप्रसादाप्त साम्राज्येन महीभृताम्" शब्द कुंभा के लिये वर्णित है। एवं कु० प्र० श्लोक ७४ भी दृष्टव्य है।

से २ लाख गांवों वाले राजा को महामण्डलिक, ५०,००० गांवों वाले मंडलिक २०००० वाला मुख्य सामंत १०००० गांव वाले सामंत और १००० गांव वाला "चौरासी का धणी" लिखा है [3]। मण्डन जो कुंभा का आश्रित था, अपने ग्रन्थ में प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर यह वर्णन लिखा है। उस समय "चोरासी" का विभाजन तो प्रचलित अवश्य था। इस सम्बन्ध में "काछोला की चोरासी पुर की चोरासी" आदि उल्लेखनीय है।

राजा

राजपूत राजा सामान्य रूप से निरकुंश होते थे। ये स्वेच्छाचारी थे। राजा ही राज्य का सर्वोपरि था जो मुख्य सेनापति भी था और राष्ट्र की सारी शक्ति उसमें ही निहित थी किन्तु धर्मशास्त्रों के अनुसार इस निरकुंशता पर अकुंश अवश्यमेव विद्यमान था। महामात्य मंत्रीगण पुरोहित और सांमत वर्गों का बहुत प्रभाव था। ये राजा को स्वेच्छाचारी बनने से रोक सकते थे। वह युग शौर्य का युग था। राजपूत राजा शौर्य के प्रतीक थे। प्राचीन परम्पराएं, धर्म जाति आदि अनेक सूत्र थे जिनसे एकता स्थापित की जा सकती थी। किन्तु इनका दृष्टिकोण स्थानीय था। राजपूत लोग अपनी धरती अपनी जाति कुल आदि के मिथ्याभिमान में अधिक डूबे रहते थे। इससे राजपूतों में सदैव एकता का अभाव रहा है।

संगीत राज के अनुसार राजा को आदर्शवान होना चाहिए। इसमें जो सभापति लक्षण दिया है वह ऐसा प्रतीत होता है कि राजा के आवश्यक गुणों को सभापति के रूप में वर्णित किया है। उसमें लिखा है कि सभापति राम के समान उच्चकुल का नायक, पात्र अपात्र का ज्ञान वाला कलाविद्, विद्वानों को यथेष्ट सम्मान देने वाला, सत्यभाषी धनी अभिष्टवस्तु का दाता रूपस्वी कीर्ति प्रिय एवं शृंगारी होना चाहिए [4]।

---

३. राजवल्लभडमंन के ५वें अध्याय के श्लोक ४ एवं ५ इसमें "सामन्तमुख्यो-द्वयपुराधिपतेसो" एवं "सामंत संज्ञोपुतनायएव" वर्णित है जिनसे प्रकट होता है कि सामन्त दो प्रकार के थे। "प्रोक्तः प्रवीणैश्चतुराशिकौसौ" में चोरासी के अधिपति का उल्लेख है जो सामन्त से भिन्न है।

४. रामाद्युत्तमनायक प्रतिनिधिः स्वस्थः कुलीनोयुवा।
पात्रापात्रविशेषवित स्थिरतमप्रेमाकलाकोविदः ॥
गीतज्ञः सकलागमार्थनिपुणो वह्लिप्रियः सत्यवाक्।
स्वाधीताखिलसेवको बहुधनोऽभिष्टार्थदानोद्धुरः ॥११४॥

संगीतराज के नृत्यरत्नकोश का प्रथम परीक्षण पृ० १०

संगीत राज और मंडन के ग्रन्थों से पता चलता है कि उसका ऐश्वर्य अद्वितीय था। वह सुन्दर सिंहासन पर बैठता था। संगीतराज में "हेमं स्वस्थ विचित्ररत्नखचितं सिंहासनं भास्वरम्" लिखा है। राजवल्लभमंडन और वास्तु मंडन ग्रन्थों से पता चलता है कि सिंहासन कई प्रकार के बनाये जाते थे। इनमें भी रत्नों से जड़े हुये सिंहासनों का उल्लेख है [5]। राजा की रक्षा के निमित्त कई शस्त्रधारी सैनिक नियुक्त थे। ये सैनिक उच्चकूल के थे। उस समय प्रायः षडयन्त्र हुआ करते थे अतएव संगीतराज में इनके लिए लिखा है कि ये राजा से प्रीति करने वाले थे और उससे कभी भी विद्रोह की भावना नहीं रखते थे [6]। इनके अतिरिक्त राजा के आगे-आगे सदैव छड़ीदार जाते थे। ये भी रक्षा के लिए शस्त्रों से सुसज्जित रहते थे। संगीतराज में इनके लिए लिखा है कि ये राजा के प्रत्येक इंगित को अच्छी प्रकार से समझते थे [7] और ये राजमहल के बाहरी भाग में निवास करते थे। राजवल्लभमंडन से पता चलता है कि राजमहल के वाम भाग में शस्त्रधारी सैनिकों के आवास की व्यवस्था थी। इनके अतिरिक्त मंडन ने राजा के छत्र, चामार ताम्बूल आदि धारण करने वालों का भी उल्लेख किया है। ये लोग राजमहल के दाहिनी ओर रहते थे [8]।

---

५. राजवल्लभमंडन के ८वें अध्याय का श्लोक ४ से ८।

६. शश्वद्राजकुलोद्भवाः सुनिपुणा नित्यानुरक्तानृपे।
नो भिन्ना न च संहता परिगतान्योन्यानुरागस्पृहाः॥
स्पर्धाबन्धमनोहरा परिगतानेकास्त्रवियोद्धरा—
स्तिष्ठेयुः परितोऽस्य रक्षण विधावुद्यत्समस्तायुधाः॥१२२॥

संगीतराज के नृत्यरत्नकोश का प्रथम परीक्षण पृ० ११।

७. वही श्लोक १२१।

८. प्राक्शोभानृपमंदिरे च पुरतः स्थानंतलथापौत्रकं,
वामांगेनृपतेस्तथायुधधराः कृष्णातनुत्राणिच।
छत्रंचामरतापसाः स्वगुरवस्ताम्बूलधृक्दक्षिणे
गेहाधीशयदृच्छयाचशयनं सर्वासुभूमीषु च॥

राजवल्लभमंडन अध्याय ५ श्लोक ४४

राजा के आमोद प्रमोद एवं जलक्रीड़ा के लिए एक बाग, जलयन्त्र कुंड आदि के निर्माण का उल्लेख राजवल्लभ मंडन और कीर्ति स्तम्भ प्रशस्ति में है [9] नाट्यशाला का उल्लेख राजवल्लभमंडन और संगीतराज के नृत्य[10] रत्न कोश में है। इनके अतिरिक्त राजा के लिए एक अध्ययन शाला और वाद विवाद के लिए वादित्रशाला भी [11] बनाने का उल्लेख मिलता है।

जागीरदारी प्रथा

मध्य काल में सब ही राजपूत राज्यों में जागीरदारी प्रथा प्रचलित थी ये जागीरें राज्य परिवार के सदस्यों को निर्वाह हेतु एवं विशेष शौर्य प्रदर्शन और सैनिक सेवाओं के निमित्त दी जाती थी। इनमें कोई नियम लागू नहीं था और राजाओं की इच्छा ही अन्तिम मानी जाती थी। इनके अतिरिक्त पुण्यार्थ माफी भी दी जाती थी जो ब्राह्मणों या अन्य सम्प्रदाय के पुरुषों को दी जाती थी। इनका उद्देश्य पंचमहायज्ञ बलि विश्व देवा अग्निहोत्र अतिथि यज्ञ आदि होता था। मआसिर–इ–मोहम्मदशाही [12] से पता चलता है कि जब मालवे के सुल्तान ने गागरोण जीत लिया तो राणा ने यही कहा कि इतना सा भू-भाग तो वह चारणों भाटों को ही जागीर में दे देता है। कुछ माफियाँ राजकवि पुरोहित पंडित चारण और कहीं-कहीं राजकर्मचारियों और गांवों में सार्वजनिक सेवाएं करने वाले को भी दी जाती थी। जागीर और माफी के स्वरूप में बड़ा अन्तर

---

९. वही अध्याय ८ श्लोक १८ से २३। की० प्र० के अनुसार कुंभा ने कुंभलगढ़ में एक बाग और सरोवर बनाया था।

१०. नाट्यशाला के लिए संगीतराज के नृत्यरत्नकोश के प्रथम परीक्षण का नाट्यवेश्म वर्णन। राजवल्लभमंडन के ५वें अध्याय का ४३ वां श्लोक। यह त्रिकोण और चोकोर आकृति की दो प्रकार की बनती थी। ऊपर से "यथाशैलगुहाकारं" सी होती थी। इनमें प्रायः गीतगोविन्द में वर्णित लीलाओं का अभिनय होता था।

११. राजवल्लभमंडन के ५वें अध्याय का श्लोक ४५।

१२. मिडिवल मालवा पृ० १७६–७८। उपरोक्त अध्याय ३ और ५ के गागरोण विजय के प्रसंग।

था। माफीदार अपनी भूमि को रहन या बेच नहीं सकते थे एवं अपनी भूमि से अन्य को दान नहीं दे सकते थे जबकि जागीरदार स्वयं अपनी जागीर की भूमि से भूमिदान माफी दे देता था। जागीरदार द्वारा दी गई छोटी जागीरों वाले "छूट भई" कहलाते थे। इनका सीधा सम्बन्ध जागीरदार से होता था। अगर राजा और जागीरदार में परस्पर विवाद हो जाता तो ये छूट भई जागीरदार के पक्ष में राजा से भी लड़ सकते थे। समसामयिक कृति उपदेश तरंगिणी में वर्णित है कि राजा लोग गांव और सामन्त खेत दान [13] में देते थे।

मध्य काल में युद्ध प्रायः हुआ करते थे। जागीरदार सेनायें लेकर युद्धों में सम्मलित होते थे। उनकी सेनायें मेवाड़ की सेना का अंग था। इसलिए राजा को भी उनके विचारों का सम्मान करना पड़ता था। मेवाड़ में महारावल सामन्तसिंह और जागीरदारों के मध्य विवाद हुआ तब राजा ने जागीरदारों को शक्तिहीन करने के लिए उनकी जागीरे छीन ली किन्तु उन जागीरदारों ने गुजरात के राजा की सहायता से उसे ही अपदस्थ करा दिया एवं सदैव के लिए मेवाड़ छोड़ने को बाध्य भी कर दिया[14]। इसी प्रकार कुंभा के पुत्र उदा ने पिता को मार कर राज्य बलात् ले लिया लेकिन जागीरदारों ने विरोध करके कुछ ही काल में रायमल को राज्य दिला दिया।

सूत्रधार मंडन के अनुसार राजा की राजधानी में इनके भी महल बने रहते थे [15]।

मन्त्री मण्डल

मेवाड़ में राजा की सहायता के लिए एक मन्त्री परिषद् अन्य राज्यों की तरह होती थी। अल्लट के वि० सं० १००८–१०१० के सारणेश्वर के लेख में मुख्यामात्य अक्षपट्टलाधीश, संधिविग्रहक वंदिपति और भिषगाधिराज [16] का उल्लेख है। कुंभा

---

१३. उपदेशतरंगिणी पत्र सं० १६७।

१४. ओझा—उ० इ० भाग १ पृ० १४७। आबू के लेख में "तस्मादपहृतसामंत सर्वस्वः" वर्णित है।

१५. राजवल्लभमंडन के अध्याय ५ के श्लोक ४ और ५। उपरोक्त टिप्पणी सं० ३।

१६. सारणेश्वर का लेख—[illegible] लेख माला भाग २ पृ० २४–२५। वी० वि० भाग १ का शेष संग्रह। डा० गोपीनाथ शर्मा—मेवाड़ एण्ड मुगल एम्परर्स पृ० १६२–१६४।

के समय मंत्री परिषद की क्या स्थिति थी ? इसमें कौन कौन अधिकारी थे इसका उल्लेख नहीं मिलता है । राजवल्लभमडन और संगीतराज में मुख्य मंत्री, सचिव मंत्रीगण राजपुत्र राजगुरु सेनापति ज्योतिषी पुरोहित और वैद्य का [17] उल्लेख मिलता है। समसामयिक कान्हड़दे प्रबन्ध और पृथ्वीचन्द चरित में कई अधिकारियों के नाम [18] दिये गये हैं । इनमें मुख्यामात्य प्रधान श्रीगरण बयगरण पुरोहित आदि उल्लेखनीय है । मुख्यामात्य, मुख्य मन्त्री और प्रधान शब्द कई बार एक दूसरे के पर्यायवाची शब्दों के रूप में प्रयुक्त हुये हैं । संगीतराज में मुख्यामात्य के स्थान पर मुख्य मन्त्री शब्द प्रयुक्त हुआ है [19] । कान्हड़दे प्रबन्ध में मुख्यामात्य को प्रधान से भिन्न माना है । इसी प्रकार का उल्लेख समसमयिक कृति उपदेशतरगिणी में भी है । "आदिनाथ स्तवन" में कुंभा के मुख्य मन्त्री सहणपाल नवलखां के लिये प्रधान शब्द प्रयुक्त हो रहा है [20] एवं इसके लिये आवश्यकवृहदवृति के द्वितीय अध्याय की प्रशस्ति में "राजमन्त्रीधुराधौरय: साधु सहणपालस्तेन" शब्द है [21] अतएव प्रतीत होता है कि दोनों शब्द एक अर्थ में प्रयुक्त

---

१७. राजवल्लभमंडन अध्याय ८–१ और ९ । ३६–४४ एवं संगीतराज के नृत्यरत्नकोश का सभा सन्निवेश अंश । संगीतराज में सेनापति का उल्लेख नहीं किया है ।

१८. डा० दशरथ शर्मा—अरली चोहान डाइनेस्टीज पृ० २१६ । प्राचीन गुजराती गद्य संदर्भ में मुद्रित पृथ्वीचन्द्र चरित पृ० १३० ।

१९. संगीतराज के पाठ्यरत्नकोश के संज्ञा परीक्षण में "राजास्याद्विवादी रिपुरिवविवदित् मुख्यमन्त्रीयतस्मिन्..." उल्लेखित है ।

२०. नवलखशुभवंसई रामदेव विख्यात । तासु सुत साह सहणउ आज लगि अषियात ।। चित्रकटनरेसरमोकलराणप्रधान । प्रासाद उधरीउ द्रव्य खरची सावधान ।। "आदिनाथ स्तवन"

२१. विजयधर्मसूरिजी के देवकुलपाटक एवं जिनविजयजी के जैन पुस्तक प्रशस्ति संग्रह भाग १ में प्रकाशित प्रशस्ति । खरतरगच्छपट्टावली में अरिसिंह के लिये ही इसी प्रकार "राज मन्त्रीधुराधौरय:" शब्द प्रयुक्त दिये गये हैं ।

हुये माने जा सकते हैं। लेकिन समसामयिक साहित्य में प्रधान शब्द बहुवचन के रूप में अधिक प्रयुक्त हो रहा है अतएव प्रतीत होता है कि प्रधान एक के स्थान पर कई होते थे। संभवतः यह मन्त्रियों के लिये प्रयुक्त होता रहा है। करेड़ा जैन मन्दिर के विज्ञप्ति महालेख (वि० सं० १४३१) में कई मन्त्रियों का उल्लेख है। ऐसी मान्यता है कि राजमुद्रा मुख्य मन्त्री के पास होती थी। राजस्थान और गुजरात के मध्य कालीन इतिहास में श्री करणादिमुद्रा का उपयोग मुख्य मन्त्री द्वारा ही किये जाने का उल्लेख मिलता है। मेवाड़ के महारावल तेजसिंह के समय लिखित पाक्षिक वृति एवं "श्रावक प्रतिक्रमणसूत्र चूर्णि" में तत्कालीन मुख्यामात्यों के लिये "श्रीकरणादिमुद्राव्यापारपरिपंथयति" शब्द उल्लेखित है। तरुणप्रभसूरि द्वारा लिखित 'सम्यक्त्व तथा श्रावकना बार व्रत उपर कथाओं" (वि० स० १४११) की १०वें व्रत की कथा में स्पष्टतः उल्लेख है कि राजमुद्रा राजा के स्थान पर मुख्य मन्त्री या[22] मुख्यामात्य के पास रहती थी। श्रीकरणाधिकारी (श्रीगरणा) का स्वतन्त्र उल्लेख भी पृथ्वीचन्द्र चरित (वि० सं० १४७८) और कान्हड़दे प्रबन्ध में मिलता है। इसी प्रकार बयगरणा का भी उल्लेख उक्त ग्रन्थों में मिलता है। ये दोनों क्रमः आय और व्यय के अधिकारी थे। वि० सं० १५०० के कड़िया के लेख में राजगुरु तिल्ह भट्ट का उल्लेख है[23]। यह बहुत वृद्ध था एवं राणा लाखा के समय से इसी पद पर नियुक्त था। इस लेख से प्रकट होता है कि राणा कुंभा उसका वहुत ही सन्मान करता था। उपदेशतरंगिणी में धर्माधिकरण नामक[24] अधिकारी का उल्लेख है। इस ग्रन्थ मे मन्त्रियों और राजा के कई विरुद दिये हैं। मन्त्रियों के मुख्य २ विरुद "दीवनदीपक राजसभालंकार राजसूत्रसौधसूत्रधार" आदि।

दानपत्रों में मुख्य मन्त्री का ही नाम होता था किन्तु १५०६ के आबू के लेख में इसका नाम नहीं है। इस लेख में दोषी रमण का नाम है जो मुख्य मन्त्री न होकर

---

२२. अथ पुनरापि पड़िहारु आवि करी भणइ "मन्त्रिन् तुम्हारउं कथनु सांभली करी आज्ञाभंग करक जिम तुम्ह ऊपरि राऊ रूठउ। वली हुउं मोकलिउं। मन्त्री न आवइ तउ म आवउ। तउं माहरी सर्वाधिपत्य मुद्रा ले आवि। [प्राचीन गुजराती गद्य संदर्भ पृ० ३७]

२३. वरदा वर्ष ६ अंक ३ पृ० २ से ८। शारदा म० कु० पृ० १७३—७४।

२४. उपदेश तरंगिणी पत्र ५३—५४।

केवल मात्र स्थानीय अधिकारी था क्योंकि इसके आगे "प्रणमति नित्य" भी लिखा है जो छोटे अधिकारी का सूचक है।

मुख्य मन्त्री के अतिरिक्त और भी कई मन्त्री होते थे। कुंभा के मन्त्रियों में अधिकांश ओसवाल जाति के थे। एक चित्तौड़ का कावरा जाति का भी था। इनके पूरे नाम ज्ञात नहीं हो सके हैं। ये लोग राजा को परामर्श देते थे। यह आवश्यक नहीं है कि राजा इनकी परामर्श माने। शासन वह स्वयं करता था। लेकिन इनकी परामर्श का बहुत आदर करता था। मध्य काल में राजा को "कालस्य कारणम्" वर्णित किया है। वह नर रूप में देवता था। धर्मशास्त्रों में ऐसा विधान नहीं है कि मन्त्रीगण किसी कार्य के लिए राजा को बाध्य कर सकें। उसकी शक्ति अखडित थी। इतना होते हुये भी मन्त्रीगणों का सम्मान कम नहीं था। ये लोग नागरिक शासन (सिविल—एडमिनि-स्ट्रेशन) के प्रधान थे। आवश्यकता पड़ने पर युद्ध में भी भाग लेते थे।

मंडन के राजवल्लभमंडन और संगीतराज में राज सभा का उल्लेख है। इसमें कई सभा सद् होते थे। मंडन ने ८ प्रकार की राज सभाओं का उल्लेख किया है (१) नन्दा (२) भद्रा (३) जया (४) पूर्णा (५) दिव्या (६) पक्षी (७) रत्नोद्भवा (८) और उत्पला। राज सभा में विशाल स्तम्भ तोरण आदि बनाये जाकर उनमें सुन्दर कलापूर्ण अश्वथर, गजथर, सिंहथर एवं नृत्य भाव युक्त दृश्य[25] बनाये जाने का उल्लेख है। लेकिन कुंभा की सभा किस प्रकार की थी इसका उल्लेख नहीं मिलता है। सभा सदों का उल्लेख भी कई स्थलों पर मिलता है राजवल्लभमंडन में ही "देवज्ञस्यसभासदस्यगुरुतः पौरोधसंग्रजं" वर्णित है। ठीक इसी प्रकार सभा पंडितों का उल्लेख संगीतराज में है। इससे पता चलता है कि राजा की सभा में कई बुद्धिमान[26] पंडित लोग थे। इनमें कई ख्याति प्राप्त कवि कलाकार संगीतकार आदि थे।

---

२५. राजवल्लभमंडन अध्याय ८ के श्लोक १२–१५।

२६. ते स्युर्दक्षिणतो विभोर्नवनवस्वस्वो चित्यान्यासना।
न्यध्यास्य प्रतिभाविशेषवितेन्द्रज्याः सभापण्ड़िताः ॥११८॥

संगीतराज का नृत्यरत्नकोश प्रथम परीक्षण

कई जैन पंडितों को भी कुंभा ने सम्मानित किया था। इनमें सोमदेवसूरि विशेष उल्लेखनीय है।

शासन को सुचारु रूप से चलाने के लिए कई विभाग मौजूद थे। जिनके द्वारा राज्य की विशाल आय संग्रहित की जाती थी। नागरिकों की रक्षा व्यवस्था एवं सार्वजनिक निर्माण कार्य किया जाता था। दुर्भाग्य से इसकी कार्य विधि के सम्बन्ध में अधिक जानकारी प्राप्त नहीं होती है। मंडन ने कई उच्च अधिकारियों का उल्लेख किया है एवं कई विभागों का भी वर्णन किया है जिससे पता चलता है कि उस काल में कई उल्लेखनीय विभाग रहे होंगे। निम्नांकित विभाग विशेष रूप से उल्लेखनीय है। ये विभाग निश्चित रूप से रहे होंगे।

राजस्व विभाग

राजस्व विभाग बड़ा महत्वपूर्ण था। इसमें कई पदाधिकारी होते थे। खेतों का सेटलमेंट होता था। राज वल्लभ मंडन में भूमि-नाप और क्षेत्रफल निकालने की विधि का उल्लेख किया है। इस सम्बन्ध में इसका १०वां अध्याय बड़ा महत्वपूर्ण है। तत्कालीन भूमि नाप व उनके नक्शे बनाने के लिए स्पष्टतः नाप प्रचलित थे[२७]।

भूमि नाप के लिए चारों तरफ खूंटियां गाड़कर डोरी बांधना आवश्यक था। जिस को हाथ से नापते थे। हाथ अथवा गज लाल चंदन महुआ खेर बांस स्वर्ण रूपा या ताम्बे का बनाया जाता था। इसमें ज्येष्ठ मध्य और लघु नाप का अलग-अलग मान दिया हुआ है। ग्राम नगर कोस आदि को नापने के लिए ज्येष्ठ गज, प्रासाद प्रतिमा राजा के घर आदि को नापने के लिए मध्यम, नाप का गज एवं सिंहासन छत्र शस्त्र आदि को नापने के लिए लघु गज प्रयोग में लिया जाता था[२८]। एक हाथ अथवा गज के ८ भाग या २४ भाग होते थे। कीर्ति स्तम्भ पर गज का चित्र भी दिया है जो २२½ इंच के लगभग है। इसको पहले ८ फिर ३ भागों में बांटा है फिर इसको ४ समभाग करके ९६ भागों में बांटा है। इस गज की लम्बाई ३० अंगुल के लगभग है।

क्षेत्रफल निकालने की जो पद्धति मंडन ने बताई है इसके अनुसार व्यास और लम्बाई से चतुरस्र भूमि का क्षेत्रफल निकाला जाता था। इसी प्रकार वृत्त व्यास परिधि आदि के भी क्षेत्रफल निकालने का भी विधान दिया हुआ है।

---

२७. राजवल्लभमंडन का अध्याय १० श्लोक १। अध्याय १ का श्लोक ३३।

२८. राजवल्लभमंडन के पहले अध्याय का श्लोक ३४।

इस प्रकार व्यापक रूप से भूमि का नाप किया जाता था एवं कर निर्धारण किया जाता था। खेतों की सीमाऐं भी इसी प्रकार नापी जाकर तय की जा चुकी थीं। इसकी पुष्टि समसामयिक लेखों और दानपत्रों से होती है जिनमें खेतों की सीमाए निश्चित की गई वर्णित है। "ग्रामोऽयं स्वसीमापर्यंतं" शब्द दान पत्रों में बराबर मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि सीमाओं का निश्चयन कुंभा के समय से बहुत पूर्व ही हो चुका था। अमृतपाल के वि० सं० १२४२ के दान पत्र में स्पष्टतया लिखा है कि "गातेडा" नामक ग्राम का लसाडिया नामक अरहट बाहर की २ हल बाह्य भूमि तथा धान का खेत दान में दिया जिनकी सीमाऐं इस प्रकार थी पूर्व में अवरूआ नामक रंहट दक्षिण में ग्राम गातौड़, पश्चिम में ढीकौल नामक रंहट और उत्तर में गौमती [२९] नदी। समसामयिक दान पत्रों में भी इस प्रकार खेतों के नाम दिये हुये हैं। इस प्रकार खेतों की सीमा निश्चयन में बड़े कुशल कर्मचारी रखें जाते होंगे। इन खेतों और उनके मालिकों का पूरा-पूरा रेकार्ड भी रखा जाता था। अक्षपट्टलिक नामक अधिकारी के निर्देशन के अन्तर्गत यह कार्य होता था। इसे कलचुरी और गहड़वाल लेखों में भूमि और खेतों सम्बन्धी पूरा विवरण रखने वाला अधिकारी वर्णित किया है [३०]। मेवाड़ के राजा अल्लट के वि० सं० १०१० के लेख में अक्षपट्टलिक मयूर और समुद्र का उल्लेख है। मयूर के पश्चात् उसका पुत्र श्रीपति अपने पिता के स्थान पर नियुक्त हुआ था। भूमि दान में दिये गये ताम्रपत्रों का भी पूरा विवरण रखा जाता था। अक्षपट्टलिक का सम्बन्ध लेख्य विभाग से भी था। वह आय व्यय के आंकड़े बनाता था। कुंभा के समय अक्ष-पट्टलिक कौन था? इसका वर्णन नहीं मिलता है। इसे राजस्थानी भाषा में "आंखपडली" नाम दिया है। राजस्व विभाग में कई छोटे कर्मचारी भी होते थे। खेतों की व्यवस्था पशु धन की रक्षा आदि के निमित्त कर्मचारी अलग होते थे। परमार तथा गहड़वाल लेखों में "गोकुलिक" शब्द मिलता है। कोटा के शेरगढ़ के एक लघु लेख में "श्रेष्ठि नरसिंह गोवृषथीरादित्य:" लिखा है और उसने मंडपिका में से अपने मिलने वाले भाग में से दान देने की व्यवस्था की है। अत: एव यह भी कोई राजकीय अधि-कारी रहा होगा। राज्य की समस्त आय स्थान-स्थान पर नियुक्त भंडारियों के पास

---

२९. ओ० नि० सं० भाग २ पृ० २००।

३०. वासुदेव उपाध्याय—पूर्व मध्य कालीन भारत पृ० १०७।

जमा होती थी। इनमें भी कई छोटे और कई बड़े अधिकारी थे। १५०६ में आबू [31] के लेख में विशिष्ठ भंडारी को ५ फदिये देने का उल्लेख है। यह अधिकारी भूमि कर के साथ-साथ अन्य आमदनी भी जमा करता था। वि० सं० १५०५ के चित्तौड़ के लेख में रत्न भंडारी का उल्लेख है। चित्तौड़ के कोठारियों का उल्लेख शत्रुञ्जय के वि० सं० १५८६ के लेख और शत्रुञ्जय तीर्थोद्धार प्रबन्ध में है जिसमें विस्तृत वंशावली दी हुई है। माणिक्यचन्द्र सूरि द्वारा विरचित पृथ्वीचन्द्र चरित (वि० सं० १४७८) में अधिकारियों की एक लम्बी सूची दी है। इनमें से कुछ के नाम इस प्रकार हैः—गणनायक, दंडनायक, वृत्तिवाहक, तलवर मांडविक, महामात्य, मन्त्रीश्वर श्रीगरणा, वयगरणा, धर्माधिगरणा, सेनापति, आगरिया व्यवहारिया राजद्वारिक भंडारी (कापड़ एवं पूग) रसोइया, पाणेहरी वैद्य ज्योतिषी वीणकार, वंशकार छत्रहर, पंड़ित कवि लेखक योध, महायोध, मालमसाहणी आदि।

कुंभा के लेखों में डूंगरभोजा नामक अधिकारी का उल्लेख मिलता है यह स्थानीय अधिकारी था। आबू के लेख में इसे सम्बोधित करके करों में छूट दी गई थी। कर संग्रह करने वाले अधिकारियों में यह प्रमुख रहा प्रतीत होता है। इसी रूप में इसका उल्लेख वि० सं० १४६१ के लेख में भी है।

समसामयिक लेखों में "सेलहथ" नामक एक अधिकारी का उल्लेख मिलता है। कान्हडदे प्रबन्ध में "नगर तलार, देस सेलहुथ" एवं "सेलहथ सीषामण हुई" आदि उल्लेखित है। आबू के लेखों में सेलहथ का उल्लेख बराबर मिलता है। वि० स० १४६१ के देलवाड़ा के लेख में भी इसका उल्लेख है। यह राजस्व विभाग का एक अधिकारी रहा प्रतीत होता है। इसे "सेलहथाभाव्य" कर की राशि मे से मिलता था। इस अधिकारी का उल्लेख कुंभा के समसामयिक कई लेखों में भी मिलता है।

---

३१. आबू का वि० स० १५०६ के लेख का निम्नांकित अंश—
"श्री अर्बुदाचले देलवाड़ा ग्रामे विमलवसही श्री आदिनाथ तेजलवसही श्री नेमिनाथ तथा बीजे श्रावक देहरे दाणमडिकं बलावी रखवाली गाडा, पोठ्यारू राणि कुंभकर्णि मंह० डूंगर भोजा जोग्यं मया उधारी जिको जात्रि आवि तिहरूं सवमुंकावुं ज्यात्रा संमधि आचन्द्रार्क लगि पायकइको मांगवा न लहि..."

सुरक्षा व्यवस्था

सुरक्षा के लिये उल्लेखनीय अधिकारी तलार या तलारक्ष था। हेमचन्द ने देशीनाममाला में तलारक्ष को नगर रक्षक लिखा है। श्री भंडार कर ने इसे कोतवाल वर्णित किया है। कुम्भा के समकालीन सोमसुन्दर सूरि द्वारा विरचित योग शस्त्र बालाव बोध में तलारक्ष की सेवाएं चोरों को पकड़ने के लिए लेने का [32] उल्लेख किया है। अतएव प्रतीत होता है कि यह अधिकारी चोरों को पकड़ने और नगर रक्षा करने का कार्य आधुनिक पुलिस अधिकारी की तरह करता था। कान्हडदे प्रबन्ध में "नगर तलार" शब्द है।

कई लेखों में तलार भाव्य का भी उल्लेख मिलता है [33] जो या तो राजकीय वेतन, लोगों से लिया हुआ कर, अथवा पुरस्कार था। चीरवा के वि०सं० १३३० कार्तिक सुद १ के लेख में तलारक्षमदन और उसके पूर्वजों का वर्णन है। इस लेख के अनुसार उद्धरण को महारावल मथनसिंह ने नागदा का तलारक्ष बनाया। इसके पुत्र योगराज को उसके पिता के स्थान पर महारावल पद्मसिंह ने लगाया। इसके पुत्रों में से एक यमराज भूताले के युद्ध में लड़ता हुआ मारा गया और चौथे पुत्र क्षेम को चित्तौड़ का तलारक्ष लगाया। इसी का पुत्र मदन हुआ जो भी चित्तौड़ का तलारक्ष था।

---

३२. वेणातट नगरि मूलदेव राजा। एक बार लोके बिन बिउ स्वामि को एक चोर नगर मुसइ पुण चोर जाणिर नहीं। राजहि कहि ऊं थोडा दिहाड़ा मोहि चोर प्रगटि करि सुं। तम्है असमाधि न करिसउ। पछइ राजाइं तलार तेडी हाकिऊं। तलार कहइ भइं अनेक उपाय किधा पुण ते चोर धराइ नहीं। (प्राचीन गुजरात गद्य संदर्भ में मुद्रित योग शास्त्र बालाव बोध पृ० ७८)।

३३. "सं० १२२१ माघ बदि २ शुके...तथा राष्ट्रकूट पातू केल्हण तद् भ्रातृज उत्तमसिंह सूद्र काल्हण आहल आसल अपातिगादिभिः तलाराभाव्यर्थं स (:) गट सत्कात् अस्मिन्नेव कल्याण के द्र० १ प्रदतः" इसमें स्पष्टतः तलाराभाव्य से होने वाली आमदनी में से दान दिया है।

तलारक्ष की नियुक्ति सब ही मुख्य नगरों में होती थी [३४]। रक्षा के निमित्त दूसरा महत्वपूर्ण कार्य चौकियों की स्थापना थी। इन चौकियों में कई सैनिक रहते थे जो शांति के समय नागरिकों को रक्षा के साथ-साथ युद्ध के समय शत्रुओं से भी मुकाबला करते थे। कुछ चौकियां जंगल में लुटेरों से रक्षा के निमित्त भी बनाई जाती थी।

सार्वजनिक निर्माण विभाग

कुम्भा के समय हुआ निर्माण कार्य विशेष उल्लेखनीय है। उस समय सार्वजनिक हित के लिए कई तालाब बाग बावड़िये बनी। चित्तौड़ दुर्ग की प्राचीरों एवं द्वारों को नये ढंग से सुसज्जित किया। मेवाड़ के बड़े छोटे ३२ दुर्ग कुम्भा द्वारा बनाये गये विख्यात है। इन दुर्गों के अतिरिक्त कई महत्वपूर्ण मंदिर भी बनवाये। कीर्ति स्तम्भ का निर्माण कराया। इस प्रकार सम्पूर्ण राज्य में व्यापक रूप से निर्माण कार्य हुआ था। इस कार्य के लिए कई दक्ष सूत्रधार थे जो राज्याश्रित थे। इनमें सूत्रधार जेता और उसके पुत्र नाथा पुंजा इसी प्रकार सूत्रधार मंडन नाथा एवं उद्धरण मुख्य थे। कुंभा के समान अन्य कोई ऐसा शासक मेवाड़ में नहीं हुआ जिसने निर्माण कार्य के लिए इतना अधिक व्यय किया हो। इस प्रकार व्यापक और सुव्यवस्थित रूप से कार्य करने के लिए निर्माण विभाग रहा होगा जिसके अन्तर्गत ही सारी व्यवस्था होती रही होगी।

न्याय व्यवस्था

दुर्भाग्य से शिला लेखों और अन्य उपलब्ध सामग्री इस बारे में प्रायः मौन है कि मेवाड़ में न्याय व्यवस्था का क्या स्वरूप था ? लेकिन प्रतीत होता है कि न्याय सस्ता और सुलभ था। अन्य राज्यों की तरह दण्ड पति रहा होगा जो मुख्य न्यायाधीश रहा

---

३४. १४वीं शताब्दी में लिखी "सम्यक्त्व तथा श्रावकना बार व्रत कथाओं" में नवम व्रत कथा में "तेहनऊं स्वरुपु नगराधिपति जाणीकरी तलारु बोलावइ। तलारु विलक्ष्य वदन हूं तउ अधोमुख होईकरीजीनवइ" महाराज! जो भूमि गोचर चोरु हुयउ तउ माहरउ पाडिहुय इ...आदि"। समसामयिक उपदेश तरंगिणी के पत्र १८४–१८५ में सेलहय की सेवाएं चोरों को पकड़ने के लिए और हेमहंसगणि द्वारा लिखित नमस्कार बालावबोध (वि० १५००) में तलार की सेवाएं कर संग्रह के लिए भी वर्णित है।

होगा। समसामयिक जैन ग्रन्थों में उल्लेखित "पौर जन प्रधान" संभवतः पंचायतों के प्रधान थे। स्थानीय फैसले पंचायतें करती थीं। कानून के लिए स्मृति ग्रन्थों की सहायता ली जाती थी। राजा सर्वोपरि था। अन्तिम निर्णय राजा ही करता था। संभवतः देश द्रोह षडयन्त्र आदि के लिए कड़ी सजायें दी जाती थीं। राजा अपराधी को क्षमा भी कर सकता था। मंहपा, पवार एकाचाचावत आदि मोकल के घातकों को कुंभा ने क्षमा कर दिया था। महाराणा रायमल के समय राव सुरताण की पुत्री तारा देवी को प्राप्त करने के लिए जयमल ने सुरताण पर आक्रमण किया और इसी कारण उसकी मृत्यु हो गई। राव ने सारा समाचार लिखकर महाराणा के पास भेजा। महाराणा ने पुत्र मोह से ऊपर उठकर राव को क्षमा कर दिया अन्यथा मध्य काल में बैर लेना विख्यात था। सामंतों के गांवों की न्याय व्यवस्था में राजा का नाम मात्र का हस्तक्षेप था। उसमें राजा के सिवाय अन्य कोई दखल नहीं दे सकता था। आईन—इ—अकबरी में तत्कालीन हिन्दू न्याय व्यवस्था का उल्लेख है। इसमें लिखा है कि हिन्दुओं में कई प्रकार के कानून प्रचलित थे जो स्मृति ग्रन्थों के आधार पर स्थिर थे। न्यायधीश अपने सहायक न्यायाधीश भी नियुक्त करते थे। उस समय वादी और प्रतिवादी शब्द प्रचलित थे। १२ वर्ष से कम आयु वाला अत्यन्त मुर्ख पागल बीमार आदि को न्यायालय में उपस्थित नहीं होने दिया जाता था [35]।

प्रान्तीय शासन

मेवाड़ की मुख्य भूमि के अतिरिक्त पश्चिमी भाग से गौडवाड का प्रदेश आबू दुर्ग, सिरोही राज्य का पूर्वी भाग जिनमें पिंडवाडा और बसंतगढ़ शामिल है इसमें सम्मलित था। यह भू-भाग चित्तौड़ से दूर था। इसीलिए गोडवाड और इस भाग का शासन कुंभलगढ़ से होता [36] था। वस्तुतः इस नगर का महत्व चित्तौड़ के समान ही था इसे द्वितीय राजधानी भी कहा जा सकता है। अन्य भागों का शासन स्थानीय प्रमुख दुर्गों से होता था। आबू और बनास कांठेका आबू से मारवाड़ का मण्डौर पाली आदि

---

३५. आइन-इ-अकबरी (अंग्रेजी अनुवाद) भाग २ पृ० ७३८।

३६. नाडलाई के आदिनाथ मंदिर के लेख में "महाराजकुमार श्री पृथ्वीराजानुशासनात्" शब्द है जो कुंभलगढ़ में नियुक्त था। अतएव इससे पुष्टि होती है कि नाडलाई नाडोल आदि का शासन कुंभलगढ़ से होता था।

से, सपादलक्ष के भू-भाग को अजमेर और सांभर से, मेरवाड़ का बदनोर से, खेराड़ का मांडलगढ़ और जहाजपुर से शासन चलाया जाता था। इनमें किलेदार नियुक्त [३६ (अ)] किये जाते थे। मंडोर का दुर्ग मेवाड़ में रहा तब तक चूंडा के पुत्र कुन्तल मांजा आदि के अधिकार में ही रहा था। अजमेर में वि० सं० १५११ के आस-पास गजाधर नामक राजपूत किलेदार था। मालवे के सुल्तान मोहम्मद खिलजी ने इसे कुछ समय के लिए विजित कर लिया था। इस प्रकार संपूर्ण राज्य कई नगरों, दुर्गों आदि में विभक्त था। सैनिक महत्व और सुरक्षा की दृष्टि से ही यहां की व्यवस्था की जाती रही है।

स्थानीय शासन

गांव के अधिकारी को ग्रामिक या ग्रामीण कहा गया है। सामंत अमृतपाल के वि० सं० १२४२ के दानपत्र में ग्रामीय, द्रंगिक, नायक और ठक्कुर नामक अधिकारियों का उल्लेख है [३७]। ग्रामीय या ग्रामीणी एक गांव का अधिकारी होता था क्योंकि इस दान पत्र में भामद्रंति के ग्रामीय मुगड के ग्रामीय एवं झाडोली के ग्रामीय का उल्लेख है। ग्रामणी शब्द संगीतराज [३८] में कुंभा के लिए भी विरुद के रूप में प्रयुक्त हुआ है जिसका अर्थ कुंभा को राज्य के समस्त गांवों का मुखिया माना जाना प्रतीत होता है। नायक संभवत: १० गांवों का अधिकारी होता था। द्रंगिक शब्द सम्भवत: डांगी या डांगी शब्द का संस्कृत रूपांतर है। ठक्कुर शब्द उक्त दान पत्र मे भारद्वाज गोत्रीय ब्राह्मण शोभा के पुत्र मदन के लिए भी प्रयुक्त हुआ है। गांवों में एक अन्य अधिकारी पटेल होता था [३९]। श्री मजूमदार इसे राजकीय अधिकारी के स्थान पर आदरसूचक [४०] शब्द मानते हैं। कई गांवों की एक इकाई बनती थी जिनमें आस-पास के बड़े-बड़े गांवों

---

३६ (अ) कु० प्र० श्लोक ८५ एवं ९६।

३७. ओ० नि० सं० भाग २ पृष्ठ २००।

३८. कालेनाथ पुर्नविलीनमिव तद् दृष्ट्वा गणग्रामणीः।
शभुः कुंभ नृपोधिः प्रयतते वक्तुं विदामगणीः ।। नृत्य रत्न कोश १।१७

३९. वि० सं० १५२० पोष वदि ५ के थराद के मूर्ति के लेख में पटइल सामंत का उल्लेख है। (दोलतसिंह लोढा—जैन मूर्ति लेख संग्रह लेख सं० २३६।

४०. मजुमदार—चालुक्याज आफ गुजरात पृ० २४८।

के अधीनस्थ छोटे गांव लगा दिये जाते थे [41]। यह वर्तमान तहसीलों की सी व्यवस्था थी। प्राय: मोटे-मोटे गांवों में ऐसे केन्द्र रहे होंगे। जैसा कि ऊपर उल्लेखित किया जा चुका है गांवों का यह विभाजन "चोरासी" के नाम से प्रसिद्ध था। सूत्रधार मंडन ने राजवल्लभ मंडन में १००० गांवों के अधिपति को "चोरासी का अधिपति" कहा है [42] किन्तु यह कुछ गांवों का समूह ही रहा होगा जिनकी संख्या १०० से अधिक नहीं रही होगी। काछोला की चोरासी में गिने जाने वाले गांवों की संख्या ६० के करीब है। गांवों में ग्राम सभा का भी उल्लेख मिलता है। इनके अतिरिक्त पंचायतें भी विद्यमान थी जिन्हें बड़े व्यापक अधिकार प्राप्त थे। ये स्थानीय दीवानी फोजदारी और माल सब ही के मुकद्में निश्चित सीमा तक सुनती थी।

सेना व्यवस्था

कुंभा के पास विशाल सेना थी। इसी कारण उसे "तोडर मल्ल" की उपाधि भी दी हुई थी। तोडर मल्ल शब्द संभवत: "तृद्रुह मल्ल" शब्द से बना प्रतीत होता है जिसका अर्थ होता है कि तीन प्रकार की सेनाओं का अधिपति। कीर्तिस्तम्भ के लेख में इसे स्पष्टत: वर्णित किया है कि कुंभा ने हयेश (अश्वपति) हस्तीश (गजपति) और नरेश (पैदल सेना का अधिपति) होने से तोडरमल्ल का विरुद धारण किया था [43]। फारसी तवारीखों मे भी कुंभा की विशाल सेनाओं का उल्लेख यत्र तत्र मिलता है। इस विशाल सेना के कारण ही वह गुजरात और मालवा के सुल्तानों से बराबर युद्ध कर सकने में सफल हुआ था। कीर्ति स्तम्भ की प्रशस्ति के अनुसार उसने आबू विजय

---

४१. "रामपोल के बाहर लगे एक लेख में फूलिया और मांडलगढ़ के गांवों का उल्लेख है। यह बनवीर के समय का है। वी० वि० भाग २ के शेष संग्रह में प्रकाशित।

४२. प्रोक्तः प्रवीणैश्चतुराशिकौसौ। ग्रामाहियस्यैव सहस्त्रमेकं ॥

राजवल्लभमंडन ५।६

४३. हयेशहस्तीशनरेशराजत्रययोल्लसत्तोडरमल्लमुख्यं। की० प्र० १७७। संगीतराज की प्रशस्ति में "गजनरतुरगाधीशराजत्रितयत्तोडरमल्लेन" लिखा मिलता है। इसी प्रकार का विरुद गीत गोविन्द की टीका में भी प्रयुक्त हुआ है।

के लिए अश्व सेना का एवं सपादलक्ष में पैदल सेना का अधिक उपयोग किया था। कुंभलगढ़ प्रशस्ति के अनुमार जब कुंभा विजय यात्रा को जाता था तब उसकी विशाल सेना के घोड़ों से धूल उड़कर नभ में परि व्याप्त हो जाती थी जिससे सूर्य भी ढक जाता था। सेना के रसद, आयुध निर्माण आदि के लिए भी समुचित व्यवस्था रह। होगी। विशाल मात्रा में सब ही प्रकार के आयुध बनाये जाते थे। सेना में योध, महायोध आदि कई अधिकारी होते थे।

राजकीय आमदनी के साधन

राजकीय आमदनी के मुख्य साधन राज कर थे। शिला लेखों और अन्य लेखों से राजकीय करों के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है। करों को मुख्य रूप से निम्न भागों में विभाजित कर सकते हैं।

१—भाग भोग इत्यादि भू राजस्व

२—हाटक कर

३—आयात निर्यात कर

४—धार्मिक कर या ग्रास

५—अन्य कर

भाग भोग इत्यादि भूमि के उपज का भू राजस्व था। दान पत्रों में "भाग भोग इत्यादि" लिखा मिलता है। भाग कर में पैदावार का कुछ अंश लिया जाता था। प्राचीन भारतीय परम्परा के अनुसार १।६ भाग ही कर के रूप में लिया था। कुंभा के समय कितना भाग कर के रूप में लिया जाता था इसका कुछ भी उल्लेख नहीं मिलता है। मुसलमान सुल्तानों में अलाउद्दीन ने ऊपज का भाग बढ़ाकर १।२ तक कर दिया था [44]। उसका मेवाड़ पर भी शासन रहा था। उसने मेवाड़ में भी यही पद्यपि लागु की होगी। मध्य काल में मेवाड़ में भूमि कर अधिक था। इसके पक्ष में मुख्य प्रमाण यह है कि

---

४४. मूरलेण्ड—एग्रीरियन सिस्टम आफ मुस्लिम इंडिया का कमला कर त्रिपाठी का अनुवाद पृ० ४८। किन्तु तारीख–इ–फिरोजशाही के अनुसार तुगलक बादशाहों के लगान की पद्धति में परिवर्तन कर पैदावार के औसत के आधार पर इसे निश्चित किया गया था (सय्यद अहमद अब्बास रिजवी का अनुवाद पृ० ७–८)।

तत्कालीन राजस्थान के अन्य राज्यों में भी भूमि कर अधिक थे । मूरलेन्ड लिखता है कि मेवाड़ में भी बंटाई, नाप और ठेका तीन प्रकार के रिवाज थे । बंटाई और लाटा तो ऊपज का १।३ भाग तक होता था एवं कभी-कभी उपज का १।२ भी होता था किन्तु किसानों को यह अधिकार था कि वे बजाय अनुमानित ऊपज के वास्तविक ऊपज का १।२ या १।३ खलिहान में ही दे सकते थे [45] । ठेके की प्रथा का भी रिवाज था । जो पैदावार खलिहान में नहीं जा सकती थी जैसे गन्ना, तरकारी सरण आदि उनके लिए नगद कर देने का उल्लेख मिलता है । जो नगद के रूप में लिया जाता था वह "भाग" कहलाता था और जो भोग के रूप में लिया जाता था उसे लाटा कहते थे । कुछ भाग नगद और कुछ कच्चे माल में जो लेने की प्रथा थी उसे हिरण्य कहते थे । कहीं २ नगद को हिरण्य भी कहा है । लाटा की प्रथा अत्यन्त प्राचीन है । उदयपुर के सारणेश्वर के लेख में लाटा प्रथा का उल्लेख है । इस लेख के अनुसार प्रत्येक लाटे में से एक तुला (नाप) अनाज सारणेश्वर के मन्दिर के निमित देना पड़ता था [46] । लाटा और भोग दोनों एक ही के लिए प्रयोगित होता था । सांडेराव के वि० सं० १२२१ के लेख में "राजकीय भोग मध्यात् युगंधर्या: हाएल एक प्रदत:" और इसी प्रकार गोडवाड़ के एक अन्य सोनगरों के १२ वीं शताब्दी के ताम्र पत्र में "दातमध्यात् गोधूमानां द्रोणाः पंच नदानां ग्रामीय भोगात् दातव्या" लिखा है । "लटाई" के समय गांव का मुखिया जो सभवत: पटइल या पटेल होता था खेत का मालिक और राजकीय अधिकारी उपस्थित रहते थे । राजकरों के लेने का स्पष्टत: उल्लेख वि० सं० १५०० के कडिया के लेख और १५४५ की दक्षिण द्वार की प्रशस्ति में है [47] ।

---

४५. मूरलैंड की उक्त पुस्तक के पृ० २७ ।

४६. "लाटहट्टे तुलाढ़कौ" शब्द सारणेश्वर के लेख में वर्णित है । (प्राचीन लेख माला भाग २ पृ० २४–२५) ।

४७. तस्मै ददौ हाटक पट्टवासः स्वेष्टार्थभारान्वित गाढलीकं ।
श्री तावजी गामे—म (स) पारसीमसंकल्प तं राजकरैः प्रणीतम् ॥१६॥
(कडिया का लेख)

इसी प्रकार दक्षिण द्वार की प्रशस्ति में—"देव ब्राह्मण भाट नाजका वर्षासन ग्राम पूर्वजेने आपणीदीधी तिण समस्त राजकर मुकर्रर कीधा" वर्णित है ।

हाटक कर

यह कर बाजार में होने वाली माल की बिक्री पर लिया जाता था। इस कर को मेवाड़ में लिये जाने की पुष्टि सारणेश्वर के वि० सं० १०१० के लेख से होती है। उस समय केवल मात्र अन्न की बिक्री पर ही संभवत: कर लिया जाता था। कुंभा के समय के १४९१ के देलवाडा के लेख में कई प्रकार के बिक्री करों का उल्लेख है। इनमें वस्त्रकर, नमक कर आदि है। इनमें २ टंका नमक कर और १ टंका वस्त्र (पट सूत्रीय) कर ५ टंका मांडवी, ४ टंका मापा २ टंका मणहोड़ावटा आदि करों का उल्लेख है। इसी प्रकार वि० सं० १५०० के कडिया ग्राम के लेख में हाटक, पट्टवास (वस्त्र) एवं भार से भरी हुई गाड़ियों को अन्य स्थान से कडिया में लाने का संकल्प करने पर राज कर नहीं लिये जाने का उल्लेख है। मिरात-इ-सिकन्दरी से तत्कालीन गुजरात में पान लाख सोने चांदी के तारों, अफीम, और रेशमी वस्त्रों पर बिक्री कर का उल्लेख है [48]। इसी प्रकार के कर संभवत: राजस्थान के अन्य राज्यों में और मेवाड़ में अवश्यमेव प्रचलित थे। पृथ्वीचन्द्र चरित (१४७८ वि०) में शहर के भागों का उल्लेख करते हुये पटसूत्रीय आदि भाग भी वर्णित किये हैं। अतएव प्रतीत होता है कि देलबाड़ा के १४९१ के लेख में वर्णित कर इन स्थानों से लिये जाते रहे होंगे। मणहेडावटा भी इसी प्रकार वहां के विशिष्ठ स्थान का कर था।

माल के आमद और निकासी पर अवश्य कर लिये जाते थे। सारणेश्वर के वि० सं० सं० १०१० के लेख के अनुसार हाथी घोड़ों सींग वाले जानवरों से कर लेने का उल्लेख मिलता है [49]। यह इस प्रकार था:—

---

४८. मिरात-इ-सिकन्दरी के अनुसार अहमदाबाद में सायर-इ-मांडवी से बाजार की क्रय विक्रय की आमदनी होती थी वह १० लाख रुपये सालाना थी। इससे प्रतीत होती है कि कई प्रकार के टैक्स थे। इनमें "धर-इ-चाह, दरीबा-इ-लाख, दरीबा-इ-तारकश, दरीबा-इ-अफीयुन, दरीबा-इ-अब्रेइश्म आदि है। जो क्रमशः पान लाख, सोने चांदी के तारों अफीम और रेशमी वस्त्रों की बिक्री पर लिये जाते थे (बेले हि० गु० पृ० ७-८)

४९. द्रम्ममेकं करीदद्यस्तुरगो रूपकद्वयम्।
द्रम्मार्धविंशकं शृंगीं लाटहट्टतुलाढकौ। सारणेश्वर का लेख।

१—हाथी पर एक द्रम
२—घोड़े पर २ रुपये
३—सींग वाले पशु पर १/२० द्रम

कुम्भा के समय के वि० १४९१ के देलवाड़ा के और वि० १५०६ के आबू के लेखों में विभिन्न प्रकार करों के लेने का उल्लेख है। देलवाड़ा के लेख के अनुसार ५ टंका मांडवी (मण्डपिका का कर) ४ टंका मापा (कस्टम टेक्स) आदि का उल्लेख है जिनका ऊपर वर्णन किया जा चुका है। ये कर माल की आमदनी पर लिये जाते थे। इसी प्रकार आबू के १५०६ के लेख में दाण बलावी मुंडिक रखवाली घोड़ों और बैलों पर लिये जाने वालों करों का उल्लेख मिलता है। मेवाड़ में आमद होने वाले माल में नमक रेशमी वस्त्र घोड़े आदि मुख्य थे। वि० सं० १४९५ के चित्तौड़ के लेख में गुणराज श्रेष्ठि के पुत्र कालु को मार्ग की चोकियां पर नियुक्त किया वर्णित है। यह माल की आमद और निकासी पर भी निगाह रखता था। राज्य में सुव्यवस्थित व्यापार था और ये कर राजकीय आमदनी के मुख्य साधन थे।

धार्मिक कर

आबू पर दीर्घकाल से कई प्रकार के धार्मिक कर लिये जाते थे। इन करों को कुंभा ने वि० सं० १५०६ में बंद कर दिया था और यह व्यवस्था की कि नेमीनाथ आदिनाथ तेजलवसही आदि के निमित आने वाले यात्रियो से लिये जाने वाले सब कर छोड़ दिये जावे [५०]। केवल मात्र आबू के अचलगढ़ पर जाने के लिए कुछ कर व्यवस्था की। विशेष मदिरों के पूजा खर्च के लिए व्यवस्था करने की प्रथा अत्यन्त प्राचीन थी। वि० सं० १००३ के प्रतापगढ़ के दक्षिणी देवी की पूजा के निमित प्रत्येक घाणी से १ पल तेल देने का उल्लेख है। सारणेश्वर के लेख में इस प्रकार की व्यवस्था की लम्बी सूची है जिसके अनुसार हाथी घोड़ा सीगं वाले जानवरों बाजार में होने वाले माल की बिक्री पर कर लेने की व्यवस्था की गई है। वि० सं० १२०७ के कुमार पाल के चित्तौड़ [५१] के

---

५०. बाघेला सारंगदेव के आबू के लेख में मुंडक चौकी रखवाली आदि कर मुक्त कर यह व्यवस्था की थी कि अगर आबू का ठाकुर यात्रियों की रक्षा करे एवं उनकी कोई वस्तु चोरी हो जाने पर वह क्षतिपूर्ति करें। कुंभा के लेख में इस प्रकार की व्यवस्था नहीं है।

५१. "दीपार्थं घाणमेकं सज्जनोम्यदात् (ए० इ० भाग २ पृ० ४०९) इस प्रकार का उल्लेख अन्यत्र भी मिलता है। शेरगढ़ के लेख में तैलिक राज शब्द का उल्लेख है। "श्रीसोमनाथदेवस्य दीपतैलनिमित्तं ठक्कुर देवस्वामिना तैलिकराजथाइयाक घाणौ द्वौ प्रदत्तौ—" साधारणतया यह दान पलिका (एक नाप) के रूप में दिया जाता था और प्रायः प्रतिघाणा १ पलिका के अनुपात से होता था।

लेख के अनुसार समिद्धेश्वर के मंदिर में दीपक के लिये तेल की व्यवस्था का उल्लेख है। धार्मिक उत्सवों के लिए ग्राम से सामूहिक रूप से कर निश्चित कर लिया जाता था। इसका संदर्भ गोड़वाड़ के सोनगरों के वि० सं० १३५६ के बाघीण ग्राम से प्राप्त एक दानपत्र में है इसके अनुसार शांतिनाथ विजय यात्रा के निमित प्रति घर और प्रति अरहट यह व्यवस्था की गई है। वि० सं० १४६१ के लेख में इन्हें "ग्रास" कहा है [52]।

अन्य कर

इन करों के अतिरिक्त मध्य काल में और भी कई प्रकार के कर लिये जाते थे। "खड़-लाखड़" नामक एक प्रकार का कर था जो जंगल की पैदावार पर लिया जाता था। दान देते समय स्पष्टतया लिखा जाता था। "ग्रामोऽयं स्वसीमापर्यन्तं स्ववृक्षमालाकुलं सकाष्टतृणगोपचारं सजलस्थलसमेतं चतुष्कंकटविशुद्धभागभोगहिरण्यादिस्कन्धकमार्गाण-कादिराजभाव्यैस्सहित"। इससे प्रकट होता है कि उस समय गोचर भूमि पर और जंगल की पैदावार पर भी कर लिया जाता था। गोचर भूमि का कर प्रति पशु पर लिया जाता था। गोचर भूमि का स्पष्टतया दानपत्रों में उल्लेख मिलता है। "स्वसीमातृण-प्रतिगोचरपर्यन्तो सर्व्वदाय समेतं"। इनके अतिरिक्त आबू के लेख में वर्णित "बलावी" रखवाली आदि और भी कई प्रकार के कर लिये जाते थे जो प्रत्येक ग्रामवासी से बलाई और चौकीदार की सेवाओं के निमति लिये जाते थे।

(२) विष्ठी—(बेगार) इसका प्रचलन प्राचीन काल से ही था।

(३) लाग बाग—मध्य काल में इनकी संख्या बहुत अधिक थी। राजा के पुत्र जन्म विवाह आदि विशेष अवसरों पर और गांव में कई प्रकार की लाग बाग ली जाती थीं।

अन्य साधन

(अ) निसंतान की सम्पति—निसंतान मरने वाले की सम्पति पर राज्य अधिकार कर लेता था। यह प्रथा कुम्भा के समय में भी प्रचलित रही अथवा नहीं इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा जा सकता है। लेकिन रायमल के समय की दक्षिण द्वार की

---

५२. "ए ग्रासु जिको लोपई तेहरहिं राणा श्री हमीर राणा श्रीषेता राणा मोकल राणा कुंभकर्णनी आण छइ"। देलवाडा का १४६१ का लेख)

प्रशस्ति में स्पष्टतया लिखा है कि प्राचीन काल से चली आ रही इस प्रथा को उसने लागू नहीं किया [53] । जो विचारणीय है ।

(ब) दशापराध—दंड के रूप में वसूल होने वाली राशि को दशापराध कहा गया है । आर्थिक दड देने की प्रथा प्राचीन काल से ही प्रचलित थी । व्यभिचार आदि अपराधों पर आर्थिक दंड देने का भी उल्लेख मिलता है ।

मंडपिकाएं

कर संग्रह करने का कार्य मंडपिका या मांडवी करती थी । इनका स्वरूप क्या होता था । ये राजकीय संस्थायें थी अथवा अर्ध सरकारी थी कुछ भी ज्ञात नहीं हो सका है । संभवतः ये राज्य के आधीन थी लेकिन ये भू राजस्व संग्रह नहीं करती थी । ये मेवाड़ के सब प्रमुख नगरों में स्थित थी । शिला लेखों से चित्तौड़ सज्जनपुर आघाट देलवाड़ा आदि स्थानों में मंडपिकाएं होने का उल्लेख मिलता है । कई बार राजा लोग इन मंडपिकाओं से प्राप्त राशि में से सीधे ही दान देते थे [54] एवं कई बार किसी निश्चित कर से प्राप्त होने वाली राशि में से कुछ अंश दान दे देते थे । इस प्रकार के कई उदाहरण गोडवाड़ के सोनगरों के लेखों में मिलता है । इससे ज्ञात होता है कि इन मंडपिकाओं में सविस्तार हिसाब रखा जाता था । प्रत्येक मद में होने वाली आय को अलग-अलग बतलाई जाती थी । इस प्रकार का विस्तृत हिसाब रखने पर ही यह संभव था कि किसी निश्चित कर से कुछ अंश उदक के लिये दे दिया जाय । इनके

---

५३. धननि निधनमाप्तेपत्यहीने तदीयं धनमवनिपभोग्यं प्राहुरर्थागमज्ञाः ।
विदितनिखिलशास्त्रो राजमल्लस्तदुज्झन् विशदयति यशोभिर्बाप्यभूपान्ववायं
दक्षिणद्वार की प्रशस्ति ।८३।
समसामयिक कृति उपदेश तरंगिणी (१५१६ वि०) में "मृतधनंमुक्तम्" प्रथा का उल्लेख है [पृ० ६८]

५४. सं० ११६५ के आसोज बुदि १५ के नाडोल के एक लेख में भोक्ता ठाक्कुर राजदेव ने बेलों की गाड़ी के कर से होने वाली आय में से १/२० भाग दान दिया था । "ठा० राजदेवेन स्वपुण्यार्थे स्वीयदानमध्यात् मार्गेगच्छतानामागतां वृषभानां शेकेषु यदाभाव्यं भवति तन्मध्यात् विंशतिमो भागः—प्रदतः"

हिसावों की जांच की व्यवस्था भी थी । कभी-कभी राज्य के बाहर के भाग के लिये भी दान की व्यवस्था की जाती थी । वि० सं० १३२६ के सोनगरा राजा चाचिगदेव के करेड़ा (मेवाड़) के जैन मन्दिर के लेख के अनुसार नाडोल की मंडपिका से इस प्रकार के दाने देने की व्यवस्था है[55] । उपदेशतरंगिणी में "स्वगृहाट्टदेशान्तरस्थवस्त्रवस्तुधनकण मुल्य लेखकं" शब्द से स्पष्ट है कि इनके हिसाब के लिए अलग कर्मचारी रहते थे । उस समय नाडोल की मंडपिका मेवाड़ के अन्तर्गत न होकर सोनगरों के अन्तर्गत थी । अतएव इस प्रकार से दान देने से यह कहा जा सकता है कि निश्चित रूप से हिसाब रखे जाते थे । मंडपिकाएं कभी-कभी ठेके भी दे दी जाती थी । वि० सं० १४६६ में लिखित श्रावकव्रतादि अतिचार ग्रन्थ में "दाणबलावी गाम लीधां । आकरा कर लीधाँ" उल्लेख होने से प्रकट होता है कि ठेकेदार अधिकाधिक कर वसूल करता था ।

महाजन सभा

महाजन सभा सब ही मुख्य-मुख्य नगरों में होती थी और इसे यातो कर लगाने का अधिकार प्राप्त था या राजा इसकी स्वीकृति से कर लगाना था । इसको कई विस्तृत अधिकार प्राप्त थे । इसका मेवाड़ में प्राचीनतम उल्लेख वि० सं० ७०३ के शीलादित्य के लेख में है जिसमें उल्लेखित है कि जेंतक ने महाजन सभा द्वारा स्वीकृति लेकर देवी का मन्दिर बनाया । वि० सं० ११७२ के गोडवाड़ के लेख में यशोदेव बलाधिप के लिये लिखा गया है[56] कि वह राजा और महाजन सभा द्वार सन्मानित था । बलाधिप निसंदेह सेना का अधिनस्थ अधिकारी था इस प्रकार सेनाधिकारी द्वारा अपने शिला लेख में महाजन सभा का ऐसा उल्लेख करने से प्रकट करता है कि यह संस्था वड़ी प्रभावशाली थी । जूना के वि० सं० १३५२ के लेख में और नाडोल के वि० सं० १२०० के लेखों से स्पष्टत: प्रकट होता है कि राजा कर लगाने के पूर्व महाजन सभा की स्वीकृति लेता था[57] । मेवाड़ में

---

५५. सं० १३२६ वर्षे चैत्रबुदि १५ (श्रावणान्त) सोमेऽद्येहं महाराजकुल चाचिगदेव करहेडाग्रामे श्रीपार्श्वथाय पूजार्थं । सोमे पर्वणि स (न) डूलमण्डपिकायां उदक पू—(र्वं दत्तं) द्र०—

५६. नाहर—जैन लेख संग्रह भाग १ पृ० २२७ श्लोक ७ ।

५७. वि० सं० १३५२ के लेख में स्पष्टतः "ऐसो लागा महाजनेन मानिता" वर्णित है । वि० सं० १२०० के लेख के लिये जैन लेख संग्रह (जिन विजयजी) भाग २ लेख सं० ३४२ दृष्टव्य है ।

राजस्थान के अन्य भागों की तरह महाजन सभा निश्चित रूप से विद्यमान थी। समसामयिक कृति कान्हडदे प्रबन्ध में इस प्रकार की व्यवस्था का वर्णन है।

पंचकुल

महाजन सभा में ग्राम के सब ही प्रतिनिधि भाग ले सकते थे। यह सभा बहुत ही विस्तृत थी। इसने अपने अधिकार पंचकुल को दे दिये प्रतीत होते हैं। पंचकुल शब्द का अर्थ बहुत व्यापक रूप से लिया जाता है। डा० मजूमदार के अनुसार[58] जिन पंचकुलों में राज्य का मुख्या मात्य अध्यक्ष होता था वे केन्द्रीय शासन के अधीनस्थ होती थी एवं जो जिनमें मुख्यामात्य सदस्य नहीं होता था वे केन्द्रीय शासन के आधीन नहीं थी किन्तु मध्य कालीन राजस्थान के शिला लेखों के अध्ययन के पश्चात् ऐसा मत निश्चित रूप से व्यक्त नहीं किया जा सकता है[59]। सोमदेवकृत नीतिवाक्यामृत की एक टीका में "करण" शब्द को पंचकुल का परिवाचक बतलाकर इसमें ५ सदस्य बतलाये हैं (१) आदायक (२) निबन्धक (३) प्रतिबंधक (४) नीवीग्राहक और राजाध्यक्ष[60]। उपरोक्त वर्णन के अनुसार राजाध्यक्ष भी एक सदस्य होता था। संभवत राजा द्वारा मनोनीत व्यक्ति ही अध्यक्ष रहता हो। वि० सं० १३०६ और १३३६ के भीनमाल के लेखों से स्पष्टतः प्रतिध्वनित होता है कि पंचकुल के सदस्यों की नियुक्ति ही राजा द्वारा होती थी।

मेवाड़ में पंचकुल का प्राचीनतम उल्लेख समराइच्च कहा में है। यह ग्रंथ हरिभद्रसूरि द्वारा विरचित किया गया था। इसके ४थे भव में एक कथा दी हुई है उसमें वर्णित है कि राजा चंडसेन के सर्वसार नामक एक खजाने में चोरी होगई बड़ी तलाश करने पर भी जब प्राप्ति नहीं हो सकी तो नवागुन्तकों की तलाशी ली जाने लगी। एक बार कुछ लोगों को माल सहित पकड़ लिया और उनको जांच के लिये पंचकुल के समक्ष प्रस्तुत किया था। तब पंचों ने उनसे कई प्रश्न किये। यह प्रसंग बहुत ही रोचक है। यहां सदस्य को "करणि" नाम से सम्बोन्धित किया गया है। इसी प्रकार दूसरे

---

५८. मजुमदार—चालुम्पाज आफ गुजरात पृ० २४८–४६।

५६. नाहर जैन लेख संग्रह लेख सं० २३२ एवं २३३ दृटव्य है।

६०. हिस्ट्री आफ नोर्दन इंडिया फ्रोम जैन सोर्सस पृ० ३६२।

भव की कथा में चन्दन सार्थवाह के घर चोरी हो जाने पर डूंडी पीटवाकर सूचना दिलाने पर जब सूराग मिला तब तलाशी के लिये "करणि" नियुक्त किया गया। मोह पराजय नामक नाटक से प्रकट होता है कि पंचकुल को अपुत्र की सम्पति को प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त था। लेख पद्धति और अन्य कई वृतान्तों से ज्ञात होता है कि पंचकुल के अधिकार बहुत ही विस्तृत थे। ये आपसी फैसला कराते थे मुकद्दमें सुनते थे दानपत्रों को मान्यता प्रदान करते थे आदि। कई बार पंचकुल के सदस्यों को मन्दिर की व्यवस्था भी सौंप दी जाती थी। उस समय गोष्टियों के साथ पंचकुल के सदस्यों को कर लगाने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। घटियाले के लेख के अनुसार ऐसी संस्था भाटक संस्था कहलाती थी जिसमें मन्दिर की व्यवस्था पंचकुल और गोष्ठि लोग मिल करके करते थे। वि० सं० १३४८ के रत्नपुर के सामन्तसिंह के लेख में भी इसका उल्लेख है। इस प्रकार पूर्व मध्य काल में राजस्थान में पंचकुल का महत्व था।

विजित राज्यों के प्रति कुंभा की नीति

विजित राज्यों के प्रति कुंभा की नीति का उल्लेख उसके शिलालेख एकलिंग महात्म्य अमरकाव्य आदि में है। अधिकांशतः विजित राज्यों को कर लेकर के पुरानी स्थिति में ला दिया था। कर लेने का उल्लेख कई जगह मिलता है। उदाहरणार्थ –"सपादलक्ष करदं विधाय, करप्रदं डिडुआणलवणकरं व्यधात्, हाड़ावटी–तन्नाथान् करदान् विधाय" आदि। संगीतराज और एकलिंग माहात्म्य के एक मिलते हुये श्लोक में समस्त विजित राज्यों से कर लेने का उल्लेख है [61]। कर की राशि कितनी होती थी इसका स्पष्ट रूप से कहीं उल्लेख नहीं है। कई कई बार युद्ध में हार जाने पर सामंत या राजा जब क्षमा मांग लेते थे तो उन्हें क्षमा करके पुरानी जागीर में या राज्य में ही प्रायः प्रतिष्ठापित कर दिया जाता था। सोजत के ठाकुर के लिये भी ऐसा ही वर्णन है [62]। भृष्ट राजवंशों को पुनर्स्थापित करने में उसने

---

६१. कु० प्र० श्लोक २६४। की० प्र० श्लोक ५–६ एवं २२। इस पुस्तक के अध्याय ३ के पृ० ७६ पर फुटनोट सं० ५२।

६२. कु० प्र० श्लोक सं० २४८।

यथा शक्ति सहायता दी थी। शरणागते आये हुये राजाओंको उसने सदैव सहायता दी थी। टोड़ा के ठाकुर को उसकी जागीर मुसलमानों से जीतकर वापस दिलाई थी आम्बेर के राजा को भी कायम खानियों के विरुद्ध ऐसी ही सहायता दी थी। नागौर के शाहजादा को भी अपने राज्य की वापस प्राप्त करने में सहायता दी थी। अमरकाव्य में "सपादलक्षरजतमुद्रामितकरप्रदा" वर्णित है। बांकीदास की ऐतिहासिक बातों में बात नं० ९८४ मे १४ लाख रुपया लेना वर्णित है। संगीतराज के पाठ्यरत्न-कोश में भी इसी प्रकार नागौर जीतकर वहां के शासक को कर दाता बनाकर उसे वा[illegible] पुनर्स्थापित कर दिया था।

युद्ध में असख्या नारियों को बन्दी बनाने का उल्लेख मिलता है। सारंगपुर और नागपुर के युद्ध में सेकड़ों यवन स्त्रियों कोबंदी बनाकर लाया गया। इसी प्रकार का व्यवहार हमीरपुर के राजा के साथ युद्ध में किया गया और नारदीयनगर के राजा की स्त्रियों का भी बलात् लाया गया था। मध्य काल में इस प्रकार की घटनाओं को बड़ा अच्छा मानते थे [63]। उसकी युद्ध नीति की सबसे बड़ी विशेषता उसने सबसे पहली बार गुरिल्ला युद्ध की नीति को चलाई थी जिसे आगे चलकर प्रताप और राजसिंह ने भी अपनाई थी। मुसलमान सुल्तानों के आ जाने पर पहाड़ों में चला जाना और वहां से एकाएक आक्रमण करके शत्रुओं को नष्ट कर देना इसकी सबसे बड़ी विशेषता थी। संगीतराज "अज्ञातद्यातेषु शकेष्वकस्मात्" वर्णित है। एकलिंग माहात्म्य में टोड़ा की विजय के लिये "सहसाजित्वा शकदुर्जयं" शब्द हैं। वह एका एक शत्रु सेना पर टूट पड़ता था और शत्रु सेना को लूटता था और भागने को बाध्य करता था। कीर्तिस्तंभ प्रशस्ति में "रणापहल कुंजरैकमिनगुर्जरार्धाश्वरा" एकलिंग महात्म्य में "वैरिव्रातैकरक्षो" और संगीत राज में "मत्सैन्यैलुट्यमानेऽस्मिन्गौर्जरेमालवोऽपि च" वर्णित है। कीर्तिस्तंभ प्रशस्ति में नागौर से लूटी गई सम्पति का उल्लेख है।

वह विजय के पश्चात् नगरों को भी प्रायः नष्ट कर देता था। नागपुर को नष्ट करने का उल्लेख कीर्तिस्तंभ प्रशस्ति में है। इसी प्रकार बूंदी आदि का वर्णन मिलता है।

---

६३. कु० प्र० श्लोक २६९–२७०, २४६, २५० । की० प्र० श्लोक २० ।

६४. कु० प्र० श्लोक २५९, २५९ । की० प्र० श्लोक १९ ।

राजकीय आज्ञापत्र

राजकीय आज्ञा पत्र कुंभा के समय मेवाड़ी भाषा में ही लिखे जाते थे । इन पर महाराणा के हस्ताक्षर नहीं होते थे बल्कि केवलमात्र भाले का चिन्ह बना लिया जाता था । "एकलिंग प्रसादात्" शब्द भी प्रायः लिखा जाता था । इनमें "श्रीमुख" शब्द भी लिखा मिलता है जिसका अर्थ है कि उक्त आदेश महाराणा द्वारा मौखिक दिया जा चुका था । अब तक प्राप्त कुंभा के दानपत्र अत्यन्त संक्षिप्त है ।

इस प्रकार कुंभा के समय में शासन प्रबन्ध सुव्वयास्थित था । लोग सुखी थे । न्याय सुलभ था ।

सातवां अध्याय

धार्मिक स्थिति

काशीकाशीन्मि (नत) तथ्या न भवति मथुरा द्वारका द्वारिका वा ।
कांती (काञ्ची) वा वात्र कांत्या वदत च किमुपायात्रमायामनुस्यात् ।
नाद्धायोध्या विश्रु (शु) द्धा जदव (य) ति किमु सावंतिका यत्र साक्षात्
कुंभस्वामी सुरेशो निवसति वसतिस्तीर्थकृत्तीथंभूमेः ।।७५।।

कुंभलगढ प्रशस्ति

धार्मिक स्थिति

भारत धर्म प्राण देश है। यहाँ प्राचीन काल से ही मानव ने भौतिक सुख और ऐन्द्रिक विलासिता को त्याज्य समझकर आध्यात्म चिंतन की ओर बढ़ने का प्रयास किया है। आनन्द तत्व की खोज भारतीय धर्म साधना की महत्वपूर्ण सफलता है। असत्य से सत्य की ओर बढ़ने का चिरकाल से प्रयत्न हो रहा है। राम रावण का संग्राम असत्य पर सत्य की एवं भौतिकता पर आध्यात्मिकता की विजय है [1]।

शैवधर्म

शैवधर्म मेवाड़ में अति प्राचीन काल से प्रचिलित था। वहां शिव की पूजा मुख्य रूप से जलहरी के मध्य स्थित शिव लिंग की होती है। शिव की अन्य मूर्तियां भी मिली है। इनमें त्रिनेत्र शिव की मूर्ति त्रिमूर्ति आदि मुख्य है। त्रिनेत्र शिव की एक मूर्ति कल्याणपुर से मिली है जो उल्लेखनीय है। यह उदयपुर संग्रहालय में है। इसके अतिरिक्त सराडा धुलेव परसाद जगत आदि स्थानो से शिव की कई मूर्तियां मिली है [2]। इनसे प्रकट होता है कि मेवाड़ में व्यापक रूप से शैव सम्प्रदाय माना जाता था। शिव के भी कई स्वरूप माने गये हैं इनमें लकुलीश एवं अर्द्ध नारीश्वर भी हैं। अर्द्धनारीश्वर का [3] उल्लेख छोटी सादड़ी के वि० सं० ५४७ माघ सुदि १० के लेख में भी है। अतएव प्रतीत होता है कि शिव की ये प्रतिमाएं पांचवी शताब्दी के पूर्व ही बन चुकी थी। एकलिंगजी का मंदिर मेवाड़ के प्राचीनतम देवालयों में से है। इसकी उपासना मेवाड़ के राज घराने में दीर्घ काल से चली आ रही है। हारीतराशि जो बाप्पा

---

१. डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी—मध्यकालीन धर्म साधना पृ० १४।

२. श्री रतन चन्द्र अग्रवाल—शोध पत्रिका भाग ७ अंक २–३ पृ० १ से ५।

३. आ० नि० सं० भाग १ पृ० ८९। ए० इं० भाग ३० पृ० १२२। वरदा वर्ष ८ अंका पृ०।

रावल का गुरु था यहां का मठाधीश था [4] । अतएव उस समय से ही शैव धर्म को राजाश्रय मिल चुका था । महाराणा मोकल और कुंभा दोनों ने इस मंदिर का जीर्णोद्धार कराया था और पूजाहेतु कई ग्राम भेंट में दिये थे [5] ।

शैवधर्म का दूसरा केन्द्र चित्तौड़ था । यहां के शिवालयों में कुकडेश्वर और मोकलजी के मंदिर मुख्य हैं । मोकलजी का मन्दिर परमार राजा भोज द्वारा बनाया हुआ माना जाता है । कुमार पाल जब अर्णोराज को विजय करके लौट रहा था तब वि० सं० १२०७ में इस मन्दिर के दर्शन कर एक ग्राम भेंट मिया था और दिगम्बर साधु जयकीर्ति के शिष्य रामकीर्ति द्वारा एक प्रशस्ति बनवाकर के भी लगवा दी थी [6] । इसके पश्चात् वि० सं० १३५८ में महारावल समरसिंह के समय इसका जीर्णोद्धार प्रतिहार बंशी महारावत पाता के बेटे धर्रसिंह ने कराया था [7] । किन्तु इस मंदिर का आधुनिक रूप मोकल के समय वि० सं० १४८५ में दिया गया था [8] । इस मन्दिर की मूर्ति विशेष उल्लेखनीय है । विशालकायत्रिमूर्ति होने के कारण इसको अद्भुतजी का मंदिर भी कहते हैं । इस मूर्ति में ६ हाथ हैं । मध्य के २ हाथों में बिजोरा और माला, दाहिनी ओर के २ हाथों में सर्प और खप्पर एवं बांयी ओर के दोनों हाथों में दंड और ढ़ाल हैं [9] ।

इनके अतिरिक्त शिव की कई अन्य प्रतिमाएं जैसे रुद्र, पाशुपत उमामहेश्वर, सदाशिव नटराज, अघोर ईशान वामदेव, महेश, हर, श्रीकंठ षणमुख आदि भी मिलती

---

४. ओझा—उ० इ० भाग १ पृ० ११४ ।

५. रायमल के समय की दक्षिण द्वार की प्रशस्ति से ज्ञात होता हैं कि मोकल ने बांधनवाड़ा और रामा गांव और कुंभा ने नागदा कठडावन मलकखेड़ा और भीमाणा ग्राम इस मन्दिर को भेंट में दिये थे ।

६. ए० ई० भाग २ पृ० ४०६—१० ।

७. ओझा उ० इ० भाग १ पृ० १७५–७६, वरदा वर्ष ६ अंक १ पृ० ६५ ।

८. ए० इ० भाग २ पृ० ४०८—४०६ । आ० सं० इं० सन् १८८३—८४ पृ० ११६ से १२२ ।

६. ओ० नि० सं० भाग १ पृ० २२०—२१ ।

है। ये मूर्त्तियां पूजा के निमित कार्य में नहीं लाई जाती थी। रूप मंडन नामक ग्रंथ में इन मूर्तियों के निर्माण के सम्बन्ध में विस्तृत उल्लेख मिलता है।

लकुलीश सम्प्रदाय

पाशुपत दर्शन के अन्तर्गत लकुलीश सम्प्रदाय का अत्यधिक महत्व था। यह शैवधर्म की एक शाखा थी। लकुलीश शिव का अन्तिम अवतार माना जाता है। श्रीदेवदत्तभंडारकर, ब्हुलर और रतनचन्द्र अग्रवाल ने इस मत पर विद्वतापूर्ण लेख लिखें हैं। वायू और लिंग पुराणों को छोड़कर शेष किसी प्राचीन ग्रंथ में इस मत के आविर्भाव के सम्वन्ध में उल्लेख नहीं मिलता है। अतएव क्रमवद्ध इतिहास प्रस्तुत करना कठिन है। इस मत का प्रारम्भ द्वापर काल में माना जाता है। पुराणों का कथन है कि जब भगवान कृष्ण और द्वैपायन व्यास अवतरित होंगे उस काल में शिव भी लकुल लेकर अवतारिक होंगे। पुराणों का यह कथन माननीय नहीं है। सामान्यतया सब उपासक अपने उपास्यदेव को परमब्रह्म और शक्तिशाली देव के रूप में पूजते हैं। कालान्तर में यह भावना इतनी अधिक बलवती हो जाती है कि उन्हें लोक में पूजे जाने वाले अन्य देवों के साथ सम्बन्धित करने की चेष्टा करते हैं [10]। इस मत का प्राचीनतम उल्लेख गुप्तसंवत ६१ (वि० सं० ४३७) के मथुरा के एक लेख में है जिसमें इस सम्प्रदाय के कुशिक की ११ वीं पीढ़ी में हुए उदिताचारि का उल्लेख है [11]। अतएव इस सम्प्रदाय का उद्भव वि० सं० की दूसरी शताब्दि के अन्त में होना चाहिए। लिंग और वायू पुराणों में जो समुद्रगुप्त के शासन काल के पूर्व लिखे जा चुके थे, इस मत का उल्लेख होने से स्पष्ट है कि उस काल के पूर्व यह मत अवश्यमेव प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका था [12]।

शिव का यह अवतार कायावरोहण (कारवां) नामक स्थान में हुआ था। एकलिंग जी के वि० सं० १०२८ के लेख के अनुसार शिव का यह अवतार भृगुकच्छ देश

---

१०. मेरा लेख—शोध पत्रिका भाग ७ अंक २–३ पृ० ३१–३२।

११. ओ० नि० सं० भाग १ पृ० २२१।

१२. ज० ब० ब्रा० रा० ए० सो० भाग २२ पृ० १८६। मेरा लेख—शोध पत्रिका भाग ७ अंक २–३ पृ० ३१–३४ आ० सं० रि० इं वर्ष १९०६–७ पृ० १८०–१८७। वरदा वर्ष ८ अंक १ पृ० १ से १३।

में जहां मेकला की पुत्री नर्मदा बहती है हुआ। सोमनाथ के वि० मं० १२७४ के लेख में यह अवतार उल्का के पत्रों को अनुग्रहित करने हेतु हुआ वर्णित है इस मत में चार प्रमुख आचार्य हुये १–गार्ग्य २–कुशिक ३–कौरूष और ४–मैत्रेय। एक लिंग जी के कुशिक मठाधीश शाखा के थे।

लकुलीश की मूर्ति में लिंग का चिन्ह बना रहता है और एक हाथ में दंड एवं दूसरे में बिजोरा होता है। लकुलीश उर्द्धरता होता है। ये योगियों के देवता है और ब्रह्मचारी होने से लिंग बना रहता है[13]। दूर से जैन अथवा बुद्ध की सी दिखाई देने वाली यह प्रतिमा भारतीय मूर्तिकला के इतिहास में विशेष महत्व की है। जिस प्रकार बीज और बिन्दु के समन्वय स्वरूप को अर्द्धनारीश्वर के रूप में प्रकटित किया था ठीक उसी प्रकार व्रात्य एवं शैव सिद्धान्तों का समन्वित कर के लकुलीश की प्रतिमा का प्रचलन किया हो तो कोई आश्चर्य नहीं। कारवां माहात्म्य नामक ग्रथ के ४ थे अध्याय की परि समाप्ति पर प्रशस्ति में लकुलीश के लिए "तीर्थंकर" शब्द प्रयोग में लिया गया है [14]। अतएव प्रतीत होता है कि इस मूर्ति की रचना करते समय कलाकारों के सन्मुख व्रात्य मूर्तियों का स्वरूप अवश्यमेव रहा था। इन मूर्तियों से परिवर्तन लाने के लिए हाथ के आयुधों में परिवर्तन मिलता है। तिलस्मा के मदिर की मूर्ति के हाथ में नारियल है बिजोरा नहीं हैं। मांडलगढ़ की मूर्ति में अटक की तरह दंड के स्थान पर साधारण डंडा बना हुआ है। तिलस्मा की मूर्ति तो स्पष्टतया जैन पार्श्वनाथ की मूर्ति की नकल है। [15] हाल ही में श्री रतनचन्द्र अग्रवाल ने कुछ लकुलीश मूर्तियां ढूंढ निकाली है जिन पर "श्री वत्स" चिन्ह भी बना हुआ है। कुछ कायोत्सर्ग भी है। अतएव ये जैन मूर्तियों के निकट प्रतीत होती है। लकुलीश की मूर्तियां मुख्य मदिर के बाहर बनी रहती है और पूजा के निमित प्रयोग में नहीं लाई जाती है।

---

१३. नकुलीशं उर्ध्वमेढं—पद्मासनं सुसंस्थितम्।
दक्षिणे मातुलिंगं च वामेदण्डप्रकीर्तितम्॥
आ० स० रि० ई० वर्ष १९०६–७ पृ० १८६।

१४. श्रीशिवपुराणे पार्वतीमहेशसंवादे तीर्थंकरमणिकायाम् श्रीशूलपाणि जन्मपट्टबंधधिमहात्म्यम्" [उपरोक्त पृ० २८०]

१५. उपरोक्त पृ० १८७।

शैव दर्शन में तीन मुख्य प्रदार्थ माने गाये हैं।[16] १-पति (शिव) पशु (जीव) और पाश (कर्म)। शिव का शरीर कर्मफल से मुक्त है। इसकी २ अवस्था होती है पहली-लय और दूसरी-भोग। पशु या जीव की भी तीन प्रकार की स्थिति होती है (१) विज्ञानाकल (२) प्रलयाकल (३) सकल। जीव का मल विशुद्ध होने पर वह विद्येश्वर पद प्राप्त कर लेता है। लकुलीश दर्शन में कुछ अंतर है। इसमें कार्य कारण, योग विधि और दुखान्त को अधिक महत्व दिया है। कारण परमेश्वर है, कार्य को पशु या जीव का स्वरूप माना है। विधि के अन्तर्गत भस्मस्नान जप उपहार तथा प्रदक्षिणा और इसी प्रकार शिव की पूजा के निमित्त हसित गीत नृत्य हुड़कार नमस्कार आदि भी आवश्यक बतलाया है। सर्व दर्शन संग्रह में इसका वर्णन है।

लकुलीश सम्प्रदाय का मेवाड़ में प्राधान्य रहा है। मांडलगढ़ सब डिविजन के अनेकों मंदिरों में इस की मूर्तियां मिली है। मेवाड़ में इसका प्राचीनतम उल्लेख वि० सं० १०२८ के एकलिंग जी के लेख में है। इस लेख का प्रारंभ ही "ॐ नमो लकुलीशाय" से होता है। श्लोक संख्या ९ से ११ में लकुलीश की उत्पति के विषय में वर्णन है और १३ वें श्लोक में कुशिक आदि योगियों का वर्णन है जो शरीर पर भस्म लगाते थे जटा जट रखते थे और बल्कल वस्त्र पहनते थे। इस लेख में सुपूजितराशि श्रीमातृगड श्रीआतुर श्री सद्योराशि लैलुक श्रीविनिश्चितराशि आदि के नाम भी दिये हैं[17]। चीरवे के वि० स० १३३० कार्तिक सुदि १ के लेख के अनुसार एकलिंग मदिर का अधिष्टाता शिव राशि था जो योगियों में अग्रणी था[18]। इसके पश्चात् एकलिंग मदिर के मठाधीशों का उल्लेख कम मिलता है। गुंसाई जी के आधुनिक लेख में प्रसंगवश वर्णन है। कुंभा के समय में लकुलीश साधु ही रहें होंगे।

---

१६. सर्वदर्शन संग्रह में शैव और नकुलीश सिद्धान्त। श्री हजारी प्रसाद— मध्य कालीन धर्म साधना पृ० ३६-३७। मेरा लेख शोध पत्रिका भाग ७ अंक २-३ पृ० ३३-३४।

१७. ज० ब० ब्रा० रा० ए० सो० भाग २२ में एवं वी० वि० के भाग १ शेष संग्रह में छपा गया लेख। ओझा—उ० इ० भाग १ पृ० १२६। नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग १ पृ० २५६-५६।

१८. वी० वी० के भाग १ के शेष संग्रह में छपा चीरवा का लेख पृ० १०८।

इस लेख में ६१वीं पीढ़ी में शंभु नारायण स्वामी का उल्लेख है जिसके कुरुप शरीर को देखकर राणा कुंभा बहुत हंसा था इससे इसने बहुत क्षोभ किया जिससे राजा को पीड़ा भी हुई । यह लेख वि० सं० १९४७ का है जो आधुनिक है ।

मेनाल में लकुलीश मत का मेवाड़ का दूसरा बड़ा केन्द्र था । यहां एव आसपास साधुओं की समाधियों पर कई लेख हैं । इनमें प्राचीनतम लेख १०वीं शताब्दी का झाडोली से मिला है । कुंभा के समकालीन वि० सं० १५१४ पोष बदि १२ सोमवार के एक लघु लेख में जो मेनाल से मिला है कडव, भोजा और चम्पा जोगियों का उल्लेख है [19] । कडव महन्त का उल्लेख एक अन्य लेख में भी दिया हुआ है । इसके पश्चत् वि० सं० १५५३ का भी एक लेख मेनाल से और मिला है । अतएव प्रतीत होता है कि कुंभा के पश्चात् भी यह मत बराबर मेवाड़ में विद्यमान था । इतना अवश्य सत्य है कि १५ वीं शताब्दी के पश्चात् से इसका प्रभाव अपेक्षा कृत कम होने लग गया था । इसका मुख्य कारण इनकी साधनाएं गुह्य थी और जन साधारण के लिये ये सुलभ नही थी [20] । साथ ही साथ वैष्णव और जैन धर्म का भी अभ्युदय हो रहा था । इसी कारण धीरे-धीरे शैवों का प्रभाव न्यूनतम होता गया । कुंभा के समय बनी मूर्तियां कम मिली है । लकुलीश की एक प्रतिमा कुंभश्याम के मन्दिर के बाहरी भाग में अवश्य बनी

---

१९. "श्रीमहाकालदेव श्रीवर्षकोशथिरैवप्रणमतिनित्यम्" "महातंमजवारिक प्रणमति नित्यन् ।" वर्णित है । इसी प्रकार एक अन्य लेख में—"स० १५१४ वर्षे पोष वदि १२ सोमे कडव भोजा चम्पा" वर्णित है । शिलालेखों में कई साधुओं के नाम मिलते हैं । उदाहरणार्थ लाहोरी के वि० सं० १२११ के लेख में पाशुपताचार्य विश्वेश्वरप्रज्ञ का उल्लेख है । वि० सं० १२२५, १२२८ और १२२९ के धौड के लेखों में प्रभासराशि का उल्लेख है । वि० सं० १२२६ के मेनाल के लेख में ब्रह्ममुनि का उल्लेख है । वरदा के वर्ष ४ अंक ३ के पृ० ३–४ में प्रकाशित उदयपुर संग्रहालय का लेख सं० ७ भी दृष्टव्य है इसका प्रारम्भ "जयसव लिन्गुवाशराय" से हुआ है ।

२०. वैष्णवाचार्यों ने इसका विरोध किया था । रामानुजाचार्य ने श्री भाष्य के २।१।३६ में स्पष्टतः लिखा है कि पाशुपत वेद विरोधी है ।

हुई है जिसके दंड पर सर्पाकार आकृति बनी हुई है। यह प्रतिमा ८–९वीं शताब्दी की है। कुंभा ने हारीतराशि की मूर्ति बनाई थी जिस पर वि० सं० १५०२ श्रावण सुदि २ का लेख है। इस मूर्ति में सिर पर जटा, लंगोट बाँधे दाढ़ी मूछें हाथ में रुद्राक्ष की माला है। अतएव उस समय शैव साधु इसी प्रकार के होते होंगे। यह मूर्ति एकलिंगजी में कांकरोली रोड़ पर स्थित एक पुराने मन्दिर में है।

वैष्णव धर्म

मेवाड़ प्राचीन काल से ही वैष्णव धर्म का भी केन्द्र रहा है। माध्यमिका के खंडहर इस बात की साक्षी है। जैन और बौद्ध धर्म की प्रतिक्रिया स्वरूप वैदिक धर्म का पुनरुत्थान हुआ और वैदिक धर्म को पुराणों में नये रूप में देखा। अब इस धर्म में वासुदेव और संकर्षण की उपासना प्रचलित हुई। वैदिक देवता जिनमें इन्द्र वरुण आदि थे अब द्वितीय श्रेणी के हो गये। बौद्ध ग्रन्थों में इन्द्र को शक्र के नाम से वर्णित किया है। बौद्धों की इन कल्पनाओं को ही पुराणों में सविस्तार से वर्णित किया है। मेवाड़ में वासुदेव की पूजा का सबसे प्राचीन उल्लेख विक्रम की ३री शताब्दी पूर्वाध के एक लेख में है। इसके पश्चात् एक नान्दशा के वि० सं० २८२ के लेख में षष्ठि रात्र यज्ञ किये जाने का उल्लेख है[21]। इस प्रकार नगरी में भी अश्वमेध और बाजपेय यज्ञ करने का उल्लेख मिलता है[22]। वि० सं० ४८१ के लेख में भगवन्त महापुरुष विष्णु का प्रसाद (मंदिर) बनाने का उल्लेख है। इस लेख में सत्यसूर्य, श्रीगंध दास और वसु निर्माण कर्ताओं के नाम है। इसी प्रकार ६ठी शताब्दी के एक अन्य लेख में वर्णित है कि वराह के पौत्र और विष्णुदत्त के पुत्र ने जो वणिक जाति का था और मालवा एवं चित्तौड़ का राजस्थानीय था चित्तौड़ में मंदिर बनवाया[23]। राजस्थानीय शब्द का उल्लेख यशोधर्मा के वि० सं० ५८९ के लेख में अभयदत्त के लिये भी प्रयोगित हुआ है

---

२१. **महतास्वशक्तिगरूणाप्रथमचन्द्रदर्शनमिवमालवगणविषयमवतारयित्वैकषष्टि–रात्रमति सत्रपरिमितधर्ममात्रंसमद्धत्य [ए० ई० भाग २१ पृ० २६०]**

२२. **वरदा भाग ५ अंक ३ पृ० २–३ पर प्रकाशित लेख।**

२३. **ए० इ० भाग ३४ पृ० ५३–५८।**

जो पश्चिमी प्रांतों का प्रशासक था[24]। इस प्रकार इस लेख का निर्माता कोई महत्वपूर्ण व्यक्ति रहा होगा। गुप्तों के साम्राज्य के अन्तर्गत वैष्णव धर्म की अभूतपूर्व प्रगति हुई। इसके पश्चात् मेवाड़ में कई उल्लेखनीय वैष्णव मंदिरों का निर्माण हुआ। गुहिलवंशी राजा अपराजित के सेनापति वराह की स्त्री लक्ष्मी ने यौवन और लक्ष्मी को क्षणिक मानकर विष्णु का मंदिर बनाया[25]। वि० सं० १००१ के एक लेख में जो आहड़ से मिला है वराह की मूर्ति संस्थापित कराने का उल्लेख है। इस लेख में जनार्दन विष्णु और कैटभरिपु शब्दों[26] एवं पांचरात्र साहित्य का उल्लेख है। पांचरात्र साहित्य बहुत विशाल है और इनकी संख्या १०८ तक मानी जाती है। अतएव पता चलता है कि मेवाड़ में पांचरात्र पद्धति भी प्रचलित थी। पांचरात्र विधि मे वासुदेव से संकर्षण (जीव) और उससे प्रद्युम्न (मन) एवं अनिरूद्ध (अहंकार) की उत्पति मानी जाती है[27]। शंकराचार्य ने इनका खंडन किया था। वि० सं० १०१० के लेख में आहड़ में वराह के मन्दिर बनाने का उल्लेख मिलता है[28]। इस लेख में राजा की सभा के सब ही सदस्यों ने जिनमें मुख्यामात्य मम्मट, संधि विग्रहक श्री दुर्लभराज, अक्षपट्टलाधीश श्री मयूर एवं समुद्र, बंदी पति श्री नाग और भिषगाधिराज श्री रुद्रादित्य आदि थे दान

---

२४. आसिन्धोरन्तरालं निज शुचिसचिवाध्यासितानेक देशान् ।
राजस्थानीयवृत्त्या सुरगुरुरिव यो वर्णिनां भूतयेऽपात् ।।१६।।

मन्दसौर का यशोधर्मा का लेख

डा० दशरथ शर्मा का विश्वास है कि इस लेख में वर्णित वराह के २ पुत्र होने चाहिये (१) विष्णुदत्त और (२) रवि कीर्ति। इसमें रवि कीर्ति के पुत्र अभयदत्त को राजस्थानीय का पद बाद में दिया गया होगा। इसके पूर्व विष्णुदत्त के पुत्र को दिया गया था [रिसचर्र वर्ष ५–६ पृ० ७ से ६]।

२५. मूल लेख—वीर विनोद भाग १ के शेष संग्रह में दिया हुआ है। पृ० ३७७–७८।

२६. श्री रतनचन्द्र अग्रवाल—जर्नल आफ इंडियन हिस्ट्री वि० सं० १६५७ पृ० ३५५–५८।

२७. श्री हजारी प्रसाद—मध्य कालीन धर्म साधना पृ० ३०–३१।

२८. प्राचीन लेख माला भाग २ पृ० २४–२५, वीर विनोद भाग १ पृ० ३८०।

दिया था। इससे ज्ञात होता है कि इन सब की वैष्णव धर्म के प्रति प्रगाढ़ रूचि थी। विष्णु के दश अवतारों की कल्पना भी बहुत पुरानी है। पंचदेवोपासना में नृसिंह और वराह की पूजा प्रचलित थी। लेकिन मुख्य रूप से दश अवतार की पूजा १०वीं शताब्दी के पश्चात् ही हुई थी। श्री मद्भागवत में विष्णु के १० और २४ अवतारों का उल्लेख है। केवल १० अवतारों का राजस्थान में सबसे प्राचीनतम स्वतन्त्र उल्लेख सम्भवतः कोटा के रामगढ़ के मन्दिर में उत्कीर्ण मूर्तियां है [29] जहां २४ अवतारों की प्रतिमाएं नहीं है।

मेवाड़ में चार भुजा का मंदिर विशेष उल्लेखनीय है। इस मंदिर का जीर्णोद्धार महाराणा कुंभा के शासन काल में वि० सं० १५०१ में खरवड जाति के रावत महिपाल एवं उसके पुत्र लक्ष्मण आदि ने किया था। इस ग्राम का प्राचीन नाम बदरी था जो कालान्तर में गढ़बोर या चार भुजा के नाम से विख्यात हुआ है [30]। इस मंदिर की विशेषता यह है कि वहां के पुजारी गुर्जर है ब्राह्मण नहीं। राजस्थान में नहीं अपितु उत्तरी भारत में ऐसा कोई अन्य वैष्णव मंदिर नहीं है जहां के पुजारी गुर्जर हो। अतएव ज्ञात होता है कि यह मंदिर उस समय बन चुका था जब ब्राह्मणों का प्रभुत्व अपेक्षाकृत कम था। इस भू-भाग पर गुर्जरों का राज्य भी रहा था और उन्हीं के राजत्व काल में इसका निर्माण हुआ हो तो कोई आश्चर्य नहीं। इस सम्बन्ध में पर्याप्त सामग्री प्राप्त नहीं होती है।

कुंभा के समय वैष्णव धर्म की बड़ी प्रगति हुई हजारों देवालय बने। अलाउद्दीन के आक्रमण के समय विनष्ट मंदिरों के अवशेषों पर अब नये मंदिर बनाये गये। इसी प्रकार नये देवालय कुंभलगढ़, चित्तौड़ एकलिंगजी आबू आदि स्थानों में बनाये गये। कुंभलगढ़ में मामादेव का मंदिर अतिविख्यात है। यह पुरातत्ववेताओं के अनुसार पहले चोमुखा जैन मंदिर था [31] जिसे वैष्णव मन्दिर के रूप में परिवर्तित किया गया

---

२९. मार्ग भाग १२ अंक २ में रामगढ़ के मंदिर पर लेख।

३०. ओझा० उ० इ० भाग १ पृ० ३६।

३१. आ० स० रि० वे० इ० वर्ष १९०९ पृ० ३६–३६ "वट्ट" या सम्भवतः वट शब्द का प्रयोग होने से इसे वट वृक्ष के नीचे मूर्तियों की संस्थापना होने का संकेत करते है। किन्तु वस्तुतः वट वृक्ष के नीचे मूर्तिएं इतनी बड़ी मात्रा में रखने का कोई प्रयोजन नहीं था। ये तो अलंकरण हेतु बनाई गई थी और पूजी जाने वाली मूर्तियां नहीं थी। वट का अर्थ स्थान रहा प्रतीत होता है। इसी अर्थ में यह शब्द समसामयिक साहित्य में कई जगह प्रयुक्त है।

है। इस स्थान का नाम "वट" या "मातुल वट" भी लिखा गया है। इस मदिर के बाहरी भाग में विष्णु के दश अवतार की मूर्तियां भी बनी हुई है। विष्णु के २४ रूपों की प्रतिमाओं में से कुछ प्रतिमाएं भी यहां से मिली है जो अब उदयपुर के सग्रहालय में सुरक्षित है। कुंभलगढ़ में सबसे उल्लेखनीय स्थान यज्ञवेदी है। यह वेदी वैदिक रीति से निर्मित की गई है और राजस्थान में प्राप्त होने वाली वेदियों में संभवतः सबसे प्राचीन है। यह दो मंजिली है। ऊपरी भाग में यज्ञधूम के निष्कासन की समुचित व्यवस्था की गई है। चित्तौड़ में महाराणा कुंभा ने कुंभस्वामि का मंदिर बनाया जो वि० सं० १५०५ म पूर्ण हुआ था। कीर्तिस्तम्भ की प्रशस्ति के अनुसार यह कैलाश पर्वत के समान सुन्दर हिमालय जैसा प्रसिद्ध और स्वर्ण कलशों सेयुक्त होने से सुमेरु पर्वत सा प्रतीत होने वाला श्रेष्ठतम मंदिर है। इस मंदिर में उल्लेखनीय प्रतिमाएं तुलसी माधव और त्रिविक्रम की है। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य विष्णु के विभिन्न स्वरूपों की मूर्तियां भी है। सबसे उल्लेखनीय कार्य चित्तौड़ में कीर्तिस्तम्भ है। इसके सब खंडों में विष्णु के कई अवतारों, पोराणिक देवी देवताओं, ऋतुओं आदि की मूर्तियां बनी हैं। मूर्तियों के नीचे परिचयात्मक नाम दे रखे हैं। उत्तरी भारत में वैष्णव मूर्तियों का इतना बड़ा संग्रह अन्यत्र उपलब्ध नहीं है। कुंभा ने आबू में भी कुंभस्वामि का वैष्णव मन्दिर बनाया। यहां भी विष्णु की कई हाथ वाली प्रतिमाएं बनाई जिनमें अनन्त, त्रैलोक्य मोहन आदि की भी है[३२]। एकलिंगजी के मन्दिर में भी कई प्रतिमाएं हैं। विष्णु के कई हाथ वाली ये प्रतिमाएं जैसे अनन्त त्रैलोक्यमोहन, विश्वरूप आदि की भी प्रतिमाएं वहां भी लग रही है[33]। बसन्तगढ़ में विष्णु की प्रीति के निमित ७ जलाशय महाराणा कुंभा ने बनवाये।

उस समय वैष्णव धर्म व्यापक रूप मे प्रचलित था। कुंभा को संगीत र ज की प्रशस्ति में "वेदमार्गस्थापनचतुराननेन" का विरुद भी दिया हुआ है[34]। मोकल की वि० सं० १४८५ की चित्तौड़ की प्रशस्ति में उन ब्राह्मणों को पुनः वेदमार्गी बनाने का

---

३२. श्री रतनचन्द्र अग्रवाल—राजस्थान भारती पत्रिका मार्च १९६३ पृ० १०५।

३३. श्री रतनचन्द्र अग्रवाल—राजस्थान भारती मार्च १९६३ पृ० ११५-११६।

३४. संगीतराज के अन्त की प्रशस्ति।

वर्णन है जो कृषि कार्य में लग गये थे [35] । अतएव ब्राह्मणों के निरन्तर उत्थान का प्रयास किया जा रहा था जिससे उनकी आर्थिक स्थिति भी सुदृढ़ हो जावे । इनका उस समय काफी सन्मान किया जात था [36] ।

संत सम्प्रदाय

संवत १३०० से १५०० तक का काल धार्मिक क्रांति का युग था । नाथों और यौगिक आचार्यों शैवों आदि की साधनाओं का अप्रत्यक्ष प्रभाव जनता पर इतना गहरा था कि उनकी बाहरी क्रियायें छोड़ने पर भी उनके द्वारा वर्णित धार्मिक स्वरूप को एकाएक भुलाया नहीं जा सकता था। यौगिक" अजपा जाप" का ही परिमार्जित स्वरूप" नाम जप" संतों की वाणियों में प्रकटित हुआ था । इनका भी विश्वास हठ योग की साधनाओं की तरफ था किन्तु ये लाग मांस मदिरा मैथून आदि की निन्दा करते थे । इनका विश्वास था कि निरन्तर ईश्वर जाप से कुंडलिनि जागृत होती है और ब्रह्मरंध्र तक पहुंचकर अनाहद नाद देती है । इन लोगों ने" जाति पांति" के भेदभाव को भुलाकर" हरि को भजे सो हरि का होहि" की उक्ति का प्रचार किया था। नामदेव छीपा , कबीर जुलाहा , धन्ना जाट रेदास चमार पीपा खींची आदि सब ही वर्गों के लोग साधक हो गये हैं । पीपा गोगराण के खींची थे और कुंभा के जन्म के कुछ समम पूर्व ही हुये थे । इन संतों ने राजस्थान में सर्वत्र घूम घूम कर अपने सिद्धान्तों का प्रचार किया था ।

---

३५. यो विप्रानमितान् हलं कलयतः कार्श्येन वृत्तेरलं ।
वेद सांगमपाठ्यत् कलिगलप्रस्ते धरत्रीतले ।। कु० प्र० श्लोक २१७ ।

३६ संगीतराज में सब शुभकार्यों में ब्राह्मणों का रहना आवश्यक माना है । देव पूजा में ब्राह्मणों की उपस्थिति वांछनीय मानी है । नाट्यशाला में शुद्रों की नाट्यशाला त्रिकोण वाली और ब्राह्मणादि वर्गों की चतुस्त्र मानी है । नान्दी से आशीर्वाद कहलाते समय "ब्रह्मद्विषोंस्त्न्तवघ" की कामना की गई है । सूत्रधार मंडन ने भी ब्राह्मणों के सन्मान में इसी प्रकार का वर्णन किया है ।

मातृ शक्ति की उपासना

भारत में अति प्राचीन काल से ही मातृ शक्ति की उपासना प्रचलित थी। विभिन्न देवताओं की शक्तियों की भी कल्पना की गई हैं। विष्णु के साथ लक्ष्मी कृष्ण के साथ राधा राम के साथ सीता आदि इसके उदाहरण है। शक्तिमतावलम्बियों ने तो यहां तक कहा है कि शक्ति के बिना शिव भी शव के तुल्य हैं [37]। शाक्तमत के साथ-साथ वाम मार्ग भी लगा हुआ है। वाममार्गीय साधनाओं में मांस मदिरा आदि पच मकार के सैवन का विधान किया गया है। शक्ति मत का भारतीय साधना पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा था। न केवल हिन्दुओं में बल्कि बौद्धों और जैनों में भी कई देवियों की कल्पना की गई है। बौद्धों की ब्रज वाराही देवी, ब्राह्मणों की वराही देवी अथवा दंडिनी से मिलती है। बौद्धों की तारा देवी का स्वरूप हिन्दुओं की तारा देवो के समान है। हीनयान की मणि मेखला देवी का स्वरूप भी ठीक ऐसा ही है। जैनों ने भी २४ तीर्थं करों की चक्रेश्वरी आदि २४ देवियों की कल्पना की है।

छोटी सादडी के वि० सं० ५४७ माघ सुदि १० के लेख के अनुसार गौरी वंशी राजा यशगुप्त ने देवी का मंदिर बनाया जिसे आजकल भ्रमर माता का [38] मन्दिर कहते हैं। यह मदिर संभवतः मेवाड़ का प्राचीनतम देवी का मंदिर है। इसके पश्चात् शीलादित्य के समय वि० सं० ७०३ में जेंतक श्रेष्टि महाजन सभा की आज्ञा से अरण्य वासिनी चामुंडा देवी का मन्दिर बनाया [39]। मध्यकाल में राजपूत राज्यों में देवी की

---

३७. रूद्रहीनं विष्णुहिनं न वदन्ति जनाः किल।
शक्तिहीनं यथासर्वे प्रवदन्तिनराधभम्॥ देवी भागवत (३।६।१६)

३८. ओ० नि० सं० भाग १ पृ० ८६। इस लेख में 'भूयोऽपि सा जयति या शशिशेखरस्य देहार्द्धमुद्वहतिभक्ततयाहरस्य" लिखा है (मरू भारती वर्ष ६ अंक २ पृ० ४२)।
खन्डेला के और कर्कोट के लेखों में अर्द्ध नारीश्वरका उल्लेख होने से यह स्पष्ट है कि इनकी उपासना इसके कई वर्षों पूर्व से प्रचलित थी।

३६. "एभिर्गुणैयुतं तत्र (जेंत) कमहत्तरश्रीअरण्यवासिन्यादेवकुलं चक्रे महाजनादिष्ट"। (ना० प्र० प० भाग १ पृष्ठ ३११-२४)

उपासना बढ़ी। युद्ध में जाने के पूर्व भवानी की उपासना करना आवश्यक माना जाता था। भवानी की सिद्धि विजय की सूचक थी। मेवाड़ में यत्रतत्र सैंकड़ों देवी के मन्दिर हैं। उनमें सबसे प्रसिद्ध "आत्रोरीमाता, झांतलामाता, सांडमाता, जगत की अम्बिका देवी भरका देवी, लालबाई", फूलबाई आदि के मन्दिर उल्लेखनीय है। इनकी पूजा आज भी सर्वत्र मेवाड़ में व्यापक रूप से प्रचलित है। कुंभा ने भी संगीतराज में "जगदीश्वरी चरणकिंकरेण" कहकर देवी के प्रति अपनी आस्था प्रकट की है।

नाथ सिद्ध पीर आदि की उपासना

राजस्थान के रंगमंच पर नाथों सिद्धों एवं पीरों का कार्य बहुत ही उल्लेखनीय है। उस समय नाथों का बड़ा जोर था। राजस्थान में सर्वत्र गोरखनाथ को बहुत मान्यता दी गई है। इसके सम्बन्ध में कई कथाएें प्रचलित है। जनसाधारण में विश्वास प्रचलित है कि गोरखनाथ अमर है एवम् कई सिद्धियां भी उन्हें प्राप्त हैं। उनके बारे में यह भी विश्वास किया जाता है कि उन्होंने योग बल से अपने गुरू को कामरूप से छुडाया था। दूसरी वार्त्ता में गोरखनाथ का पूर्णमल एवं भर्तृहरी को आश्रय देना विख्यात है[40]। कुम्भा ने संगीतराज में देवपूजनार्थ अन्य देवताओं के साथ गोरखनाथ, मीननाथ, सिद्धनाथ आदि का उल्लेख किया है[41]। इससे प्रकट होता है कि उस समय इनका कितना प्रभाव था। मेवाड़ में तितरडी की गुफा और लसाडिया ग्राम नाथों से सम्बन्धित है। लसाडिया के आयिसजी आज तक मेवाड़ में पूज्य माने जाते हैं और रियासत के समय नवरात्रि में खड्ग स्थापना में इनका प्रमुख हाथ रहाता था[42]।

---

४०. शोधपत्रिका वर्ष ७ अंक २–३ पृ० ७८–१०४।

४१. भैरवी नैऋते कामगामिनी दक्षिणे पुनः।
गोरक्षः सिद्धनाथस्तु पश्चिमे पूर्व दिग्गतः ॥ १५६
मीननाथ उत्तरस्यां चतुरंगः क्रमादिमाः ॥
देवताः पूजयेत् पूर्वं स्यानेषुक्तेषु मंत्रवित् ॥ १५७
संगीतराज का नृत्यरत्नकोश पृ० १४

४२. वी० वि० भाग १ पृ० १२७।

मेवाड़ में अघोर पंथ का अड्डा था। बालानाथ इस मत के मुख्य प्रवर्तक थे [43]। ये मेवाड़ और मारवाड़ में मुख्य रूप से घूमा करते थे। इनके अतिरिक्त और भी कई नाथों के नामों का उल्लेख मिलता है। जिनमें चरपटनाथ, जालंध्रीनाथ पृथ्वीनाथ मोतीनाथ, सती करणेरी, सिद्ध बाबरी सिद्धघोड़ाचोली आदि मुख्य है। इनकी साधनाएं हठयोग की साधनायें थी। इनके अनुसार महाकुण्डलिनि नामक एक शक्ति सम्पूर्ण संसार में परिव्याप्त है। व्यक्त होने पर इसे कुंडलिनि कहा गया है। इसको जागृत करने के लिये यौगिक साधनाएं आवश्यक है। शरीर में कई चक्र हैं। अन्तिम चक्र सहस्राधार चक्र है जहां इडा पिंगला और सुषुम्ना मिलती है। सन्त मत में सुरतिकमल नामक एक और चक्र की कल्पना की है। इस पंथ के मानने वालों ने स्मार्त आचारों की बड़ी निन्दा की है। आचार विचार एवं वर्णाश्रम धर्म के विरुद्ध होने के कारण यह हिन्दू धर्म के विरुद्ध हो गया। चिर काल से उच्च वर्णों के अत्याचारों से दुःखित शुद्र वर्णों के लिए यह मत अत्यधिक ग्राह्य हुआ। ब्राह्मणों और शुद्रों का इनके मत में कोई भेद नहीं रहा। इन्होंने तो समाज के संस्थापित नियमों के विरुद्ध एक प्रकार से आन्दोलन ही कर दिया। इनके ग्रन्थों में उल्लेख है कि सुर्यादि ग्रहणों के समय मिट्टी के बर्तन जल आदि को अशुद्ध मानकर फेंक देते हैं जबकि धान्य घृतादि को नहीं फेंका जाता आदि।

इनके अतिरिक्त तेजा जाट को भी सिद्धों की श्रेणी में माना जाता है। तेजाजी के देवरों की पूजा भी सर्वत्र प्रचलित थी। यह पूजा प्राचीनकालीन नागपूजा का रूपांतर है। इन देवरों में शनिवार एवं रविवार को चौकियां होती है और रात्रि जागरण होता है। कई देवरों में "गोल" पहनाने की भी प्रथा है [44]। इन देवरों में कालजी के

---

४३. बालानाथ के सम्बन्ध में नैणसी ने कुछ कथाएं दी है। वस्तुतः उस समय राजस्थान में मुख्य रूप से ५ पीर बड़े विख्यात थे—

पाबू हरबू रामदे मांगलिया मेहा।
पांचू पीर पधारजो मांगादे जैहा।

डा० हीरालाल माहेश्वरी कृत—राजस्थानी साहित्य पृ० २७३

४४. "गोल" एक प्रकार का धार्मिक बंधन होता है। यह प्रधानतः शादी के समय पहना जाता है एवं वंश परम्परागत चलता है। इसके पहनने वाले उस स्थान विशेष के शिष्य माने जाते हैं। यह अंगूठी के रूप में होता है। कई सम्प्रदायों में कठी बांधी जाती है यह उसी का परिवर्तित स्वरूप है।

भी देवरे होते है। इनमें एक पुरुष मुख्य पुजारी के रूप में होता है जिसे "भोपा" [45] कहते हैं। निश्चित तिथि एवं समय पर या विशेष आयोजन पर इसके शरीर में "भाव" आता है। मेवाड़ में ऐसे कई देवरे हैं। प्राचीन कालीन देवरों में चराणा (रेलमगरा) खेमाणा आलोली (सहाड़ा) आदि के बड़े विख्यात है।

जैन धर्म

मेवाड़ में जैन धर्म का अस्तित्व बड़े ही प्राचीन काल से है। अजमेर के बड़ली ग्राम के वीर सं० ८४ के लेख में माध्यमिका का उल्लेख है अतएव ज्ञात होता है कि उस समय भी यह धर्म मेवाड़ में प्रचलित हो चुका था। जैन अनुश्रुतियों के अनुसार सिद्धसेन दिवाकर नामक एक साधु का जिसे कुछ विद्वान प्रथम शताब्दी में और कुछ ५ या ६ शताब्दी में हुआ मानते हैं सम्बन्ध मेवाड़ से था। इसके पश्चात् हरिभद्रसूरि का मुख्य रूप से उल्लेख मिलता है जो ८वीं शताब्दी में हुआ था। ऐसी मान्यता है कि करेड़ा का जैन मदिर संभवतः मेवाड़ के प्राचीनतम जैन मंदिरों में से है। वहां से प्राप्त वि० सं० १०३९ के लेख में यशोभद्रसूरि का उल्लेख है जो संडेरगच्छ के थे [47]। जैन धर्म ११वीं शताब्दी के पश्चात् मेवाड़ में अधिक फैला था। प्राप्त लेखों में चित्तौड़ का वि० सं० ९५२ बैशाख सुदि १५ के एक लघु लेख है जिसमें भगवान आदिनाथ २४ तीर्थंकर पुंडरीक्ष गणेश सूर्य और नवग्रहों का उल्लेख है [48]। विक्रमी संवत् ११०० के

---

४५. "भोपा" मेवाड़ी शब्द है। यह वह पुरुष होता है जो देवरे का प्रमुख पुजारी होता है व समस्त भेंट पूजा लेता है।

४६. आज तक मेवाड़ में इन देवरों की बड़ी मान्यता है। सांप या कुत्ता काटने पर इन देवरों में उपचार हेतु जाते हैं। अगर समय पर नहीं जा सके तो एक डोरा जिसे "जेवड़ी" कहते हैं बांये पांव के बांध दी जाती है।

४७. "सं० १०३९ वर्षे श्रीसंडेरगच्छ श्रीयशोभद्रसूरिसंताने श्रीश्यामाचार्या प्र० भ० श्री यशोभद्रसूरिभिः श्रीपार्श्वनाथबिंब प्रतिष्ठितं" (जैन सर्व तीर्थ सग्रह भाग २ पृ० ३४४] किन्तु मेवाड़ में इससे पहले जैनों के मन्दिर अवश्य रहे होंगे यशोभद्रसूरि वि० सं० ९९९ में पाली में आचार्य हुये माने जाते हैं।

४८. प्रा० स० रि० इ० वर्ष १८७२-७३ पृ० ११३।

आस-पास यहां जैन कीर्तिस्तम्भ का निर्माण कराया गया है जो दिगम्बर सम्प्रदाय का है। इसके निर्माता का नाम बघेरवाल नापा के पुत्र जीजा मिलता है[49]। इससे प्रकट होता है कि प्रारम्भ में दिगम्बरों का यहां प्राधान्य था।

श्वेताम्बर सम्प्रदाय

मेवाड़ में श्वेताम्बरों को राज्याश्रय प्रथम बार महारावल अल्लट के समय में दिया गया। इस की रानी हरिया देवी रवेती दोष से पीड़ित थी जिसे बलभद्रसूरि नामक जैनाचार्य ने दूर किया था। श्वेताम्बरों के अनुसार इसकी सभा में उनमें और दिगम्बरों में शास्त्रार्थ हुआ जिसमें श्वेताम्बर साधु प्रद्युम्न सूरि ने दिगम्बरों को पराजित किया[50]। यशोभद्र सूरि अल्लट का समकालीन था। इन्होने आघाट में पार्श्वनाथ का मंदिर बनवाया। आमेट का पार्श्वनाथ का मंदिर वि० सं० १२४० का बना हुआ है। श्वेताम्बर साधु जिन वल्लभ सूरि का उल्लेख मिलता है जिन्होने विद्याबल से मालवे के राजा को भी प्रभावित किया था।

कुमारपाल के समय संपूर्ण मेंवाड़ गुजरात के अन्तर्गत था। उस समय श्वेताम्बरों ने बड़ी उन्नति की। इन साधुओं ने श्रेष्ठि वर्ग को अपने धर्म की ओर आकृष्ट करना प्रारंभ किया। महारावल जैत्रसिंह एवं तेजसिंह के समय आहड़ जैन धर्म का केन्द्र हो गया। राज्य के मुख्यामात्य जैन धर्मावलम्बी थे। इस काल में कई ग्रंथ भी यहां लिखे गये। मुसलमानों के निरन्तर आक्रमण से मेवाड़ की मुख्य भूमि में अब ये ग्रंथ

---

४९. आ० स० रि० इ० वर्ष १९०५-६ पृ० ४४-४९। इसके निर्माताओं के वंशधर का वि० १५४१ का एक मूर्ति का लेख मिलता है उसमें पूर्वजों का उल्लेख किया है। "श्रीमेदपाटदेशे श्रीचित्रकूटनगरे श्रीजिनप्रभजितेन्द्र चैत्रालयेस्थानेनिजभुजोपार्जितवित्तवलेन श्रीकीर्तिस्तम्भआरोपकसाह जिजा सुत सा० पुनसिंह स्य ..।" (जैन एन्टी० १२ संख्या २ पृ० १३६)

५०. वाद्रं जित्वाऽल्लुकक्ष्मा सभायां तलपाटके।
आत्तैकं पट्टोयस्यं श्रीप्रद्यमुम्नपूर्वजे स्तुवै।

समरादित्य संक्षेप का प्रस्तावना श्लोक।

उपलब्ध नहीं होते हैं। कुछ ग्रंथ खम्बात के जैन संग्रहालय में हैं। इनमें से मुख्य महारावल जैत्र सिंह के समय लिखी गई" ओघ-नियुक्ति" जिसे वि० स० १२८४ फागुण बुदि ३० को पूर्ण की गई थी। वि० सं० १३०६ माघ वदि १४ सोमवार को लिखी गई "पाक्षिक वृति" जो महाराजा जैत्रसिंह के समय पूर्ण की गई थी एवं वि० सं० १३१७ माघ वदि ४ को पूर्ण की गई "श्रावक प्रतिक्रमणसूत्र चूर्णि" मुख्य है [51] जिन्हें क्रमशः हेमचन्द्र टाकुर व्रजल कमलचन्द्र ने लिखा था। श्रावकप्रतिक्रमणसूत्रचूर्णि बड़ी विख्यात है एवं राजस्थानी चित्र शैली की प्राचीनतम [52] पुस्तक है। इस समय यह अमेरिका के बोस्टन संग्रहालय में है। तेजसिंह की राणी जयतलदेवी जैन धर्मावलम्बी थी। इसने श्यामपार्श्वनाथ का एक मंदिर चित्तौड़ में बनवाया [53]। चित्तौड़ में रहने वाले चैत्रागच्छ के आचार्य भुवनचन्द्र के शिष्य रत्नप्रभसूरि बहुत प्रभावशाली थे। इनके उपदेश से कई सार्वजनिक निर्माण कार्य हुये। गम्भीरी नदी के पुल के ६वें कोठे पर वि० सं० १३२४ का लेख है जिसमें इसी प्रकार के निर्माण का उल्लेख है। ये स्वयं संस्कृत के विद्वान थे और घाघसा गांव की वि० सं० १३२२ कार्तिक सुदि १ की प्रशस्ति भी इसकी बनायी हुई है। रावल समरसिंह के शासन काल में जीव हिंसा रोकने का उल्लेख भी आंचलगच्छ की पट्टावली से ज्ञात होता है। खरतरगच्छपट्टावली से ज्ञात होता है कि रावल समरसिंह ने वि सं० १३५३ फालगुण बुदि ५ को जलयात्रापूर्वक ११ जैन मंदिरों को छत्र और कई प्रतिमाएं संस्थापित कराई थी [54]। करेडा के मंदिर में वि० सं० १३२६ का चाचिगदेव सोनगरा का एक लेख मिला है इसमें नाडोल की मंडपिका से मन्दिर के खर्चे के लिये कुछ दान देने की व्यवस्था की गई है [55]। इस

---

५१. ओझा—उ० इ० भाग १ पृ० १६६ से १७०।

५२. ललित कला संख्या ३-४ पृ० ४६।

५३ ओझा०उ०इ० भाग १ पृ० १७६। वरदा वर्ष ६ अंक १ पृ०६२–६३। इस लेख के अनुसार चित्तोड़ सज्जनपुर आघाट एवं खोहर की मंडपिकाओं से दान देने की भी व्यवस्था की गई थी। वरदा भाग ६ अंक १ पृ० ६२–६३।

५४. जैन सर्व तीर्थ संग्रह भाग २ पृ० ३४. व खरतर गच्छ गुर्वावली पृ० ५६।

५५. "स० १३२६ वर्षे चैत्र बुदि १५ सोमेऽद्येह महाराजकुल चाचिगदेव करहेडा ग्रामे श्रीपार्श्वनाथ पूजार्थं। सोम पर्व्वणि स (न) डूल मंडपिकायां उदक पूर्व (दत्त) द्र०—"।

चाचिगदेव सोनगरा की पुत्री रूपादेवी का विवाह महारावल तेजसिंह से हुआ था जिसकी माता का नाम लक्ष्मीबाई था और जिसने सामन्तसिंह सोनगरा के शासन काल में बहुतरा ग्राम में एक बावड़ी बनवाई [56] जिसकी प्रशस्ति भी मिल चुकी है ।

कुंभा के समय मेवाड़ में श्वेताम्बरों का मुख्य रूप से देलवाड़ा चित्तौड़ करेडा मांडलगढ़ [57] नागदा कुंभलगढ़ आदि स्थान केन्द्र थे और दिगम्बरों के बिजोलियां ऋषभदेव आदि ।

देलवाड़ा का शिखर बन्ध आदिनाथ का मंदिर वि० सं० १४६१ का बना हुआ है एवं पार्श्वनाथ का वि० सं० १४६४ का । १४६१ वाले मन्दिर में कई प्रतिमाएं है । इनमें ७३ पत्थर की और ६ धातु की प्रतिमाएं मुख्य हैं । इन प्रतिमाओं पर भिन्न-भिन्न आचार्योंएवं संवतों का उल्लेख है । ये लेख वि० सं० १४६४ से १६८६ तक के हैं । प्रसिद्ध सोम सुन्दर सूरि आचार्य यहां कई बार आये थे । यहां खुदाई करने पर ओझाजी को १२२ प्रतिमाएं मिली है [58] । लाखा से लेकर कुंभा तक यह ग्राम बड़ा सम्पन्न रहा

---

५६. ए० इ० भाग ४ पृ० ३१३–३१७ ।

५७. मांडलगढ़ में अभी कुंभा के पूर्व या समकालीन कोई मन्दिर विद्यमान नहीं है । इसका कारण है कि मालवे के सुलतान ने अपने आक्रमण के समय सब देव मन्दिरों को विनष्ट कर दिया था । जीरापल्ली के वि० सं० १५३४ के एक लेख में मांडलगढ़ से आने वाले यात्रियों का उल्लेख है । इससे जैन धर्म का वहां अस्तित्व का पता चलता है—स० १५३४ बैसाख वदि १० सोमे स० रतना साथी न्याति श्रीमालुगोत्रियक स० जीवा पुत्र स० मांडण जीवण जीवदे खेता सहित मांडलगढ़ थी यात्रार्थ आ।ग। (लेख स० ३८ श्रीदोलतसिंह जैन मूर्ति लेख संग्रह) समसामयिक कृति उपदेश तरंगिणी में "चित्रकूटाऽऽघाटश्रीपुरस्तम्भनपार्श्वराणापुरचतुर्मुख विहाराद्यनेकतीर्थानियानि जगतीतले—" शब्द है । इसी प्रकार जैसलमेर के १४६७ लेख में श्रीउज्जयन्ताचलचित्रकूट आदि की यात्रा करने का वर्णन है ।

५८. ओझा—उ० इ० भाग १ पृ० ६२ ।

है। वि० सं० १४९२ में आवश्यकवृहदवृति का दूसरा खण्ड यहां लिखा गया। इसकी प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि जिन सागर सूरि के उपदेश से ओसवाल सहणपाल नवलखां ने इसे लिखवाई थी। १४९१ में गच्छचार नामक ग्रन्थ भी लिखाया गया। यह तपागच्छ के जयशेखर के उपदेश से हुंबड़ जाति के सिंघा आदि ने लिखवाया था। सारंग नवलखाने १४९४ में नागदा में शांतिनाथ का मन्दिर बनवाया [59]। इस मन्दिर की प्रतिमा ९ फुट की है। नागदा में पहले दिगम्बर सम्प्रदाय के मंदिर अधिक थे एवं कालान्तर में इन्हें श्वेताम्बर सम्प्रदाय के मन्दिरों में परिवर्तित कर दिया था। वहां से वि० सं० १३५६ एवं १३९१ के [60] दिगम्बर सम्प्रदाय के लेख मिले है एव तत्पश्चात् इन्हीं मन्दिरों से श्वेताम्बरों के लेख मिले हैं। कुंभा के समय का वि० सं० १४९५ ज्येष्ठ सुदि २ बुधवार एवं १४९७ ज्येष्ठ सुद २ सोमवार के लेख मिले हैं। इसी प्रकार से कुंभा के शासन काल का आदिनाथ की मूर्ति का एक लेख और मिला है जिसकी प्रतिष्ठा खरतरगच्छ के मतिवर्धन सूरि ने की थी। चित्तौड में वि० सं० १४९५ में महावीर स्वामी का मंदिर बना। यह प्राचीन जैन मंदिर जो जैन कीर्तिस्तम्भ के पास है। सोम सौभाग्य काव्य में गुणराज के पुत्रों द्वारा इसे बनाने का उल्लेख है [61]। इस मन्दिर की प्रशस्ति को चारित्र रत्नगणि ने बनाई थी [62]। इस मन्दिर

---

५९. इस लेख में देवकुलपाटक शब्द होने से यह मानते है कि नागदा का प्राचीन नाम देवकुल पाटक रहा होगा जो अशुद्ध है। वस्तुतः यह शब्द निर्माता सांरग नवलखां के लिये प्रयुक्त हुआ जो देलवाडा का रहने वाला था। कई जैन लेखों में श्रेष्ठियों के ग्रामों का नाम लिखा रहता है जिसका "देवकुल-पाटक वास्तव्य" अर्थ रहा होगा। आवश्यक वृहदवृति की प्रशस्ति और इस प्रशस्ति की तुलना करने से स्पष्ट हो जाता है कि यह शब्द सांरग के परिवार वालों के लिये ही प्रयुक्त हुआ है।

६०. आ० स० रि० वे० इ० १९०५–६ पृ० ६३ वहां मूलसंघाचार्यों की गद्दी थी।

६१. श्री चित्रकूटनाम्निाद्रङ्गेरगेण तुंगजिनचैत्यम्।
दुर्गस्योपरि परिवृतमभितः श्रीदेवकुलिकाभिः॥
श्रीगुणराजस्य सुतः सुतनुः सुकृत कृती च बाल्हाह्वः
करितवान् श्री कीर्तिस्तम्भतटे श्रीमतां मुकुट। सर्ग ९–७०–७१

६२. यह प्रशस्ति मूल रूप से मंदिर में विद्यमान नहीं है। केवलमात्र डेकन कालेज पूना में इसकी १५०८ की गई एक प्रतिलिपी है जो ज० आ० रा० ए० सो० के २३वें भाग में प्रकाशित हो चुकी है।

का मूलरूप से निर्माण ओसवालवंशी तेजा के पुत्र चाचा ने किया था। सोम सौभाग्य काव्य से प्रकट है कि ईडर निवासी बच्छराज के दूसरे पुत्र वीसल ने जो देलवाडा में रहता था चित्तौड़ में श्रेयांसनाथ का मन्दिर बनाया। सहणपाल ने भी कई मन्दिर बनाये। सतबीस देवरियों में वि० सं० १४९६, १५०५, १५१० और १५१३ के मूर्तियों पर लेख है। बेला भंडारी ने शृंगार चवरी नामक पार्श्वनाथ का मन्दिर बनाया। राणकपुर में इसी काल में प्रसिद्ध जैन मन्दिर पूर्ण हुआ। इस मन्दिर में और भी कई लेख मिले हैं जिनसे समय-समय पर हुये निर्माण का विवरण मिलता है। गोडवाड में और भी कई मन्दिर बनवाये गये जिनमें नाणा का मन्दिर जो वि० सं० १५०५ में पूर्ण हुआ था बड़ा प्रसिद्ध है। आबू में कई जैन मन्दिर बने। इनमें खरतर वसही, दिगम्बर जैन मन्दिर एवं पीतलिया देव का मन्दिर बड़ा प्रसिद्ध है। मेवाड़ में मुख्यरूप से श्वेताम्बरों में खरतरगच्छ और तपागच्छ के साधुओं का अधिक प्रचार था। कुम्भा के समकालीन खरतरगच्छ के जिन सागर सूरि और जिन सुन्दर सुरि थे। जिन सागर बड़े प्रसिद्ध थे कुंभा के शासन काल की इनकी प्रारम्भिक तिथि वि सं० १४९२ आवश्यक बृहदवृति के दूसरे अध्याय की प्रशस्ति की है। ये संभवतः इसके पूर्व आचार्य बन चुकेथे। १४९६ में करेडा की मूर्ति का एक लेख मिला है। जिन सुन्दर सूरि का उल्लेख वि० सं० १५०५ के चित्तौड़ के लेख में हैं। जिन समुद्र सूरि का उल्लेख १५१२ आसोज सुदि २ व वि० सं० १५१३ के लघु लेखों में हैं। महाराणा सांगा के शासन [63] काल में बनी "जयचन्द्र चैत्यपरिपाटी में" चित्तौड़ में ३२ जैन मन्दिरों की गणना की है।

जैन साधुओं के क्रियाकलापों का उल्लेख समसामयिक कृति सोम सौभाग्य काव्य में है। दीक्षा का वर्णन करते हुए इसमें लिखा है कि इसे बहुत बड़ा उत्सव माना जाता था। ज्योतिषियों से शुभ मुहुर्त देखकर उत्सव की तैयारी की जाती थी। कपूर एवं केशर के सुवासित जल से स्नान करवा के दीक्षा लेने वाले को सुन्दर आभूषण पहिनाये जाते थे। एक सुन्दर अश्व पर बिठाकर जुलूस निकाला जाता था। इसमें आगे बाजे वालो का समूह रहता था। पीछे भाट चारण आदि मांगलिक शब्दों का उच्चारण करते रहते थे। स्त्रियां मंगल गीत गाती जाती थी। साधुओं को सूरिपद वाचकपद और आचार्य पद दिये जाते थे उस समय भी ऐसे ही उत्सव किये जाते थे। सुन्दर रेशमी वस्त्रों से संघ को "पहिरावणी" दी जाती थी। जैन श्रेष्ठि संघ निकालते थे। सोम सौभाग्य

---

६३. शोध पत्रिका वर्ष १३ अंक २ में प्रकाशित श्री नाहटाजी लेख।

काव्य में श्रेष्ठि गुणराज और गोविन्द के संघ निकालने का उल्लेख मिलता है । श्रेष्ठि गुणराज के संघ निकालने का उल्लेख वि० सं० १४६५ की महावीर प्रसाद प्रशस्ति में भी है । मुस्लिम सुल्तानों के राज्यों में संघ निकालने के लिए राजकीय फरमान (फुरमाण) प्राप्त करना आवश्यक था ।

जैनियों में भी हिन्दुओं की तरह कई देवी देवताओं की आराधना प्रचलित थी । २४ तीर्थंकरों के २४ शासनदेवता माने गये हैं । इनके स्वरूप का सबसे प्राचीनतम उल्लेख पादलिप्त सूरि द्वारा विरचित निर्वाण कालिका में है । श्वेताम्बरों और दिगम्बरों में इनके स्वरूप के सम्बन्ध में कुछ भिन्नता है । दिगम्बरों में इनका विस्तृत उल्लेख वसुनन्दि के प्रतिष्ठा सार एवं आशाधर के प्रतिष्ठासारोद्धार में है । मेवाड़ में उस समय अम्बिका, सरस्वती और सच्चियादेवी की आराधना मुख्य रूप से होती थी । सोम सौभाग्य काव्य में उल्लेख है कि श्रेष्ठि गोविन्द ने अम्बिकादेवी के सन्मुख बिंब निर्माण हेतु एक सुन्दर शिला के लिए प्रार्थना की । देवी ने प्रसन्न होकर वह शिला ला दी । नाभिनन्दन जिनोद्धार प्रबन्ध में भी इसी प्रकार का कथा आती है । सरस्वती देवी की प्रतिमा का उल्लेख कई स्थलों पर मिलता है । कुंभा के वि० स० १५०६ के लेख में इसका उल्लेख है ।

दिगम्बर सम्प्रदाय

जैसा कि ऊपर वर्णित किया जा चुका है मेवाड़ में प्रारम्भ में दिगम्बरों का इन्द्रनन्दि कृत श्रुतावतार में वर्णित है कि चित्रकूटवासी प्रसिद्ध साधु एलाचार्य के पास शिक्षा प्राप्नकर वीरसेन गुरु बड़ोदा गये जहां धवला टीका लिखी [64] । ये राष्ट्रकूट राजा अमोघ वर्ष के समकालीन थे । स्वयंभू द्वारा लिखित "पउम चरिउ" नामक अप भ्र श

---

६४. काले गते कियत्यपि ततः पुनश्चित्रकूटपुर वासी ।
श्रीमानेलाचार्यो बभूव सिद्धान्ततत्वज्ञः ।।१७६।।
तस्य समीपे सकलं सिद्धान्तमधीत्य वीरसेनगुरुः ।
उपरितमनिबन्धनाद्यधिकारा नष्टं लिलेख ।।१७७।।
आगत्य चित्रकूटात्ततः स भगवान्गुरोरनुज्ञानात् ।
मटग्रामे (वट ग्रामे) चात्रानतेन्द्रकृत जिनगृहे स्थित्वा ।।१७८।।

(श्रुतावतार)

ग्रन्थ में चित्तौड़ का कई स्थलों पर उल्लेख आया है [65]। राम के अयोध्या से चित्रकूट व वहां से दशपुर (मन्दसौर) जाने का इसमें उल्लेख है। इसी प्रकार शारीरिक सौन्दर्य का वर्णन करते समय चित्तौड़ और उज्जैन की स्त्रियों की तुलना की गई है। वि० सं० १०४४ में लिखित धम्म-परिक्खा" का लेखक हरिषेण चित्तौड़ निवासी था। इसने अपने ग्रन्थ में चतुर्मुख, स्वयंभू और पुष्पदन्त को स्मरण किया है [66]। इसमें कुल ११ संधियां है और अपभ्रंश का उत्तम काव्य है। जैन कीर्तिस्तम्भ का निर्माण भी चित्तौड़ में इसी समय हुआ था। वि० सं० १४९५ की महावीरप्रसाद प्रशस्ति में इसका निर्माण मंडपाचल निवासी श्रेष्ठि कुमारपाल द्वारा किये जाने का उल्लेख है जो संभवत: गलत है। काष्ठा संघ की लाट बागड़ की गुर्वावली में प्रभाचन्द्र नामक एक साधु का उल्लेख है जिसने चित्तौड़ के राजा नरवाहन की सभा में शैवों को हराया था [67]। सौभाग्य से इस घटना का उल्लेख वि० सं० १०२८ के एकलिंगजी के लेख में भी है।

---

६५. मासेहिं चउरद्धेहिं चित्रकूडवोलीणइं ॥६॥ २४वीं सन्धि
तं चित्तउडु मुएवि तुरन्त इं।
दसउरपुर-सीमान्त रू पत्त इं ।१५। (सन्धि २४)
भउ हा जुएम उज्वेणएण। भालेण वि चिताउडएण ।१३।

पउम चरिउ ४९ सन्धि घता ८

६६. सिद्धसेण पयवंदहिं दुक्किउ हरिसेणु णवंता।
तहिंथियेत खग सहयर कयधम्माचार विविह सुहई पावंना।
इह मेवाड़ देसि जण संकुल सिरिउजपुर निग्गय धक्कड कुलि।
तहो गोवद्धणामु पियधणवइ। जो जिणवर मुणिवरपियगुणयई।
ताइं जणिउं हरिषेण णामे सुउ। सो संजाउ विवुह कइ विस्सउ।

(अन्तिम प्रशस्ति)

६७. चित्रकूटदुर्गराजानरवाहनसभायांविकटदुर्जयशैवादिवृन्दवनदहनदावानल विविधाचारग्रंथकर्ता श्रीमत् प्रभाचन्द्रदेवानाम्।

आचार्य श्री कीर्ति का भी उल्लेख मिलता है जो चित्रकूट निवासी थे और गिरनार जाते हुए पाटक में रुके थे जहां के राजा ने इन्हें मंडलाचार्य का विरूद छत्र और सुखासन भेंट किये थे[68]। अप्रभ्रंशकथाकोश के रचियता श्रीचन्द्र ने अपनी गुरु परम्परा में श्री कीर्ति नामक एक आचार्य का उल्लेख किया है जिसके शिष्य श्रुति-कीर्ति परमार राजा भोज से सन्मानित थे। स्मरण रहे कि चित्तौड़ पर भोज का अधिकार रहा था।

बिजोलिया का वि० सं० १२२६ का श्रेष्ठि लोलाक द्वारा खुदवाया हुआ शिलालेख बड़ा प्रसिद्ध है। इसमें उन्नतशिखरपुराण खुदा हुआ है। नागदा में भी दिगम्बरों के कई मन्दिर थे। मुनि सुन्दर कृत गुर्वावली में यहां के पार्श्वनाथ मन्दिर को दिगम्बरों से मुक्त कराने का[69] उल्लेख है यहां मूल संघ के भट्टारकों के लेख मिले हैं। प्रसिद्ध विद्वान आशाधर मेवाड़ के मांडलगढ़ के ही रहने वाले थे व बाद में धारा नगरी गये थे।

बिजोलियां के १५वीं शताब्दी के शिलालेख में नीचे लिखे भट्टारकों के नाम मिलते हैं[70] :—

वसंत कीर्ति देव

२. वीसल कीर्ति देव

३. शुभ कीर्ति देव

---

६८. श्री कीर्ति प्राप्य सत्कीर्ति सूरि सूरिगुणं ततः ।।१९।।
तदीयं देशनावारि सम्पग्— चित्रकूटाच्च चालसः ।।
श्रीमन्नेमिजिनाधीश तीर्थयात्रा निमित्ततः ।।२१।।
अणहिलपुरं रम्यमा जगाम—मुनीन्द्राय ददौ नृपः ।।
विरूदं मंडलाचार्यः सछत्रः सुखासनम् ।२३।।

अनेकान्त वर्ष १६ अंक २ पृ० ७२।

६९. खोमाणभूभृत्कुलजस्ततोऽभूत्समुद्रसूरिः स्ववंश गुरुर्यः ।
चकार नागह्रदपार्श्वतीर्थं विद्याम्बुधिर्दिग्वसनान् विजित्य ।३९।।

(मुनिसुन्दर कृत गुर्वावली)

७०. प्रा० स० ० ई० १९०५–६ पृ० ५७।

४. धर्म चन्द्र देव

५. रत्न कीर्ति देव

६. प्रभाचन्द्र देव

७. पद्मनन्दि देव

८. शुभ चन्द्र देव

इनके अतिरिक्त कुछ साध्वियों के नाम भी मिलते हैं जैसे आगमसिरि, चारित्र सिरि और विनिया सिरि।

आबू में वि० स० १४९४ में दिगम्बर जैन मन्दिर बना था इसकी प्रतिष्ठा शुभचन्द्र ने की थी [71]।

मेवाड़ में सबसे महत्वपूर्ण दिगम्बर तीर्थ केशरियाजी का मन्दिर है। लेकिन यहां १४वीं शताब्दी के पूर्व का लेख नहीं मिला है यद्यपि ऐसी मान्यता है कि यह मन्दिर काफी प्राचीन है। दक्षिणी मेवाड़ भट्टारक सकलकीर्ति और भुवन कीर्ति से प्रभावित रहा था [72]। सकल कीर्ति की मृत्यु वि० सं० १४९९ में हो गई थी। ऋषभदेव शास्त्र भंडार, डूंगरपुर शास्त्र भंडार आदि में उपलब्ध भट्टारक पट्टावलियों से इनके बाद भुवनकीर्ति का उल्लेख मिलता है। ये दोनों साधु बड़े उल्लेखनीय विद्वान और साहित्यकार थे। जैन खंडेलवाल मन्दिर उदयपुर में सकल कीर्ति द्वारा प्रतिष्ठित वि० सं० १४९२ की प्रतिमाएं भी उपलब्ध है।

परम्परागत विश्वास

जन साधारण में धार्मिक अंध-विश्वास बहुत प्रचलित थे। वि० सं० १४६६ में लिखी श्रावकव्रतादिअतिचार ग्रन्थ मे उल्लेख है कि उस समय मन्त्र और तन्त्र का

---

७१. स्वस्ति संवत् १४९४ वर्षे वेशाष सुदि १३ गुरौ श्री मूल संगे (घे) बलात्कारगणे सरस्वती गच्छे भटारिक पद्मनन्दि देव तत्पट्टे श्री सुभचन्द्र देव भटारि श्री संघवे गोव्यंद भात्रि देथशी दोशी करणा जिनदास [आबू का दिगम्बर जैन मन्दिर का लेख]।

७२. श्री कस्तुरचन्द कासलीवाल के निम्न लेख—

१. महावीर जयन्ती स्मारिका अप्रेल १९६३ में पृ० १७८।

२. जैन संदेश शोधांक १६ में पृ० १८१।

बड़ा प्रचार था। कई सन्यासी योगी भरड़ा, भगवंत लिंगिया (पाशुपत योगी) दरवेश (मुस्लिम संत) आदि इनमें सिद्ध हस्त होते थे। इनके अतिरिक्त लोग क्षेत्रपाल गोगा आसपाल पाद देवता व युद्धों में मरे हुए वीरों को पूजते थे। माहा पूनम, धनतेरस, होली, श्राद्ध सवत्सरी, रविवार मकर संक्रान्ति और नवरात्रि को "उतारणा" करते थे। लोगों में शकुनों का बड़ा प्रचार था [73]।

विभिन्न धर्मों में सामञ्जस्य

हरिभद्रसूरि एवं हरिषेण के काल में चित्तौड़ में जैनियों ने वैष्णवों पर कई प्रकार के आरोप लगाये हैं। वैष्णव पुराणों के कथानकों का मजाक उड़ाया है। मेवाड़ में बौद्धिक उन्नति के साथ धार्मिक सामञ्जस्य का उदय भी हुआ था। १३वीं शताब्दी के बाद से जैन श्रेष्ठियों का सार्वजनिक जीवन में उदय होता है तब से आरोप और प्रत्यारोपों के स्थान पर पारस्परिक सहयोग की भावना का उदय होता है। शैवों का प्रभावदिन प्रतिदिन कम होता जा रहा था। वैष्णवों में पंचोपासना पद्धति चालू हो गई थी जिसमें शिव और चडी दोनों की पूजा का विधान था। कुंभा ने स्वयं ने पञ्चोपचार और पंचोपासना [74] को मान्यता दी है। उसके ग्रंथों का प्रारम्भ शिव की स्तुति या देवी की स्तुति से प्रायः प्रारम्भ किये गये हैं। जैनों को उसने बहुत सन्मानित किया था। हीरानंद को गुरु के समान मानना और सोमदेव को कविराज की उपाधि देना इस बात को सिद्ध करते हैं।

---

७३ "क्षेत्रपाल गोगा आसपाल पाद द्रेवति ग्रह पूजा इत्येवमादिक ग्रामि गोत्रि देशि नगरि जूजयां देव देहराडां प्रभाव देखी रोगि आतंकि इहलोकि परलोकार्थ पूजगं पूजवाविमासि आ। बौद्ध सांख्यादिक, सन्यासी भरडा, भगवंत लिंगिया योगी दूरवेस अनेराइ दर्श कीयानउं कष्ट मंत्र—चमत्कार देवी परमार्थ जाणियां। विण भुलाव्या मोहिया कुशास्त्र सीख्या सांभल्या। सिराध संवत्सरी होली बलेव माही पूनमि धण तेरसि आजा पड़वे आदित्यवार ऊत्रायणि नवोद की जोग भोग ऊतारणां कीधां। पीपलि पाणी घोलिया। धरि बाहरि कुइ तालाबि नदी समुद्रि कुंडि पुण्य हेतु स्नान कीधो। (श्रावक व्रतादि अतिचार वि० सं० १४६६ में लिखित)

७४. विघ्नेशो विघ्नहर्ता तदनुदिनकरो ध्वान्तविध्वंसकर्ता, श्रीकान्तः श्रीनिवासः परपुरदहनः शङ्करोविश्वकर्ता। चण्डी चण्डासुरघ्नो त्रिदशगणवराः पञ्चपुण्यप्रपञ्चाः पान्तु श्रीकुंभकर्णं बहुसुखविषयेमूर्तिमन्तो बिरञ्चा॥ पंचायतनस्तुति ॥५६॥

आठवां अध्याय

साहित्य-सर्जना

सकलकविनृपाली मौलीमाणिक्यरोचि-
र्मधुररणितवीणावाद्यवैशद्यबिंदुः ।
मधुकरकुललीलाहारि······रसाली,
जयतिजयति कुंभोभूरिशौर्यांशुमाली ।।१६०।।

"कीर्तिस्तम्भ प्रशस्ति"

साहित्य सर्जना

परमार राजा भोज और चौहान राजा वीसलदेव के पश्चात् राजपूत राजाओं में कुंभा ही ऐसा शासक था जो स्वयं संस्कृत का विद्वान था और कई साहित्यकारों का आश्रयदाता भी। उसके आश्रित विद्वानों में कन्हव्यास, महेशभट्ट, सूत्रधार मंडन संस्कृत के महान विद्वान् थे। मेवाड़ में लाखा से लेकर कुंभा तक कलाओं का अभूतपूर्व विकास हुआ। इस काल का संरचित साहित्य धार्मिक और लौकिक दोनों ही प्रकार का है। धार्मिक साहित्य में जैन साहित्य मुख्य है। इस काल में कई उल्लेखनीय जैन आचार्य हुये थे जिन्होंने कई शिष्यों को प्रतिबोधित किया था। इन साधुओं का कार्यक्षेत्र गुजरात और राजस्थान ही मुख्य रूप से था और मेवाड़ में ये समय-समय पर यात्रा करते हुये आते रहते थे। तत्कालीन साहित्यिक प्रक्रियाओं और संरचनाओं का वर्णन इस प्रकार है:—

जैन साहित्य

जैन साहित्य में विशेष उल्लेखनीय तपागच्छीय और खरतरगच्छीय साधुओं द्वारा संरचित साहित्य है। सोम सुन्दर जो तपागच्छीय थे उस युग के महान आचार्य थे। इनका युग (१४५७–१४९९ वि०) सोम सुन्दर युग कहलाता है और इन्हें युग प्रधान भी कहा जाता है [1]। इनका जन्म प्रहलादनपुर (गुजरात) में हुआ था। इनके पिता का नाम सज्जन श्रेष्ठि और माता का नाम माल्हण देवी था। ये बचपन से ही तेजस्वी और विद्वान थे। इन्हें १४३७ वि० में जयानन्द सूरि ने दीक्षा दी थी। १४५० में मेवाड़ के देलवाड़ा ग्राम में वाचक पद प्राप्त करने के बाद आये थे [2]। प्रतिष्ठा सोम द्वारा विरचित सोमसौभाग्य काव्य में इसकी जीवनी का सविस्तार वर्णन है। इन्हें वि० १४५७ में आचार्य पद दिया गया था। इनकी मृत्यु संभवतः १४९९ वि० में हुई थी। इनके लिखे हुये भाष्यत्रयचूर्णि, कल्याणकस्तव, रत्नकोश, उपदेशबालावबोध

---

१. पीठिका बालावबोध की प्रशस्ति में इसका उल्लेख है "श्रीसोमसुन्दर युगोत्तमसूरिशिष्यः संवेगदेव गणि रि प्रतिथि १५१४ प्रमेब्दे" (भ० ओ० रि० इ० ग्रन्थ १७ भाग ३ पृ० ३८९)।

२. विजय धर्म सूरि—देवकुल पाटक पृ० ७। सोम सौभाग्य काव्य पृ० ७५ श्लोक १४।

(१४८५ वि०) योग शास्त्र बालावबोध, षड़ावश्यक बालावबोध, भाष्यत्रय अवचूरि कल्याण स्तोत्र षष्ठि शतकबालावबोध (१४९६ वि०) आराधना पताकाबालाव बोध आदि मुख्य ग्रन्थ है [3]। उपदेश बालावबोध में सदाचार सम्बन्धी उपदेशों का संग्रह है। छोटे-छोटे दृष्टान्तों का भी उपयोग किया गया है। योग शास्त्र बालावबोध दूसरा महत्वपूर्ण ग्रन्थ हैं। इसमें योग स्वरूप उसकी महिमा माहात्म्य ५ महाव्रत और उनकी भावना आदि का वर्णन है [4]।

सोम सुन्दर के पश्चात् मुनिसुन्दर तपागच्छ के आचार्य हुये। इनका जन्म वि० सं० १४३६ और दीक्षा वि० सं० १४४३ में हुई थी। सोम सुन्दर का अन्तिम लेख वि० सं० १४९९ का राणकपुर का है। अतएव इसके पश्चात् संभवतः १४९९ में ही ये आचार्य हुये थे। इस प्रकार ये वृद्धावस्था में जाकर आचार्य हुये थे और थोड़े समय तक ही जीवित रहे थे। इनके विरचित ग्रन्थों में अध्यात्म कल्पद्रुम मुख्य है जिसे मोतीचन्द्र गिरधारीलाल कापड़िया ने गुजराती में एवं श्री लोढा ने हिन्दी में सम्पादित करके प्रकाशित भी करा दिया है। इसके अतिरिक्त इनके अन्य ग्रन्थ त्रिदशतिरंगणी, उपदेशरत्नाकर, स्तोत्र-रत्नकोश मित्रचतुष्टक शांतिकरस्तोत्र पाक्षिकासित्तरी अंगुलीसित्तरी वनस्पति सित्तरी तपागच्छपट्टावली, शांतिरसरास आदि हैं [5]। ये संस्कृत भाषा के अद्वितीय विद्वान थे। इनके द्वारा विरचित बालाव बोध नहीं मिले है। शांतिकर स्तोत्र देलवाड़ा (मेवाड़) में लिखा गया था।

सोम सुन्दर शिष्य मंडली में जयचन्द्र सूरि सोमदेव भुवन सुन्दर सूरि जिन सुन्दर सूरि आदि मुख्य थे। इनमें सोमदेव उल्लेखनीय है—सोमदेव वाचक जिसको महाराणा कुंभा ने कविराज की उपाधि दी थी। सोम सौभाग्य काव्य से पता चलता है कि जब राणकपुर मंदिर का प्रतिष्ठा महोत्सव हुआ था उस समय सोमदेव वाचक को आचार्य की उपाधि दी गई थी। इस काव्य में इसका बड़ा सुन्दर वर्णन [5अ] है। "श्री सोमदेववाचकधुर्यामाधुर्यवर्यवचनभराः। सौभाग्यभाग्य सजुषः सुकृतपुषः स्वर्णरुचिवपुषः" अर्थात् ये सुन्दर सुन्दर वाले मधुर वचन बोलने वाले आदि थे। इसी ग्रन्थ के १०वें सर्ग में सोमदेव का फिर वर्णन किया है। उसमें

---

३. शोध पत्रिका भाग ६ अंक २–३ पृ० ५५। जैनस्तोत्र संग्रह की भूमिका पृ० ८६।

४. डा० शिवस्वरूप शर्मा—राजस्थानी गद्य का उद्भव और विकास पृ० ४५।

५. श्री मोतीचन्द्र गिरधारी लाल कापड़िया—अध्यात्मकल्पद्रुम की भूमिका।

५ अ. सोम सौभाग्य काव्य ९–५८, १०।३३–३९।

उल्लेखित किया है कि ये वादियों को हराने वाले थे और इनका नाम उस समय बड़ा प्रसिद्ध था। जब ये वाद विवाद के लिये मैदान में आते हैं तो सामने के प्रतिपक्षी इनके नाम से ही चौंक जाते हैं। वक्तृत्व कला में निपुण होने के कारण कोई इन्हें सिद्धसेन दिवाकर से कोई बप्पभट्टसूरि से और कोई इन्हें हेमचन्द्र से तुलना करता था। महाराणा कुंभा जो उग्र शत्रुओं को जीतने वाला और राजाओं में सूर्य के समान था इनकी काव्य कला से अत्यन्त प्रसन्न हुआ था। गुरु गुण रत्नाकर काव्य में जो वि० स० १५४१ में विरचित हुआ था उसमें उल्लेखित है कि वादियों को हराने में कुशल वाक्य पटुता वाले सोमदेव का राणा कुंभा ने उनकी कवित्वकला के कारण सन्मान [6] किया था। जिनहर्षगणि ने वि० सं० १४९७ में चित्तौड़ में वस्तुपाल चरित प्राकृत में रयण सेहरी कहा लिखे। रयण सेहरी बड़ा उल्लेखनीय है [7]। जिन वर्धन ने तपागच्छ की गुर्वावली बनाई। यह ऐतिहासिक ग्रन्थ है और इसमें ५०वें पट्टधर सोम सुन्दर तक का वर्णन है। विशालरत्न गणि ने देलवाड़ा (मेवाड़) में वि० १४८२ पोष वदी को भक्तामर की अवचूर्णि बनाई [8]। जयशेखर सूरि ने वि० सं० १४९१ में देलवाड़ा में गच्छाचार नामक ग्रथ लिखा। यह ग्रन्थ कुंभा के राज्य के प्रारम्भ काल में लिखा गया था एवं हुंबड़ जाति के श्रेष्ठि सींघा ने २०००) व्यय करके इस ग्रन्थ को लिखाया था [9]। चित्तौड़ के

---

६. श्रीमेदपाटपतिरुत्कटशत्रुजैत्रः श्रीकुंभकर्णनृपतिर्गभानुः।
यन्नव्यकाव्यकलया हृदये जहर्ष, श्रीहर्षतोयमधिकं च कविं स मेने।

सोम सौभाग्यकाव्य १०।३८

विद्याविवादमदमेदुरवादिवृन्दं वाक्यैर्निवार्य नृपपर्षदि हर्षवर्षैः
यं रंजितः स्वककवित्वकला तिरेकात्क्षुल्लैरपि क्षितिपतिः किल कुंभकर्णः

गुरुगुणरत्नाकर ।।२।।१०७।।

७ सिरिचित्तकूडनयरे जिणभवणसएहिं सव्वओ भरिए, सिरिजयजन्द मुणो सरसीसेण सुअस्स भत्तीए ।।१४९।। पागयबन्धेण कहाणिहिआजिणहरिस साहुष्यएसा। ता णन्दउ जियलोए जाव जइय वीर जिणतित्थं ।।१५०।।

८ पुस्तक की प्रशस्ति इस प्रकार है:—
"सं० १४८२ वर्षे पोषमासे प्रतिपदातिथौ देवकुलपाटके गच्छनायक भट्टारकप्रभुश्रीसोमसुन्दरसूरिप्रसादातलिखिता। सा० षेठा ।। नित्यं प्रणमिति। विशालारत्नगणि:"—विजयधर्मसूरि—देवकुलपाटक पृ० ३४।

९. पुस्तक की प्रशस्ति इस प्रकार है —
"सं० १४९१ वर्षे चैत्रसुदि ११ शुक्रे। श्री तपागच्छे। श्रीजयशेखर सूरि। देउलवाड़ा नगरे राणा श्री कुंभकर्ण राज्ये। हुंबड़ ज्ञातिय। श्रेष्ठि सिंघा भार्या चोथू। आत्म श्रेया (योऽर्थं) सहश्र (स्र) द्रुयं। श्री श्रामाली वंशेषुश्रेष्ठि माला सुत ऋशीश्वर भंटा श्रेया (योऽर्थं) इदं पुस्तकं लिखापिते—(भ० ओ० रि० इ० ग्रन्थ १७ भाग १ पृ० ३३२)।

महावीर जैन मन्दिर जो जैन कीर्तिस्तम्भ के समीप है, की प्रशस्ति की रचना चारित्ररत्न गणि ने की थी [10]। यद्यपि मूल प्रशस्ति अभी प्राप्य नहीं है और नष्ट हो चुकी है किन्तु १५०८ वि० में इसकी एक प्रतिलिपि की गई थी जो अब डेकन कालेज पूना में संग्रहित है।

इस प्रशस्ति में विद्वान लेखक ने बड़ा सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किया है। मेवाड़ का भौगालिक वर्णन राजवंश वर्णन और कुंभा का वर्णन बड़ी श्रेष्ठता से किया है। चित्तौड़ का वर्णन भी सुन्दर ढंग से किया है। वर्णन शैली भी श्रेष्ठता लिये है। इनकी इस प्रशस्ति से पता चलता है कि चरित्नरत्नगणि विद्वान और उल्लेखनीय साधु थे। कई विशेषण और अलंकारों की प्राचुर्यता इनकी शैली की विशेषता है।

इनके अतिरिक्त दो और उल्लेखनीय साधु है जो कुंभा के समसामयिक थे और जिन्होंने मेवाड़ भूमिका सुन्दर वर्णन किया है। ये हैं प्रतिष्ठा सोम और रत्नमंदिरगणि। प्रतिष्ठासोम द्वारा विरचित सोम सौभाग्य काव्य बड़ा प्रसिद्ध है। जोधपुर पुरातत्व मन्दिर में इनका कथामहोदधि भी संग्रहित है। सोम सौभाग्य काव्य १० सर्गों में विभाजित है। इन्होंने इसकी रचना स्वहिताय की थी स्वहिताय सोम सौभाग्य नाम सुभगं स्वयामिकाव्यम्। यह काव्य ग्रन्थ बहुत सुन्दर है। सूक्ष्म से सूक्ष्म भावों तक कवि की पहुंच है। इसमें समसामयिक सामाजिक आर्थिक धार्मिक और ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख है। जैन साधुओं की दीक्षा से लेकर मृत्यु पर्यंत तक के जीवन यापन का सुन्दर वर्णन है। श्रेष्ठियों द्वारा संघ निकालने का वर्णन भी उल्लेखनीय है। श्रेष्ठियों के विलासिता पूर्ण जीवन यापन का सुन्दर चित्र खींचा गया है।

भाषा की शैली से इस ग्रन्थ में कई गुजराती और देशी शब्दों को संस्कृत में भर दिया है। इसमें देलवाड़ा चित्तौड़ और राणकपुर का सुन्दर वर्णन है और प्रसंगवश महाराणा कुंभा द्वारा जैन साधुओं के सन्मान करने का भी वर्णन है।

इस ग्रन्थ के साथ "गुरुगुणरत्नाकर" भी रखा जावे जो कुछ समय पश्चात् लिखा गया था तो मध्यकालीन राजस्थान के सामाजिक एवं धार्मिक जीवन पर बड़ा प्रकाश डाला जा सकता है।

---

१०. प्रशस्ति के अन्त में रचनाकार का वर्णन इस प्रकार है:—

"इति श्री चित्रकूटदुर्गमहावीरप्रासादप्रशस्तिः चचारू चक्रचूडामणि महोपाध्याय श्री चारित्ररत्नगणिभिर्विरचिताः"।

(ज० ब० ब्रा० रा० सो० भाग २३ पृ० ५०)

रत्नमन्दिरगणि भी कुंभा के समसामयिक थे। इनके लिखे उपदेश तरंगिनी और भोज प्रबन्ध दो ग्रन्थ मिले हैं। भोज प्रबन्ध की एक हस्तलिखित प्रति महावीर भवन जयपुर में संग्रहित है। इनका वर्णन काफी विस्तृत है।

मुनि सुन्दर के पश्चात् जयचन्द्र आचार्य हुये। इनका आचार्यत्व काल अल्पकालीन है। संभवतः ये भी वृद्धावस्था में आचार्य बने थे। इनके पश्चात् रत्नशेखर सूरि आचार्य बने थे। इनका जन्म वि० सं० १४५७, दीक्षा १४६३ एवं पंडित पद की प्राप्ति १४८३ में हुई थी। इन्होंने संभवतः १५०३ में आचार्यत्व संभाला था। इनके द्वारा विरचित ग्रन्थ श्राद्ध प्रतिक्रमण वृति (१४९६) श्राद्ध विधि सूत्र वृति (१५०६) आचार प्रदीप (१५१६) और लघु क्षेत्र समास है। इनकी मृत्यु १५१६–१७ में हुई थी और इनके पश्चात् लक्ष्मी सागर सूरि आचार्य हुए जिनका प्रारम्भिक लेख वि० सं० १५१७ वेसाख सुद ३ का थराद में एक मूर्ति की प्रतिष्ठा का मिला है। आबू की मूर्ति की प्रतिष्ठा भी इन्होंने ही की थी।

इसी समय माणिक्य सुन्दर गणि ने देलवाड़ा में १५०१ में भवभावना बालावबोध ग्रन्थ लिखा। इस ग्रन्थ को सिद्धान्तनिपुण नामक यतिने संशोधित किया था [11]। शुभशील ने जो वि० सं० १५४० तक जीवित था और जो मुनि सुन्दर का शिष्य था कई ग्रन्थ लिखें। इनमें विक्रम चरित्र (१४९०) पुण्यधननृपकथा (१४९६) प्रभावक कथा (१५०४) भरतेश्वरबाहुबलिस्वाध्याय (१५०९) एवं शत्रुञ्जय कल्प (१५१८) ग्रन्थ मुख्य है [12]।

खरतरगच्छ में कई आचार्य हुये थे। चित्तौड़ के शृंगार चंवरी के १५०५ के लेख में श्री जिनराज, जिन बर्धन, जिन चन्द्र, जिन सागर और जिन सुन्दर के नाम हैं। पूना में सुरक्षित आचरांगसूत्रनिर्युक्ति नामक ग्रन्थ की प्रशस्ति में श्री जिन वर्धन, जिन

---

११. पुस्तक की प्रशस्ति इस प्रकार है:— (देवकुलपाटक पृ० ३६)
"इति श्री मल्लधारि श्रीहेमचन्द्रसूरिविरचित श्रीभवभावनासूत्रस्य श्रीवृद्ध तपागच्छभट्टारकश्रीरत्नसिंहसूरि शिष्य पडित माणिक्य सुन्दर गणि ना देवकुल पाटके। १५०१ वर्षे कात्तिक सुद १३ बुधे भव्यसत्वप्रतिबोधाय बालाव बोधः कृतः श्री सिद्धान्त निपुर्णयतिवरैःसंशोध्य"।

१२. भरतेश्वर बाहुबलि स्वाध्याय की एक प्रति डेकन कालेज में सुरक्षित है। उसकी प्रशस्ति इस प्रकार है:—
"इति श्रीमत् तपागच्छाधिराज श्री मुनिसुन्दरसूरि शिष्य पं० शुभशील गणि विरचिते भरहेसरबाहूबलिविवृति नाम्नि कथा कोसे द्वितीयो महासत्यधिकारो समाप्तः" (भ० ओ० रि० इ० वाल्यूम १७ पार्ट ३ पृ० २५९)।

चन्द्र, जिन सागर, जिनमुन्दर एवं जिनहर्ष सूरि के नाम हैं [13]। श्री जिनराज का जन्म वि० सं० १४३३ व मृत्यु १४६१ में देलवाड़ा में हुई। इनके समय की में संग्रहित आचारांगसूत्रचूर्णि मिली है [14] जिसे मेरूनन्दन नामक उपाध्याय ने लिखी थी। श्री जिन वर्धन के समय की वि० सं० १४७१ में लिखी गई तात्पर्य परिशुद्धि पूना में संग्रहित है। इनके समय में देलवाड़ा में समाचारी मिमां लिखी गई [15]। इसी समय जयसागर नामक एक जैन कवि भी हुये जो १५१५ तक जीवित थे और इनके लिखे हुये कई ग्रंथ प्रसिद्ध हैं इनमें अधिकांशत: स्तवन हैं जिनमें विविध जैन तीर्थों एवं तीर्थंकरों की स्तुतियां, माहात्म्य, पूजा आदि का वर्णन है [16]।

खरतरगच्छ के आचार्यों में जिनसागर सूरि बड़े विख्यात थे। इन्होंने देलवाड़ा, करेडा, नागदा आदि मेवाड़ में कई बार यात्राएं की। १४६२ में देलवाड़ा में मेवाड़ के मुख्य मन्त्री सहणपाल नवलखां को प्रतिबोधित कर आवश्यकवृहदवृति का दूसरा खंड लिखवाया [17]। इस पुस्तक की प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि उस समय देलवाड़ा में भाण्डागार था जहां पुस्तकें लिखाई जाकर सग्रहित की जाती थी। इनके शिष्य पं० उदयशील ने हेम लघु व्याकरण के चौथे अध्याय की वृति [18] बनाई। जयसायर

---

१३. "श्री षरतरगच्छे श्री जिनवर्द्धनसूरि श्रीजिनचन्द्रसूरि श्रीजिनसागर सूरिश्रीजिनसुन्दरसूरि पट्टे—श्रीजिनहर्षसूरीश्वराणां (उपरोक्त भाग १ पृ० ८)।

१४. संवत १४५० वर्षे आषाढ मासे श्री आचारांगचूर्णि पुस्तकं श्री खरतर गच्छे श्रीजिनराजसूरीणां श्रीमेरूनन्दनोपाध्यायेः प्राभृति कृतं" (उपरोक्त पृ० ६)।

१५. "सं० १४७० वर्षे चैत्र सुदि ७ बुधवासरे देवकुलपाटके समाचारी मिमां भक्त्या लेखयामास सघ्यनि"—(देवकुल पाटक पृ० ३३-३४)।

१६. श्री हीरालाल माहेश्वरी—राजस्थानी साहित्य पृ० २४६।

१७. "सं० १४६२ वर्षे आषाढ़ सुदि ५ गुरौ श्री मेदपाटदेशे श्री देवकुल-पाटकपुरवरे श्रीकुंभकर्णराज्ये श्री खरतरगच्छे श्री जिनचन्द्रसूरि पट्टे श्रीजिनसागरसूरिणापुपदेशेन श्रीउकेशवंशीयनवलक्षशाखा मंडन सा० रामदेवभार्या साध्वीनो मेलादे तत्पुत्र राजमंत्रिधुराधौरयः साधुसहण-पालस्तेन – निज पुण्यार्थं श्री आवश्यकवृहदवृतिद्वितीयखंड भांडागारे लिखापितं। (देवकुलपाटक पृ० ३५)

१८. "पं० उदयशीलनामाग्रहेण शिष्यजनसुग्रमार्थं परोपकारार्थं च कृतायां श्री हेमलघुव्याकरणे द्वितीयास्याध्यायस्य दीपिकायां षष्ठः पादः समाप्त" (वही पृ० २१)।

के समान ही मेरू सुन्दर नामक साधु भी बड़े प्रसिद्ध हुये हैं। इन्होंने अधिकांशतः बालावबोध लिखे हैं इनके लिखे हुये ग्रन्थों में शीलोपदेशमालाबालावबोध औपदेशिक ग्रन्थ है जो छोटा हैं और इसमें सीता दमयन्ती आदि सतियों की ४२ कथायें हैं [19]।

वृहदगच्छ के हरिभद्रसूरि परिवार के पं० भावचन्द्र के शिष्य हीरानन्द ने सुपार्श्वनाथ चरित (सुपासनाह चरियं) ग्रन्थ ज्येष्ठ वदि १० शुक्रवार सं० १४८० को देलवाड़ा में लिखा [20]। यह ग्रन्थ राजस्थानी शैली का चित्रित ग्रन्थ है। इसमें ३७ चित्र हैं। आचार्य हीरानन्दसूरि के सम्बन्ध में कामराज रतिसार नामक ग्रन्थ में विस्तृत विवरण दिया हुआ है। श्रीनाहटाजी के शोध पत्रिका वर्ष १७ अंक १ और २ में प्रकाशित लेख के अनुसार ये हीरानन्द मुनि राजस्थानी भाषा के बड़े विद्वान कवि थे। पिप्पलगच्छ के वीर देव सेन के पट्टधर थे। इनकी कलिकाल रास (वि० १४८६) विद्याविलासरास (१४८५ वि०) वस्तुपालतेजपालरास (१४८४ वि०) जम्बूस्वामी वीवाहलउ, (१४९५ वि० बैशाख सुद ८) स्थूलिभद्र बारहैमासा आदि रचनाएं हैं। दशारणभद्ररास ग्रन्थ भी इसका लिखा हुआ है। कामराजरतिसार नामक ग्रन्थ में "श्रीहीरानन्दसूरिदत्तोपदेशेन" वर्णित है। यह ग्रन्थ वि० सं० १५१८ विजयादशमी को कुंभलगढ़ में पूर्ण हुआ था। इन्हें महाराणा कुंभा गुरु मानता था और कविराज की उपाधि भी दी थी। इस प्रशस्ति से यह भी प्रकट होता है कि कुंभा की राजसभा में इनका बड़ा सन्मान था। ये कामशास्त्र के ज्ञाता विद्वान रहे होंगे। ये उक्त हीरानंद से भिन्न थे। आंचलगच्छ के जय कीर्ति के शिष्य ऋषिवर्धन ने वि० सं० १५१२ में नलदमयन्तीरास चित्तौड़ में लिखा [21] (अ)।

---

१९. डा० शिवेस्वरूप शर्मा—राजस्थानी गद्य का उभ्दव और विकास पृ० ४६।

२०. "संवत् १४८० वर्षे। शाके १४३५ प्रवर्तमाने। ज्येष्ठवदि १० शुक्रे। बककरणे। मेदपाटदेशे। देवकुलपाटके। राजाधिराजमोकलविजय राज्ये। श्रीमद्वृहद्गच्छे। श्रीमड्डाहडीय भट्टारक श्री हरिभद्रसूरि परिवार भूषण पं० भावचन्द्र शिष्य लेशेन। मुनि हीराणन्देन लिलिखेवे। (राजस्थानी भारती मार्च १९६३ पृ० १९ पर दिया गया उदाहरण)।

२१. "कविराज एषविरुददत्ते ये षांहि सदसि कुंभनृपः।
विजयन्ते गुरवः श्रीहीरानन्दसूरीन्द्राः" ॥
इसी प्रकार "कुंभस्य संसदि हीरानन्दकवेर्मित्यं प्रतिष्ठाखलुवुष्यते" वर्णित है। [शोधपत्रिका वर्ष १७ अंक १–२ पृ० ३८]

२१(अ) डा० हीरालाल माहेश्वरी—राजस्थानी साहित्य पृ० २५१।

जैन श्रेष्ठियों ने ग्रन्थों के लिखवाने में बड़ी लगन दिखाई। इनमें देलवाड़ा के श्रेष्ठि विशेष उल्लेखनीय है। यहां के रामदेव नवलखां के दामाद बीसल ने क्रियारत्न सम्मुचय की १० प्रतियां लिखवाई [२२]। रामदेव की स्त्री मेलादे ने १४८६ में "संदेह दोलावली वृति" को जिनवर्धनसूरि के शिष्य पं० ज्ञान हंसमणि से लिखवाई [२३]।

दिगम्बर जैन साहित्य

कुम्भा के समय में सबसे उल्लेखनीय सकलकीर्ति और भुवनकीर्ति हुए थे। सकलकीर्ति का जन्म वि० सं० १४४३ में हुआ था इनके पिता का नाम करमसिंह और माता का नाम शोभा था। वि० सं० १४६३ में नैनवा में भट्टारक पद्मनान्दि के पास आकर उनके शिष्य हो गये। इनके द्वारा प्रतिष्ठित कुछ प्रतिमाएं उदयपुर के जैन मन्दिरों में अब भी उपलब्ध है। उदाहरणार्थ वि० सं० १४९० वैशाख सुदि ९ की आदिनाथ की प्रतिमा ऊंडा मन्दिर डूंगरपुर में है। वि० सं० १४९२ चैत्रसुदि १ और १४९२ वैशाख सुदि ५ की प्रतिमाएं खंडेलवाल मन्दिर उदयपुर में है।

ये संस्कृत प्राकृत एवं राजस्थानी के अच्छे पंडित थे एवं छन्द शास्त्र के ज्ञाता भी। डा० कस्तुरचन्द कासलीवाल द्वारा दिये गये विवरण के अनुसार इन्होंने २८ ग्रन्थ संस्कृत के और ६ ग्रन्थ राजस्थानी भाषा में लिखे हैं। संस्कृत के ग्रन्थों में विशेष उल्लेखनीय आदिपुराण, उत्तरपुराण, शांतिनाथचरित्र, वर्द्धमानचरित्र, मल्लिनाथचरित्र, यशोधरचरित्र, धन्यकुमारचरित्र, सुकुमालचरित्र, आगमसार, श्रीपालचरित्र आदि हैं। राजस्थानी में आराधनाप्रतिबोधसार, नेमीश्वरगीत, मुक्तावलीगीत आदि है। ब्रह्म जिनदास ने हरिवंशपुराण की प्रशस्ति में इन्हें "महाकवित्वादि कला प्रवीण" लिखा है।

---

२२. प्रशस्ति इस प्रकार है—

वाच्छासंघपतेरियद्रविभोर्मान्यस्य धन्यः सुतः
शश्वद्दानविधिविवेकजलधिश्चातुर्यलक्ष्मीनिधिः।
अन्यस्त्रीविरतः सुधर्मनिरतो भक्तः श्रुतेऽलेखयत्।
साधुर्बीसलसंज्ञितो दशवरा अस्य प्रतिरादिमाः ॥६५॥

(देवकुल पाटक पृ० ८ पर दिया गया उदाहरण)

२३. प्रशस्ति इस प्रकार है—

"सं० १४८६ वर्षे वेशाखसुदि ५ दिने श्री रामदेवभार्यायासाधु श्री सहणमात्रा, मेलादेविसुश्राविकया निजपुण्यहेतवे संदेह दोलावली वृत्तिर्लेखिता श्री जिनवर्धन सूरीश्वर शिष्य पं० ज्ञानहंसगणये—" [वही पृ० २२]

इनके बाद इनके शिष्य भुवन कीर्ति हुए। ये भी संस्कृत प्राकृत और राजस्थानी के अच्छे विद्वान थे एवं शास्त्रार्थ करने में बड़े कुशल थे। इनके द्वारा विरचित ९ ग्रन्थ राजस्थानी भाषा के मिलते हैं। इनमें उल्लेखनीय नेमीराजुलगीत, जीवंधररास, जम्बू-स्वामी रास, कलावती चरित्र आदि हैं। इनकी शिष्य परम्परा में ज्ञान भूषण हुए जो भी बहुत विद्वान थे।

इस काल में विरचित जैन साहित्य बहुत विशाल है। संस्कृत के साथ-साथ प्राकृत और राजस्थानी भाषाओं का विकास हुआ। सोम सुन्दर और कई लेखकों ने बालावबोध विरचित किये। ये भाषा टीका के रूप में भी अधिक है एवं अधिकांशतः गद्य साहित्य है जो बोलचाल की भाषा में है जन साधारण के समझाने के लिए बहुत उपयुक्त हैं। सोम सुन्दर एवं मेरू सुन्दर की भाषाओं को अगर हम १४९१ के देलवाड़ा और १५०६ के आबू के लेखों की भाषाओं से तुलना करें तो इन्हें बहुत ही समीप पाते हैं। ये ग्रन्थ प्राचीन राजस्थानी भाषा के नमूने हैं। कुंभा ने संगीतराज के पाठ्यरत्न कोश में मेवाड़ी भाषा का उल्लेख किया है। एकलिंग महात्म्य में भी मेवाड़ी भाषा का उल्लेख है। इन जैन कवियों की भाषा में राजस्थानी भाषा का प्राचीन रूप मिलता है।

जैनेत्तर साहित्य

कुंभा स्वयं संस्कृत का विद्वान था। उसके आश्रित पंडितों में अत्रि महेश, एकनाथ कन्हव्यास आदि थे। अत्रि के परिवार वाले मेवाड़ में दीर्घकाल से रह रहे थे। शिलालेखों में दिया गया इनके वंश का वर्णन इस प्रकार है कि भृगुवश में सोमनाथ नामक एक विद्वान हुआ। दक्षिण द्वार की प्रशस्ति में इसके लिये 'आसीत्पवित्रचरितो-नुववसंतयाजी श्रीसोमनाथधरणीबिबुधो धरण्यां" वर्णित किया है। इसका पुत्र नरहरि हुआ। इसे इलातलविरंची (ब्रह्मावतार) तक कहा है। दक्षिण द्वार की प्रशस्ति में इसे "साक्षादान्विक्षिकीकमलकानन तिग्मरश्मिः आसीदिलातल विरचिरिति" लिखा है। इसका पुत्र कीर्तिमान केशव हुआ। इसे झोटिंग भट्ट भी कहते हैं। झोटिंग भट्ट के सम्बन्ध मे उपदेशतरंगिणी में वर्णित है कि वह खंभात में मलिक कबीरदीन के पास भी कुछ दिन रहा था [एकदा स्तम्भतीर्थे—झोटिंगभट्टेन मलिककबीरदीनपार्श्वे आकारिता] यह महाराणा लाखा का समकालीन था। इसे उक्त महाराणा ने सूर्यग्रहण के अवसर पर पीपली ग्राम दान में दिया था [लक्षः क्षोणिपतिर्द्विजाय विदुषे झोटिंगनाम्नेददौ ग्रामं पिप्पलिकाम्मुदार विधिना राहूपरुद्धे रवौ] इसका पुत्र अत्रि हुआ इसमें महाराणा कुंभा के समय कीर्तिस्तम्भप्रशस्ति की रचना करना प्रारम्भ की थी लेकिन इसकी शीघ्र ही मृत्यु हो गई और इसी कारण इसके पुत्र महेश ने इसे पूर्ण की थी। यह बहुत विद्वान

था। महाराणा कुंभा ने इसे सोने की डंडी वाले २ चंवर और १ छत्र दिया था [24]। कवि महेश महाराणा कुंभा के पश्चात् भी जीवित रहा था एवं कुछ समय के लिये मालवा भी गया प्रतीत होता है। वहां के सुल्तान गयासुद्दीन के सेनापति बहरी की खड़ावदा की बावड़ी की प्रशस्ति वि० सं० १५४१ कार्तिक सुदि २ गुरुवार की प्राप्त हो चुकी है। महाराणा रायमल के समय की दक्षिणी द्वार की प्रशस्ति वि० सं० १५४५ चैत्रसुदि १० गुरुवार की जावर के रामस्वामी के मन्दिर की वि० सं० १५५४ चैत्रशुक्ला ७ रविवार की और शृंगार देवी की घोसुंडा की प्रशस्ति वि० सं० १५६१ वैशाखसुदि ३ की इसकी बनाई हुई मेवाड़ में भी प्राप्त हुई है। अतएव ज्ञात होता है कि यह वि० सं० १५४१ से १५४५ के मध्य मेवाड़ में वापस आ गया था। महाराणा रायमल ने इसे रत्नखेटक गांव दान में दिया था।

इसकी बनाई हुई प्रशस्तियों का सविस्तार अध्ययन करने से पता चलता है कि कवि की दृष्टि बड़ी सूक्ष्म थी। कीर्तिस्तम्भ प्रशस्ति में उसने कुछ तिथियां भी दी है यथा—कीर्तिस्तम्भ के निर्माण की तिथि, अचलगढ़ के निर्माण की तिथि, कुंभलगढ़ के निर्माण की तिथि आदि। ये तिथियां अन्य शिलालेखों से मिलाने पर ठीक मालुम होती है। इसकी प्रशस्तियों में अतिशयोक्तियुक्त वर्णन अपेक्षाकृत कम है।

कन्हव्यास

महेश के अतिरिक्त कन्हव्यास भी विशेष उल्लेखनीय है। इसके द्वारा विरचित एकलिंगमाहात्म्य बड़ा प्रसिद्ध है। यद्यपि प्राप्त प्रति में संरचनाकाल वर्णित नहीं है किन्तु

---

२४. अत्रिस्ततनयो नयैकनिलयो वेदान्तवेदस्थितिः।
मीमांसारसमांसलातुलमतिः साहित्यसौहित्यवान्।
रम्यां सूक्तिसुधासमुद्रलहरीं सामिप्रशस्तिंव्यधात्।
श्रीमत्कुंभमहीमहेन्द्रचरिताविष्कारिवाक्योत्तरां ।।१६०।
येनाप्त मदगर्धसिंधुरयुगं श्रीकुंभभूमीपतेः
सच्चामीकरचारुचामरयुगच्छत्रं शशांकोज्ज्वलं।
तेनात्रेस्तनयेन नव्यरचना रम्या प्रशस्तिः कृता
पूर्णापूर्णतरं महेशकविना सूक्तैः सुधास्यन्दिनी ।। की० प्र० १६१ ।।
खडावदे की बावडी की प्रशस्ति में इसे कुम्भा द्वारा सन्मानित होना लिखा है—

मान्यः श्रीगुहिलान्वयांबुजकर्त्ता विद्योतनस्याभवत्

श्रीमत्कुंभमहीपतेर्दृशपुरज्ञातिद्विजाग्रेसरः ।।६०।।

ज० ब० ब्रा० रा० ए० सो० जिल्द २३ में प्रकाशित

इसमें कुंभा के लिये वर्तमान कालीन क्रियाओं का प्रयोग किया है। आशीर्वादात्मक वचन भी दे रखे हैं। इसके अतिरिक्त इसमें समसामयिक प्रशस्तियों का संग्रह कर उसके कई श्लोकों को भी आत्मसात् किया है। जगह-जगह "यदुक्तं पुरातनैः कविभि" शब्द भी प्रयुक्त किया है। यह छोटा सा ग्रन्थ है जिसमें कुल ५५ पत्र हैं। इसको ७ भागों में विभक्त किया है। यथा (१) कामधेनु वरदान (२) इन्द्रवर वरदान (३) हारीतराशि कृता श्रीमदेकलिंगदेवस्तवन गद्यावली (४) मेदपाटीयतीर्थयात्राफलनामाध्याय (५) वंश वर्णन (६) जातिछंदोभिः श्री मदेकलिंगस्तुति और (७) अनेकलिंगनामानि। राणा कुंभा के वर्णन के श्लोक १४१ से २०३ तक मिलते हैं। इनकी तुलना अन्य प्रशस्तियों से करने से विदित होता है कि इसमें कवि ने अधिकांशतः श्लोकों को संग्रहित ही किया है। यथा—

एकलिंग माहात्म्य	अन्य प्रशस्तियां
(१) श्लोक सं० १४१ से १४८	कु० प्र० श्लोक स० २३३ से २३९ तक
(२) श्लोक संख्या १४९	कु० प्र० २५२
(३) श्लोक संख्या १५०	कु० प्र० २५५
(४) श्लोक सं० १५१ से १५३	कु० प्र० २६८ से २७०
(५) श्लोक सं० १५८ से १६०	की० प्र० श्लोक १८ से २०
(६) श्लोक सं० १६१	की० प्र० श्लोक सं० २२
(७) श्लोक सं० १६२	की० प्र० श्लोक सं० २१
(८) श्लोक सं० १६३	की० प्र० श्लोक सं० २८
(९) श्लोक सं० १६४ से १६५	की० प्र० श्लोक १४७ से १४८
(१०) श्लोक सं० १६६ [अपूर्ण]	की० प्र० श्लोक १५५
(११) श्लोक सं० १७०	की० प्र० १५७
(१२) श्लोक सं० १७४	की० प्र० १५८
(१३) श्लोक सं० १७६	की० प्र० १६०
(१४) श्लोक स० १७८	की० प्र० १६१
(१५) श्लोक सं० १८२	की० प्र० १६७
(१६) श्लोक सं० १८३	की० प्र० १७२
(१७) श्लोक सं० १८५	महावीर प्रसाद प्रशस्ति चित्तौड़ के श्लोक सं० २३
(१८) श्लोक सं० १८८	गीत गोविन्द की रसिक प्रिया के कर्तृ प्रशंसा का श्लोक

(१९) श्लोक सं० १८९ और १९० — की० प्र० श्लोक १८० से १८१

(२०) १९९, २०१, २०२ और २०३ — संगीतराज के कर्तृप्रशंसा के श्लोक सं० ३७ से ४०

राजवंश वर्णन के अन्य श्लोक भी मिलते हैं। उदाहरणार्थ महाराणा खेता के सम्बन्ध में एकलिंग माहात्म्य के श्लोक सं० १०३, १०४, १०६ और १०७ क्रमशः कुंभलगढ़ प्रशस्ति के १९८, १९७, १०७ और १०६ श्लोक हैं। शैली के दृष्टिकोण से यह ग्रन्थ कुंभलगढ़ प्रशस्ति के अधिक निकट है। दोनों ही एकलिंगजी के भौगोलिक और परम्परागत वर्णन से प्रारम्भ होते हैं। लेकिन निश्चित सामग्री के अभाव में यह नहीं कहा जा सकता है कि यही कुंभलगढ़ प्रशस्ति का रचियता था। इस ग्रंथ से अवश्य पता चलता है कि कन्हव्यास ने महाराणा कुंभा की [25] आज्ञा से ही इसकी रचना कुंभलगढ़ में प्रारम्भ की थी। इसकी वर्णन शैली कुंभलगढ़ प्रशस्ति से मिलने के कारण अवश्य संभावना की जा सकती है कि दोनों का रचियता एक ही व्यक्ति हो [26] पंचायतनस्तुतियों का कर्त्ता भी यही था। इसने अपने आपको अर्थदास व्यक्त किया है जिसका अर्थ वैत्तनभोगी कर्मचारी। जिससे प्रकट होता है कि यह वेतन लेकर ग्रन्थ लिखा करता था [26] (अ)।

---

२५. आनन्दवृद्धिदिपुराभिनंदी नंदीशवंदी नृपकुंभकर्णः।
तदाज्ञयाप्रेरित एव कन्हव्यासो व्यधतारक मोक्तिकावलि ।।६१
दुर्गां बिकाद्रौजयमाल दुर्गे कौनेपुरेधातुनिधौसमुद्रे
स्ताचन्द्रचूडस्तुतिचन्द्रकांता कुंभश्रियेकन्हकृतासुवृत्ता ।।६२।।

२६. श्री बृजमोहन जावलिया ने कुंभलगढ़ प्रशस्ति के रचियता अत्रि को माना है [राजस्थान भारती मार्च १९६३ पृ० ८२] लेकिन इसको मानने का कोई आधार नहीं है। कीर्तिस्तम्भ प्रशस्ति की रचना इस अत्रि ने करना प्रारम्भ की थी शैली के दृष्टिकोण से दोनों प्रशस्तियों में बहुत ही अन्तर है। कुंभलगढ़ प्रशस्ति में पहले मेवाड़ भू वर्णन दो शिलाओं में है और इसके पश्चात् वंश वर्णन आता है जबकि इसमें पहले वंश वर्णन आ जाता है। कुंभलगढ़ प्रशस्ति की तरह कीर्तिस्तम्भ प्रशस्ति में वंशावली को शोध करके तैयार नहीं की है। अतएव प्रतीत होता है कि कुंभलगढ़ प्रशस्ति इसके बाद की है। अतएव अत्रि इसका लेखक कभी भी नहीं हो सकता है।

२६(अ) श्री कुम्भदत्तसर्वार्थो [गीत] गोविन्दसत्पथाः।
पञ्चाशिकार्थदासेनकन्हव्यासेन कीर्तिता ।। [स्तुति ६०]

इनके अतिरिक्त वि० सं० १५०० की कडिया की प्रशस्ति का रचियता मुरारी का पुत्र कल्याण था । इसे उक्त प्रशस्ति में "वाक्यतर्कगतावहींद्रसुमतेः साहित्यरत्नाकरः श्रौतस्मार्त यतेः कृत श्रय भरः श्रीमन्मुरारेः सुतः श्रीकल्याणकरो—" वर्णित है । इसमें महाराणाओं के परम्परागत गुरु तिल्ह भट्ट का वर्णन है। इस प्रशस्ति की शैली को देखने से पता चलता है कि इसके रचियता पं० कल्याण भी विद्वान था । शब्दों के साथ सुंदर विशेषण लगाकर सौन्दर्य वृद्धि की है ।

इनके अतिरिक्त शिल्प शास्त्र पर कई ग्रन्थ विरचित किये गये थे । इनमें सूत्रधार मंडन और उसके परिवार वालो का प्रमुख हाथ था जिनका सविस्तार वर्णन अलग अध्याय में कर दिया है ।

राजस्थानी भाषा

कुंभा ने मेवाड़ी को एक अलग भाषा के रूप में मान्यता दी है । उस समय इस भाषा में रचनायें होना प्रारम्भ हो गया था । कुंभा ने स्वयं ने जिन नाटकों की रचना की थी उनमें मेदपाटीय भाषा का प्रयोग किया है जिनका वर्णन आगे यथा स्थान किया जावेगा । कुम्भा के अतिरिक्त अन्य कई लेखक भी होंगे किन्तु अब तक ऐसी कोई प्राचीन रचनायें प्रकाश में नहीं आई है । कुछ विद्वान पीठवामीसण, मेहड्ड खंगार, बारहट हरिसूर आदि को कुंभा का समसामयिक मानते हैं किन्तु इस सम्बन्ध में जब तक अधिक सामग्री प्रकाश में नही आवे तब तक कुछ नहीं कहा जा सकता है ।

तत्कालीन मेवाड़ में उच्चवर्ग में विद्या के पठन पाठन की समुचित व्यवस्था रही होगी । कीर्तिस्तभ प्रशस्ति में महाकवि अत्रि के पुत्र महेश के लिए वेद वेद्धान्त साहित्य सूक्ति सुधा में निपुण बतलाया है [२७] । इसी प्रकार कुंभा को एकलिंग महात्म्य में वेद स्मृति मीमांसा नाट्य शास्त्र संगीत राजनीति शास्त्र, गणित शास्त्र, अष्टाध्यायी, उपनिषद् , तर्क शास्त्र , और साहित्य में निपुण बतलाया है [२८] । इनके अतिरिक्त मूर्ति

---

२७. उपरोक्त फुटनोट सं० २४ ।

२८. वेदा यन्मौलिरत्नं स्मृतिविहितमतं सर्वदा कंठभूषा
मीमांसे कुंडलेद्वे हृदि भरतमुनिव्याहृतं हारवल्ली ।
सर्व्वांगीणं प्रकृष्टं प्रकृष्टं कवचमपि परे राजनीति प्रयोगाः ।
सार्वज्ञं बिभ्रदुच्चैरगणितगुणभूमसिते कुंभ भूपः ।१७२।।
अाटव्याकरणी (?) विकास्युपनिषद्दत्तपण्डा दंष्ट्रोत्कटः ।
षटतर्की (?) विकटोक्तियुक्तिविसरत्प्रस्फार गुंजारवः ।
सिद्धान्तोद्धतकाननैकवसतिः साहित्यभूकोडिनो
गर्ज — दि गुणान्विदार्य — प्रज्ञास्फुरत्केसरी ।१७३।

एकलिंग माहात्म्य (हस्त)

शास्त्र और वास्तु शास्त्र की भी पढ़ाई होती थी। इनसे पता चलता हैं कि तत्कालीन मेवाड़ में उच्चवर्गीय समाज में शिक्षा का स्तर अच्छा था।

कुम्भा साहित्यकार के रूप में

दुर्भाग्य की बात है कि इस महान राजा के सम्बन्ध में इतना अध्ययन नहीं किया गया है जितना किया जाना चाहिये था। इसका सबसे उल्लेखनीय ग्रन्थ संगीतराज है। संगीतराज के अतिरिक्त गीत गोविन्द की टीका चंडीशत की टीका, सूड़ प्रबन्ध, कामराजरतिसार आदि भी प्रसिद्ध है।

संगीतराज

संगीतराज के प्रकाशन का सर्वप्रथम प्रयास डा० कुन्हनराज ने शुरू किया था और बीकानेर से १९४६ में गंगा ओरियन्टल सीरिज के अन्तर्गत इसका पाठ्यरत्न कोश प्रकाशित भी किया गया था। इसके बाद नृत्यरत्न कोश का प्रकाशन प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर से किया गया। सम्पूर्ण ग्रन्थ का प्रकाशन काशी हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा डा० प्रेमलता शर्मा ने किया है। इसका प्रथम भाग तो प्रकाशित हो चुका है और दूसरा भाग अभी प्रेस में है।

आधुनिक लेखकों में प्रो० रामकृष्ण[२९] कवि ने अपने भरतकोश (१९५१) में संगीतराज के लगभग १४०० उद्धरण दिये हैं। डा० राघवन् ने सर्वप्रथम संगीतराज का प्रामाणिक परिचय सन् १९३२–३३ दिया था जो पूना में संग्राहित प्रति के आधार पर था। कृष्णमाचारी ने हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर (१९३७) में भी इस ग्रन्थ का अच्छा परिचय दिया है।

इस विशाल काय ग्रन्थ का प्रचार नहीं के बराबर ही हुआ था। इसका कारण मेवाड़ की राजनैतिक परिस्थितियां थी। वहां दीर्घकाल तक मुस्लिम सुल्तानों के साथ युद्ध होते रहे थे। इसके परिणामस्वरूप यहां के सैकड़ों ग्रन्थ अन्य सुरक्षित स्थानों पर पहुंचा दिये गये। मेवाड़ के बाहर कई शास्त्र भंडारों में यहां के ग्रन्थ संग्रहित है। संगीतराज का उल्लेख केवल १७वीं शताब्दी के सोमनाथ के "राग बिबोध" के वीणा प्रकरण में अवश्य किया गया है। इसकी कुछ खंडित प्रतियां भी मिली है। जैसे पाठ्यरत्नकोश की कुम्भावाली प्रति बड़ोदा और पूना में उपलब्ध है।

---

२९. डा० प्रेमलता शर्मा के निम्नांकित लेख दृष्टव्य है—

(अ) विश्व भारती वर्ष खण्ड ७ अंक १ पृ० ३७ से ४४।

(ब) कुंभा संगीत समारोह की स्मारिका वर्ष १९६२ और १९६५।

(स) राजस्थान भारती का कुंभा विशेषांक पृ० ६१ से ६५।

(द) संगीतराज की भूमिका।

कालसेन और कुम्भा की इसी प्रकार की प्रतियां बीकानेर के संग्रहालय में भी है। नृत्यरत्न कोश की कई प्रतियों के आधार डा० प्रिय बालाशाह ने इसे सम्पादित कर जोधपुर से प्रकाशित कराया है। रसरत्नकोश का उल्लेख डा० सुशील कुमार डे और महोमहापाध्याय कोंणे ने फ्रेंच विद्वान वी० रेन्यो के "ल रेतोरीक" में प्राप्त रसरत्नकोश सम्बन्धी उल्लेख को उद्धृत किया है और रस सम्बन्धी स्वतन्त्र ग्रन्थ मान लिया है जबकि यह संगीतराज का ५वां अध्याय है।

इस ग्रंथ की विस्मृति का एक कारण यह भी है कि किसी कालसेन नामक राजा के नाम पर भी इसकी एक प्रतिलिपि तैयार की गई है। इसमें कुंभकर्ण के स्थान पर राजा का नाम कालसेन देकर लम्बी पुष्पिकायें दी है। कालसेनवाली प्रतियां अधिकांशत: बीकानेर में ही मिली हैं जिनका वर्णन भी इस प्रकार है[२९] (अ)। इस सग्रहालय में ११ प्रतियां अपूर्ण और १ प्रति पूर्ण हैं। पूर्ण प्रति में कालसेन को ही लेखक माना गया है इसमें कहीं भी कुंभा का नाम नहीं दिया गया है। प्रारम्भ में कालसेन के वंश का भी परिचय दिया गया है। इसमें "श्री वत्सदेवाप्तवरप्रसादोऽस्ति व्याघ्रचामीकर-वंशसिंधु" वर्णित किया है। कालसेन के पूर्वजों के नाम भी इसमें इस प्रकार दिये गये हैं वे ये हैं त्तामराज, अमोड़, राम पेडराज, तामाराज और इसका पुत्र कालसेन। दूसरी प्रति में पाठ्यरत्नकोश और गीतरत्नकोश के अंश ही पूर्ण है। इस प्रति में कालसेन और कुम्भा दोनों के नाम हैं। तीसरी प्रति में गीतरत्नकोश का अंश है इसमें कुंभा का ही नाम है। चौथी प्रति में वाद्य रत्नकोश का अंश है इसमें कुंभकर्ण को ही लेखक माना है। पांचवी प्रति भी वाद्यरत्नकोश का अंश है इसमें कालसेन और कुम्भा दोनो के नाम मिलते हैं इसी प्रकार का क्रम छठी प्रति में भी है। ७वीं प्रति में कुम्भा और ८वीं प्रति में कालसेन नाम दिया है। ९ और १० नृत्यरत्नकोश की प्रतियां है इनमें एक में कुम्भकर्ण और एक में कालसेन नाम दिये हैं। ११वीं प्रति रसरत्नकोश की है इसमें कुम्भकर्ण और कालसेन दोनों नाम दिये हुये हैं। बड़ोदावाली पाठ्यरत्नकोश की प्रति में राणा कुंभा को ही लेखक माना है।

इस प्रकार उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि इसकी अधिकांश प्रतियों में कालसेन के स्थान पर कुंभकर्ण का ही नाम दिया गया है। इसकी दो प्रतियों में ही केवल मात्र कालसेन का नाम है कुम्भा का नहीं। बड़ोदा और पूना की प्रतियों में कुंभा का ही नाम है कालसेन का नहीं। अतएव यह निश्चित है कि इसका मूल लेखक कुंभा ही था कालसेन नहीं। पाठ्यरत्नकोश की राणा कुंभकर्ण वाली प्रति भी मिल गई है जो पुरातत्व

२९ (अ) कुन्हनराज—पाठ्यरत्नकोश की भूमिका।

मंदिर, जोधपुर से प्रकाशित हो रही है। पुस्तक की प्रशस्ति को अगर हम कुंभा के समसामयिक अन्य शिलालेखों से तुलना करें तो इसमें वर्णित घटनाएं कुंभा के समय में हुई सिद्ध होगी।

इस प्रशस्ति में प्रारम्भ में "अभिनव भरता चार्येण" वर्णित हैं [30]। कुंभा के लिए गीत गोविन्द की रसिकप्रिया की टीका और कीर्तिस्तम्भ की प्रशस्ति में इस प्रकार का उल्लेख है। मालवसेना रूपी समुद्र के मथन का उल्लेख कुंभलगढ़ की प्रशस्ति के श्लोक सख्या २६९ एवं २७० में एवं गीत गोविन्द की प्रशस्ति में वर्णित है। योगीनीपुर को विजय करने का उल्लेख कुंभलगढ़ की प्रशस्ति के श्लोक संख्या २४७ में है मांडलगढ़ और अजमेर को विजय करने का उल्लेख राणकपुर के लेख की पक्ति १८ में वर्णित है। नागौर को विजय करने का उल्लेख कीर्तिस्तम्भ की प्रशस्ति के श्लोक संख्या १८ से २२ तक में वर्णित है एवं राणकपुर के लेख के पंक्ति सख्या १८ में भी वर्णित है। आबू विजय का भी उल्लेख कीर्तिस्तम्भ के श्लोक संस्या १४ में वर्णित है। गुर्जर सुल्तान को विजय करने का उल्लेख कीर्तिस्तम्भ की प्रशस्ति के श्लोक संख्या १६ में वर्णित है। इसके अतिरिक्त गीत गोविन्द की रसिक प्रियाटीका की प्रशस्ति में भी है। कुंभलगढ़ के निर्माण का उल्लेख कई लेखों में मिलता है। कीर्तिस्तम्भ प्रशस्ति के श्लोक संख्या १८४ में इसका वर्णन है। चित्तौड़ दुर्ग पर राजपथ बनाने का उल्लेख कीर्तिस्तम्भ की प्रशस्ति के श्लोक संख्या ३५ में वर्णित है। इसके अतिरिक्त इस पुस्तक की प्रशस्ति में कुंभा के लिए "गजनरतुरगाधीशराजत्रिदात्तोडुरमल्लेन" शब्द भी मिलता है जो गीतगोविन्द की रसिकप्रियाटीका की प्रशस्ति में एवं कीर्तिस्तम्भ की प्रशस्ति में भी मिलता है। संगीतराज का सविस्तार अध्ययन करने पर प्रतीत होता है कि इसमें समसामयिक एकलिंग महात्म्य एवं कुंभलगढ़ प्रशस्ति के कई श्लोक भी हैं। उदाहरणार्थ संगीतराज के पाठ्यरत्नकोश के कर्तृ प्रशंसा के श्लोक सं० ३९ और

---

३०. **अभिनव भरता चार्येण मालवम्भोधिमाथमन्थ मही धरेण योगिनी प्रसादासादित योगिनी पुरेण, मंडल दुर्गोद्धररणोद्धृत सकल मण्डलाधीश्वरेणा, अजयमेरू जयाजय विभवेन, यवन कुलाकाल कालरात्रिरूपेण, शाकंभरी रमण परिशीलन परिप्राप्त शाकंभरीतोषित शाकंभरी प्रमुख शक्तित्रयेण, नागपुराद्धलन धर्षित नागपुरेण, अर्बुदाचल ग्रहण संदर्शिताचलाभ्रदुत प्रतापेण गुर्जराधीश धीरत्वोन्मूलन प्रचण्डपवनेन, श्री मत्कुंभल मेरू नवीननिर्मित पराजित सुमेरूणा, श्रीचित्रकूट भौम स्वर्गतथायार्थी करण चारूत्तरपथेन मेदपाट समुद्रसंभव रोहिणी रमणेन—"**

(संगीतराज के नृत्यरत्नकोश के अन्त की प्रशस्ति)

एकलिंग महात्म्य के श्लोक सं० २०२ में साम्यता है। इसी प्रकार की समानता कुंभलगढ़ प्रशस्ति के श्लोक सं० ८६ और संगीतराज के अलंकारोल्लास के लक्षण-परीक्षण के श्लोक सं० ४ में है। इनके अतिरिक्त संगीतराज में और भी कई श्लोक एकलिंग महात्म्य, कुंभलगढ़ प्रशस्ति और कीर्तिस्तम्भ प्रशस्ति के भावों के अनुरूप हैं। उदाहरणार्थ एकलिंग महात्म्य के श्लोक सं० ५। १४६ व कुंभलगढ़ प्रशस्ति के श्लोक २५२ की तुलना अगर पाठ्यरत्नकोश के अलंकारोल्लास के लक्षण परीक्षण के श्लोक सं० १४ से करें तो दोनों के भावों में समानता प्रतीत होती है। इसी प्रकार की साम्यता कीर्तिस्तम्भ प्रशस्ति के श्लोक १७२ व संगीतराज के कर्तृ प्रशंसा के श्लोक सं० २६ में है।

समसामयिक लेखकों की रचनाओं में इस प्रकार की साम्यता संभावित भी है। एकलिंग महात्म्य में भी कीर्तिस्तम्भ प्रशस्ति और कुंभलगढ़ प्रशस्ति के कई श्लोक मिलते हैं। तुलना करने पर इस प्रकार की साम्यता और भी कई उक्त प्रशस्तियों के श्लोकों में और संगीतराज में पाई जा सकती है। अतएव निसदेह संगीतराज की रचना कुम्भा के शासनकाल में मेवाड़ में ही हुई है। कालसेन नामक दक्षिणी भारतीय राजा ने इसकी प्रतिलिपि अपने राज्य में [31] करवाली थी। श्री बृजमोहन जावलिया ने इस सम्बन्ध में एक विस्तृत निबन्ध भी लिखा है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रतिलिपि कार ने बड़े ही कौशल से प्रतिलिपि में कुंभा, नागौर, चित्तौड़, कुंभलगढ़ और एकलिंग शब्दों के लिए क्रमशः कालसेन, मातृपुर, ब्रह्मशैल, अगस्ति पुर और कामेश्वरी को प्रयोगित किया है यथा—

कुंभा वाली प्रति	कालसेन वाली प्रति
१. कुंभकर्ण यथा शास्त्रम्	कालसेन यथा शास्त्रम्
२. सम्मोचित नागपुरं किलैकः	सम्मोचित मातृपुर किलैकः
३. विभाति सततं श्री चित्रकूट्याचलः	विभाति सततं श्री ब्रह्मशैलालयः
४. ध्वस्ते भीतम भूदलं शककुलं श्री सारंगपूर्वेपुरे ॥	ध्वस्ते भीतम भूदलं शककुलं श्री शुक्लपूर्वेपुरे

३१. **"स्वस्ति श्री नृप शालिवाहन शके १४२४ दुदंभी संवत्सरे चैत्र शुद्ध ५ रवौ राहिणी नक्षत्रे आयुष्मान योगे बलावकरणे एतस्मिन् दिने कामगिरि स्थाने राज्ञः श्री कालसेन स्य नाट्य शाला स्थित नर्तकीनां पाठनार्थनिधिवास स्थित रामेश्वर भट्ट सुत म्हाल सोम भट्टेन संगीत राजस्य पुस्तकं लिखितम्"। (कुन्हनराज—संगीतराज की भूमिका पृ० ४८)**

५. श्री एकलिंग प्रासादेन मण्डेल यस्य नित्यशः	कामेश्वरी प्रासादेन मण्डले यस्य नित्यशः
श्री मत्कुम्भलमेरु	श्री मत्कामाक्षागिरि
श्री कुंभपृथिवश्विरः	श्री मत्कालुजिभूपतिः
श्री मत्कुम्भनरेश्वरेणरचितः	श्री मत्कालुजिभूभुजाबिरचितः
ते सारंगपुरे	तेऽमीदल्लीपुरे
मालवनाथ	गुर्जरनाथ
कुंभस्वामि	वनदेव
मेदपाटावनिभृता	जनस्थानावनिभृता [त्रिसंध्यक्षेत्र भी प्रयुक्त]
बप्पेन	तामेन
यतखुमाणमुखैश्चितंकुम्भः	यच्छीराममुखैश्चितंकृष्णं
कुम्भभूभुजा	तामराजिना [४।२।४०]
सारंगपुरकोटविद्धट्टन···	कुरंगगिरिकोटविघट्टन ··
बृन्दावतीप्रज्वालन···	तारापुरप्रज्वालन
वजवापायन	व्याघ्रचामीकर
हमीरनामजनि	आमोदनामजनि
लक्षराज	पेडराज
मोकलेन्द्र	तामराज
अचलेश्वर	माहिषगिरि
मंडलकर	संगमनीर
अर्बुदाचल	वाटिकाचल
हमीरपुर	भीष्मपुर

कुछ शब्द ऐसे भी हैं जिन्हें बदले नहीं है और यथावत् ही स्वीकार कर लिये हैं उदाहरणार्थ—

शाकम्भरीवरमणपरिशीलन···	शाकम्भरीरमणपरिशीलन···
गिरिपुरडूङ्गरग्रहण	गिरिपुरडूङ्गरग्रहण
जांगलस्थलजलधि···	जांगलस्थलजलधि···
आम्रदकगिरिशिखरो···	आमर्दकगिरिशिखरो
सुवर्णगिरिखण्डन	सुवर्णगिरिखण्डन···

कर्तृ प्रशंसा में वंशावली भी इसी प्रकार परिवर्तित की गई है। कुम्भा के पूर्वज लाखा को गया आदि तीर्थों को मुक्त कराने का उल्लेख मिलता है जो संगीतराज में कालसेन के पूर्वज पेडराज के लिए वर्णित हुआ है।

संगीतराज का रचियता कौन ?

आधुनिक विद्वानों ने इसके लेखक के सम्बन्ध में कई मत प्रस्तुत किये हैं। श्री रसिकलाल सी० पारीख एवं डा० प्रिय बालाशाह ने नृत्यरत्नकोश के दूसरे भाग की भूमिका में वर्णित किया है कि संगीतराज का लेखक न तो कुम्भा और न कालसेन ही है बल्कि कोई पंडित है जिसने प्रारम्भ में इस ग्रन्थ को कुम्भा के नाम से लिखा है एवं उसकी मृत्यु के बाद संभवतः इसे कालसेन को भेंट कर दिया है [32]। डा० प्रेमलता शर्मा की मान्यता है कि "संगीतराज जैसे विराट् ग्रन्थ के प्रणयन का अवकाश जीवन भर युद्धरत रहने वाले शासक को किस प्रकार मिला होगा ? यह प्रश्न प्रायः उठाया जाता है। इस सम्बन्ध में केवल इतना ही कहा जा सकता है संगीतराज का अक्षरशः प्रणयन कुंभा ने भले ही नहीं किया हो किन्तु इस महत् कार्य की योजना और उसका सूक्ष्म निरीक्षण करने का भार उन्होंने अवश्य ही वहन किया होगा" [33]। प्राप्त सामग्री के आधार पर इसके रचियता के सम्बन्ध में इस प्रकार मत व्यक्त किया जा सकता है।

संगीतराज, गीत गोविन्द की रसिक प्रियाटीका, चण्डीशतक की टीका काम शास्त्र आदि का रचियता एक ही व्यक्ति था। संगीतराज के अन्त की प्रशस्ति में "चण्डीशतकेव्याकरणेतगीतगोविन्दवृत्यासंकृतयदत्त" पाठ है। रसिक प्रिया टीका में भी संगीतराज का कई स्थलों पर उल्लेख है। उदाहरणार्थ धीरोद्धत नायक का लक्षण

---

३२. श्री बृजमोहन जावलिया का अप्रकाशित लेख नृत्यरत्नकोश २ की भूमिका, पृ० ५।

३३. आलोड्याखिल भारती विल सितं संगीतराज व्यधात्
औद्धत्यावधिरंजसा समतनोत्सुड प्रबन्धाधिपं।
नानालंकृति संस्कृता व्यरचय च्चंडीशतव्याकृतिं
वागीसो जगतीतलं कलयति श्री कुंभदंभात्किलं ॥१५७॥
येनाकारिमुरारि संगीतरसप्रस्यंदिनीनन्दिनी
वृतिव्याकृतिचातुरीभिरतुला श्रीगीतगोविन्द के।
श्रीकर्णाटकमेदपाटसुमुहाराष्ट्रादिकेयोदय-
द्वाणीगुंफमयंचतुष्टमयंसन्नाटकानांव्यधात् ॥१५८॥

बतलाते हुए "तल्लक्षणं संगीतराजे रसरत्नकोशे" (पृ० १४) लिखा है व कई स्थलों पर "तथाच संगीतराजे" पाठ भी है। दोनों में कुछ प्रबन्ध भी मिलते हैं। संगीतराज में दो स्थलों पर गीत गोविन्द का भी उल्लेख है। नृत्यरत्नकोश में स्पष्टतः कुम्भा की नाट्यशाला में गीत गोविन्द अभिनय किये जाने का उल्लेख मिलता है। संगीतराज को छोड़कर अन्य किसी भी कृति में कालसेन का उल्लेख नहीं है। सबमें कुंभा को ही कर्ता वर्णित किया है। संगीतराज की कालसेन वाली प्रति के अन्त में गीत गोविन्द टीका लिखने का भी उल्लेख है जो संभव है कि प्रतिलिपिकार ने ही अन्य वर्णन के साथ लिख दिया है। आज तक कोई ऐसी प्रति नहीं मिली है।

दूसरे सबमे महत्वपूर्ण प्रमाण समसामयिक शिलालेखों में कुंभा को इनकी कर्ता माना है। कीर्तिस्तम्भ प्रशस्ति में कुंभा सम्बन्धी सारा वर्णन ऐतिहासिक है और अन्य शिलालेखों से मिलता है। इसमें सगीतराज ही नही उपरोक्त सर्व ग्रन्थों का कर्ता कुंभा को ही माना है अतएव इसे अप्रमाणित नहीं माना जा सकता है।

जहां तक किसी अन्य पंडित द्वारा लिखे जाने का प्रश्न है संगीतराज नहीं रसिक प्रिया टीका में भी कई पद ऐसे हैं जिनसे इस मत की पुष्टि भी हो सकती है। रसिक प्रिया टीका के प्रारम्भ में कर्तृप्रशसा दी है इसमें दो श्लोक ऐसे भी हैं जिनका भाव यह है कि हे मूर्ख मन ! तू किसकी उपासना करता है व चातुर्य एव च टुक्तिपूर्ण बातों से किस राजा की सेवा करता है [34]। तू कुंभा की सेवा कर वे तेरी सब अभिलाषाएं पूर्ण कर देंगे। किन्तु यह श्लोक एकलिंग महात्म्य में भी है। इसी प्रकार कई श्लोकों में "श्री कुम्भ एव प्रभु" पाठ है। संगीतराज में भी ऐसे पद कई स्थलों पर उल्लेखित हैं। कर्तृ प्रशंसा "कुंभकर्णविभुः" व "कुंभकर्ण भजेत्" पाठ है व अन्त की प्रशस्ति में "चिरजीयात् कुम्भ नरेश्वरेण" पाठ है। अतएव इन पक्तियों का लेखक निसदेह स्वयं कुम्भा नहीं हो सकता है।

इन सब को दृष्टिगत रखते हुये भारत की उन परम्पराओं पर अगर दृष्टि डालें जिनमें पंडित लोग आश्रयदाताओ के नाम से ग्रन्थ लिखते थे तो प्रतीत होता है कि

---

३४. रेमुढ़ाः किमुपास्यते गुणिगणप्रावीण्य पाटच्चरं।
भू भृद्वन्दमनेक काकुरचना चातुर्य चाटूक्तिभिः।
श्री कुम्भः सकलाभिलाषफलप्रदेश्वेत्सेवितुं प्राप्यते।
सौरभ्यं यदि मौक्ति के किम परं श्लाध्य भवेध्दूतले ॥

(गीत गोविन्दकाव्य की कर्तृ प्रशंसा)

एकलिंग महात्म्य अध्याय ५ श्लोक सं० ८८ [हस्तलिखित]।

कुम्भा के ग्राश्रय में कई पंडित थे। सारंगव्मास सरीखा संगीताचार्य भी था। कुम्भा का समय अधिकांशतः युद्धों में ही व्यतीत हुआ था। अतएव यह कहना कठिन है कि क्या कुम्भा युद्धों में व्यस्त रहते हुये भी इतने ग्रन्थों की रचना कर सकता था। एकलिंग महात्म्य के पंचायतनस्तुति से स्पष्ट है कि कन्हव्यास को अर्थदास के रूप में नियुक्त किया गया था। इसमें भी वहीं २ कर्त्ता का नाम राणा कुम्भा को ही वर्णित किया है यथा—"इतिमहाराजाधिराजशयरायां राणेरायमहाराणा कुम्भकर्णमहेन्द्रेणविरचिते मुखबाद्यक्षीरसागरेरागवर्णनो." एकलिंग माहात्म्य के श्लोक ८८ और गीत गोविन्द के प्रारम्भ के इस श्लोक से कि हे मूर्ख तू किसकी उपासना करता है आदि-आदि से भी इसकी पुष्टि होती है इसमें स्पष्टतः उल्लेखित है कि "श्री कुम्भः सकलाभिलाषफलप्रदेश्वसेवितुं प्राप्यते"। इससे ज्ञात होता है कि कुंभा के आधिन पंडितवर्ग उससे संतुष्ट थे और ग्रन्थ रचना किया करते थे।

डा० प्रेमलता शर्मा ने भी कन्हव्यास को संगीतराज का कर्त्ता संभावित माना है। उनका कहना है कि कर्तृ प्रशंसा के [३५] श्लोक सं० ३६ से ४० एकलिंग माहात्म्य से लिये हुये हैं। एकलिंग माहात्म्य और संगीतराज साम्यता है। एकलिंग माहात्म्य में पंचायतनस्तुति में कई स्तुतियां हैं जिनमें उनके संगीत के ज्ञाता होने की पुष्टि होती है। दोनों के श्लोकों के छंदों के चयन में भी विचित्र साम्यता है। यह निश्चित है कि सगीतराजग्रन्थ को विरचित करने में कन्हव्यास का अत्यधिक हाथ था। सूड प्रबन्ध की हाल ही मे प्राप्त प्रशस्ति से भी ज्ञात होता है कि सारंग नामक [३६] एक संगीताचार्य भी कुम्भा के यहां था। संभवतः इसने भी यथेष्ठ सहायता दी हो। अतएव डा० प्रेमलताजी की इस मान्यता को ही मैं ठीक समझता हूं कि कुम्भा ने इस ग्रन्थ को स्वयं ने पूरा नहीं लिखा हो किन्तु उसके निर्देशन में यह कार्य सम्पादित हुआ था और वही प्रधान सम्पादक था।

संगीतराज का रचना स्थल

यह निश्चित रूप से सही है कि इसका रचनास्थल मेवाड़ ही था। इसका प्रमुख आधार यही है कि इसमें समसामयिक प्रशस्तियों और एकलिंग माहात्म्य के कई श्लोक आत्मसात् किये हुये हैं। पाठ्यरत्नकोश का कुंभा वाला अंश भी राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान से प्रकाशित हो रहा है। इसमें वंशावली और पूर्वजों का वर्णन दिया हुआ है। वह अक्षरशः अन्य प्रशास्तियों से मिलता हुआ है। कुंभा के दिये हुये

---

३५. संगीतराज की भूमिका पृ० ५९–६०।

३६. शोधपत्रिका वर्ष १७ अंक १ और २ में श्री नाहटाजी का लेख।

विरुद भी ठीक इसी प्रकार से मिलते हैं। कर्तृ प्रशंसा के श्लोक २३ में आदिवराह की तरह चित्तौड़ भूमि का उद्धार करने का उल्लेख है। चित्तौड़ पर जैसा कि ऊपर वर्णित किया जा चुका है कई बार मालवा और गुजरात की सेनाओं से घिर चुका था कीर्ति-स्तम्भ प्रशस्ति इसी अनुरूप के कई श्लोक उपलब्ध है। कर्तृप्रशंसा में मालवा और गुजरात की सेनाओं को लूटना और रणयज्ञ में यवनों की आहुति देने का उल्लेख है। यह सारा वर्णन समसामयिक घटनाओं से ठीक प्रतीत होता है। अतएव कुंभा स्वयं ने इसे विरचित किया हो अथवा अन्य कई पडितों की सहायता ली है। कुंभा का महत्व कम नहीं हो सकता है। मेवाड़ में उस समय निसंदेह संगीत और साहित्य की एक विशिष्ठ परम्परा विद्यमान रही थी और कुंभा ने पंडितों को राज्याश्रय देकर उसे और अधिक पल्लवित कर दिया था।

सगीतर ज का वर्ण्य विषय

यह सम्पूर्ण ग्रन्थ ५ भागों में विभक्त हैं जिन्हें "रत्नकोश" नाम दिया गया है। इन रत्नकोशों को उल्लासों में और इन्हें फिर परीक्षणों में विभक्त किया गया है। इस प्रकार संपूर्ण पुस्तक को ८० भागों में विभक्त किया है। सम्पूर्ण पुस्तक का विभाजन इस प्रकार है—

१ पाठरत्नकोश

अनुक्रमणिकोल्लास	पदोल्लास	छन्द उल्लास	अलंकारोल्लास
कर्त्तृ प्रशंसापरीक्षण	पदपरीक्षण	अनुष्टुप् परीक्षण	उद्देश परीक्षण
आरम्भ समर्थन	वाक्य०	वृत्त०	लक्षण०
सगीत स्तुति०	संज्ञा०	आर्यावलोकन०	अलंकार०
अनुक्रमणिका०	परिभाषा०	प्रस्तारपरिपाटी०	गुणदोष०

२ गीतरत्नकोश

स्वरोल्लास	रागोल्लास	प्रकीर्णकोल्लास	प्रबन्धोल्लास
स्थानादिपरीक्षण	ग्रामराग परीक्षण	वाग्गेयकाररीक्षण	गीतपरीक्षण
साधारण०	रागाङ्ग०	शब्दभेद०	सूडआलि०
वर्णालिकार०	भाषाङ्ग०	गमक०	प्रकीर्णप्रबन्ध०
जाति०	क्रियाङ्ग०	स्थायवाग०	प्रबन्ध०

३ वाद्य रत्नकोश

ततोल्लास	सुषिरोल्लास	घनोल्लास	अवनद्धोल्लास
एकतंत्रीपरीक्षण	वंशपरीक्षण	मार्गतालपरीक्षण	पुष्करवाद्य०

नकुलादि०	स्वरोत्पत्ति०	देशीताल०	पाट०
मत्तकोकिला०	गुरणदोष०	तालप्रत्यय०	वाद्यप्रबन्ध०
किन्नरी०	पावादि०	काललक्षरण०	पटहादि०

४ नृत्यरत्नकोश

अंगोल्लास	चार्युल्लास	करणोल्लास	प्रकीर्णकोल्लास
अंगपरीक्षरण	स्थानकपरीक्षरण	शुद्धकरणपरीक्षरण	वृत्तिपरीक्षरण
प्रत्यङ्ग०	प्रत्यङ्ग०	शुद्धचारी०	देशीकरण०
उपाङ्ग०	देशीचारी०	अंग०	लास्यांग०
आहार्य०	मण्डल०	रेचक०	पात्रलक्षरण०

५ रसरत्नकोश

रसोल्लास	विभावोल्लास	अनुभावोल्लास	संचार्युल्लास
रसस्वरूपपरीक्षरण	नायकपरीक्षरण	अनुभावपरीक्षरण	निर्वेदपरीक्षरण
रसतत्व०	नायिका०	अवस्था०	भावावस्था०
रसाश्रय०	चेष्टादिक०	सात्विक०	रससंकर०
रसलक्षरण०	उद्दीपन०	प्रवास०	ग्रन्थसमाप्ति०

पाठ्यरत्नकोश का वर्णन अत्यन्त संक्षिप्त है। इसमें विभिन्न विषयों का वर्णन है। मंगलाचरण ग्रन्थ का विषय विभाजन एव गीतों के पाठ्य अंश पर विचार किया गया है। इसमें पारिभाषिक शब्दों की तालिका भी दी गई है। इनमें स्वर, श्रुति ग्राम मूर्छना वर्ण अलंकार, तान ग्रह अंश न्यास वादि संवादि विवादि अनुवादि राग जाति वाग्गेयकार ताल लय, मात्रा, वाद्य तत सुषिर अभिनय, नाट्य नृत्य लास्य तांडव अंग आदि की परिभाषायें उल्लेखनीय है। अलंकारों में इसमें मुख्य रूप से उपमा, दीपक, रूपक और यमक अलंकार मुख्य माने हैं। गीत रत्नकोश में स्वर के मूर्च्छना भेदों के सम्बन्ध में सविस्तार वर्णन किया है। भारतीय संगीत का आधार "सरगमपदनिस" ध्वनियां है। भरत और नारदने मूर्च्छना भेदों को भिन्न-भिन्न प्रकार से वर्णित किया है। स्वरों के कई विभाग हैं। साधारण के अन्तर्गत काकलिसाधारण, अन्तर साधारण, षड़ज साधारण मध्यम साधारण आदि आदि। मूर्च्छना भेद मुख्य रूप से षड़जग्राम, मध्यम ग्राम और गांधार ग्राम में होता है। मध्ययुग में स्वरश्रुति और ग्राम सम्बन्धी कई अस्पष्टताएं आ गई थी। डा० प्रेमलता शर्मा[37] के अनुसार शार्ङ्गधर ने सही मार्ग

---

३७. राजस्थान भारती का कुंभा विशेषांक मार्च १९६३ पृ० ६२।

प्रदर्शन नहीं किया था। कुम्भा ने इनको निर्भ्रान्त रूप से प्रतिपादित किया है। ग्राम और मूर्च्छना में कोई अन्तर नहीं है। एक ग्राम की मूर्च्छना में दूसरे ग्राम की स्वरावली मिल जाती है। षड़जग्राम में जब गांधार को दो श्रुति उत्कर्ष करके अन्तर गांधार बनाकर उस उत्कृष्ट गांधार को धैवत की सज्ञा दी जाय तो उस मूर्च्छना विशेष में स्वरों की संज्ञा भेद से मध्यम ग्राम की मूल स्वरावली प्राप्त हो जाती है। इसी प्रकार मध्यम ग्राम में जब धैवत को दो श्रुति अपकर्ष किया जाये और उसे गांधार की संज्ञा दी जावे तो मध्यम ग्राम की उस मूर्च्छना विशेष में षड्ज ग्राम की मूल स्वरावली प्राप्त हो जाती है। कुम्भा ने प्राचीन आचार्यों के आधार पर इसे अच्छी तरह से स्पष्ट किया था किन्तु उनके ग्रन्थ का अधिक प्रचलन नहीं होने से इसका ठीक रूप से उपयोग नहीं हो सका। स्वराध्याय में पिंडरोत्पत्तिका एवं जीव प्रकृति का वर्णन है। श्रुति प्रकरण में २२ श्रुतियां और उनसे सम्बन्धित नाडी, हृत, कंठ, मूर्ध आदि का वर्णन है। मनुष्य के शरीर में वातपित्त, कफ और सन्निपात चार प्रकार के दोष है। इसी प्रकार की स्थिति स्वर की भी होती है। श्रुति मंडल में मृदु माध्यम, दीप्ता, जामता और करुणा का वर्णन है। स्वर के सम्बन्ध में कुंभा का कथन है सब प्रकार की वाणी स्वर में सम्मिलित है। इस प्रकार "नाद श्रुति और स्वर के स्थानीय भेदों पर विशेष प्रकाश डाला गया है। तान प्रकरण के अन्तर्गत तानों के विविध प्रकार तानों की विधि गणना व निर्माण विधि भी वर्णित है जैसे कूटतानों की गणना एवं खंड मेरू तानों की निर्माण विधि। इस प्रकार स्वरोल्लास में स्थानक श्रुति स्वर ग्राम मूर्छना तान साधारण वर्ण अलंकार आदि आदि का वर्णन है।

शार्ङ्गधर ने रागरागनियों को विधिवत् रूप से वर्गीकरण किया था। उनका विभाजन इस प्रकार था (१) ग्रामराग (२) उपराग (३) राग (४) भाषा (५) विभाषा (६) अन्तर भाषा (७) रागांग (८) भाषांग (९) क्रियांग और (१०) उपांग। यह वर्गीकरण तत्कालीन रागों के आधार पर किया गया। इनमें से प्रथम तीन तो प्राचीन रागों के लक्षण हैं शेष तीन देशी संगीत की स्थानीय शैली है एवं बाद की ४ प्रादेशिक शैलियां है। कुम्भा ने द्वितीय उल्लास में ग्राम रागों के बारे में लिखा है। इसमें उन्होंने पहले विभाग में ग्राम राग भिन्नराग गौड़राग वेसरराग साधारणराग तथा उपराग लिये हैं। फिर भाषा विभाषा के अन्तर्गत सौवरिक जनिताभाषा, कुकुभजनिता, टक्वजनिता, शुद्धपंचमजनिता, भिन्नपंचमजनिता, टक्वकैशिकजनिता, हिन्दोलकजनिता बोहरागजनिता, मालवकैशिकजनता, गांधारपंचमजनिता, भिन्नषडजजनिता, वेसरषाडव-जनिता मालव पञ्चमजनिता, भिन्नतानजनिता पंचमषाडवजनिता भाषाओं आदि के बारे में उल्लेखित है। फिर रागांगोपांग, रागांगणि उपांगनि तथा भाषांग व क्रियांग के बारे में

विस्तार से लिखा है। इसी के तीसरे प्रकीर्णकोल्लास के अन्तर्गत वाग्गेयकार शब्द भेदादि, आदि के सम्बन्ध में और चतुर्थ प्रबन्धोल्लास में विभिन्न प्रबन्धों का विस्तार से वर्णन किया है [38]।

वाद्यरत्नकोश में वाद्ययन्त्रों और तालों का वर्णन हैं। इसमें कुंभा ने संगीत रत्नाकार की प्रतिलिपि नहीं की है। संगीत रत्नाकार मे १८ प्रकार की वीणाएं बतलाई है जबकि कुंभा ने २० प्रकार की [39]। प्रत्येक राग के साथ गाई जाने वाली अलग-अलग तालों की भी व्यवस्था की। किन्तु तालाध्याय पर कोई अलग अध्याय नहीं लिखा।

नृत्यरत्नकोश में विभिन्न प्रकार की अभिनय मुद्राओं आदि का वर्णन है। अभिनय में नृत्याभिनय लास्य, तांडव सामान्य अभिनय, चित्राभिनय और आहार्याभिनय का वर्णन है। नृत्य के समय विभिन्न-भिन्न मुद्राओं और शरीर के विभिन्न अंगों का सविस्तार और सुक्ष्मतम वर्णन है। सिर की १४, सम्मलित हाथों की २४, वक्ष की ५, कटी की ५, चरणों की १३, स्कध की ५ ग्रीवा की ९, बाहु की १६ प्रकार की अवस्थाओं का वर्णन है। इस प्रकार नृत्य का विस्तृत वर्णन करने से ज्ञात होता है कि कुंभा स्वयं नृत्यशास्त्र का ज्ञाता था। कुंभा के समय अवश्यमेव कुशल नृत्यकार थे। कीर्ति-स्तम्भ में नटों और नर्तकियों को उत्कीर्ण किया गया है। कुंभा ने नृत्यरत्नकोश में नाट्यवेश्म का उल्लेख किया और उसमें नट नटियों के प्रवेश का भी वर्णन किया है अतएव उस काल में कुशल नृत्यकार होने के प्रमाण मिलते हैं। उस काल में नृत्यकला का समुचित रूप से विकास हो चुका था। सभी मांगलिक अवसरों पर इसे आवश्यक वर्णित किया गया है। कुंभा के अनुसार नृत्य राजाओं के अभिषेक नयी दुल्हन के गृह प्रवेश पर अर्थात् विवाहोत्सव में अभिष्ट पर्व,पर, यात्रा के अवसर पर, विजयोत्सव पर और यज्ञादि कर्मों में आवश्यक बतलाया है [40]। उसने तो दृष्य और

---

३८. तृतीय कुंभा संगीत समारोह की स्मारिका पृ० ५९–६०।

३९. डा० प्रेमलता शर्मा संगीतराज पृ० ६२३–६४७।

४०. भूपानामभिषेचने पुरगृहप्रावेशिकेकर्मणि।
प्रेष्ठानामपिसंगमे सुतजनौ पर्वस्वभीष्टाप्तिषु।
यात्रायां विजयोत्सवे सुरगमे वैवाहिके मंगले।
मंगलेषु च सर्व कर्मसु तथा यज्ञादि पूर्तेष्वपि॥१०॥

संगीतराज का नृत्यरत्नकोश ११।१०

श्रव्य काव्य से भी नृत्य को श्रेष्ठ माना है और इसको धर्मार्थ काम और मोक्ष की प्राप्ति का साधन माना है ।

रसरत्नकोश में रस निष्पति का वर्णन किया है । संगीत का क्षेत्र "गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीतमुच्यते" कह कर गीत वाद्य और नृत्य तक ही माना है । लेकिन कुंभा की व्यक्तिगत रूचि से भरत के नाट्य शास्त्र के अनुसार रस निष्पति का भी वर्णन किया है ।

रस निष्पति के सम्बन्ध में संगीतराज के मत भी प्राचीन आचार्यों के तरह था कि मनुष्य के हृदय में विभिन्न प्रकार के भाव सदैव रहते हैं जो अव्यक्त रूप से रहते हैं और बीज स्वरूप होते हैं । बाह्य भावों का हृदयगत भावों पर प्रभाव पड़ता है । अगर नाट्यशाला में करूण रस का दृष्य देखा जाय तो हृदयगत भावों पर असर पड़ता है और हृदय में जो करूण रस अव्यक्त रूप से रहता है वह प्रकटित होकर संचारियों द्वारा प्रकटित हो जाता है [41] ।

संगीतराज का रचना काल

संगीतराज के रचनाकाल के सम्बन्ध में इसी ग्रन्थ में एक श्लोक दिया है जिसमें वर्णित है कि यह ग्रन्थ संवत् १५०६ में पूर्ण हुआ था । विक्रम के साथ शक संवत् भी दिया गया है जिसकी मूल पंक्ति "वर्षेऽक्षाद्रयनलेन्दुशकसमये संवत्सरे च ध्रुवे" है । डा० कुन्हनराज इसमें संशोधन बतलाते हुये इसे "वर्षेऽस्रद्रचनलेन्दु" पाठ ठीक माना है । श्री हरविलास शारदा और डा० प्रेमलता ने पहले वाले पाठ को ही ठीक माना है [41अ] ।

---

४१. बाह्य वस्तु विशेषाभिमुख्यापेक्षाविनाकृतम् ।
रत्यादिरूपसापेक्षमतः करणमुच्येत ।३४६।।

नृत्यरत्नकोश के प्रथम उल्लास से

४१अ श्री मद्विक्रमकालातः परिगते नन्दाभ्रभूतक्षितौ
वर्षेबाणनगेन्दुशाकसमये संवत्सरे च ध्रुवे ।
ऊर्जेमासि तिथौहरेरविदिने हस्तर्क्षं योगे तथा
योगे चाभिजित स्फुटोऽयमभवत्संगीतराजाभिधः ।
डा० प्रेमलता—संगीतराज पृ० ३० । कुन्हनराज—संगीतराज पृ० ५४ ।
शारदा—म० कु० पृ० २०८ ।

रचना शैली

डा० प्रेमलता की मान्यता है कि संगीतराज में शास्त्रार्थ शैली का खुल करके प्रयोग किया गया है[42]। समें पूर्व मीमांसा का प्रभाव स्पष्टत: दृष्टिगत होता है। शास्त्रार्थ के कुछ प्रसंग इस प्रकार है—(१) आरम्भ समर्थन में धर्मशास्त्रों में संगीत सम्बन्धी निषेधात्मक उल्लेखों को पूर्वपक्ष में रखकर उनका उत्तर (२) श्रुति संख्या निर्धारण (३) संवाद तत्व निरूपण (४) मतंगोक्त द्वादशस्वर मूर्छनाओं का खंडन (५) तानों के यज्ञ नामों की सार्थकता की स्थापना (६) सात्विक अभिनय का स्वरूप निर्धारण। इस प्रकार शास्त्रीय मत निरुपण में इसमें अपूर्व कौशल दिखाया गया है।

इसकी दूसरी बडी विशेषता लगभग चालीस से भी अधिक पूर्वाचार्यों का स्मरण किया गया है। कुछ पूर्वाचार्यों के उद्धरण इसी रूप में हमें अन्यत्र मिल जाते हैं किन्तु कुछ आचार्यों के उद्धरण संगीतराज के अतिरिक्त अन्यत्र नहीं के बराबर मिलते हैं। मतंग के "बहुद्देशी" में देशीराग प्रकरण आज विलुप्त सा है किन्तु संगीतराज में कई स्थलों पर रागध्यान के प्रकरण में इसका उल्लेख किया है। अतएव अनुमान है कि यह ग्रन्थ उस समय अवश्य विद्यमान रहा होगा।

इस प्रकार संगीतराज में कई मौलिकताएं है और वर्णन की दृष्टि से कई विशेषता लिये हैं।

गीतगोविन्द की रसिक प्रियाटीका

कुंभा द्वारा अनूदित जयदेव के गीतगोविन्द की रसिक प्रियाटीका बड़ी प्रसिद्ध है। गीतगोविन्द की सरस पदावली में कोमलतम भावों से युक्त राधाकृष्ण के संयोग और वियोग के विभिन्न भावों का चित्रण संसार साहित्य में अपना स्थान रखता है। कुंभा ने ग्रन्थ को आरम्भ करते समय मतंग भरत आदि आचार्यों को प्रणाम करके टीका प्रारम्भ की है। उसका अध्ययन बड़ा विस्तृत था और वह कई शास्त्रों का ज्ञाता था। टीका में कई जगह कई काव्यों और कवियों का संदर्भ दिया गया है। जैसे "राधामाधवयोर्जयन्तियमुनाकूले रहकेलय" पद की टीका करते हुये कुंभा ने नैषेधकाव्य और कुंभारसंभव के अंश उद्धृत किये हैं[43]। प्रत्येक पद के अंत में अलंकार, छन्द,

---

४२. विश्व भारती वर्ष ७ अंक १ में डा० प्रेमलता शर्मा का लेख।

४३. "यमुनाकूल इति रतिश्रमनिराससाधनशिशिरसमीरसम्द्भावार्थम्।
अयमितिरत्युद्रेराकाकुलतया स्वाङ्गे ष्वयौदासीन्यद्योतनाय।
यथा श्री हर्षमिश्रस्यहंसेन स्वात्मनि निराशीभूतेन" ॥
गतिस्तयोरेकतरस्तर्मदयन "इत्याद्यभाणि। यथा वा कालिदासस्य ईश्वरेण तथा व गणिते आत्नन्यनास्थायरत्वेन" "अयं जनः प्रष्टुमनास्तयोधने"
इत्याद्य वादि। (राधामावधयोंजयन्ति पद की टीका)

लक्षण, राग, रागनियां नायक, नायिका, रीति, वृत्ति आदि का सविस्तार वर्णन किया गया है [44]। कई स्थानों पर टीका करते हुये बड़ी सुन्दर व्याख्या भी की गई है। जैसे दुती की व्याख्या करते हुये कुंभा ने उसे कुशल धीर, गूढ़ मंत्रणा देने वाली स्वतंत्र विधवा, दासी, प्रवजिता आदि को इस कार्य के लिए योग्य बतलाया है [45]। संगीतराज में कुंभा ने सूड़ प्रबन्धों के शुद्ध और सालग इन दो परम्परागत भेदों के अतिरिक्त मिश्र सूड़ नामक एक तीसरे भेद का भी उल्लेख किया है। इसके २८ उपभेद गीत गोविन्द के आधार पर बनाये हैं। रसिकप्रिया में इन सब भेदों के लक्षण यथा स्थान उद्धृत किये गये हैं सूड़ प्रबन्ध में भी इनका उल्लेख है [46]। श्री कुन्हनराज ने गीत गोविन्द का रचनाकाल संगीतराज से पूर्व माना है। किन्तु इसको मानने का कोई आधार नहीं है बल्कि रसिक प्रियाटीका में यत्रतत्र ऐसी सामग्री उपलब्ध है जिनसे यह कहा जा सकता है कि यह ग्रंथ संगीतराज के बाद ही पूर्ण हुआ है। इस ग्रन्थ का रचनाकाल जानने के

---

४४. "वेसन्ते वासन्ती कुसुमसुकमारे" पहले सर्ग में गुर्जरराग निसार ताल की व्याख्या करते हुये लिखा है—

अत्र लुप्तोपमालंकार: दक्षिणोनायक:। तल्लक्षणम् "स्नेहलौल्यवैषम्यवशत-स्तुल्यतामिषन्। नायिका स्वप्यनेकासु दक्षिण: स स्मृतो यथा" विरहोत्कं-ठितानायिका। उक्ता भवति सा यस्या वासरेनागत: प्रिय: तस्यानागमने हेतुं चिन्तयत्याकुला यथा "तस्याभिलाषो नाम दशांति शेषो यथा" व्यवसायो भवेद्यत्र बाढं तत्संगमाशया। संकल्पाकुलचित्वात्साभिलाष: स्मृतो यथा "इति वैदर्भिरिति" (पृ० २३)

४५. "प्रवृति कुशला धीरा गूढ़मंत्र दृढ़प्रिया। स्वतन्त्रा विधवादासी दुष्टा-प्रवजिता सती। (पृ० ७३)

४६. "महाराणा श्री मोकलनन्दनेन देव श्री एकलिंगगणेन महाराजाधिराज राणा श्री कुंभकर्ण महीमहेन्द्रेण श्री जयदेवकवि विरचिते श्री गीत गोविन्दाभिधान मातु योगेन विरचित धातुबन्धे। नामानि पूर्व्वलिखितान्ये-वाष्टाविशति प्रबन्ध निबन्धन समनंतरा विराजमान प्रबन्धराज माननामा श्री गीतगोविन्दसूड़क्रमपरिणीयमान..."।

[सूड़ प्रबन्ध की प्रशस्ति शोध पत्रिका वर्ष १७ अंक १–२ से उद्धृत]

लिए ग्रन्थ में ही बहुत सामग्री है। इसके लिए सबसे बड़ी सहायता चतुर्थ सर्ग की प्रशस्ति है जिसमें गुर्जर और मालव सुल्तानों की सेनाओं को हराने का उल्लेख है[47]। यह घटना वि० सं० १५१४ की चम्पानेर की संधि के पश्चात् की है। गुजरात के सुल्तान के साथ महाराणा कुंभा का युद्ध सबसे पहले वि० सं० १५१३ में हुआ था। अतएव किसी भी स्थिति में यह इसके पूर्व की रचना नहीं हो सकती है। डा० प्रेमलता शर्मा[48] के अनुसार इसकी रचना संगीतराज के अन्तिम अध्याय रसरत्नकोश के विभवोल्लास व प्रबन्धोल्लास के पश्चात् हुई होगी। रसिक प्रियाटीका में नायक के लक्षण बतलाते हुये "तल्लक्षणं संगीतराजे रसरत्नकोशे [पृ० १०] लिखा है। गीतगोविन्द के प्रारम्भ के कुछ ही पदों की व्याख्या में इस प्रकार का प्रयोग यह सिद्ध करता है कि यह ग्रन्थ संगीतराज के बाद ही पूरा होना चाहिये।

कुंभा की गीतगोविन्द की टीका की विशेषता यह है कि इसमें सर्व प्रथम बार प्रत्येक पदों को गाये जाने वाली रागों को निश्चित किया गया है। यह व्यवस्था आज भी चालु है। गीतगोविन्द टीका की आरम्भ की प्रशस्ति में इसका स्पष्टतः उल्लेख है कि इसमें पदों के संगीत की व्यवस्था, जयदेव द्वारा वर्णित शृंगाररस को स्पष्ट करना और कई अस्पष्ट ग्रन्थियों को स्पष्ट करना मुख्य उद्देश्य है[49]। यह कई बार कुंभा के समय खेला जा चुका था।

सूड़ प्रबन्ध

सूड़ प्रबन्ध नामक ग्रन्थ की एक प्रति हाल ही में श्री नाहटाजी को मिली है जिसका वर्णन इन्होंने शोधपत्रिका वर्ष १७ अंक १–२ में प्रकाशित कराया है। यह प्रति अहमदाबाद में श्री पुण्य विजयजी के संग्रहालय में है। एक गुटके में जयदेव के गीत गोविन्द की टीका, सूड़ प्रबन्ध, कामराज रतिसार आदि हैं। इसके पत्र ३२अ में गीत गोविन्द पूर्ण हो गया है। इसके पश्चात् ६ पत्रों में सूड़ प्रबन्ध दिया हुआ है। इसके बोर्डर पर आलाप के भी टिप्पण लिखे हुये हैं। यह गीत गोविन्द के पदों के संगीत का प्रकरण है। अतएव अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसमें जगह जगह महाराणा कुंभा का नाम भी दिया हुआ है। छठे सर्ग के प्रारम्भ में "श्री कुम्भकर्णनृपतिर्नृपतितिलकोगीतगोविन्द,

---

४७. स्फुर्जद्गुर्जर शूरनायक जयप्रोद्दामिताडम्बरः।
हृष्यन्मालवमूलकोषणाविधौ सर्गतृतीयकृतः॥

४८. संगीतराज की भूमिका पृ० ४५–४७।

४९. गीत गोविन्द की रसिक प्रियाटो का की कर्तृप्रशंसा के श्लोक संख्या १६–१८।

गीतविशेषंत नुतेतनुतेजारसमिनेसर्गे" उल्लेखित है। इसमें कई संगीताचार्यों का उल्लेख मिलता है लेकिन सबसे महत्वपूर्ण उल्लेख "श्री सारंगव्यासात् सम्यक्प्रधीत्य" है [50]।

इस ग्रन्थ की रचना वि० सं० १५०५ वैशाख सुदि १३ को चित्तौड़ में हुई थी। इसकी प्रशस्ति में चित्रकूटविभु, नागपुरविध्वंशकारक, सारंगपुरसंहर्त्ता अर्बुदापजनाथ, कुंभलगढ़ मेरु महादुर्गनिर्माता आदि विरुद वर्णित है। प्रतीत होता है कि गीतगोविन्द की विस्तृत टीका लिखने के पूर्व इसे पूर्ण किया था। गीत गोविन्द की कर्तृप्रशंसा के श्लोक १६ में स्पष्टतः उल्लेख है कि इसमें राग रागनियों को निश्चित कर दिया है। सूड प्रबन्ध की प्रशस्ति में "श्री कुंभस्वामिप्रासादसोदर प्रबन्धराज श्री गीतगोविन्दनामा सूडक्रम सम्पूर्ण .." कुंभस्वामी का मंदिर भी वि० सं० १५०५ में पूर्ण हुआ था। सूड प्रबन्ध की रचना का उल्लेख संगीतराज के गीतरत्नकोश के सूड प्रबन्ध [51] परीक्षण में और कीर्तिस्तम्भ प्रशस्ति के श्लोक १५७ भी इसका उल्लेख है [52]।

गीत गोविन्द की मेवाड़ी टीका

मेवाड़ी भाषा में गीतगोविन्द की महाराणा कुंभा के नाम से की गई कई टीकाएं मिलती है। दो अनूप संस्कृत लाइब्रेरी बीकानेर एक मोतीचन्द्र खजांची संग्रहालय, एक पुरातत्व मंदिर जोधपुर और एक सरस्वती भवन उदयपुर के संग्रहालय में है। जोधपुर वाली प्रति की वि० सं० १६७६ कार्तिक वदि ५ को बाली नामक स्थान में प्रतिलिपि की गई थी। अनूप संस्कृत लाइब्रेरी वाली प्रतियों में एक में वि० सं० १६६७ प्रतिलिपि की तिथि दी हुई है। उदयपुर वाली प्रति की वि० सं० १७०५ वर्षे पोष सुदि २ को प्रतिलिपि की गई थी। इनमें की गई टीकाएं एक दूसरे से नहीं मिलती है यद्यपि तीनों कुंभा द्वारा लिखी गई वर्णित है। जोधपुर वाली प्रति के अन्त में एक लम्बी प्रशस्ति दी हुई है जिनका वर्णन मेवाड़ के मध्यकालीन शिलालेखों और ख्यातों से प्रायः मिलता है। कुंभा का अलौकिक वर्णन भी इसमें दिया गया है। बीकानेर वाली प्रति में तो स्पष्टतः गुर्जर भाषा में टीका करने का उल्लेख है। इसका प्रतिलिपिकार आबू दुर्ग के समीप अम्बाजी के पास धर्मपुरा गांव का रहने वाला कोदर पंड्या है। उदयपुर वाली प्रति में मध्य में कई स्थलों पर महाराणा कुंभा का उल्लेख है।

---

५०. शोध पत्रिका वर्ष १७ अंक १ और २ पृ० ३२-३४।

५१. अष्टाविंशतिरेतेऽत्र प्रबन्धाः कुम्भभूभुजा।
स्वोपज्ञगीतगोविन्दमिश्रसूडेप्रपञ्चिता।२६। गीतरत्नकोश सूडपरीक्षण

५२. आलोड्याखिलभारतीविलसितं संगीतराजं व्यधात्।
औद्धत्यावधिरंजसा समत्तनोत्सूडप्रबन्धाधिमुं।। की० प्र० श्लोक १५७

भाषा की दृष्टि से तुलना करने पर उदयपुर वाली प्रति महत्वपूर्ण कृति है। इसकी भाषा में स्पष्टतः मेवाड़ी पुट है [हे सखी राधा तूंह वंडा चीर छोडी कटि छाडीनी नागी थइ जा] बीकानेर वाली प्रति का उल्लेख करते हुये श्री नाहटाजी ने इसे संदिग्ध माना है [53]। जोधपुर वाली प्रति में भी भाषा की दृष्टि से मेवाड़ी पुट अपेक्षाकृत कम है।

चण्डीशतक

कुंभा द्वारा विरचित चंडीशतक की टीका की एक प्रति कलकत्ता के जैन भवन संग्रहालय में वे एक पुरातत्व मंदिर जोधपुर में है। कलकत्तावाली प्रति का वर्णन राजस्थान भारती के कुंभा विशेषांक में श्री भंवरलाल नाहटा ने किया है। यह प्रति खंडित है। वहां के जलवायु के कारण इसके पत्र आपस में चिपक गये हैं। इसमें ४५ पत्र हैं और प्रति पत्र में १७ पंक्तियां है। इसका लिपि काल वि० सं० १६७५ ज्येष्ठ सुदि ११ है। इसको सकलकीर्तिगणि ने लिपि वद्ध पुरातत्व मन्दिर जोधपुर वाली प्रति बड़ी स्पष्ट है। इसका ग्रंथांक १७३७६ साइज २५·६ × १०·६ पत्र ४५ किया था। इसका वर्णन नाहटाजी ने राजस्थान भारती के मार्च १९६५ के अंक में दिया हुआ है और इसकी प्रशस्ति भी दी है।

इस प्रति का प्रकाशन हो रहा है। इसको देखने से विदित होता है कि इसकी शैली और गीत गोविन्द की रसिक प्रिया टीका की शैली में बड़ा अन्तर है। इसमें शब्दों को व्याकरण दृष्टि से सिद्ध करने टीका में पांडित्य प्रदर्शन की ओर रुचि अधिक रही है।

इसकी प्रशस्ति में भी स्पष्ट किया गया है कि दुर्गम पदों को स्पष्ट करने की ओर ही टीकाकार की रुचि रही है। यह टीका चंडी के प्रति उसकी भक्ति के फल-स्वरूप की गई है। मूल में यह ग्रन्थ महाकवि बाण द्वारा विरचित किया गया था। टीका उद्देश्य 'बाणप्रणीतेस्तवनेनदीयेटीकां तनोत्याप्त जनस्यतुष्टयैः ॥ एवं विषयसुख-सन्मुखमनाः परमकारुणिकतयापरेषामपिपरमैश्वर्यं भक्तिदादर्य योगाच्चतुर्वर्गप्राप्तिनिमितं ......काव्यमुपनिवबन्ध है।"

इसकी प्रशस्ति में भी रसिक प्रियाटीका की तरह हमीर से लेकर कुंभा तक की वंशावली दी हुई है।

कामराजरतिसार

कामराजरतिसार ग्रन्थ की एक पूर्ण प्रति नाहटाजी को उक्त सूड़ प्रबन्ध वाले गुटके में मिली है। यह उक्त गुटके के पत्रांक ९३ से १०० में लिखी हुई है। यह ग्रन्थ

---

५३. शोधपत्रिका वर्ष ११ अंक १ पृ० ६१—६३।

७ अंकों में विभक्त है प्रारम्भ में गणपति, वागीश्वरी और कामदेव की स्तुति की गई है। प्रत्येक अंग में संक्षिप्त प्रशस्ति में कुंभा के विशेषण के रूप में बिरुद भी दिये हैं। प्रथम अंग का नाम कामशास्त्रोत्पत्ति तत्पारंपर्यप्रयोजन राजवंश वर्णन, दूसरे अंग का नाम पद्मन्यादि जात्यादि वर्णन, तीसरे अंग का नाम प्रीत्यादि वर्णन, चतुर्थ अंग का सत्वादि वर्णन आदि नाम रक्खे गये हैं [54]।

इस ग्रन्थ की एक अपूर्ण प्रति बीकानेर के अनूप संस्कृत लाइब्रेरी में है। बीकानेर वाली प्रति के अन्त में कामशास्त्रशब्द आया है। गीत गोविन्द की रसिक प्रिया टीका के पृष्ठ ८६ में "कामशास्त्रे" लिखकर एक श्लोक भी इससे उद्धृत किया गया है। किन्तु इसका पूरा नाम कामराज रतिसार ही रहा होगा [55]।

यह ग्रन्थ वि० सं० १५१८ को विजयादशमी को पूर्ण हुआ था। इसका रचनास्थल "कलशमेरु दुर्ग" अर्थात् कुंभलगढ़ है। इस ग्रन्थ में हीरानन्द नामक जैन मुनि ने बड़ी सहायता दी थी जिसका वर्णन पहले किया जा चुका है।

बीकानेर वाले ग्रन्थ की प्रशस्ति अत्यन्त संक्षिप्त है। इसमें हमीर से कुंभा तक की वंशावली दी गई है। अहमदाबाद वाली प्रति की प्रशस्ति अधिक विस्तार से लिखी गई है। इसमें कुंभलगढ़ दुर्ग के निर्माण का उल्लेख है। १८वें श्लोक में संगीतराज का कर्त्ता कुंभा को वर्णित किया है। २१वें श्लोक में नाटकराज का कर्त्ता और कामशास्त्र विशारद बिरुद कुंभा के लिये वर्णित है [56]।

संगीतरत्नाकर

कुंभा ने संभवतः संगीतरत्नाकर पर कोई टीका [57] लिखी थी। इसका उल्लेख ओझा, शारदा, कृष्णमाचारी आदि ने किया है किन्तु आज तक इसकी कोई भी पांडुलिपि नहीं मिली है। संगीतरत्नाकर के आनन्दाश्रम संस्करण के परिशिष्ट में टीकाकारों में कुंभा का भी नाम दिया हुआ है। संभवतः कुंभा ने भी इसकी टीका लिखी हो जो आज उपलब्ध नहीं है।

---

५४. शोधपत्रिका वर्ष १७ अंक १ और २ पृ० ३४—३५।

५५. [illegible] की प्रशस्ति "इति श्रीमहाराजा श्रीकुंभकर्णविरचिते श्रीकामराज-रतिसाररचिते श्री कामशास्त्रोत्पत्तितत्पारंपर्यप्रयोजन राजवंशवर्णनो नाम प्रथ[illegible]म[illegible]।छा।। (उक्त)

५६. शोधपत्रिका वर्ष १७ अंक १ और २ में नाहटाजी का लेख।

५७. शारदा—म० कु० पृ० १६६। ओझा—उ० इ० भाग १ पृ० ६२६। डा० प्रेमलता—संगीतराज पृ० ४७।

संगीतक्रमदीपिका

रसिक प्रिया टीका के तीसरे सर्ग में [58] संगीतक्रमदीपिका भी उल्लेख मिलता है किन्तु इसकी कोई प्रति नहीं मिली है।

गीत गोविन्द

कुंभा के गीत गोविन्द लिखने का भी उल्लेख मिलता है [5] प्रतीत नहीं होकर सूड़ प्रबन्ध के लिये ही प्रयुक्त हुआ प्रतीत होता है। इसमें २८ प्रबन्धों के बनाने का वर्णन है वे सूड़ प्रबन्ध के ही हैं नृत्यरत्नकोश में नाट्यशाला में "श्री कुंभकर्ण संगीतगीतगोविन्दरुपकैः" वर्णित है। अगर इसका अर्थ नये गीत गोविन्द से है तो यह कहा जा सकता है कि कुंभा ने इसकी रचना की होगी।

वाद्य प्रबन्ध

सूड़ प्रबन्ध की तरह वाद्य प्रबन्ध पर [60] कोई पुस्तक लिखी प्रतीत होती है। एकलिंग माहात्म्य के श्लोक २०१ में इसका उल्लेख है।

नाटक ग्रन्थ

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त कुंभा की [61] प्रशस्तियों में ४ नाटकों की रचना करने का भी उल्लेख मिलता है जो अब प्राप्य नहीं है। इन नाटकों में संस्कृत के अतिरिक्त महाराष्ट्री, कर्नाटी और मेवाड़ी भाषाओं का प्रयोग किया गया है।

शिल्प शास्त्रीय ग्रन्थ

कीर्तिस्तम्भ के पास एक खंडितशिला मिली है जिसमें विभिन्न देवताओं के कीर्तिस्तम्भ बनाने के ग्रंथ की रचना का वर्णन है। इसका खंडित अंश ही मिला है। यह शिलाखंड ११।। इन्च लम्बा और ९।। इन्च चौड़ा है। इसमें इन्द्र, ब्रह्मा और विष्णु के स्तम्भ बनाने का उल्लेख है [62]।

दीर्घकाल तक महाराणा कुंभा युद्ध में व्यस्त रहा था इतना होते हुये भी उसकी साहित्यिक रुचि के कारण ही इतना विशाल साहित्य पल्लवित हो सका था। मध्यकालीन राजस्थान में कुंभा का युग साहित्यिक क्षेत्र में अपना विशिष्ठ स्थान रखता है।

---

५८. श्री मत्कुम्भनृपेणक्लृप्तविवृतौ श्री गीत गोविन्द के, संगीतक्रमदीपिकास्वसुरयं सर्गस्तृतीयो मतः ।।३:५।। रसिकप्रिया।

५९. डा० प्रेमलता—संगीतराज पृ० ५०।

६०. उपरोक्त पृ० ५५ एवं एक० माहात्म्य श्लोक २०१। इसमें "श्रीमान् कुंभनरेश्वरः प्रकरुते वाद्यप्रबन्धम्" वर्णित है।

६१. की० प्र० श्लोक १५८।

६२. पं० कृष्णचन्द्र शास्त्री उदयपुर द्वारा भेजी गई छाप के आधार पर।

नवमां अध्याय

सूत्रधार मंडन

इत्येवं विविधं कुर्यात् सूत्रधारस्य पूजनम् ।
भूवित्तवस्त्रालंकारै - र्गौमहिष्यश्व वाहनैः ।।
अन्येषां शिलिपनां पूजाकर्त्तव्याकर्मकारिणाम्
स्वाधिकारानुसारेण वस्त्रैस्ताम्बूलभोजनैः ।।८।८२-८३।।

प्रासाद मंडन

सूत्रधार मंडन

मेवाड़ में १५वीं शताब्दी में कई उल्लेखनीय स्थपित हुये थे [1]। जिनमें मंडन विशेष उल्लेखनीय है। इसके पूर्वज गुजरात के रहने वाले थे। चालुक्य राजाओं का राज्य विनष्ट होने पर गुजरात से कई शिल्पी मेवाड़, गोड़वाड़ आदि भागों की ओर चले गये थे। सूत्रधार मंडन के पिता का नाम खेता था [2]। खेता के दादा मेवाड़ में आये थे। यह भगोरा जाति का ब्राह्मण था और भारद्वाज गौत्र का था। व्यवसाय के कारण शिलावट कहलाता [3] था। मंडन का वि० सं० १४८२ का एक दान पत्र मिला है [4] जो भाषा के दृष्टिकोण से अर्वाचीन प्रतीत होता है।

वह संस्कृत का विद्वान था। उसके द्वारा विरचित ग्रन्थों में प्रासाद मंडन, राजवल्लभ मंडन, देवता मूर्ति प्रकरण वास्तु सार, रूप मंडन, वास्तु [5] मंडन, आयतत्व आदि [6] बड़े प्रसिद्ध है। मंडन के छोटे भाई नाथा ने वास्तु मंजरी नामक ग्रन्थ विरचित

---

१. श्री रतनचन्द्र अग्रवाल का लेख—सम्मेलन पत्रिका वर्ष ४४ अंक २–३ पृ० २८४ से २९८।

२. रूप मंडन में इस प्रकार उल्लेख है—
श्री मद्देशे मेदपाटाभिधाने क्षेत्राख्योऽभूत सुत्रधारो वरिष्ठः।
पुत्रो ज्येष्ठो मण्डनस्तस्य तेन प्रोक्तं शास्त्रं मण्डनं रूपपूर्वम् ॥६।४०॥

३. श्री नारायण भारती यशवंत भारती गोसाई–राजवल्लभ मंडन (गुजराती) भूमिका पृ० ६।

४. श्री हर बिलास शारदा—महाराणा कुंभा (द्वितीय संस्करण) पृ० १६७। एवं शोधपत्रिका वर्ष ७ अंक १ पृ० ५२—यह लेख गलत प्रतीत होता है।

५. श्री नारायण बापुजी उत्गीकर—कलेक्टेड वर्क्स आफ श्री आर० जी० भण्डारकर पृ० ४२। एक प्रति जैन ज्ञान मंदिर बडोदा में सं० १३५१ है।

६. श्री उपेन्द्र मोहन देव शर्मा—देवता मूर्त्ति प्रकरण एवं रूप मंडन की भूमिका पृ० ३।

किया था। मंडन के दो पुत्र हुये थे (१) गोविन्द और (२) ईश्वर। गोविन्द ने उद्धार धोरणी, कलानिधि और द्वार दीपिका ग्रन्थ बनाये थे एवं ईश्वर जावर में कुंभा की पुत्री रमाबाई द्वारा निर्मित विष्णु मंदिर का शिल्पी था [7]।

मंडन ने अपने आश्रयदाता कुंभा का वर्णन बड़े ही गौरव के साथ किया है। वह राजा का प्रिय पात्र था [8]। वह संभवतः कुंभलगढ़ क्षेत्र में नियुक्त था। कुंभलगढ़ का सुदृढ़ दुर्ग उसकी कीर्ति का स्मरण दिलाता है। गुलशान-इ-इब्राहिमी के लेखक फरिश्ता एवं तबकात-इ-अकबरी के लेखक निजामुद्दीन ने इस दुर्ग की अजेयता का कई स्थलों पर उल्लेख किया है [9]।

प्रासाद मंडन ग्रन्थ मंदिरों के सम्बन्ध में है, राजवल्लभ मंडन दुर्ग, नगर, गांव आदि से सम्बन्धित हैं, वास्तु मंडन में वास्तु कला का सविस्तार वर्णन है। देवता मूर्ति प्रकरण, रूप मंडन आदि मूर्त्ति कला से सम्बन्धित है। इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

प्रासाद मंडन

प्रासाद मंडन को ८ अध्यायों में विभाजित किया है। पहले अध्याय में भूमि परीक्षण एवं १४ प्रकार के प्रासादों का उल्लेख है। १४ प्रकार के प्रासादों में ८ प्रकार के मुख्य बतलाये हैं। मानसार में नागर द्राविड़ और वेसर भाग ही किये गये हैं। समरांगण में ८ और अपराजित पृच्छा में १४ भाग किये हैं। मंडन ने इन दोनों के आधार पर ही यह वर्णन किया है। नाम प्रायः समरांगण से मिलते हैं। नागर, द्राविड़, भूमिज, लतिन, सार्वधार, विमान, नागरविमान पुष्पक [10] और शृंग। वह लिखता है कि भूमि को परीक्षण के पश्चात् पंच गव्य से शुद्ध करना चाहिए। इस शुद्धि में मणि, सोना, रूपा, मूंगा और फल के प्रयोग का भी उल्लेख किया है। शुभाशुभ नक्षत्र का विचार किया जाना भी आवश्यक है।

---

७. श्री भगवान दास जैन द्वारा सम्पादित—प्रासाद मंडन की भूमिका पृ० १४।

८. राजवल्लभ ग्रन्थ में कुंभा का वर्णन इस प्रकार किया है—
श्रीमेदपाटे नृपकुंभकर्णस्तदंघ्रिराजीवपरागसेवी।
समण्डनाख्यो भुवि सूत्रधारस्तेनोद्धृतो भूपति वल्लभोऽयम् ॥ (१४।४३)

९. तब० अक० (अ०) भाग ३ पृ० ५१२-५१३, ५३१-३२।

१०. प्रा० मं० पहला अध्याय ६-८।

मंदिर या प्रासाद को देवता का आवास माना गया है। ऐसा भी माना जाता है कि इसमें असुरों की वक्र दृष्टि रहती है अतएव शांति कर्म की व्यवस्था की गई है। इसमें १४ शांति कार्यों को निम्नांकित अवसरों पर किये जाने का वर्णन है[11] :— १. खात कर्म २. कूर्मशिला ३. शिलान्यास ४. तल निर्माण ५. खर शिला ६. मंदिर द्वार की स्थापना ७. मंडप का मुख्य स्तम्भ स्थापन ८. स्तम्भ पर भारपट्ट की स्थापना ९. शिखर पर पद्मशिला स्थापना १०. गर्भ गृह के शिखर के समान ऊंचाई पर सिंह स्थापना ११. स्वर्ण पुरुष की स्थापना १२. आमलक स्थापन १३. कलश स्थापना एव १४. ध्वजारोपण।

प्रासाद की मर्यादित भूमि को जगती कहते हैं। मंडन ने लिखा है कि जैसे राजा के सिंहासन को रखने के लिए कोई निश्चित स्थान मर्यादित होता है वैसे ही प्रासाद बनाने के लिए भूमि भी मर्यादित रखी जाती है। जगती के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए अपराजित पृच्छा में लिखा है कि प्रासाद शिवलिंग का स्वरूप है एवं उसके चारों ओर पीठिका होती है वह जगती रूप कहलाती है[13]। जहां तक हो सके जगती को प्रासाद के अनुरूप बनाई जानी चाहिए। अर्थात् प्रासाद के विस्तार को दृष्टिगत रखते हुये तीन गुणी, चार गुणी या पांच गुणी होना चाहिये। जगती के थरमान के सम्बन्ध में मंडन का कथन है कि इसके २८ भाग कर लिये जावें एवं इसमें ३ पद का जाड्यकुंभ, दो का कर्णिका तीन का ग्रासा जो पद्मयुक्त हो, दो भाग का खुरा सात भाग का कुंभ, तीन भाग का कलश एक भाग का अन्तर पत्र तीन भाग की कपोताली (केवाल) और चार भाग का पुष्प कंठ[14] बनाना चाहिए। जगती से मंडप में जाने के लिए सीढ़ियां बनाकर इसके दोनों ओर हाथियों की सुन्दर आकृति बनाना चाहिए। तोरण भी बनाना चाहिए। मंदिर के सम्मुख देव का वाहन स्थान भी बनाना चाहिए। इसकी ऊंचाई एवं निर्माण के सम्बन्ध में भी विशेष नियमों का उल्लेख[15] किया है। जिन प्रासाद के आगे

---

११. प्रा० मं० पहला अध्याय ३७–३८।

१२. प्रासादानामधिष्ठानं जगती सा निगद्यते।
यथा सिंहासनं राज्ञः प्रासादस्य तथैव सा ।।१ प्रा० मं० दूसरा अध्याय।१।।

१३. प्रासादो लिंगमित्युक्तो जगती पीठमेव च ।। सूत्र ११५ श्लोक ५।

१४. प्रा० मं० दूसरा अध्याय श्लोक ११ से १४।

१५. वृषभ की ऊंचाई शिवलिंग के विष्णु भाग तक रखना चाहिए। वाहन की दृष्टि गर्भ गृह स्थित देव मूर्त्ति के चरण जानु एवं कमर तक ऊंचाई रखना चाहिए। प्रा० मं० के दूसरा अध्याय का २१वां श्लोक अपराजित पृच्छा के सूत्र २०८ से मिलता हुआ है।

समवसरण एवं इसमें ७२, ५२ या २४ देव कुलिकाएं होना चाहिए[16]। देवालय में जहां सुलभ हो सके पीछे की तरफ रथशाला, दक्षिण में मठ व उत्तर में रथ का प्रवेश द्वार होना चाहिए।

मुख्य प्रासाद के आगे पीछे बांयी और दाहिनी ओर दूसरे प्रासाद सब नाभिवेध को छोड़कर बनाये जाते थे [17]। शिल्प ग्रन्थों में लिखा है कि शिवलिंग के सन्मुख कोई देव पूजन के लिए नहीं रखें। जहां तक हो सके ब्रह्मा के सामने ब्रह्मा का, विष्णु के सामने विष्णु का एवं जिनदेव के सामने जिनदेव का ही मंदिर बनाना चाहिए। इससे नाभिवेध नहीं हो सकता है। विष्णु व ब्रह्मा दोनों परस्पर एक ही नाभि में हैं अतएव इनका देवालय सन्मुख हो सकता है। इसी प्रकार चंडिका के सामने मातृ देवों, यक्ष, क्षेत्रपाल और भैरव आदि देव स्थापित किये जावें तो कोई दोष [18] नहीं। इसके पश्चात् देवों के आयतन के सम्बन्ध में वर्णन किया [19] है। सूर्य के आयतन में मध्य में सूर्य उसके प्रदक्षिणा क्रम से गणेश विष्णु चण्डीदेवी और महादेव को स्थापित करना चाहिए। गणेश आयतन में मध्य में गणेश उसके प्रदक्षिणा क्रम में चंडीदेवी, महादेव विष्णु और सूर्य होना चाहिए। विष्णु के आयतन में मध्य में विष्णु एवं प्रदक्षिणा क्रम से गणेश, सूर्य अम्बिका एवं शिव की संस्थापना करना चाहिए। चंडी आयतन में मध्य में चंडी, प्रदक्षिणा क्रम में महादेव, गणेश, सूर्य और विष्णु होना चाहिए। इसी प्रकार शिव पंचायतन में मध्य में शिव एवं प्रदक्षिणा क्रम से सूर्य गणेश, चंडी और विष्णु की

---

१६. जिन प्रासाद की संरचना वैष्णव मन्दिर से कुछ भिन्न होती है। जिन प्रासाद में कवली मंडप के आगे गूढ़ मंडप, चौकी मंडप और नृत्य मंडप आदि होते हैं जबकि वैष्णव मन्दिर में इतने मंडप नहीं बनते हैं।

१७. अग्रतः पृष्ठतश्चैव वाम दक्षिणयोर्दिशोः।
प्रासादं कारयेदन्यं नाभिवेधविवर्जितम् ।।२७।। प्रा० मं० दूसरा अध्याय

१८. दृष्टिवेध के परिहार के लिए भी नियम बने हुये हैं। इसमें लिखा है कि शिवालय और अन्य देवालयों के मध्य राजमार्ग या दीवार हो तो कोई दोष नहीं है। (प्रा० मं० २।३१)

१९. प्रा० मं० अध्याय २ के श्लोक ४१ से ४५ तक।

स्थापना करना चाहिए। त्रिपुरुष देव की स्थापना के लिए मध्य में महादेव, उसके बायीं ओर विष्णु और दाहिनी ओर ब्रह्मा की मूर्ति होना चाहिए। प्रत्येक देवों की ऊंचाई का मान भी बतलाया है[20]।

प्रासाद को धारण करने वाली जो आधार शिला है इसको खरशिला कहते हैं। इसे अति स्थूल बनाना चाहिए। यह जगती के ऊपर बनती है। इसके ऊपर भिट्ट नामक थर बनता है। इसकी ऊंचाई के नाप के लिए लिखा है कि एक हाथ के विस्तार वाले प्रासाद को ४ अंगुल का भिट्ट बनाना चाहिए एवं तत्पश्चात् लम्बाई प्रासाद की लम्बाई के अनुपात से रखी जानी चाहिए अर्थात् पूरे हाथ तक प्रत्येक हाथ के लिए एक २ अंगुल, ८ से १० हाथ तक के प्रासाद को प्रत्येक हाथ के लिए पौने २ अंगुल, ग्यारह से बीस हाथ तक के प्रासाद को प्रत्येक हाथ पांव पाव बढ़ाकर के भिट्ट बनाना चाहिए। यही मत क्षीरार्णव अपराजित पृच्छा आदि ग्रन्थों में मिलता है। उसके ऊपर पीठ बनाई जाती है। पीठ प्रायः कामद कर्ण और गजपीठ तीन प्रकार की बनती हैं। जिस पीठ में गज अश्व आदि थर बने हुये हों उसे गज पीठ कहते हैं। इस पीठ को छोड़कर केवल जाड्य कुंभ, कर्णिका ग्रासपट्टी वाली ही हो उसको कामद पीठ तथा जाड्द कुंभ तथा कर्णिका वाली को कर्णपीठ कहते हैं। पीठिका आधार होने से बहुत ही महत्वपूर्ण है। मंडोवर के भागों के विविध भाग करने के लिए प्रासाद की दीवार के १४४ भाग[21] करके इसमें ५ का खुरा, २० का कुंभ, ८ का कलश, २॥ भाग का अन्तराल, ८ भाग का केवाल, ६ भाग की मंची, ३५ भाग की जंघा, १५ भाग का उद्गम (उरःजंघा), १८ भाग की भरणी, १० भाग की शिरावटी, ८ भाग की कपोतिया (केवाल) २॥ भाग का अन्तराल एवं १३ भाग का छज्जा रखे जाने का उल्लेख मिलता है। मेरू मंडोवर में एक से अधिक जंघा होती है। बिना थरों का मंडोवर सामान्य मंडोवर कहलाता है।

मंडप के स्तम्भ और मंडोवर को समसूत्रता लाने के लिए कई नियम बना दिये थे। मंडोवर का कुंभ और स्तम्भ की कुंभी स्तम्भ का मथाला और मंडोवर का उद्गम स्तम्भ की भरणी और मंडोवर की भरणी, मंडोवर की कपोताली और स्तम्भ की शिरावटी आदि को समसूत्र रखा जाता था।

---

२०. अपराजित पृच्छा के सूत्र १३६ से वर्णित कि शिव मुख के एक तृतीयांश भाग तक विष्णु के मुखार्द्ध तक ब्रह्मा की ऊंचाई रखना चाहिए। इसी प्रकार का प्रा० मं० के दूसरे अध्याय के ४७वे श्लोक में वर्णन है।

२१. प्रा० म० तीसरा अध्याय २०।२३।

प्राय: गर्भ गृह के बाहर देहली या उदुम्बर को मडोवर के कुंभ के सम सूत्र रखा जाता था। देहली के ३ भाग करके इसमें मध्य का भाग मंदारक और दोनों ओर ग्रास मुख या कीर्तिमुख बनाने का विधान किया[22] है। द्वार के ऊपर का भाग उत्तरंग कहलाता है। उत्तरंग से उदुम्बर तक त्रिशाख पंचशाख या नवशाख वाले द्वार स्तम्भ बनाये जाते हैं। इन पर गंगा यमुना की मूर्तियाँ भी बनाई जाती है[23]।

गर्भ गृह प्रासाद की समाचोरस भूमि के १० भाग करके उनमें से २ की दीवार भ्रमणी एवं शेष ६ भाग का गर्भ गृह बनाना चाहिये[24]। गर्भ गृह के बाहर कोली मंडप बनाया जाता है। वैष्णव और जैन मंदिरों मे यह व्यवस्था अलग-अलग है। जिन प्रासाद के आगे गूढ़ मंडप इसके आगे चौकी वाले त्रिक मडप और उसके आगे नृत्य मंडप बनाया जाता है। नृत्यमडप के बाहर शृंगार चौकी मंडप भी बनाया जाता है। मंडन ने गूढ़ मंडपों का सविस्तार वर्णन किया है जबकि प्राग्रीव मंडपों का कम। कुंभा के समय बने मदिरों में अधिकांशत: प्राग्रीव मंडप बने हुये हैं। गूढ़ मंडप ८ प्रकार के वर्णित किये हैं (१) समचोरस, सुभद्र प्रतिरथ वाला मुखभद्र वाला, दो या तीन प्रतिरथ-वाला कर्ण एवं जलान्तर वाला अथवा भद्र जलान्तर वाला[25]। मंडप के ऊपर गूमटों के विस्तार मान का भी वर्णन मिलता है। मंडप के चन्दोवा के उदय में प्रथम पाट पर अष्टास्त्र बनाकर उसके ऊपर षोडशास्र व उसके ऊपर गोलाई बनती है यह भाग मंडप के विस्तार से आधा होना चाहिए। इसके थरों में प्रथम कर्ण दादरिका, दूसरा रूपकंठ बनता है। इन पर कई गज तालु के थर एवं इन पर ३ से ५ तक कोल का थर बनता है। वितान शुद्धसंघाट, संघाट मिश्र, क्षिप्त एवं उत्क्षिप्त चार प्रकार के हैं[26]। शिखर अथवा शृंगों के लिए लिखा है कि ये प्रासाद के अंडक माने जाते हैं एवं तवंग तिलक

---

२२. प्रा म० श्लोक ३।३६–४०। उदुम्बर को कुंभ के उदय से कम भी कर सकते हैं या कुंभी के आधे से अधिक कम नहीं हो सकता है। कहीं-कहीं ऐसा भी माना जाता है कि देहली को कुंभ से नीची उतारने की आवश्य-कता हो तो स्तम्भ की कुंभियों को भी नीची उतारनी चाहिए। किन्तु क्षीरार्णव एवं अपराजित पृच्छा में ऐसा विधान नहीं है।

२३. प्रा० मं० श्लोक ३।५८–६८।

२४. प्रा० मं० श्लोक ४।३।

२५. वही श्लोक ४।१६–१७।

२६. वही श्लोक ७।२६–३४।

तथा सिंह कर्ण ये प्रासाद के आभूषण शृंग एक के ऊपर एक दो अथवा तीन अनुक्रम से चढ़ाना चाहिए । प्रासाद के भद्र के ऊपर १ से ६ तक उरः शृंग चढ़ाये जाकर शिखर के लगभग आधे भाग तक ऊंचाई पर इन्हें बनाये जाते थे [27] । शिखर के उदय के लिए ग्रीवा आमलसार, कलश, शुकनास और सिंह स्थान भी बनाया जाना चाहिए । शिखर में शुकनास का महत्वपूर्ण स्थान है । मंडन के अनुसार प्रासाद के शिखर पर एक हिरण्य पुरुष की स्थापना की जाती है ।

इस प्रकार देव मदिर बनाने की कल्पना अत्यन्त सुन्दर है । इसमें सृष्टि के निर्माता ब्रह्म जिसे वेदों में हिरण्यगर्भ भी कहा है, निवास स्थान है । मनुष्य के शरीर के अनुरूप ही प्रासाद बनाने की कल्पना है । पैर या जगती पृथ्वी भाग है, मडोवर आदि मध्य भाग अन्तरीक्ष हैं एवं शिखर द्युलोक है । इस प्रकार यह अखिल ब्रह्माण्ड का प्रतीकात्मक है [28] ।

राजवल्लभ मंडन

इसमें १४ अध्याय हैं । यह ग्रंथ शिल्प शास्त्र का अद्वितीय रत्न है । इसमें राजमहल, साधारण घर, नगर आदि की संरचना का विशद वर्णन है । मनुष्य का घर उसके जीवन का महत्वपूर्ण स्थान रहता है जहां धर्म अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्ति के साधन जुटाये जाते हैं । उसके सम्बन्ध में इस प्रकार का अध्ययन भी आवश्यक है । इसमें भी प्रासाद मडन की तरह सर्वप्रथम भूमि परीक्षा का वर्णन है । घर बनाने के लिए समचोरस भूमि जिसमें पानी का बहाव अच्छी तरह से हो और खड्डे, दरार अथवा सूर्य के आवास का भय नहीं हो अथवा उत्खनन के समय हड्डियां नहीं निकलती हों को लेना चाहिए । शल्य (हड्डियां) के निकलने की संभावना हो तो उन्हें तुरन्त दूर करा देनी चाहिए क्योंकि भूमि में इनके रह जाने पर कई प्रकार के कष्टों की संभावना है । मडन लिखता है कि जिस भूमि में घर बनाना हो उसमें अगर गाय की हड्डियां रह जाय तो राज भय, घोड़ा की हड्डियाँ रहे तो रोग भय, स्वान की अस्थियां हो तो क्लेश आदि की संभावना [29] रहती है । शिला संस्थापना के समय नागचक्र बनाया जावे और नाग

---

२७. शिखर के उदय के १३ भाग करके ७ भाग तक उर शृंग बनाने का विधान है एवं शिखर पर गोलाई लाने के लिए नियम है कि अगर नीचे के १० हिस्से हो तो ऊपर आते-आते वह छः भाग ही रह जाना चाहिए ।

२८. श्री वासुदेव शरण अग्रवाल (श्री भगवानदास जैन द्वारा सम्पादित) प्रासाद मंडन की भूमिका पृ० १८ ।

२९. रा० मं० अध्याय १ श्लोक २१ ।

मुख देख करके खात कर्म किया जावे। नींव को इतनी गहरी खोदी जाय कि पानी निकल आवे अथवा पक्का पत्थर आ जावे। मन्दिरों की तरह अन्य प्रासादों में भी शांति पूजा निम्नांकित अवसरों पर आवश्यक हैं [30]:—

१. प्रथम सूत्र कर्म के समय

२. शिला स्थापना के समय

३. द्वार निर्माण के समय

४. स्तम्भ निर्माण के समय एवं

५. घर निवास के समय

वृक्ष विधान का भी वर्णन मिलता है। मंडन लिखता है कि घर के समीप अधिक फलदार, कांटे वाले एवं दूध वाले पेड़ व जिन वृक्षों में भूत प्रेतों का भय हो वे भी नहीं लगाना चाहिये। लेकिन वटवृक्ष, गुलर और पीपली जरूर लगाना चाहिए। वास्तु पुरुष के पूजन को बड़ा महत्व दिया है। इसको प्रासाद के आकार के अनुपात से बनाया जाता है।

दुर्ग निर्माण राजाओं के लिए श्रेष्ठ कर्म माना है। मंडन लिखता है कि पर्वतीय दुर्ग के निर्माण से राजाओं को कूप, तालाब, यज्ञ देव मन्दिर आदि का जो फल होता है उससे भी अधिक इसका फल होना है। उसके समसामयिक मेवाड़ में युद्धों का बोल बाला था। अतएव पर्वतीय दुर्गों का महत्व था [31]। वह लिखता है कि जैसे सिंह पर्वतीय गुफा में रहकर अपने शत्रुओं का विनाश कर देता है वैसे ही राजा विशाल सैन्य वाले शत्रुओं का विनाश कर देता है। दुर्ग प्रमुख रूप से ४ प्रकार के होते हैं:—

---

३०. भवनपुरसुराणां सूत्रणेपूर्वमुक्तः
कथित दृढपृथिव्याः शोधने चद्वितीयः।
तदनुमुखनिवेशे स्तम्भसंरोपणेस्याद्
भवनवसनकाले पंचधावास्तुयज्ञः ।२७।। अध्याय १ रा० मं०

३१. वापीकूपतडागदेवभवनान्यारामयागादिकं।
तीर्थोनामवगाहनं च विधिवत्कन्याप्रदानादिकं ।।
सर्वं पुण्यमिदं नृपः सलभते यः कारयेत्पर्वते।
दुर्गं सर्वं जना यशर्मजननं विश्राममेकं परं ।।

रा० मं० अध्याय ४। श्लोक १ ।।

१. भूमि दुर्ग, २. जल दुर्ग, ३. गिरि दुर्ग और ४. गव्हर दुर्ग। इन दुर्गों में अन्न, घी, जल, तेल, नमक लकड़ी एवं घास की तथा संग्राम की सामग्री जैसे यन्त्र, उपस्कर, बाण आदि रखने की व्यवस्था थी।

नगरों को विभिन्न नाप के आकार पर वर्णित किया है। चतुरस्त्र नगर को माहेन्द्र, लम्बा एवं चतुरस्त्र नगर को सर्वतोभद्र, गोल आकृति वाले को सिंह, लम्ब गोल आकृति वाले को वारुण, विभिन्न कोणों वाले को नन्द, स्वस्तिकाकृति वाले को नंदावर्तक, जव के आकार वाले का नाम जयन्त एवं पर्वत के ऊपर अवस्थित नगर को दिव्य। अष्टदल नगर को पुष्पपुर, पुरुषाकार नगर को पौरुष, पर्वत की छाया में हो तो उसे स्नाह, लम्बे नगर को दंडनगर नदी के पूर्व पर स्थित को शक्रपुर, नदी के पश्चिम में होवे तो कमलपुर, नदी के दक्षिण में होवे तो धार्मिकपुर, दो नदियों के मध्य अवस्थित नगर को महाजय, नदी के उत्तर में हो उसे सौम्य, एक दुर्ग वाले को श्रीनगर, दो दुर्ग वाले को रिपुघ्न और अष्ठकोण नगर को स्वस्तिक[32] कहते थे। यह वर्णन अपराजित पृच्छा से मिलता हुआ है। इनके अतिरिक्त कनिष्ट, मध्यम और उत्तम भेद भी किया जाता है। कनिष्ट नगर १००० हाथ का, मध्यम १५०० हाथ का और उत्तम नगर २००० हाथ का होता था। उत्तम प्रकार के नगर में १७ मार्ग, मध्यम नगर में १३ और कनिष्ट में ६ मार्ग बनवाये जाते। नगर के नाप से आधा ग्राम और ग्राम से आधा खेड़ा खेड़े से आधाकूट और कूट से आधा खर्वट होता था। राजा के रहने के लिए ४००० हाथ का अथवा ८००० हाथ का नगर बनाना चाहिए। ग्राम के मार्गों का भी वर्णन मिलता है। ग्राम में ६ खेटक में, ५ कूट में ३ और खर्बट में २ मार्ग होने चाहिए। किले की दीवारों की ऊंचाई २७ हाथ होनी चाहिए। इससे २ हाथ कम या अधिक भी हो सकती है। आधे हाथ के लगभग कंगुरे बनाने चाहिए। दीवारों में कोठे और विद्याधर भी बनाये जाकर कोठों की चौड़ाई १० से १४ हाथ रखनी चाहिए। विद्याधर और कोठों के मध्य ३५ हाथ का अन्तर होता था[33]। नगरों में ४ मुख्य द्वार और ८ खिड़की द्वार होने चाहिए।

नगरों मे बाजार की व्यवस्था का भी उल्लेख किया गया है[34]। तम्बोली फूलों की, सुगंधित पदार्थों की, रत्नों की, दुकाने राज द्वार के या देव मन्दिर के आगे होना चाहिए। नगर के पूर्व में ब्राह्मणों के, दक्षिण में क्षत्रियों के उत्तर में शूद्रों और मध्य में व्यापारी वर्ग को बसाना चाहिए। ईशान कोण में रंगरेज, कुविंद (बुनकर), धोबी को,

---

३२. रा० मं० चौथे अध्याय के ४ से ६ श्लोक।

३३. वही चौथे अध्याय के श्लोक १०।

३४. वही चौथे अध्याय के श्लोक १६।

अत्यन्ज, चर्मकार, घांची और कलालों को दक्षिण दिशा में बसाना चाहिए व पश्चिम दिशा में कुवा, तालाब, बावड़ी आदि बनवाया जाना शुभ माना है। बावड़ियां ४ प्रकार की, दस प्रकार के कुये, ४ प्रकार के कुंड और ६ प्रकार के तालाब बनाने का वर्णन मिलता है।

राजा के दरबार और महल के लिए भी सविस्तार वर्णन मिलता है। ग्राम या नगर के १।१६ भाग में राजमहल या दरबार बनना चाहिए। ये जहां तक हो सके नगर के मध्य अथवा पश्चिम भाग में बनना चाहिए। पर्वतीय दुर्ग समचौरस भूमि पर बनाना चाहिए। राजा के महल के आधे भाग का महल मंत्री का होना चाहिए। इनसे अनुक्रम से काम करते अधिकारियों के मकान बनाने चाहिए। राजमहल में वाम भाग में कोषालय, वस्त्रागार, देवघर, धातु लक्ष्मी, अश्व शाला, अन्तपुर आदि बनाया जावे। दाहिने भाग में अग्नि, गाय, जल, हस्ति शाला [35] शस्त्र और अन्तपुर का अवशेष भाग बनाया जावे। इनके अतिरिक्त गंधर्व शाला, नृत्यागार [36], राजमाता का स्थान, पटरानी के महल, ऊंटों के लिए अलग स्थान एवं धान्य के कोष्ठागार रखने की व्यवस्था की गई है।

राजमहल के सम्मुख सुन्दर मंडप एवं उसके पास में पुत्र, पौत्रादिकों के महल बनाना चाहिए [37]। राजमहल के बाहर वाम भाग में शस्त्रधारी सैनिकों के आवास का भाग है एवं दाहिने भाग में शिरछत्र पकड़ने वाले, चामर उड़ाने वाले, गुरु एवं तम्बोलियों के आवास थे। राजमहल में अध्ययन शाला एवं वादित्र शाला बनाने का भी विधान था। मुख्य द्वार के समीप त्रिपोलिया द्वार भी बनाया जाकर वहां धूप घड़ी रखी जाती थी [38]।

साधारण मनुष्यों के घर एक शाला से लेकर १० शाला तक के बनते थे। ध्रुव धान्य जय, नन्दखरकान्त, मनोरम सुवकतृ दुर्मु खूक्रूर, विपक्ष, धनद, क्षय, आक्रन्द,

---

३५. भागे दक्षिण वामके च करिणां शाला हरेर्दारितः भी कहा है।

रा० मं० ४।२६

३६. नृत्यागार के लिए कुंभा द्वारा विरचित संगीतराज के नृत्यरत्नकोश के नाट्यवेश्म नामक अंश में सविस्तार वर्णन किया है।

३७. राजकुमार अथवा पटराणी के महलों को ५ प्रकार के बतलाये हैं। देखिये रा० मं० के ६वां अध्याय के ३१–३२वां श्लोक।

३८. रा० मं० ५वे अध्याय का ४४–४७ श्लोक।

वैपुल और विजय नामक १६ प्रकार के घर बनते थे [39]। इनका अतिविस्तार से वर्णन किया गया है। घरों के वर्णन में मंडन में मौलिकता अधिक है। १० शाला के घरों में एक से ४ तक तो प्रस्तार से एवं और ५ से १० तक संयोजन से बनते थे। इसमें गुरु और लघु का छन्द शास्त्र की तरह एक दूसरे को मिलाकर घर बनाने का उल्लेख है। गुरु का अर्थ भित्ति और लघु का अर्थ अलिंद से है। अपराजित पृच्छा से भी मंडन का वर्णन अधिक स्पष्ट है। पन्चशाला ६ प्रकार के संयोजन से, ६ शाला ९ प्रकार के संयोजन से सप्तशाला ११ प्रकार के संयोजन से, अष्ट शाला १५ प्रकार के संयोजन से, नवशाला १८ प्रकार के एवं दस शाला २३ प्रकार के संयोजन से बनती थी। अपराजित पृच्छा में ८ आठ शाला, ८ प्रकार से नवशाला, ६ प्रकार से एवं दश शाला ५ प्रकार से ही वर्णित की है। इस प्रकार मंडन का वर्णन अधिक स्पष्ट प्रतीत होता है। गुरु लघु के प्रस्तार का रूप भी अधिक स्पष्ट है [40]। इनके पश्चात् राजा की शैय्या बनाने का वर्णन है। इसमें राजा की शैय्या १०० अंगुल, राजपुत्र की ९०, मंत्री की ८४, सेनापति की ७२, राजगुरु ६९ एवं ब्राह्मणादि वर्गों के लिए ६७ अंगुल की बनाई जाना शुभ माना है। राजा का सिंहासन ६० अंगुल का होना चाहिए। इसके अतिरिक्त ५० और ४० अंगुल के सिंहासनों का भी उल्लेख किया गया है। सिंहासनों पर सुन्दर नक्काशी होती थी। इन पर नरथर, वेदी, सुखासन आदि बनाये जाते थे।

राजा की सभा ८ प्रकार की बतलाई गई है। ये हैं नन्दा, भद्रा जया, पूर्णा, दिव्या, यक्षी, रत्नोद्भवा (रत्नोद्भविका) एवं उत्पला। इन सभाओं में कई स्तंभ तोरण आदि बनाये जाते थे। मंडन लिखता है कि स्तम्भों एवं दीवारों पर हस्ति, घोड़ा, सिंह, नृत्य करती हुई नर्तकियां बनाई जावे। एवं रंग भूमि बनाई जावे जिस के आगे क्रीड़ा करने के लिए एक मंडप भी बनाया जावे सभा के दाहिनी ओर वेदिका बनाकर उस पर ४ स्तंभ बनाये जाकर मंडप बनाया जावे एवं वहां स्वर्ण, मोती पटकूल और मणियां लगाई जावे।

राजा की क्रीड़ा करने के लिए बाड़ी अथवा बाग होना चाहिये। पहले प्रकार का १०० दंड, दूसरा २०० दंड और तीसरे प्रकार का ३०० दंड लम्बाई वाला होना चाहिये। इस बाग में जलयंत्र बनाया जाकर उसमें ७-७ कोठे बनाये जावे एवं एक जल वापिका इसके चारों ओर बनाई जावे। बाग में कई प्रकार के वृक्ष व पौधे जिनमें चम्पा, कुंद, सुवर्ण केतकी, नारंगी लाल कनेर, आम, जामुन, केले, चन्दन, बड़ा पीप्पल, हरडे,

---

३९. पोहर भाई अम्बाशंकर मंकड—अपराजित पृच्छा भूमिका पृ० ७८ से ८६ तक।

४०. रा० मं० ६ के अध्याय का ३ से ५वां श्लोक।

आंवली, आशापाला, कदम्ब, नीम, खजूर, दाड़िम, अंगूर, पलाश(खाखरा) आदि लगायें जावे। ऐसे बाग में वर्षा और वसंत ऋतु में बाला, मध्या और प्रोढ़ा जाति की स्त्रियां मनोहर गान हेतु रहती थी। ग्रीष्म और शरद ऋतु में शीतल जल में जल क्रीड़ा की जाती थीं।

इनके अतिरिक्त सेनापति, सामंत, राजाओं के घर ज्योतिषों के घर, सभासदों, राजगुरु पुरोहित, वैद्य आदि के आवास स्थान का भी वर्णन है [41]।

देवता मूर्त्ति प्रकरण एवं रूप मंडन

दोनों ही ग्रन्थ मूर्तिकला पर है। देवता मूर्ति प्रकरण में ८ और रूप मंडन में ६ अध्याय हैं। इनमें सर्व प्रथम शिला परीक्षण है। शिलाओं में पुरुष नारी और नपुसंक जाति की शिलाओं का वर्णन है और कौन से देवों की मूर्तियां किस-किस जाति की शिला से बनना चाहिए इसका वर्णन मिलता है। मूर्तियों की लम्बाई आदि का भी वर्णन है। शुभाशुभ प्रतिमा देवता कोप और शांति कर्म का उल्लेख है। देवता मूर्ति प्रकरण में देवता पदस्थान मान आदि का तीसरा अध्याय रूप मंडन में वर्णित नहीं है। चौथे अध्याय में विश्वकर्मा, कमलासन, विरंचि पितामह, ब्रह्मा, सावित्री, चारों वेद और नृत्य शास्त्र की प्रतिमाओं का वर्णन है। १२ सूर्य और उनके प्रतिहार दश दिकपालों आदि का वर्णन है। इसके पश्चात् विष्णु के २४ रूपों का वर्णन है। यह वर्णन देवता मूर्ति प्रकरण से रूपमंडन में अच्छी तरह से दिया गया है। इन मूर्तियों में अत्यन्त साम्यता है। केवल मात्र अन्तर शंख, चक्र, गदा और पद्म नामक आयुधों के धारण करने का है। विष्णु के दश अवतारों एवं उनकी विशेष मूर्तियां जिनमें वैकुण्ठ, विश्वरूप, अनन्त, त्रैलोक्य, मोहन आदि का वर्णन दोनों में समान रूप से मिलता है। इसके पश्चात् रूद्र मूर्तियों का वर्णन है। द्वादशशिव मूर्तियों का वर्णन दोनों ही ग्रंथों में समान रूप से दिया हुआ है। युग्म मूर्त्तियों में देवता मूर्ति प्रकरण का वर्णन अधिक विस्तार से है। रूप मंडन में केवल हरिहर और हरिहर पितामह की मूर्तियां ही वर्णित है जबकि देवता मूर्ति प्रकरण में सम्मिलित भावो की मूर्तियों में कृष्ण शंकर, कृष्ण कार्त्तिकेय, शिवनारायण, हरिहरपितामह, चन्द्रार्क पितामह, चण्ड भैरव, हरिहर आदि की मूर्तियां है। लिंगों का वर्णन भी इसमें अधिक विस्तार से है। इसके पश्चात् रूप मंडन में गौरी मूर्तियां और देवता मूर्ति प्रकरण में जिन देवों का वर्णन है। गौरी मूर्तियों में उमा पार्वती, श्रिया, रंभा, तोतला और त्रिपुरा और इनके प्रतिहारिकाओं का वर्णन है। देवता मूर्ति प्रकरण में ललिता, कृष्णा, त्रिखंडा आदि का वर्णन अधिक है। नवदुर्गा सप्त मातृकाएं आदि का वर्णन दोनों में है लेकिन देवता मूर्ति प्रकरण में द्वादश सरस्वतियों का वर्णन अधिक है। "जिन" मूर्तियों में २४ तीर्थङ्करों, यक्षों, शासन देवियों आदि का वर्णन है। यक्षों और शासन देवताओं का वर्णन देवता मूर्ति प्रकरण

---

४१. रा० मं० ६ वे अध्याय का २० से २४ वां श्लोक।

में अधिक विस्तार से है जबकि रूप मंडन में अत्यन्त संक्षेप में हैं। जिन देवों के सम्बन्ध से समरांगण और अपराजित पृच्छा में उपेक्षा वृति अपनाई गई जबकि मंडन ने उनका अच्छा वर्णन किया है। श्री बलराम श्रीवास्तव ने रूप मंडन की भूमिका में विस्तार से इन मूर्तियों पर विचार किया है।

धनुर्विद्या सम्बन्धी मंडन का "कोदण्ड मण्डन" नामक ग्रन्थ प्रसिद्ध है [42]।

मंडन के समय में इस प्रकार की कई उल्लेखनीय प्रतिमाएं बनी थी। रूप मंडन के अनुसार बनी वैकुण्ठ की प्रतिमा चित्तौड़ के कुंभश्याम के मन्दिर और एकलिंगजी के मंदिर में हैं, त्रैलोक्य, मोहन की प्रतिमा एकलिंगजी के मन्दिर में एवं विश्वरूप की प्रतिमा उदयपुर संग्रहालय में है। विष्णु के २४ रूपों की कुछ प्रतिमाएं और गौरी प्रतिमाएं उदयपुर संग्रहालय में है [43]।

इन ग्रन्थों अध्ययन से पता चलता है कि मंडन कई शास्त्रों का जानकार था। वह ज्योतिष का पंडित था। उसने सबही ग्रंथों में इनका सविस्तार वर्णन दिया है। प्रासाद मंडन में प्रतिष्ठा मुहूर्त आदि का वर्णन है। राजबल्लभ में ११ से १४ अध्यायों में इसका सविस्तार वर्णन है। विभिन्न नक्षत्रों, राशियों के अनुसार आयव्यय का विचार करना, किस किस तिथि को कौन सा कार्य करना शुभ है और कौन कौन सा कार्य अशुभ है इसका अधिक वर्णन है। १३ वें अध्याय में बच्चे के सीमान्त अन्नप्राशन कर्णवध के लिए शुभाशुभ तिथि एवं नक्षत्र का वर्णन है। किस तिथि को क्षौर कर्म कराया जावे व किस तिथि को नये वस्त्र, चूड़ा, आभूषण आदि पहने जाने आदि का वर्णन है।

दिशा साधने का उसको पूरा ज्ञान था। रात्रि और दिन में दिशा साधन का ध्रुव और धूप के आधार पर करने का उसने उल्लेख किया है। गणित का और विशेष तौर पर ज्यामिती का उसका ज्ञान उल्लेखनीय था। भूमि का नाप एवं क्षेत्रफल निकालने का कई स्थलों पर उल्लेख है। क्षेत्रफल निकालने में वृत मंडप, गोलस्तंभ, गोल देवालय आदि का वर्णन दिया हुआ है। राजवल्लभ और प्रासाद मंडन में नाप का उल्लेख कई स्थलों पर है।

श्री उपेन्द्र, मोहन देव शर्मा ने मंडन पर दक्षिणी भारतीय और विष्णोधर्मोत्तर का अत्यधिक प्रभाव माना है। किन्तु मेरी दृष्टि से इन दोनों से भी अधिक अपराजित पृच्छा का प्रभाव है। विभिन्न मूर्तियों का वर्णन इससे मिलाने पर बहुत अधिक साम्यता दिखाई देती है। विष्णु की प्रतिमाओं में, अनन्त विश्वरूप, त्रैलोक्य मोहन, वैकुण्ठ आदि की प्रतिमाएं विष्णु के २४ रूपों की प्रतिमाएं आदि इसका उदाहरण है। अन्यत्र भी कहीं कहीं तो मूलश्लोको की ही प्रतिलिपि मालूम होती है।

---

४२. शोधपत्रिका वर्ष २ अंक २ पृ० ७१–७२।

४३. शोधपत्रिका भाग २ अंक ३ पृ० १ से १२।
शोधपत्रिका वर्ष ६ अंक १ पृ० ८ से १६।

दशवां अध्याय

कला कौशल

काष्टपाषाणनिर्माणकारिणो यत्र मंदिरे ।
भुंक्तेऽसौ च तत्र सौख्यं शङ्करत्रिदशैः सह ।।८४।।

प्रासाद मंडन, अध्याय ८

कला कौशल †

दीर्घ काल तक मेवाड़ में युद्ध होने और आक्रमणकारियों की विध्वंसात्मक कार्यवाहियों से कई बहुमूल्य कलात्मक वस्तुएं नष्ट हो गई हैं । फारसी तवारीखों में मुस्लिम सुल्तानों द्वारा किये गये इस प्रकार के नृशंस अत्याचारों और बिनाशकारी कृत्यों का उल्लेख है[1] । इतना होते हुए भी जो कुछ सामग्री उपलब्ध है, वह कम महत्व की नहीं है और उनके द्वारा तत्कालीन कला का मूल्यांकन किया जा सकता है।

शिल्प कला

मेवाड़ में गुप्तकालीन कला का प्रभाव नगरी के खंडहरों में विद्यमान है। श्री एच० डी० सांकलिया ने नगरी से प्राप्त पक्की ईंटों में अंकित कला को गुप्तकालीन कला का स्वरूप माना है। उनका कहना है कि श्री डी० आर० भंडारकर का इन्हें शिबियों द्वारा लाई गई कला की शैली मानने का कोई आधार नहीं है। गुप्त काल में पक्की ईंटों द्वारा मंदिर बनाने का प्रचार सर्वत्र था। इन ईंटों में मुख्य रूप से तीन प्रकार की शैली अपनाई गई है। कुछ में मनुष्य की गर्दन (बस्ट) तक का भाग, कुछ में पशुओं और कुछ में बेल बूटें बने हुए हैं। इनके अतिरिक्त अन्य मूर्तियों के टुकड़े, स्तम्भ कीर्तिमुख, आमलक, तोरण, चन्द्रशिला–प्रणालिका, रेवन्तक की मूर्ति आदि भी इस काल की उल्लेखनीय कलाकृतियां हैं[2] । संभवतः इनमें से कुछ अवशेष वि० सं० ४८१ में नगरी में बने भगवन्त महापुरुष (विष्णु) के मंदिर, जिसे सत्य सूर्य, श्री गंध और दास नामक भाइयों ने बनाया था ।

---

† इस अध्याय को लिखने के लिये श्री रतनचन्द्रजी अग्रवाल के लेखों से अत्यधिक सहायता ली है। अतएव मैं उनका कृतज्ञ हूं।

१. अमीर खुसरो ने "खजाइन उलफतुह" में अल्लाउद्दीन द्वारा चित्तौड़ में किये गये अत्याचारों का उल्लेख किया है (मोहम्मद हबीब का अनुवाद पृ० ४७–४६)। तारीख–इ–फरिश्ता और तबकात–इ–अकबरी में कुम्भा के समय मालवे के सुल्तान द्वारा किये गये अत्याचारों का उल्लेख है। इनमें बाणमाता के मंदिर के विध्वंस का वर्णन ऊपर किया जा चुका है।

२. मार्ग भाग १२ अंक २ पृ० २।

गुप्त साम्राज्य के विनष्ट हो जाने के पश्चात् भी गुप्त कला का प्रभाव उत्तरी भारत में कई शताब्दियों तक विद्यमान रहा। परम भागवत गुप्त सम्राट कलाओं के संरक्षक थे। गुप्त कालीन कला के पश्चात् एक नवीन शैली का प्रादुर्भाव हुआ जिसका विकास नागदा के सास बहू के मंदिर, ओसिया, बाड़ोली, चन्द्रावती पावागढ़ (अलवर) आवानेर कोटा के रामगढ़ एवं अटरू आदि स्थानों में हुआ। मेवाड़ में नागदा के अतिरिक्त कल्याणपुर, बाड़ोली, बिजोलिया, चित्तौड़, मेनाल, जगत, सामलाजी आदि स्थानों में भी इस परवर्ती गुप्त कालीन कला का प्रभाव है। नागदा के सास बहु के मंदिर बड़े भव्य हैं।[3]

इस प्रकार शिल्प कला की नवीन शैली का प्रादुर्भाव हुआ जो पश्चिमी भारतीय शैली के नाम से प्रसिद्ध है। इसी का स्थानीय स्वरूप प्रतिहार, सोलंकी परमार आदि के रूप में विख्यात हुआ है। श्री हरमन गूज ओसियां के मंदिरों की श्रेणी में चित्तौड़ का कालिका माता का मंदिर रखते हैं एवं इसमें प्रतिहार शैली का प्रभाव मानते है[4] ।

मेवाड़ में ७ और ८वीं शताब्दी से शिल्पकला के विकास में महत्वपूर्ण कार्य किया गया। इस काल के शिला लेखों के आधार पर सामोली का अरण्यवग्सिनी देवी का मंदिर (७०३ वि०) एवं कुण्डा ग्राम का वैष्णव मन्दिर (७१८ वि०) के मंदिर मुख्य हैं। चित्तौड़ के आस-पास मौर्यों का राज्य था। चित्राङ्गदमोरी ने चित्तौड़ दुर्ग को सामरिक महत्व का बनाकर एक महत्वपूर्ण कदम उठाया था। इसी के वंशज मानमोरी ने कई देव मन्दिर महल, तालाब, वापीकूप आदि बनाये। चित्तौड़ का कालिका माता का मन्दिर, कुकड़ेश्वरशिव मन्दिर, कुंभश्याम के मन्दिर का मूल भाग इसी काल की कला-कृतियां है। वि० सं० ७७० का शंकर घट्टा का एक शिलालेख हाल ही में श्री रतनचन्द्रजी अग्रवाल ने प्रकाशित कराया। इसमें भी मान मोरी द्वारा कई निर्माण कार्य कराने का उल्लेख है। बाडोली का विख्यात शिव मन्दिर कल्याणपुर डबोक आदि के मन्दिर भी इसी काल की कलाकृतियां है। बाडोली का शिव मन्दिर चम्बल घाटी में होने से अन्य मन्दिरों की अपेक्षा अधिक सुरक्षित रहा है अतएव आज भी उस काल की कला स्वरूप बतलाने को यह पर्याप्त है। करेड़ा का जैन मन्दिर और चित्तौड़ में १० शताब्दी में जैन मन्दिर होना भी कई जैन सामग्री के आधार पर सिद्ध होता है। आहड में आदि वराह का मन्दिर (१००१ वि०), सारणेश्वर का मन्दिर (१०१० वि०) शक्ति कुमार के समय का सूर्य मन्दिर, ऊनवास का शिव मन्दिर (१०१६ वि०), जगत का

---

३. डी० आर० भंडारकर—आ० स० इ० सं० १९०५ पृ० ६१–६२।

४. मार्ग, भाग १२ अंक २ पृ० ४३–४४।

अम्बिका देवी का मन्दिर (१०१७) नागदा का सास बहू का मन्दिर, लकुलीश मन्दिर (१०२८ वि०) शुचिवर्मा के समय में निर्मित रोहिनेश्वर का मन्दिर (११वीं शताब्दी) परमार भोज द्वारा निर्मित त्रिभुवन नारायण मन्दिर (११वीं शताब्दी) देलवाड़ा का घासा ग्राम का त्रिपुरुपदेव का मदिर (वि० सं० ११६४) नरवर्मा के समय निर्मित चित्तौड़ के जैन मन्दिर (११७०) पालडी का वामेश्वर का शिव मन्दिर (वि० सं० १२३६) ईसवाल का चाहड़स्वामी का मन्दिर (वि० सं० १२४२) कठडावण का पचायत मन्दिर, नागदा का उद्धरण स्वामी का वैष्णव मंदिर (१२ वीं शताब्दी) दरोली का सूर्य मन्दिर (१२ वीं शताब्दी) तलारक्ष योगराज द्वारा निर्मित योगेश्वर और योगीश्वरी मन्दिर (१२ वीं शताब्दी) जैत्रसिंह के समय का नांदेसमा का सूर्य मन्दिर, खमणोर का सोमेश्वर देव मन्दिर (१३०७), समरसिंह के समय का श्याम पार्श्वनाथ मन्दिर (१३३५) शृंगार चंवरी (१३४४ वि०) वैद्यनाथ मन्दिर (१३४४) दरीबा का माताजी का मदिर (१३५६) हींता ग्राम का शिवालय (१३वीं शताब्दी), राणा खेता के समय गोगूंदा का विष्णु मन्दिर (१४२३) लाखा के समय आसलपुर दुर्ग का पार्श्वनाथ चैत्य (१४७५) मोकल के समय जावर का जैन मन्दिर (१४७८) चित्तौड़ का अद्भुतजी का मन्दिर (१४८५) आदि मुख्य हैं। इन मन्दिरों के अतिरिक्त देलवाड़ा के मन्दिर, प्रतिमायें और शिला पट्टिकादि एवं उपरमाल [5] के मन्दिर भी उल्लेखनीय है।

शिल्पकला की इस अक्षुण्ण परम्परा में अलाउद्दीन खिलजी के आक्रमण के समय में कुछ विच्छेद मालुम होता है। इस सुलतान के आक्रमण के समय भीषण नरसंहार हुआ और कई देवालयों को विनष्ट कर दिये। कुंभा के समय बने मन्दिरों में पूर्व कालीन मन्दिरों के कई सुन्दर पत्थर काम में लिये गये हैं। मन्दिरों का जीर्णोद्धार अधिकांशतः हमीर से लेकर कुंभा के शासन काल तक किया गया था। मालवा और गुजरात में मुसलमानों की स्थिति सुदृढ़ हो जाने के पश्चात् उनका ध्यान निरन्तर मेवाड़ और पूर्वी राजस्थान की ओर जा रहा था। उनकी सेनाओं का मुकाबला करने के लिये सुदृढ़ दुर्गों की आवश्यकता मालुम हो रही थी। अल्लाउद्दीन के समय के आक्रमण के पूर्व भी इस ओर महाराणाओं का ध्यान जा चुका था। वर्तमान कुंभलमेरु दुर्ग को सामरिक महत्व का बनाने का सर्व प्रथम उद्योग रणसिंह ने किया था। वैरिसिंह ने आहड़ का नया कोट बनाया था इसके चारों ओर सुन्दर प्राकार थे।

महाराणा कुंभा के शिल्प के अध्ययन के लिये हम इसे मुख्य रूप से ३ भागों में विभक्तकर सकते हैं:—

(१) देवालय
(२) सामरिक महत्व के लिये बने दुर्ग आदि
(३) प्रासाद तालाब उद्यान आदि

---

५. राजस्थान भारती का महाराणा कुंभा विशेषांक पृ० ३७–४०।

इनमें से देवालय अधिकांश बने हैं। इनमें तक्षण कला का सुन्दर प्रदर्शन है। दुर्गों का वास्तु शिल्प अपने ढंग का है किन्तु महलों में प्रायः सादगी ही काम में ली गई है। अत्यन्त आश्चर्य है कि कीर्तिस्तम्भ जैसे विशाल स्तम्भ के निर्माता कुंभा ने अपने लिये सामान्य महल ही निर्मित कराये।

राणकपुर का जैन मन्दिर

गोडवाड़ में सादड़ी ग्राम के समीप अरावली की छाया में स्थित राणकपुर का जैन मन्दिर उत्तरी भारत के श्वेताम्बर जैन मन्दिरों में अपना विशिष्ट स्थान रखता हैं। इस मन्दिर में वि० सं० १४९६ का एक शिला लेख लग रहा है जिसमें इसके निर्माता धारणक और उसके पूर्वजों का परिचय दिया है [6]। इसमें इस परिवार द्वारा गुणराज श्रेष्ठि के साथ यात्रा और पिंडवाड़ा, सालेरा आदि स्थानों में मंदिरों का जीर्णोद्धार करना भी वर्णित है। पिंडवाड़ा के मन्दिर का वि० सं० १४६९ में धरणाक ने जीर्णोद्धार कराया था। इसे इसके पिता कुरपाल ने बनवाया था जिसमें मूलनायक की प्रतिमा गर्भ गृह द्वार कोली मंडप नव चौकी सभा मंडप स्तम्भ देवरिये आदि भव्य बनी हुई है [7]।

श्रेष्ठि धरणाक के पूर्वज सिरोही जिले के मान्दिया ग्राम के रहने वाले थे। ऐसा कहा जाता है कि उस समय मालवे के सुल्तान का शाहजादा (संभवतः मोहम्मद शाह गौरी) अपने पिता से रूष्ट होकर के कहीं जा रहा था। वह इन से मिला और इन लोगों ने समझा कर अपने पिता के पास वापस भिजवा दिया। जब बादशाह को इनकी चातुरी का हाल ज्ञात हुआ तो उन्हें अपने राज्य में बुलाकर यथोचित सम्मान दिया,

---

६. "प्राग्वाटवंशावतंस सं० मांगण सुत सं० कुरपाल भा० कामलदे पुत्र परमार्हत सं० धरणाकेन ज्येष्ठभ्रातृ सं० रत्ना भा० रत्नादे पुत्र सं० लाषा मजा सोना सालिग स्व भा० धारलदे पुत्र जाज्ञाजावडादि प्रवृद्धमान संतानयुतेन राणपुरनगरे राणाकुंभकर्णनरेन्द्रेण स्वनाम्नानिवेशिते-तदीयप्रसादादेशतस्त्रैलोक्यदीपकाभिधानः श्रीचतुर्मुखयुगादिविहारकारित।
(राणकपुर का लेख)

७. आभ्यामुभ्यां धनिकुंरपालजींबाभिधाभ्यां सद्गुपाकस्थाभ्यां, ग्रामेऽग्रिमे पिंडर-वाटकाख्ये प्रसादभूमिरूद्धधारिसारः ।१४। पींडवाड़ा का लेख

किन्तु थोड़े ही दिनों बाद गोरी परिवार के नष्ट हो जाने से अथवा उसके अप्रसन्न हो जाने से ऐसा कहा जाता है कि वहां उन्हें कैद कर लिया गया और कुछ दंड वसूल कर छोड़ा [8] । संभवतः रतना का परिवार मांडू ही रहा था । केवल धरणा शाह वापस अपने गांव को लौट आया । लेकिन वहां भी नहीं रह सका उसे मेवाड़ की श्री सम्पन्नता ने आकर्षित किया और थोड़े ही दिनों में वह मेवाड़ में आ बसा । मेवाड़ में कुंभलगढ़ के समीप मालगढ़ में अवस्थित हुआ । इसी ग्राम के पास मादड़ी नामक छोटा सा गांव था जिसे आज राणकपुर के रूप में जाना जाता है । मंदिर के निर्माण के संबंध में कई किंवदंतियां प्रसिद्ध है जिनका सार यही है कि इस मंदिर का प्लान दैविक शक्ति से प्राप्त हुआ है [9] जिनका कोई आधार नहीं है । निसंदेह इसका प्लान विशेष उल्लेखनीय रहा होगा । कहां जाता है कि इसको ७ खंडों में बनाने की योजना थी लेकिन ३ खंड ही बन सके हैं [10] । मंदिर के निर्माण के सम्बन्ध में सोम-सौभाग्यकाव्य में वर्णित है कि एक बार सोमसुन्दरसूरि विहार करते हुए राणकपुर गये । वहां श्रेष्ठि धरणा शाह ने बड़ा स्वागत किया उनके कहने पर उसा राणकपुर में मंदिर के निर्माण का कार्य शुरू किया जो वि० सं० १५१६ तक चलता रहा । विभिन्न खण्डों पर लगी मूर्तिय के प्रतिष्ठा संवत् और आचार्यों के नाम इस प्रकार हैं [11]:—

---

८. आ० स० रि० इ०—सन् १९०७–८ पृ० २०५–२१८ ।

९. कहा जाता है कि धरणा सेठ को रात को स्वप्न आया उसमें एक विमान देखा तदनुसार एक मन्दिर के निर्माण का आयोजन किया । आस-पास रहने वाले समस्त सोमपुरों को बुलाया और उन्हें मन्दिर के लिए नक्शा बना लाकर देने को कहा । सब ने अपने अपने नक्शे बनाकर पेश किये, लेकिन उसे एक भी पसंद नहीं आया । उन कलाविद् सोमपुरों ने चिढ़कर दीपा नामक एक द्वितीय श्रेणी के कलाकार का नाम बतलाया । धारणाक ने उसे भी बुलाया । कहते हैं कि वह देवी का बड़ा भक्त था एवं तत्काल वह देवी की आराधना करने लगा । देवी ने प्रसन्न होकर उसे कागज दिया जिस पर राणकपुर के मन्दिर का नक्शा बना हुआ था । धरणा ने इसे अपनी इच्छानुसार पाकर निर्माण का कार्य उसे सौंप दिया ।

१०. श्री जयराज जैन—कला मन्दिर राणकपुर २१–२२ ।

११. प्राग्वाट इतिहास पृ० २७८ ।

वि०सं०	आचार्य	प्रतिमा	दिशा
प्रथम खंड			
१४९८ फा० कृ० ५	सोमसुन्दरसूरि	आदिनाथ	चारों दिशाओं की प्रतिमाएं
द्वितीय खंड			
१५०७ चैत्र कृ० ५	रत्नशेखरसूरि	,,	पश्चिमाभिमुख
१५०८ चैत्र शु० १३	रत्नशेखरसूरि	,,	उत्तराभिमुख
१५०९ वै० शु० २	रत्नशेखरसूरि	,,	पूर्वाभिमुख
तृतीय खंड			
१५०९ वै० शु० २	रत्नशेखरसूरि	,,	चारों दिशाओं की प्रतिमाएं

सोमसौभाग्य काव्य से पता चलता है कि धरणाशाह ने प्रतिष्ठा के समय बड़ा महोत्सव किया। अनेक नगर और ग्रामों में कुमकुम पत्रिकायें भेजी गई। इनमें ५२ बड़े संघ व ५०० साधु आये। सारा मंदिर सजाया गया। प्रथम दिन से पश्चिम सिंहद्वार के बाहर अभिनय होने लग गया था। दक्षिण सिंहद्वार के बाहर आचार्य सोमसुन्दरसूरि के दर्शनार्थ हजारों लोग एकत्रित रहते थे। पूर्वी सिंहद्वार के बाहर वैताढ्य गिरिका मनोहरी दृश्य बना हुआ था। इसी महोत्सव में सोमदेव को वाचक पद दिया गया था। इस ग्रन्थ के अंतिम अध्याय में यह भी वर्णित है कि राणा कुंभा इस सोमदेव का बड़ा सम्मान करता था।

मन्दिर के मध्य भाग में मूलनायक देव कुलिका हैं यह चतुर्मुख है। इसके जंघा भाग में बनी मूर्तियां बड़ी भव्य हैं। स्त्री मूर्तियां अधिकांशः नृत्य मुद्रा में हैं। जिनके कानों में कुंडल व हाथों में कंगन हैं। भैरव (अष्टायक) और देवी प्रतिमायें भी बनी हुई हैं। भैरव के ६ हाथ हैं जिनमें डमरू, करवाल, कटार, ढाल आदि हैं। यह और देवी प्रतिमा दोनों अन्य मंदिरों की तरह नग्न हैं। इसके अलावा ही एक देव प्रतिमा है जिसके ६ हाथ हैं। जिनमें गदा, कमण्डल, आदिआयुध हैं। इसमें कई नर्तकियों की मूर्तियां उत्कीर्ण हैं जो अत्यन्त सुन्दर हैं। कई नर्तकीयां तलवार और ढाल लिये प्रदर्शित हैं जो उस युग की भावना के अनुकूल है। कुछ नर्तकियां शृंगार करती

बनाई गई हैं। जिसके एक हाथ में दर्पण हैं और दूसरे हाथ से बाल साफ कर रही हैं। इसी प्रकार कुछ नृत्य की तैयारी करती हुई बतलाई गई है। हरिहरपितामह की प्रतिमा भी बनी है।

मंडप व देवकुलिकाएं

इस देवकुलिका के चारों ओर रंग मंडप हैं। मुख्य द्वार के सामने वाला मण्डप बड़ा है व शेष छोटे हैं। मण्डप की छत पर नृत्य करता हुई पुतलियां बड़ी ही सुन्दर बनी हुई हैं। जिनमें पहली शृंगार करती हुई दूसरी मार्दगिका, घुंघरू बांधती हुई, चौथी और पांचवी नृत्य करती हुई, छटी और सातवीं वीणा और बांसुरी बजाती हुई और आठवीं नृत्य मुद्रा में है। मण्डप की छत पर १६ नर्तकियां बनी हैं। ये भी विभिन्न प्रकार के भावों से नृत्य करती हुई बतलाई गई हैं। इन मंडपों के आगे त्रिकमंडप है जो अत्यन्त विशाल है जो ४० फोट से भी अधिक ऊंचे हैं। लम्बे-लम्बे स्तम्भों पर उल्लेखनीय खुदाई है। इन स्तम्भों पर सिंहथर, नरथर और गजथर बने हुए हैं। मध्य भाग में मूर्तियां बनी है। ऐसे विशाल स्तम्भ उत्तरी भारत के मन्दिरों में बहुत ही कम है। इन चारों मण्डपों के कोणों पर चार खूंट के मदिर हैं। जो क्रमशः १५०३, १५०७, १५११ एवं १५१६ में बनकर पूरे हुए हैं। ये चारों मन्दिर सुन्दर हैं। इनके मुख्य द्वार के बाहर उत्तरंग पर नाग कन्याओं और जाली युक्त कमल पुष्प के दृश्य हैं। पश्चिमी कोण की देवकुलिका में महावीर और अजितनाथ की मूर्तियां है। इन पर वि० सं० १५०३ में सोमसुन्दरसूरि के शिष्य (रत्न) शेखरसूरि द्वारा प्रतिष्ठा कराये जाने का उल्लेख है। उत्तरी पूर्वी कोण के मंदिर में सबसे उल्लेखनीय मूर्ति धरणाशाह की है। इसके इसके हाथ में माला, सिर पर पाग व गले में उत्तरीय है। इसमें काले पत्थर की पार्श्वनाथ की प्रतिमाएं है पूर्वी-दक्षिणी कोण के मंदिर में शांतिनाथ और नेमीनाथ की प्रतिमाएं है। जिन पर वि० सं० १५०३ और १५०७ लेख हैं।

इसके अतिरिक्त मंदिर में ८० देव कुलिकाएं और हैं जिनमें ८६ छोटी और ४ बड़ी है। इनमें से २ उत्तर द्वार की प्रतोली के दोनों पक्षों की ओर है जिन्हें महावीर और समवसरण देवकुलिका कहा जाता है। इसी प्रकार दक्षिणी द्वार की ओर आदिश्वरनाथ और नन्दीश्वर देवकुलिका हैं। उत्तरी द्वार की ओर सहस्त्र कूट स्तम्भ हैं जिसे राणक स्तम्भ भी कहते हैं। यह अपूर्ण माना जाता है। इसके सम्बन्ध में यह

भी कहा जाता है कि इसे महाराणा कुम्भा ने बनवाया था। लेकिन इस पर कई छोटे लेख हैं इनसे प्रगट होता है कि इसको भिन्न भिन्न व्यक्तियों ने बनाया था। यह एक मंदिर के आकार का है नीचे गज और नर थर हैं। मध्य भाग में कई प्रतिमाएं हैं। इसे स्तम्भ नहीं कह सकते हैं। सहस्त्र फणा पार्श्वनाथ की प्रतिमा भी बड़ी उल्लेखनीय है। यह आदिनाथ देव कुलिका के बाहर उत्कीर्ण हैं। पार्श्वनाथ की मूर्ति के दोनों ओर २ नाग कन्यायें और २ स्त्री मूर्तियां है।

खुदाई की दृष्टि से यह बहुत सुन्दर हैं गिरनाग और शत्रुञ्जय शिलापट्ट को वि० सं० १५०७ की श्रेष्ठि भीला आदि ने बनाया था।

शील विजय ने राणकपुर मन्दिर का वि० सं० १४४६ में प्रारम्भ और १४९६ में पूर्ण होना वर्णित है [12] किया है जो गलत है। टॉड ने एक वर्ष में पूर्ण होना लिखा है [13]। लेकिन प्राप्त सामग्री के आधार पर वि० सं० १४९६ से लेकर १५१६ तक यहां काम चलता रहा है।

एक प्राचीन पत्र के अनुसार धरणशाह ने ९९ लाख रुपया व्यय किये थे[14] इस मन्दिर की कला की प्रशंसा सभी मुक्त कण्ठ से करते हैं। उत्तरी भारत में अन्यत्र ऐसा विशाल स्तम्भों और मण्डपों वाला जैन मन्दिर दिखाई देता है।[15]

फर्गुसन के अनुसार उत्तरी भारत में कोई अन्य मन्दिर ऐसा नहीं देखा गया है जो इतना सुन्दर ढंग से सजाया गया हो।[16] यहां के मन्दिरों में मिथुन परम्परा के कुछ दृश्य है। मिथुन युग्मों के चित्रण का प्रचलन अत्यन्त प्राचीन काल से ही था। प्रणयरत्त युग्मों के चित्रण में कलाकारों की कुत्सित भावनाएं नहीं थी। मानव प्रकृति से रागात्मक है। रति उसकी आत्मा का अनुभूति है अतएव कोमल एवं सुन्दर वस्तुओं के प्रति उसका सहज ही आकर्षण होना स्वाभाविक है। पुरुष एवं प्रकृति का संयोग

---

१२. जैन सर्व तीर्थ संग्रह भाग पहला खंड २ पृ० २१४।

१३. एनाल्स एंड एटी० राज० भाग १ पृ० २३२।

१४. "धन्ने पौर वाड निन्नानु लाख द्रव्य लगायौ" (जैन० सर्व तीर्थ संग्रह भाग १ खंड २ पृ० २१६)।

१५. श्री जयराज जैन—कलापूर्ण मन्दिर राणकपुर पृ० २८—२९।

१६. श्री फर्गुसन—हिस्ट्री आफ इन्डियन एण्ड इसटर्न आर्किटेक्चर भाग १ पृ० २४१-४२)।

भोग एवं अपवर्ग दोनों ही बातों का मार्ग प्रदर्शन करता है।[17] मिलन में हर्ष विरह में विशाद होना अत्यन्त स्वाभाविक है। जयदेव के गीत गोविन्दम् में राधाकृष्ण की रास लीलाओं का सुन्दर मनोहारी चित्रण विश्व साहित्य में भी दुर्लभ है। अतएव कोई आश्चर्य नहीं कि कलाकार भी प्रणय चित्र और मिथुन युग्मों को उत्कीर्ण करें। यह परम्परा अत्यन्त प्राचीन काल से चली आ रही है। शुंगकालिन मिट्टी के टीकरों में आलिंगन रत्त और बाहुपाशों में बुद्ध प्रणाय दम्पति का अंकन हो रहा है। कुषाण और गुप्त कालीन कृतियों में भी ऐसे कई दृश्य मिलते हैं। नाथ एव बौद्धों में योगचार सम्बधी साधनाओं में सुरा सुन्दरी सम्बन्धी साधनाएं होने से अप्रत्यक्ष रूप से कलाकार भी इनसे प्रभावित हुये हैं। मेवाड़ में बाडोली के मंदिर में प्रेमी प्रेमिकाओं के चुम्बन और प्रणयरत्त कई अन्य दृश्य भी उत्कीर्ण [18] हैं।

कीर्ति स्तम्भ में भी युवती सद्यस्नाता आदि की मूर्तियां है जो परम्परागत कला के स्वरूप को ही वर्णित करती हैं। आज भी यह प्रश्न कई बार उठाया जाता है कि पुनीत देवालयों में इन कुत्सित मूर्तियों के निर्माण का क्या अभिप्राय था। फ्राइड के सिद्धांत के अनुसार कलाकार अपनी अतृप्त वासनाओं को कला का आवरण पहनाकर अभिव्यक्त करता है। अतएव ये कलाकारों के मनोभावो को ही व्यक्त करती हैं। लेकिन भक्त या श्रेष्ठि जिसने मंदिर का निर्माण कराया था यह आवश्यक नहीं कि उसके मनो भावो का सामञ्जस्य कलाकारों से भी होता हो। अतएव फ्राइड का यह सिद्धान्त आवश्यक रूप से यहां लागु नहीं किया जा सकता है। मेरा तो विश्वास है कि भारतीय शिल्प कला की परम्परा मे इस प्रकार के मिथुन युग्मो का चित्रण होता रहा है इसलिए कलाकारो ने भी यहां इस प्रकार के दृश्य अंकित किये हैं [19]

राणकपुर का सूर्य मंदिर

राणकपुर के उक्त मंदिर से कुछ दुरी पर निर्मित सूर्य मंदिर बड़ा प्रसिद्ध है। यह मंदिर कुंभा का बनवाया हुआ माना जाता है। लेकिन कुंभा की किसी भी प्रशस्ति में इसका उल्लेख नहीं होने से यह सदिग्ध है। इसका ऊपरी भाग तथा शिखर छोटी २ ईटों का बना हुआ है और उन पर लेप किया हुआ है। सभा मंडप की छत नष्ट हो चुकी है। मंदिर में सर्वत्र सूर्य को ७ घोडों पर सवार बतलाया गया है। गर्भगृह के द्वार पर गणेश

---

१७. "त्रिपथगा" वर्ष ५ अंक ३ पृ० ५५।

१८. मार्ग भाग १२ अंक २ पृ० ८–९।

१९. कला मन्दिर राणकपुर पृ० ३२।

की प्रतिमा है । इसके दोनों तरफ पांच पांच प्रतिमाऐ हैं इनमें से एक नवगृह की एवं १ दूसरी है । मंदिर में कई मूर्तियों उत्कीर्ण है । सूर्य के अतिरिक्त ब्रह्मा विष्णु और महेश की देवियों सहित प्रतिमाए हैं जो अत्यन्त भव्य [20] है । इनके पास युद्धरत हाथी समूह बतलाया गया श्री रतन चन्द्र अग्रवाल ने इस मंदिर का अच्छा वर्णन किया है जो उनके शब्दों में इस प्रकार है [21] ।

"मंदिर के बाहर सभा मंडप और गर्भगृह के चारों ओर सूर्य के ७ घोड़ो का लगभग ६० बार प्रदर्शन किया गया है जो अतीव भव्य है ।

"गर्भगृह के बाहर प्रधान ताके तो नहीं है किन्तु मूर्तियो तो उत्कीर्ण है जिनमें कुछ महत्वपूर्ण है यथा:—

"(अ) चतुर्बाहु तथा आसान मुद्रा स्थित देवता के ऊपर के वामहस्त में त्रिशूल है तथा नीचे के वामसव्य हस्तों में कवल है (मूर्ति का आकार १'–५" × १।। वहां शिव और सूर्य का एक रूप भाव (कम्पोजिट फोर्म) व्यक्त किया गया है । यह पीछे की प्रधान ताक के स्थान पर उत्कीर्ण है ।"

"(ब) दक्षिणवर्ती प्रधान ताक के स्थान पर आसन मुद्रा स्थित द्विबाहु सूर्य के दो हाथों में कमल विद्यमान है ।"

"(स) उत्तरवर्ती प्रधान ताक के स्थान पर त्रिमुखाकृति का आसनमुद्रा में प्रदर्शन किया गया है । आसन देव की ६ भुजायें है तथा नीचे तक वनमाला लटक रही है । मध्यवर्ती दोनों हाथों में कमल है । सबसे नीचे के (वाम एवं सव्य) हाथों में से एक में पात्र और दूसरों भूमि स्पर्श मुद्रा में रखा हुआ है । सबसे ऊपर हाथ में सम्भवत अर्ध विकसित कमल है । इस मुकट धारी मूर्ति में सूर्य एवं ब्रह्मा का एक भाव स्पष्ट ही सा लगता है ।"

"उपर्युक्त प्रधानताकों के अतिरिक्त इस मन्दिर की कुछ अन्य मूर्तियों का भी उल्लेख करना आवश्यक है ।"

"आ" चतुर्भुज मूर्ति में नीचे का भाग तो मत्स्य का है तथा ऊपर का भाग पुरुष का ऊपर वाले भाग में तीर तथा सव्य में त्रिशूल नीचे वाले वाम में पात्र तथा सव्य में गदा द्वारा विदित होता है कि इसमें ब्रह्मा विष्ण (कच्छपावतार) तथा महेश का एक रूप भाव व्यक्त किया गया है ।"

---

२०. आ० स० रि० वे० इ० वर्ष १६०८ पृ० ५८ ।

२१. श्री रतन चन्द्र अग्रवाल का लेख "राजस्थान की सूर्य प्रतिमाए तथा कतिपय सूर्य मन्दिर"—शोधपत्रिका भाग ७ अंक २–३ पृ० ७–८ ।

"ब" चतुर्बाहु देव के नीचे के दोनों हाथों में कमल है तथा ऊपर वाले हाथों में पात्र एवं माला । अतएव इस मूर्ति में सूर्य एवं ब्रह्मा का एक रूप झलकता है ।"

चित्तौड़

चित्तौड़ मेवाड राज्य की राजधानी था । कुंभा के निर्माण कार्य का क्षेत्र चित्तौड़ कुंभलगढ़ एवं आबू में ही मुख्य रूप से था । कीर्तिस्तम्भ और कुंभलगढ़ की प्रशस्ति में इन स्थानों का वर्णन है । कुंभा के समय मुसलमान सुल्तानों का बराबर आक्रमण होता रहा है अतएव रक्षार्थ चित्तौड़ दुर्ग को सुदृढ़ प्राचीरों से युक्त बनाया गया । सम्पूर्ण प्राचीर एवं दरवाजों को आवश्यकतानुसार परिवर्तित कर इन्हें नये ढंग से बनाये । इन द्वारों के निर्माण के सम्बन्ध में कीर्तिस्तम्भ प्रशस्ति में विस्तृत वर्णन है । इनमें रामपोल,[22] भैरवपोल, हनुमानपोल, चामुंडापोल, तारापोल, लक्ष्मीपोल आदि का उल्लेख मिलता है । हनुमान पोल के लिये लिखा है कि कौतुकी मनुष्य जिसको देखकर अत्यन्त श्वेत शिला समूहों से युक्त कैलाश-पर्वत का भान करते हैं या राजा की प्रसन्नता के लिये हिमालय का शिखर लाकर अवस्थित किया गया प्रतीत होता है अतएव प्रतीत होता है कि यह पोल श्वेत संगमरमर की बनी हुई [23] होगी । भैरव पोल के [24] लिये लिखा है कि यह अमरावती के मन्दिर के सदृश प्रतीत हो रही है । लक्ष्मी पोल के लिखा है कि लक्ष्मी से सम्पर्क स्थापित करने वाले राजा लोग कुंभा की शरण लेते है अतएव उसने [25] इसे बनाई । तारापोल [26] झरोखों वाली थी । दुर्ग पर जाने के लिये रथ मार्ग का निर्माण भी कराया । इसके लिये अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन किया है कि सुमेरु पर्वत पर जाते समय सूर्य का रथ भी अवरूद्ध हो गया क्योंकि धरती पर नवीन सूर्य के सदृश कुंभा ने सुमेरू के सुदृश चित्तौड़ पर जनता की सुविधा के लिए एक नवीन

---

२२. की० प्र० श्लोक ३६ ।

२३. उपरोक्त श्लोक ३८ ।

२४. भैरवांकविशिखामनोरमा भाति भूपमुकुटेन कारिता । पार्वणेंदुविमलोपल [भि] त्तिर्यासुरेन्द्रपुरगोपुरोपमा । की० प्र० श्लोक सं० ३९

२५. नृपाः संसेवध्वं चरणकमलं कुंभनृपते
मया सम्बन्धंचेदनुभवितुमिच्छास्ति भवतां ।
इति प्रायः शिक्षानिपुणकमला धिष्ठिततनु
महालक्ष्मीरथ्या नृपपरिवृढेनात्ररचिता । की० प्र० श्लोक सं० ४०

२६. श्रीमत्कुंभक्ष्माभुजाकारितोर्वी—रम्यलीलागवाक्षा ।
ताराथ्याशोभतेयत्रताराश्रेणी (—) संमिलत्तोरण श्रीः ।
की० प्र० श्लोक सं० ४२

सुन्दर मार्ग बना लिया [27]। इस प्रकार चित्तौड़ दुर्ग को विचित्र कूट [28] बनाया। वि० सं० १५०७ कार्तिकवदि ६ को एक नवीन द्वार (विशिखा) [29] बनाया। इसके निर्माण का उल्लेख संगीतराज में भी है [30]। कुंभा के इस प्रकार दुर्ग को सुदृढ़ प्राचीरों से युक्त बनाने का बड़ा महत्व है। ध्यान पूर्वक देखने से ज्ञात होता है कि इसने पुराने प्राचीरों को समाप्त कर दिया था। पहले ऐसा प्रतीत होता है कि जोंडवापोल के आगे रामपोल की तरफ जाने के साथ-साथ मुख्य दीवारों के कुछ नीचे एक सुदृढ़ दीवार और थी। कुंभा ने इसे हटा करके केवल एक ही मार्ग रामपोल वाला ही रखा था ताकि लड़ने में सुविधा रह सके।

कीर्तिस्तम्भ

महाराणा कुंभा द्वारा निर्मित कीर्तिस्तम्भ को मालवे के सुल्तान मोहम्मद खिलजी को हराकर उसकी स्मृति में बनाया हुआ माना जाता है जो गलत है। कीर्तिस्तम्भ का निर्माण मालवा के सुल्तान की जीत का न होकर केवल मात्र यह उसके उपास्यदेव भगवान विष्णु के निमित बनाया हुआ प्रतीत होता है [31]। हर्मन गूज इसे समाधिश्वर के निमित्त बना हुआ मानते हैं [32]। लेकिन इसको मानने का

---

२७. उच्चैमरुगिरेर्नवोदिनकर: श्रीचित्रकूटाचले।
भव्यां सद्रथपद्धतिं जनसुखायाचूलमूलं व्यधात् की० प्र० श्लोक सं० ३४

२८. असौ शिरोमंडनचन्द्रतार विचित्रकूटं किल चित्रकूटं की० प्र० श्लोक सं० ३६ चित्तौड़ के लिए समाधीश्वर के मंदिर की वि० सं० १४८५ की प्रशस्ति में "चित्रकूटोजयतिवसुमतिमंडनभूरिभूमि ।६९। वर्णित किया गया है। चित्रकूट के वर्णन के लिए कुंभलगढ़ की प्रशस्ति के श्लोक सं० ७० से १०१ दृष्टव्य है। (ज० बिहार रिसर्च सोसायटी ४१ पृ० १००–१०४।

२९. ओझा उ० इ० भाग १ पृ० ३१०।

३०. "गीतरत्नकोशेद्वितीयेप्रबन्धोल्लासे श्रीचित्रकूटदुर्गेनूतनप्रतोलीपद्धतिसहोदरं-प्रबन्धपरीक्षणचतुर्यसमाप्तम्" (कुन्हनराज-संगीतराज भूमिका) यह नूतन प्रतोली दुर्ग की कोई पोल ही रही थी।

३१. राजपूताना म्यु० अ० रि० १९२१ पृ० ५। राजवल्लभ मंडन ४–२०।

३२. मार्ग भाग १२ अंक २ से श्री हरमनगूज का चित्तौड़ पर लेख।

कोई आधार नहीं है। समाधिश्वर का निर्माण मोकल ने किया था और कीर्तिस्तम्भ को कुंभा ने समाधिश्वर वैष्णव मन्दिर न होकर न शैव है जब कि कीर्तिस्तम्भ निश्चित रूप से वैष्णव स्तम्भ है। इसकी पुष्टि कुंभा द्वारा निर्मित जयस्तम्भों सम्बन्धी लेख से भी होती है [३३]।

यह १२ फुट ऊंची और ४२ फुट चौड़ी एक चौकोर जगती पर स्थित है। मध्य का भाग गोल न होकर चतुरस्त्र है। यह नो मंजिला है। नीचे से ३० फुट चौड़ा है। लम्बाई में १२२ फुट है [34]। इसका निर्माण काल १४९६ से १५१६ वि० तक माना जाता है। इसकी परिसमप्ति यद्यपि वि० सं० १५०५ माघ सुदि १० को हो गई थी [35] किन्तु इस पर निर्माण कार्य आगे भी चलता रहा है। इसकी पुष्टि इसमें लगे शिलालेखों से होती है। इसमें कई लघुलेख लग रहे हैं। ये लघुलेख सूत्रधार जइता आदि से सम्वन्धित हैं। इन शिलालेखों में सबसे पहला वि० सं० १४९९ फाल्गुन शुक्ला ५ का है। इसमें कुंभा के राज्य में समाधिश्वर को जइता उसके पुत्र नापा पूंजा आदि द्वारा प्रणाम करना उल्लेखित है। इससे यह निश्चित है कि उक्त संवत् के पूर्व वह भाग अवश्य बन चुका था। इसी दूसरी मंजिल में जाली के पास वि० सं० १५०७ श्रावणसुदि ११ के ३ पंक्तियों के लघु लेख में भी कुंभा द्वारा कीर्तिस्तम्भ निर्माण कराने का उल्लेख है। वि० सं० १५१० के एक लेख में सूत्रधार पोमा का उल्लेख है। चोथी मंजिल में लगे लेख में वि० १५१० का श्रावणसुदि ११ का लघुलेख है। इसमें सूत्रधार जइता के साथ-साथ उसके पुत्र नापा भूमी चूथी आदि का उल्लेख है। वि० सं० १५१५ चैत्र शुक्ला ७ के लेख में समाधिश्वर के भक्त महाराणा कुंभा द्वारा कीर्तिस्तम्भ बनाना उल्लेखित है। इस लेख से यह भी ज्ञात होता है चित्तौड़ के अन्य निर्माण कार्य मुख्य-द्वार, राणापोली कुंभ श्याम मन्दिर भी इसी जइता परिवार ने बनाया था। वि० सं०

---

३३. राजस्थान भारती मार्च १९६३ पृ० ४६।

३४. आ० स० रि० इं० वर्ष १८७२—७३ पृ० १०४—११६।

३५. पुण्ये पंचदशेते व्यपगते पंचाधिके वत्सरे।
माघेमासिवलक्षपक्षदशमी देवज्यपुष्यागमे।
कीर्तिस्तम्भमकारयन्नरपतिः श्रीचित्रकूटाचले।
नानानिर्मितनिर्जरावतरणैमेरोर्हसतं श्रियं की० प्र० श्लोक सं० १८५

१५१६ का एक और लघु लेख कीर्तिस्तम्भ पर उपलब्ध है अतएव इन अवतरणों से पता चलता है कि कीर्तिस्तम्भ पर मूर्तियों को खोदने और लगाने का काम वि० सं० १५१६ तक बराबर चलता रहा था और पूर्ण होने पर विस्तृत प्रशस्ति वि० सं० १५१७ में वहां लगाई गई थी अन्यथा वि० सं० १५१७ में वहां पुनः प्रशस्ति लगाने का कोई कारण प्रतीत नहीं होता है।

यह हिन्दू देवी देवताओं की मूर्तियों का म्युजियम प्रतीत होता है। इन मूर्तियों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है।

प्रवेश द्वार में जनार्दन की मूर्ति है। इसके चार हाथ हैं। इनमें से दो हाथ खंडित हैं। ऊपर के दोनों हाथों में गदा और चक्र है। प्रवेश द्वार से जाते समय एक लघु लेख दिखलाई पड़ता है जो वि० सं० १५०१ ज्येष्ठ सुदि १३ शनिवार का है। प्रथम मंजिल की पार्श्व की ताकों में क्रमशः अनन्त रुद्र और ब्रह्मा की मूर्तियां है। अनन्त विष्णु का स्वरूप है। यह मूर्ति पद्मासन संस्थित है। ऊपर के दोनों हाथों में पद्म और शेष दो हाथ खंडित है। रूप मंडन से यह भिन्न प्रतीत होती है। रुद्र के चार हाथ हैं। ऊपर के हाथों में से एक में खट्वांग और दूसरे में त्रिशूल हैं। ब्रह्मा की मूर्ति के भी चार हाथ हैं।

दूसरी मंजिल के मुख्य पार्श्वों में हरिहर अर्द्धनारीश्वर और हरिहर पितामह की प्रतिमाएं है। हरिहर की प्रतिमा में चार हाथ हैं। इसमें विष्णु और शिव के सम्मलित भाव को व्यक्त किया जाता है। अतएव इस मूर्ति में आधे विष्णु के और आधे शिव के आयुध हैं। ऊपर के हाथों में कमल और त्रिशूल है। नीचे के हाथों में बिजोरा और शंख है। यह मूर्ति पद्मासन संस्थित है। इसके दोनों ओर दो स्त्री मूर्तियां है जिनके नाम मार्दगिका और किन्नरी दिये हैं। इनके अतिरिक्त कई छोटी-छोटी प्रतिमायें है यथा— अग्नि, यम भैरव वरुण वायू आदि। दूसरी तरफ पार्श्व में अर्द्ध नारीश्वर है। यह प्रतिमा भी शिव और पार्वती के सम्मलित भावों को व्यक्त करती है। इसमें आधा अंग शिव का और आधा अंग पार्वती का है। शैवों के दर्शनिक दृष्टिकोण के अनुसार इसमें बीज और बिन्दु के समन्वय को व्यक्त किया है और इसके दोनों और किन्नरियों की प्रतिमाएं है। मध्य के स्थानों में वायू, धनद इन्द्र ईश्वर आदि की प्रतिमाएं हैं।

तीसरी तरफ की पार्श्व में हरिहर पितामह की प्रतिमा है। यह प्रतिमा भी शिव विष्णु और ब्रह्मा के भावों को सम्मलित रूप से व्यक्त करती हैं। इस प्रकार

की मूर्तियां राजस्थान के कई अन्य स्थानों से भी मिली है। त्रिपुरुष देव मत को मानने वालों में यह मूर्ति अधिकांश रूप से प्रचलित थी। इस प्रतिमा में ६ हाथ हैं। एक तरफ के तीन हाथों में त्रिशूल चक्र और वेद हैं और दूसरी तरफ के दो हाथों में शंख कमंडलु और एक हाथ में कुछ खंडित वस्तु है। इसके दोनों तरफ कर्पूर मंजरी और मालाधारी की प्रतिमा हैं। इसके पास इन्द्र की प्रतिमा है।

बाहर लगी मूर्तियों का वर्णन भी खुदा है। जैसे "बाह्य सपत्नीक धनद मूर्तिः" और "बाह्य सपत्नीक यम मूर्तिः"।

तीसरी मन्जिल में मुख्य पार्श्वों में विरंजि, जयन्त नारायण और चन्द्रार्क पितामह की प्रतिमा है। विरंची एवं जयन्त नारायण की प्रतिमाएं खंडित है। चन्द्रार्क पितामह की प्रतिमा में ६ हाथ हैं। इसमें शिव और पितामह के सम्मलित भावों को व्यक्त किया गया है। ऊपर के दोनों हाथों में कमल, मध्य के दोनों हाथों में खड्ग एवं नीचे के दोनों हाथों में माला है।

चोथी मंजिल मूर्तियों से भरी पड़ी है। इन प्रतिमाओं में त्रिखण्डा, तोतला, त्रिपुरा, लक्ष्मी, नन्दा, क्षेमंकरी, सर्वती, महारडा, आभरणी सर्व मंगला, रेवती हरि सिद्धि, लीला, सुलीला, लोलांगी, ललिता, लीलावती, उमा, पार्वती गौरी हिंगलाज, श्री हिमवती आदि देवियों की षटऋतुओं की गंगा यमुना सरस्वती नदियों की गंधर्व विश्वकर्मा और कीर्ति केय की मूर्तियां है।

चौथी मंजिल की तरह पांचवी मंजिल में भी कई प्रतिमाएं हैं। मुख्य पार्श्वों की ताकों में लक्ष्मी नारायण, उमा महेश्वर व ब्रह्मा सावित्री की युग्म मूर्तियां है। इनके अतिरिक्त प्रतिमायें तीन-तीन पंक्तियों में हैं इनमें लक्ष्मी नारायण की प्रतिमा गरुडासन हैं। लक्ष्मी को विष्णु एक हाथ से कमर में पकड़े हुये प्रदर्शित किया गया है। विष्णु के हाथों में माला गदा आदि आयुध है। लक्ष्मी की मूर्ति खंडित है।

६ठी मंजिल की पार्श्व की ताकों में महासरस्वती महालक्ष्मी और महाकाली की प्रतिमाएं है। महा सरस्वती के ६ हाथ हैं और हंस पर सवारी है। कमंडलु माला, कमल, पुस्तक आदि आयुध है। इस खंड में प्रतिमायें अधिकांशतः छोटी-छोटी और अस्पष्ट सी है। महाकाल की मूर्ति में चार हाथ हैं। इनमें डमरु शक्ति, माला और बिजोरा है। भैरवी की मूर्ति में तलवार आदि आयुध है। नीचे नृत्य करते हुए एक झुंड को प्रदर्शित किया है जिनमें क्रमशः नर्तक, मांर्दगिका, वांशिक श्रुतिधर, नर्तकी और नट हैं। बीच के पार्श्व में महालक्ष्मी की प्रतिमा है। यह गजलक्ष्मी है। ऊपर हाथियों द्वारा सेवित है। मूर्ति में ६ हाथ है। नीचे की तरफ भैरव, गणेश, कार्ति केय शिवपार्वती, सितोगण, बिजया, अतिगण, जया, आदि की प्रतिमाएं है। इनके आगे पांडु रोग की प्रतिमा है। इसके ६ हाथ है। जिन में माला डमरु बिजोरा कमल त्रिशूल और खट्वांग है। यह बैल पर आसीन है। मध्य के पार्श्व में महाकाली की प्रतिमा है।

सातवीं मंजिल में ऊपरी भाग में किन्नरी युग्म बना हुआ है। इस मंजिल में विष्णु के विभिन्न अवतारों की प्रतिमाएं हैं। वराह प्रतिमा में ४ हाथ हैं और पृथ्वी को लिये हुये व नागकन्याओं द्वारा सेवित है। नरसिंह की प्रतिमा में भी ४ हाथ है जिनमें से दो हाथ खंडित हैं। हिरण्यकश्यपु को चीरते हुए दिखाया है। वामन रूप की प्रतिमा में दो हाथ है। परशुराम के ४ हाथों में से एक हाथ में कमंडलु है शेष हाथ खंडित है। बुद्ध की प्रतिमा विशेष उल्लेखनीय है। इसमें उसको हिंदू देवता के रूप में परिवर्तित कर दिया है। गले में कई अलंकार हैं। एक हाथ में धर्म चक्र और दूसरे में गदा है। बोद्धों के अनुसार इस प्रकार अलंकार युक्त बुद्ध की प्रतिमा नहीं बनती है। कीर्तिस्तम्भ में बनी अधिकांश मूर्तियों का आधार अपर जित पृच्छा और मंडन से भिन्न कोई ग्रंथ रहा होगा। इस सम्बन्ध में शिल्प शास्त्री और अध्ययन करेंगे ऐसी आशा है।

आठवीं मंजिल में मध्य स्थान नहीं होने से वहां कोई प्रतिमा नहीं है। चारों ओर ८ स्तम्भ बने हैं जिनमें कहीं ५ या ६ भाग हैं जिन पर अलग-अलग दृश्य अंकित है। बाकी हिस्सा खुला हुआ है। यहां से लकड़ी की सिढ़ी से ९वीं मंजिल पर जाना पड़ता है। यह भाग मूल रूप से बिजली गिरने से नष्ट हो गया था जिसे महाराणा स्वरूप सिंह ने १९११ ई० में बनाया था। ऊपर के भाग में ४ शिलाओं में प्रशस्ति लगी हुई थी जिनमें से दो ही अब उपलब्ध है।

कला की दृष्टि से टॉड ने इसे कुतुबमिनार से भी श्रेष्ठ माना है। किन्तु कार्लायिल इसे कुतुबमिनार से श्रेष्ठ नहीं मानते हैं। इसमें निर्माण सम्बन्धी दोष मानते हैं। उनका कहना है कि इसमें इतनी अधिक मूर्तियां हैं कि अत्यधिक अलंकरण बोझ सा जान पड़ता है। ऊपर के खंडों पर किया गया अलंकरण सामान्य रूप से नीचे के दर्शक को दृष्टव्य नहीं हो सकता है किन्तु यह आपति ठीक नहीं है। अलंकरण का प्राचुर्य उस काल में परिपाटी सी बन गई थी।

यह हिन्दू देवी देवताओं की मूर्तियों से अवश्य भरा पड़ा है किन्तु इसमें निम्नांकित मूर्तियां और होती तो इसका महत्व अत्यधिक हो जाता।

(अ) इसमें नदियों, ऋतुओं और शस्त्रों को मूर्त रूप दिया है। लेकिन राग रागनियों को मूर्त रूप (परसनीफिकेशन) नहीं दिया गया है। यह मूर्त रूप कालान्तर में चित्रकला के क्षेत्र में दे दिया था। कुंभा संगीत शास्त्र का अद्वितीय विद्वान था।

इतना होते हुये भी राग रागनियों को मूर्त रूप से अभिव्यक्त नहीं किया गया। स्मरण रहे कि कुंभा ने इन्हें संगीतराज में मूर्त रूप दे दिया था [36]।

(ब) विष्णु के २४ रूपों की मूर्तियां, विष्णु की अन्य मूर्तियां जैसे वैकुण्ठ, विश्वरूप त्रैलोक्य मोहन शैषशायी आदि आदि। तत्कालीन मूर्ति कलाविद् मंडन ने इनके निर्माण सम्बन्धी विवरण भी दिया है और इनकी कुछ मूर्तियां एकलिंगजी के मन्दिर, आबू के अचलेश्वर, कुंभलगढ़ चित्तौड़ के कुंभस्वामि के मन्दिरों में बनी हुई है।

कुंभस्वामि का मन्दिर

कुंभ स्वामि का मन्दिर कीर्तिस्तम्भ के समीप है एवं ऐसा माना जाता है कि कीर्तिस्तम्भ इसी मन्दिर का भाग है। कीर्तिस्तम्भ की प्रशस्ति के अनुसार महाराणा कुंभा ने हिमालय के समान प्रसिद्ध और अनेक सुवर्णकलशों से युक्त जो सुमेरु पर्वत की शोभा से भी बढ़कर संपूर्ण पृथ्वी पर तिलक एवं मुकुट स्वरूप कुंभ स्वामि के मन्दिर को बनवाया। कवि कल्पना करता है कि क्या कैलाश पर्वत का प्रतिनिधि, शकर का अट्टहास चांदनी का समूह अथवा हिमालय का प्रतिनिधि है [37]। इस मन्दिर को अच्छी तरह से देखने से ज्ञात होता है कि इसका अधिकांश भाग ६वीं शताब्दी का है। इसके ऊपर का भाग महाराणा कुंभा ने बनवाया था। संभवतः अल्लाउद्दीन खिलजी के आक्रमण के समय इसको खडित कर दिया था जिसे पुनः कुंभा ने बनाया प्रतीत होता है। विद्वान लेखक श्रीरतनचन्द्रजी अग्रवाल ने वरदा वर्ष ६ अंक ४ में इस सम्बन्ध में एक सुपाठ्य लेख प्रकाशित कराया है। इनके विचारों के अनुसार ६वीं शताब्दी का भाग इस मदिर गर्भ गृह, प्रदक्षिणापथ और जंघा भाग में वनी प्रतिमायें हैं। गर्भगृह और प्रदक्षिणापथ सूर्य मन्दिर चित्तौड़ की शैली के अनुरूप है। जंघा भाग की बनी उस काल की निम्नांकित प्रतिमायें विद्यमान है। इनका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है:—[38]

---

३६. उदाहरणार्थ श्री राग का वर्णन—
श्री रागोऽयगौरवर्णः सोऽष्टहस्तचतुर्मुखः ।७७।
पाशाब्जपुस्तकाङ्कुशबीजपूरकभृत् करः ।
वीणाकरद्वयेऽस्यस्यादेकस्यवरदः करः ।।७७।।
विख्यातोऽयं हंसयानो ब्रह्ममूर्तिरिवापरः ।।

संगीतराज। रागरंग ४४-४५ पृ० ६४७

३७. सर्वोर्वीतिलकोपमं मुकुटच्छ्रीचित्रकूटाचले
कुंभस्वामिनालयं व्यरचयच्छ्री कुंभकर्णोनृपः कीο प्रο श्लोक संο २८

३८. वरदा वर्ष ६ अंक ४ पृ० ११-१४ में श्री रतनचन्द्रजी अग्रवाल का लेख।

१. ब्रह्मा—स्थानक
२. अग्नि—स्थानक
३. रामलक्ष्मण की धनुष बाण सहित प्रतिमाएं
४. जघा पंक्ति में हरिहर की आकर्षक प्रतिमा है
५. स्थानक लकुलीश की प्रतिमा है। यह जटाधारी है और स्वतन्त्र प्रतिमा है।
६. दक्षिण के फर्श की ओर बड़ी ताक में नाग और नागणी की प्रतिमायें
७. षण्मुख कार्तिकेय
८. नीचे फर्श की ताक में शिव पार्वती विवाह का दृश्य
९. वरुण—स्थानक
१०. यम—स्थानक
११ फर्श के पास ताक में प्याला लिये युगल (उत्तर की ओर ताक में)
१२. सिंहवाहिनी देवी (दुर्गा का स्वरूप)
१३. स्थानक अर्धनारीश्वर
१४. नृत्यास्थिति में चामुण्डा
१५. उत्तर की ओर ताक में (फर्श के पास) स्थानक लक्ष्मीनारायण प्रतिमा
१६. दिक्पाल—
१७. महिषमर्दिनी—

गर्भगृह के बाहर की ओर त्रिविक्रम की अष्टबाहु प्रतिमा और नृसिंह की प्रतिमा है। त्रिविक्रम भगवान वराह के विराट्स्वरूप का प्रतीक है। इसके हाथों में ढाल खट्‌वांग, शंख और घोड़े की लगाम और दायें हाथ में चक्रगदा तलवार और ज्ञानमुद्रा है।

इसमें मुख्य मन्दिर कोली मण्डप प्राग्रीव मंडप और शृंगार चोकी मंडप है। यह एक ऊंची जगती पर बनाया गया है। इसके पास ही छोटे मन्दिर और बने हुये हैं।

निज मन्दिर में वराह की प्रतिमा पूजी जाने के लिये प्रतिष्ठापित की गई। कुंभलगढ़ प्रशस्ति के श्लोक संख्या ५६ में इसका स्पष्टतया उल्लेख है कि "विष्णुर्यंत्र विराजते सभगवानाद्यवराहाकृति"। गर्भगृह के उत्तरंग भाग पर सुन्दर नक्काशी हो रही है। ऊपर के भाग में छोटी सी गणेश मूर्ति है। नीचे की तरफ चामर वाहिनियों की मूर्तियां हैं। सभा मंडप में २० विशाल स्तम्भ हैं। बीच के ४ स्तम्भों के नीचे के भागों में एक चौकी बनी हैं जो वेदी के रूप में काम आती रही होगी। मन्दिर में कई शिलापट्टिकाएं हैं। मंडप में तुलसी माधव की प्रतिमा है। इसके पास राम लक्ष्मण की खंडित प्रतिमा हैं। सभा मंडप में एक शिला पट्टिका जो ५०×२७" की है जिस पर कृष्णलीला की झांकी उत्कीर्ण है। इसके पास रोहीदामोदर और कृष्ण रुकमणी की प्रतिमाएं है इन सबके नीचे वि० सं० १५०५ माघ सुदि १५ बुधवार को राणा कुंभा द्वारा प्रतिष्ठापित कराने का उल्लेख है।

मन्दिर के बाहरी भाग मंडोवर आदि में कई मूर्तियां उत्कीर्ण है जो १५वीं शताब्दी की है। दक्षिणी भाग में मंडप के ऊपर मुख्य पार्श्व में गरुडधारी विष्णु की प्रतिमा है। एक १४ हाथ की चतुर्मुख गरुड धारी विष्णु प्रतिमा है जो अनन्त की है। आबू के अचलेश्वर में भी १४ हाथ की इसी प्रकार की प्रतिमा [39] मिली है। ठीक पीछे के पार्श्व में ८ हाथ वाली इसी प्रकार की बैकुण्ठ की प्रतिमा है। उत्तरी पार्श्व में १४ हाथ और १६ हाथ वाली अनन्त और त्रैलेक्य मोहन की प्रतिमाएं है। पीछे की तरफ दीवार में घण्टा कर्णी शिव हस्ती त्रिपुरसुन्दरी आदि की प्रतिमाएं हैं।

इसके पास ही छोटे से दो मन्दिर हैं इनमें एक को मीरा बाई का मन्दिर कहते हैं। इसके पीछे मंडोवर में एक जैन पार्श्वनाथ की प्रतिमा है। पास में हाथियों के युद्ध का दृष्य है और दक्षिणी भाग में ९ नर्तकियों के विभिन्न मुद्रा के दृश्य बने हैं।

शृंगार चंवरी

यह शान्तिनाथ का कलात्मक जैन मंदिर है। मन्दिर में दो मुख्य द्वार हैं। एक उत्तर की ओर दूसरा पश्चिम की ओर। मध्य में एक वेदी है। यह चौकोर है। इसमें अष्टापद व्यवस्था से मूर्तियां रखी हुई थी चतुर्मुख व्यवस्था नहीं क्योंकि यहाँ से प्राप्त लघु लेखों में अष्टापद शब्द बार-बार [40] आता है। अष्टापद में २४ मूर्तियां होती हैं। इनमें सबसे नीचे के भाग में १० इसके ऊपर ८ इसके ऊपर ४ और तत्पश्चात् दो मूर्तियां होती हैं। चोकार होने से ऐसी भी मान्यता है कि उत्तर में १० पश्चिम में ८, दक्षिण में ४ और पूर्व में दो मूर्तियां रही होगी।

प्रारम्भ में इस मन्दिर के ४ द्वार थे। लेकिन दो द्वार बाद में बन्द करके केवल मात्र दो द्वार ही रखे गये हैं। इन द्वारों के स्थान पर जब ६×३ फीट का छोटा मण्डप है। मध्य की वेदी के ऊपर ४ स्तम्भ हैं जो नीचे से अष्ठकोण, बीच में १२ कोण और ऊपर से गोलाई लिए हुए है। इनके अतिरिक्त ८ स्तम्भ और हैं। मण्डप की छत अष्ट-कोणात्मक है जो कीर्ति मुखों पर आधारित हैं। उत्तरी और पश्चिमी द्वार के बाहर सुन्दर कलात्मक ढंग से खुदाई हो रही है। उत्तरंग और द्वार सुन्दर बना है जो त्रिशाखात्मक है और गंगा व यमुना की मूर्तियां भी बनी हैं।

---

३९. राजस्थान पत्रिका मार्च १९६३ पृ० १०६।

४०. सं० १५१३ वर्ष लोठा गोत्रे सा० हरिपाल पुत्र सा० राजाकेन पुत्र साह सोडा सा० उदा सहितेन सांडा वधूश्रिगारदेपुण्यार्थं श्रीअष्टापदआलंककारितः प्र० श्रीखरतरगच्छे श्रीजिनसुन्दरसूरिभिः (मूल लेख से)

मन्दिर के चारों ओर तक्षणकला का सुन्दर ढंग से प्रदर्शिन किया है। पूर्वी भाग के नीचे की ओर गज पंक्ति हैं इसके ऊपर नृत्य करते हुए एक समुदाय को प्रदर्शित किया हैं ये कई प्रकार के वाद्य यन्त्रों से सुसज्जित हैं। बीच-बीच पार्श्वनाथ की प्रतिमा बनी है। अतएव यह माना जा सकता है कि यह झूण्ड पार्श्वनाथ की पूजार्थ आयोजन कर रहा है। इसके ऊपर के भाग में छोटी-छोटी देवी प्रतिमाएं हैं। इनके ऊपर बड़े आकार की प्रतिमाएं हैं। ऊपर की तरफ ब्रह्मा विष्णु की प्रतिमाएं हैं। ८ हाथ की अनन्त की एक प्रतिमा भी है। एवं पूर्वी द्वार के पश्चिम भाग में नृसिंह अवतार की भी एक प्रतिमा है ठीक पीछे शासन देवी की प्रतिमा हैं। जिसके चार हाथ हैं। जिनमें चक्र फल, कमण्डलु और वरद हस्त मुद्रा (?) है। सम्भवत: वह महामानवी देवी की प्रतिमा हैं। इसमें कई स्त्री मूर्तियां बनी हैं। जिनके गले में कण्ठी, हार एव अन्य आभूषण हाथों में बाजू, कमर में करधनी, पावों में कई प्रकार के आभूषण बने हैं। राणकपुर की तरह यहां स्त्री मूर्तियां कम हैं।

श्री शोभालाल शास्त्री ने अपनी पुस्तक 'चितौड़गढ़' में वर्णित किया है कि यह मन्दिर मूल रूप से किसी रतनसिंह द्वारा बनवाया था। इस मान्यता की आधार यह है कि इससे कुछ दूर एक छोटे से मन्दिर में वि० सं० १३३४ का एक लेख है जिसमें यह वर्णित है कि उसे कुमारत्न नामक एक श्रविका ने रतनसिंह द्वारा निर्मित शान्तिनाथ मन्दिर के पास [41] बनाया। इस शृगार चंवरी का जिर्णोद्धार वि० सं० १५०५ में भण्डारी बैला ने किया था। इसमें लोढा गोत्र के मोहन आदि द्वारा अलग निर्माण का उल्लेख है। वि० सं० १५१२ आसोज सुदि २ के दिन चौथ अरहद आदि द्वारा दूसरा आलक बनाने का उल्लेख है। वि० सं० १५१३ के अन्य दो लेखों में भी इसी प्रकार के निर्माण का उल्लेख है।

महावीर जैन मंदिर–

जैन कीर्ति स्तम्भ के समीप महावीर जैन मन्दिर है। जिसे गुणराज श्रेष्ठि के पुत्रों ने महाराणा मोकल से स्वीकृति लेकर बनाया था। यह जिर्णोद्धार वि० सं०

---

४१. श्री शोभालाल शास्त्री 'चित्तौड़गढ़' पृ० ५५–५६।
मूल शिलालेख इस प्रकार है—

(१) "स्वस्ति श्री सं० १३३४ वर्षे वैशाख सुदि ३ बुध दिने श्री वृहदगच्छे सा० प्रहलादन पुत्र सा० रत्नसिंह कारित श्री शांतिनाथचैत्ये सा० समधा पुत्र सा० महण भार्या सोहिणी पुत्री कुम—

(२) रत्न—श्राविकया मातामह – सा० ढाड़ा श्रेयसे देवकुलिका कारिता"

[आ० स० रि० वे० इ० १९०३–१९०४ पृ० ५९]

१४८५ से प्रारम्भ होकर वि० सं० १४९५ में पूर्ण हुआ था। इसकी प्रतिष्ठा तपागच्छाचार्य सोम सुन्दर सूरि ने की थी। एवं चरित्ररत्नगणि ने एक प्रशस्ति भी बनाई थी जो अप्राप्य नहीं हैं। इसकी प्रतिलिपि वि० सं० १५०८ में की गई थी जो अब डेकन कालेज पूना में संग्राहित है। सोम सोभाग्य काव्य में गुणराज के पुत्र बाल्हा द्वारा इसे बनाये जाने का उल्लेख है।

मंदिर का मुख्य द्वार पश्चिम की ओर है। इसमें गर्भ गृह और गूढ मंडप है। उसमें न तो श्रृंगार चौकी मण्डप है और न सामने के भाग पर खुदाई ही। गर्भ गृह के ऊपर शिखर खंडित हो गया है। इसमें कामद पीठ है महापीठ नहीं। जाड्य कुंभ भाग में कुछ मूर्तियां है जब कि जंघा भाग में कई उत्कृष्ट मूर्तियां बनी हुई है। उत्तरी भाग में कुछ देवी प्रतिमाएं है। स्थान-स्थान पर मृदगिका को प्रदर्शित किया गया है। उमा महेश्वर एवं ब्रह्मा सावित्री की मूर्त्तियां भी बनी हुई है। पीछे की ओर दक्षिणी भाग की कथिकाओं से मूर्तियां हटा दी गई है। इसमें मंडोवर मेरु न होकर साधारण ही है।

चित्तौड़ के महल

चित्तौड़ दुर्ग में बनवीर की दीवार के समीप कुंभा के महलों के खण्डहर है। ये महल संभवतः प्राचीन थे जिन्हें कुंभा ने आधुनिक रूप दे दिया था। मंडन के राज-वल्लभ मंडन में महलों का विशद वर्णन है। इसमें भी गवाक्ष राजकुमार के महल पट्टरानी के महल साभ-भवन आदि बने हुये हैं। ये प्राचीन हिन्दूपत्य कला के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

श्री शोभालाल शास्त्री अपनी पुस्तक चित्तौड़गढ़ के पृ० ५७ पर वर्णित करते हैं कि ये महल १३वीं शताब्दी के प्रतीत होते हैं। बड़ीपोल महलों से ४०० फीट दूर पूर्व में स्थित है। इसके पश्चात् त्रिपोलिया द्वार है। इसके आस पास दो बुर्ज बनी है। इसके पश्चात् खुले मैदान में आते हैं जहां हाथी रवाना भी बना हुआ था।

महलों के मुख्य भाग दरीखाना, सूरजशोखडा देवजी का मंदिर, गणेश मन्दिर आवास स्थल, जौहर स्थल (?) जनाना महल आदि है। मध्य की दीवार कुंवरपदा के महलों के पास है। इसके पास घी की बावडी आदि बनी है।

मंडन ने महली के ५ प्रकार की शैली का वर्णन किया है (१) शुद्ध (२) माड (३) मौड (४) शेखर (५) एवं तुंगार [राजवल्लभ ९।१५–१६]।

चित्तौड़ के अन्य मन्दिर

चित्तौड़ के जैन मन्दिरों के सम्बन्ध में कुंभा के लगभग ४८ वर्ष पश्चात् महाराणा सांगा के समय विरचित की हुई (वि० सं० १५७३) की चित्तौड़ चैत्य परिपाटी पुस्तक मिली है। इसके अनुसार उस समय ३२ जैन मन्दिर विद्यमान थे इनके नाम इस प्रकार है—

१. श्रेयांसनाथ २. आदिनाथ ३. सोमनाथ चिंतामणि पार्श्व ४. चन्द्रप्रभ चौमुख ५ आदिनाथ मन्दिर ६. पार्श्वनाथ ७. सुमतिनाथ ८. वीरविहार ९. पार्श्व मन्दिर १०. जैन कीर्तिस्ततंभ ११. पार्श्वमन्दिर १२. चन्द्रप्रभ १३. अदबुद १४. चन्द्रप्रभ (मलधारगच्छीय) १५. सुमतिनाथ १६. शांति खरतरवसही १७. पार्श्वनाथ १८. सुमति नाथ १९. शांति (डागजिनदत्त का) २०. शांति (लीलावसही) २१. मुनि सुव्रत (नागौरिका) २२. शीतल (आंचलगच्छीय) २३. मुनि सुव्रत (नागावालागच्छ) २४. सीमंधर (पल्लीवालगच्छ) २५. पार्श्व (चित्रावलगच्छ) २६. सुमति (पूर्णिमागच्छ) २७. आदिनाथ चौमुखा (मालवी) २८. मुनिसुव्रत २९. शांतिनाथ (शृंगार चवरी) ३०. अजित सरसावसही और ३१. शांति शाडूंगर इनकी मूर्त्तियों की संख्या और मूल पाठ विद्वान लेखक श्री नाहटाजी शोधपत्रिका के वर्ष १३ के अंक २ में प्रकाशित कराया है।

वैष्णव मन्दिरों में उस समय षमाधिश्वर का मन्दिर मुख्य था। इसमें कुंभा ने कुछ निर्माण कराया था इनके अलावा अन्नपूर्णा मन्दिर लक्ष्मी नारायण का मन्दिर कुकडेश्वर का मन्दिर कालिकामाता के मन्दिर मुख्य है। [42अ]

कुंभलगढ

कुंभलगढ सादड़ी ग्राम के पास, मेवाड़ और मारवाड़ की सीमा पर स्थित है। राणकपुर जैन मंदिर और परशुराम के शिव मंदिर से कुंभलगढ़ जाया जा सकता है। लेकिन इसके लिये सुगम मार्ग केलवाड़ा ग्राम से है। यह उदयपुर से ६० मील दूर और २५.९ अक्षांतर एवं ७३.३५ देशान्तर पर स्थित है। परम्मराओं से ऐसा विश्वाश किया जाता है कि इस दुर्ग का निर्माण जैन राजा संम्प्रति ने किया था। महाराणा कुंभा ने गुजरात के सुल्तान से साम्राज्य की रक्षा के निमित इस दुर्ग को सुदृढ़ प्राचीरों से बनाया था।

---

४२. शोधपत्रिका वर्ष १३ अंक २ श्री नाहटाजी का लेख।

४२अ कु० प्र० श्लोक सं०

इसका निर्माण काल वि० सं० १४६५ में हुआ था। अमर काव्य नामक हस्त लिखित ग्रंथ में इसका उल्लेख "गतेचुतुर्दशे पंचनवत्यब्देगतेकरोत्कुंभाः कुंभल मेर आरंभं नगरस्य च पूर्णो कुंभनमेरुस्तु चैत्रपक्षेसितेभवत् पूर्णो विंशति वर्षों दुर्गे–" (पत्र २६) है। श्री शारदाजी न वि० सं० १५०० के आसपास इसका आरम्भ मानते हैं। कीर्ति स्तंभ प्रशस्ति में इसके पूर्ण होने की तिथि चेत्र शुक्ला १३ सं० १५१५ दी है। यह अमर काव्य से मिलती हुई है। अतएव इसका प्रारंभ भी वि० सं० १४६५ के आसपास माना जा सकता है। वि० सं० १५०८ के गोड़वाड़ के एक जैन लेख के अनुसार उस समय इसे "कुंभपुर" नाम दिया गया था। प्रारम्भ में इसका नाम "माहोर" था। मआसिरे मोहम्मद शाही में इसका नाम मछिन्दरपुर दिया है। इस समय वह सिरोही का पूर्वी भाग जीत चुका था अतएव गोडवाड की रक्षा के निमित इस दुर्ग की बहुत हो आवश्यकता थी। फरिश्ता और निजामुद्दीन ने इस दुर्ग की अजैयता का वर्णन किया है।

केलवाड़ा से जाते समय सबसे पहले औरटपोल आती है। यह प्रथम द्वार है। बचपन में मैंने जब इसे देखा था तब यहां राजकीय प्रहरी नियुक्त रहते थे लेकिन राजस्थान बनने के बाद अब ये सब हटा दिये गये प्रतीत होते हैं। उसके कुछ दूर हल्लापोल आती है और इसके थोडी दूर आगे हनुमान पोल है। यहां कीर्ति स्तम्भ प्रशस्ति में उल्लेखित आनीव मांडव्यपुरा हनुमान् संस्थापितः कुंमलमेरू दुर्गेः मूर्ति यहीं प्रतिष्ठापित की गई थी। इसकी चरण चोकी पर १५१५ फाल्गुन का शिलालेख है। इसके आगे विजयपोल रामपोल आती है। यहां से कुंभलगढ़ दुर्ग का अन्दर का भाग शुरू होता है। किले की उंची और मजबूत दीवार यहां से स्पष्ट शुरू हो जाती है। यहां से ५ पोल आती है १. भैरवपोल, २ नीबू पोल, ३. चौगानपोल, ४. पाखड़ापोल और पांचवीं गणेशपोल हैं। इसके आगे महाराणा के गुम्बुजदार महल है।

किले में सबसे उल्लेखनीय यज्ञवेदी, मामादेव का मन्दिर पीतलिया देव का मन्दिर समवसरण का मन्दिर और नीलकंठ का शिव मन्दिर हे। रामपोल के पास यज्ञवेदी है जहां दुर्ग की प्रतिष्ठा हुई थी। यह तीन मंजिली है और भवन की तरह दिखाई देती है यह पश्चिमोन्मुख है नीलकठ[43] मंदिर में एक मूर्ति है जिसे श्री रतन चन्द अग्रवाल विष्णु प्रतिमा मानते हैं। इसके १२ हाथ है। ऊपर के दोनों हाथ सिर के ऊपर उठे है। मध्यवर्ती दो हाथ छाती पर है। दो दाहिने हाथों में वरदाक्ष व खंग दो बायें हाथो में ढाल व कमण्डल विद्यमान है बाकी ४ आयु ६ खंडित है। इसके सामने श्रीधर प्रतिमा है। नीलकठ मन्दिर को बड़े २ मंडपों के कारण टॉड़ ने इसे यूनानी शैली का बतलाया है जो गलत है यह नगर शैली का है।

मामादेव का मन्दिर दूसरा महत्वपूर्ण स्थान है। श्री देवदत्त भण्डारकर की मान्यता है कि यह मन्दिर पहले चौमुखा जैन मन्दिर था। उनका विश्वास है कि कला के

---

४३. वरदा वर्ष ७ अंक १ पृ० १ से ६ तक।

दृष्टिकोण से भी यह कुंभा का बनाया हुआ प्रतीत नहीं होता क्योंकि कुंभा के अन्य मन्दिरों में मूर्तियों को रखने के लिये रथिकाएं बनाई जाती थी किन्तु इस मन्दिर में नहीं है।[44]

श्री रतनचन्द्र जी अग्रवाल ने भी इस मत की पुष्टि की है। वरदा के जनवरी, १९६४ के अंक में उनका लिखना है कि तनिक इसकी स्थापत्य कला की ओर दृष्टिपात करना परम आवश्यक है। पश्चिम की ओर से प्रवेश वाले लगभग ७५ फीट (पश्चिम से पूर्व) व ५० फीट (उत्तर से दक्षिण) के प्रस्तर परकोटे (ऊंचाई लगभग ८ फीट के अन्दर ३० फीट × ३० फीट आकार का खुला बरामदा बना है जिसकी चौड़ाई लगभग ५ फीट ६ इंच है। १६ स्तम्भों वाले २७ फुट ऊंचे इस बरामदे के अन्दर की ओर की २० × २० फीट की दीवारों के बीच एक लघु चबुतरे पर सिन्दुर से पुती एक प्रतिमा विद्यमान है। स्तम्भों व दीवारों पर प्रतिमादि का सर्वथा अभाव है। २० × २० फीट चौड़े स्थल की (मध्यवर्ती भाग) दीवारे चारों ओर खुली होकर अन्दर की लघुवेदी तो चैमुखा जैन मन्दिर की विद्यमानता का आभास कराती है।

यहां से प्राप्त प्रतिमाओं पर मातुलवट मामावट, या आस्मिन् वट शब्द उत्कीर्ण है। इसका अर्थ कुल विद्वान वट वृक्ष के नीचे संस्थापित मूर्तियां अर्थ लेते हैं। उनका यह अर्थ निसन्देह गलत है। यह शब्द स्थान का सूचक है।

मध्यकालीन राजस्थानी भाषा में वट का स्थान के लिए कई स्थलों पर प्रयुक्त हुआ है। एक लिंग महात्म्य के कुंभा के वर्णन के श्लोक सं० १९८ में वट शब्द स्थान के लिये प्रयुक्त हो रहा है। यज्ञवटाः श्री रावण कुंभ विभीषण सहोदरै रूप्ताः शब्द है। १४९१ के देलवाड़ा के लेख में खारीवटां मराहेडावटा आदि शब्द प्रयोगित है जो निसंदेह स्थान के सूचक है। इसी प्रकार कान्हडदे प्रबन्ध में जो भी समसामयिक कृति है इस शब्द का प्रयोग हो रहा है। यहां रास्ते के अर्थ में प्रयुक्त हुआ हैं। (जलवट थलवट ४।१३) इसके अतिरिक्त इस मन्दिर का प्राचीन नाम मामादेव का मन्दिर था अतएव वट शब्द को स्थान के रूप में लेने पर इन शिला लेखों का अर्थ स्पष्ट हो जाता है।

इस मन्दिर के लिये कीर्ति स्तम्भ प्रशस्ति में लिखा है कि विष्णु के चरणों का सेवक राणा ने कुंभलनेर दुर्ग में सरोवर में खिले हुये कमलों के मध्य अनेक तोरणोंवाला कुंभ स्वामी का मन्दिर बनाया।[45]

---

४४. आ० स० वेस्टर्न इंडिया वर्ष १९०९ पृ० ३६–३७।

४५. की० प्र० श्लोक १२६ से १४० एवं एकलिंग महात्म्य के राजवंश वर्णन का श्लोक १९२ से १९८।

यहां से प्राप्त प्रतिमायें विशेष उल्लेखनीय है। इनमें से अधिकांशतः उदयपुर संग्रहालय में है। मन्दिर में विशेप उल्लेखनीय मूर्तियां अब पृथ्जी पृथ्जीराज धनद महा-लक्ष्मी, आसनस्थ गणपति। विष्णु महिसामर्दिनी आदि।[46] उदयपुर संग्रहालय में देवी प्रतिमाएं संग्रहीत है जो ब्राह्मणी माहेश्वरी कोमारी, वैष्णवी वरादी और एन्द्री की प्रतिमायें हैं। जिनकी चरण चौकियों पर वि० स० १५१५ फाल्गुण सुद १२ बुधवर के लेख है।

इसी प्रकार संकर्षण, माधव, मधुसुदन अधोक्षज, पद्युम्न केशव, पुरूषोतम अनि-रूद्ध वासुदेव दामोदर जर्नादन और गोविन्द की मूर्तियों की चरण चोकियों पर वि० स० १५१६ आसोज सुद ३ के लेख हैं। ये मूर्तियां सूत्रधार मंडन द्वारा विरचित देवतामूर्ति प्रकरण" और रूपमडन के अनुरूप है। पृथ्वी पृथ्वीराज और कुबेर की मूर्तियों के ही वर्णन श्री भण्डारकर ने किये है। श्री रतनचन्द्र अग्रवाल ने विस्तृत वर्णन किया है इनके अनुसार यह वर्णन इस प्रकार है[47]।

महालक्ष्मी

यह लगभग ४ फीट और ७ इंच ऊंची श्वेत पत्थर की प्रतिमा है। चतुर्वाहु है जिसके आयुधों का क्रम (दक्षिणाधः दस्तसै) वरदाक्ष कमल और विजोरा हैं। दोनों ओर से जल के घड़ों से अभिषेख का दृश्य उत्कीर्ण है यहां गज नहीं है किन्तु भाव स्पष्ट है। इसके नीचे बलराम और कृष्ण की आकृतियां भी बनी है जो प्रतिहारी के रूप में प्रदर्शित है। इसकी चरण चौकी वि० स० १५१५ फालगुन शुदि १२ का लेख है।

कुबेर प्रतिमाः—

यह ६ फीट ६ इंच ऊंची श्वेत पत्थर की है। यहां प्रधान देव की जंघा पर बैठी लघु स्त्री मूर्ति इसकी शक्ति है। कुबेर के सिर पर जटा छाती पर श्रीवत्स चिन्हः दक्षिणाधः हाथ में मालाव दक्षिणावर्ती ऊपर के हाथ में त्रिशूलु और हाथी वाहन है। श्री देवदत्त भण्डारकर ने लिखा है कि कुबेर का वाहन हाथी न होकर घोड़ा है।[48] अतएव

---

४६. **श्री रतनचन्द अग्रवाल "शोधपत्रिका वर्ष ८ अंक ३ में प्रकाशित रूप मंडन तथा कुंभलगढ़ से प्राप्त महत्वपूर्ण प्रस्तर प्रतिमाएं।**

४७. **वरदा वर्ष ७ अंक १ पृ० १ से ६।**

४८. **आ० स० वेस्टर्न इंडिया वर्ष १६०६ पृ० ३६–३७।**

इस प्रकार का वाहन विचित्र है। लेकिन मंडन ने इसे "गजारुढ़" ही बतलाया है।[49] अतएव यह स्वरूप ही ठीक प्रतीत होता है। इसके पीछे प्रतिहारी रुपये थैली में से लेकर बिखेर रहा है जो पास खड़े व्यक्ति थालियां में सम्भाल रहे हैं। इनमें दाहिनी ओर की तस्तरी में गोल सिक्के और बायी ओर की में चोकार हैं। कुंभा द्वारा प्रचलित किये गये सिक्के चौकोर हैं। लेकिन उस समय गोल सिक्के भी प्रचलित थे। इसकी चरण चौकी पर वि० स० १५१५ वर्ष फाल्गुन शुद्धि १२ का लेख है।

पृथ्वीराज और पृथ्वीः—

यह आसनस्थ प्रतिमा है। सिर पर करण्ड मुकुट और दाढ़ी है। इसमें एक ओर हाथी और दूसरी ओर घोड़े की आकृति बनी है। पृथ्वी की प्रतिमा में ४ हाथ है और ४ आसन संस्थित है। दोनों प्रतिमाओं की चरण चौकियों पर वि० स० १५१६ आश्विन शुदी ३ का लेख भी लग रहा है। विष्णुः—बाई ओर के बरामदे में विष्णु प्रतिमा लग रही है। इस पर वि० स० १५१६ का विष्णु संज्ञक लेख है जो उदयपुर संग्रहालय की तरह आसौज शुदि ३ को प्रतिष्ठापित हुई थी। इसका आयुध क्रम गदा कमल शंख व चक्र है।

महिषमर्दिनीः—

यह मन्दिर के पीछे बरामदे में लगी ४ फीट ऊंची प्रतिमा है। इसमें महिष राक्षस का सिर धड़ से निकला हुआ बतलाया गया है। इसके ६ हाथ हैं। जिनमें दक्षिणवर्ती हाथों में त्रिशूल वज्र व खंग है और बामवर्ती हाथों में से ऊपर के एक हाथ में ढाल है और शेष खडित है इस पर कोई लेख नहीं है।

यहां से विष्णु की त्रिमुखी नरसिंह बराह और विष्णु प्रतिमाएं नहीं मिली है।

इस मन्दिर के समीप पीतलिया देव का मन्दिर है। यह चौमुखा मन्दिर है। इसमें गर्भ गृह और सभा मण्डप है। इसका मण्डप बहुत विशाल है। मुख्य मन्दिर पूर्व की तरफ है। इसके मंडोवर पर कई अकृष्ट मूर्तियां उत्कीर्ण हैं जिनके नाम अग्नी, ब्रह्मा, इन्द्र, यम, वरूण, वायु, कुबेर आदि की है। उत्तरी भाग की एक मूर्ति के नीचे वि० स० १५१२ का लेख उत्कीर्ण है।

---

४९. गदानिधि बीजपूर कमंडलु करे तथा। गजारुढं प्रकर्तव्यं सौम्यायाधनद दिशि ।।४।६५। देवता मूर्ति प्रकरण।

नीलकंठ के बाद ५२ जैन मन्दिर आता है। इसमें अब केवल ४० देवकुलिकाएं ही रही है। मन्दिर के मुख्यद्वार पर "बलाणक" पर सुन्दर दृश्य उत्कीर्ण है। यह मंदिर वि० स० १५२१ में बना था। मुख्य मंदिर के पीछे एक स्तम्भ पर वि० स० १५२१ का लघु लेख है जिसमें जसवास के नरसी का उल्लेख है। गोलेरा जैन मन्दिर भी उल्लेखनीय है। इसके द्वारों पर सशस्त्र द्वारपाल बने हैं। मंडोवर पर कई कला पूर्ण प्रतिमाएं उत्कीर्ण हैं। कई नामांकित जैन शासन देवताओं की प्रतिमायें हैं। छत पर कई अलंकृत प्रतिमायें हैं। [49] (अ)

आबू:—

तीसरा महत्वपूर्ण स्थान जहां कुंभा ने निर्माण कार्य कराया था वह आबू है। आबू दुर्ग में अचलगढ़ के समीप कुंभा ने कुंभस्वामि का मन्दिर बनाया। यह मन्दिर मदाकिनी कुंड के समीप स्थित है। यह चितौड़ के कुंभ स्वामि के मन्दिर की शैली पर ही निर्मित हुआ है [50]। मन्दिर में विष्णु के २४ अवतारों की प्रतिमाएं भी लगी हुई है। दाहिनी ओर रथिका में एक त्रिमुखी मूर्ति है जो सम्भवतः नृसिंह, वराह और विष्णु के सम्मिलित भाव की द्योतक है। इसमें १२ हाथ हैं। मन्दिर के बाहर भी विष्णु की कई प्रतिमाएं है। इनमें वराह नृसिंह एवं विष्णु के अन्य रूपों की कई हाथ वाली प्रतिमाएं है। इस प्रकार प्रतिमाओं का ढेर शिव मन्दिर के पास भी हैं। इनमें से एक मूर्ति के १४ और एक के २० हाथ हैं। श्री रतन चन्द्र अग्रवाल के अनुसार चवदह हाथ वाली प्रतिमा वैकुण्ठ की न होकर अनन्त की है[51]। वैकुण्ठ के रूप मंडन और अपराजित पृच्छा में ४ मुख और ८ हाथ माने हैं [52]।

आबू में कुंभा के समय के बने जैन मन्दिरों में खरतर गच्छ वसही, दिगम्बर जैन मन्दिर, अचलगढ़ पर चौमुखा जैन मन्दिर, कुंथनाथ का मन्दिर आदि मुख्य हैं। इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार हैं:—

वि० सं० १४९४ में दिगम्बर जैन मन्दिर बनाया था। उस समय आबू पर कुंभा का राज्य नहीं था क्योंकि शिलालेख में देवड़ों का उल्लेख है।

---

४९ (अ) श्री गोरीशंकर असावा का लेख "कुंभलगढ़"—उदय पत्रिका वर्ष ६६-६७ पृ० ४९।

५०. म० कु० पृ० १२२-१२४।

५१. राजस्थान भारती कुंभा विशेषांक पृ० १०५-६।

५२. वैकुण्ठञ्च प्रवक्ष्यामि सोऽष्टबाहुर्महाबलः।
ताक्ष्यासनश्चतुर्वक्त्रः कर्तव्यः शान्तिमिच्छता।। रूप मंडन ३।।५२

वि० सं० १५१५ में खरतरगच्छवसही श्रेष्ठि मंडलिक ने बनवाई थी। इसे शिलावटों का मन्दिर भी कहते हैं। इसमें मूर्तियों के नीचे लेख थे जो अंधेरे और चूने द्वारा पूत जाने के कारण अब नहीं पढ़े जा सकते हैं। इसमें अधिकांश प्रतिमायें बहरडा जाति के श्रेष्ठि मंडलिक ने बनवाई थी एवं प्रतिष्ठा जिनेन्द्र सूरि ने की थी। यह गगन स्पर्शी मन्दिर सादा होते हुये भी उल्लेखनीय हैं। नीचे की चारों प्रतिमायें पार्श्वनाथ की हैं। जिनके नाम चिंतामणी पार्श्वनाथ मंगलाकर पार्श्वनाथ, मनोरथ कल्पद्रुम पार्श्वनाथ, आदि हैं। च्यवन कल्याण का दृष्य भी खुदा हुआ हैं। दूसरी मजिल में सुमति नाथ, पार्श्वनाथ आदि नाथ और पार्श्वनाथ की प्रतिमाएं हैं। अम्बिका देवी की एक सुन्दर प्रतिमा भी हैं। तीसरी मंजिल में भी पार्श्वनाथ की प्रतिमाएं है।

चौमुखा मन्दिर:—

वि० सं० १५६६ फाल्गुन कृष्णा १० के दिन राणकपुर के निर्माता धरणा के के भाई रतना के पौत्र सहसा ने इसे पूर्ण किया था। इसमें लगी कुछ प्रतिमाओं में वि० सं० १५१८ में राणा कुंभा के शासन काल में बनी एक प्रतिमा भी है जो धातु की विशाल प्रतिमा हैं और जो सम्भवत: पहले कुंभलगढ़ में विराजमान थी वहां से यहां लाई गई है [53]। यह पूर्वाभिमुख में विराजमान आदिनाथ प्रतिमा है। कहा जाता हैं कि इस मंदिर का निर्माण कुंभा के शासन काल में ही प्रारम्भ हो गया था। इसके दूसरे खण्ड की प्रतिमायें इस ढंग से बनी हैं कि कुंभा महलों में बैठकर के ही इनके दर्शन कर सकें।

कलंकी अवतार की प्रतिमाएं:—

श्री कुंथनाथ देवालय में धातु की ३ सुन्दर अश्वारोहियों की प्रतिमाएं हैं। इन पर तलवार ढाल और भाला शस्त्रों से सुसज्जित सवार बैठे हुये हैं। बीच के सवार के सिर पर छत्र हैं। प्रत्येक घोड़े का वजन २।। मन हैं। इनको बनवाने में १०० मंहमदी (गुजराती) मुद्रायें खर्च हुई थी। इन्हें राणा कुम्भा की मूर्ति मानते हैं। लेकिन ये कलंकी अवतार की हैं। इन पर वि० सं० १५६६ का लेख है।

अचलगढ़ दुर्ग पर मुख्य रूप से हनुमान पोल और चम्पा पोल है। हरिश्चन्द्र की गुफा के समीप पुराने महल हैं वे भी कुंभा द्वारा बनाये हुये हैं। पार्श्वनाथ के मन्दिर में भी खुदाई सुन्दर ढंग से हो रही है। पीतल की १४०० मण के लगभग की विशाल काय मूर्तियां इस बात को सिद्ध करती है कि उस काल में पंचधातुओं का काम भी सुन्दर ढंग से होता था। अचलगढ़ की प्रतिष्ठा वि० सं० १५०९ माघ सुदि १५ को हुई थी [54]।

---

५३. अर्बुदाचल जैन लेख संदोह लेख सं० ४६७।

५४. की० प्र० श्लोक १८६।

कुंभ स्वामी के मन्दिर के समीप महाराणा कुंभा ने एक सरोवर और चार जलाशय बनवाये थे। जलाशल सम्भवतः मन्दाकिनी कुण्डका सूचक है।

एकलिंग देवालय:—

मुसलमान सुल्तानों के आक्रमणों का मार्ग देलवाड़ा और एकलिंगजी होकर के रहा था। संभवत मन्दिर कुंभा के शासन सूत्र संभालने के पूर्व वि० स० १४८६ में गुजरात के सुल्तान आक्रमण के समय खंडित हुआ था। फारसी तवारीखों में देलवाड़ा और इसके आस पास के मन्दिरों को खंडित करने का स्पष्टतः उल्लेख है। देलवाड़ा के मंदिर को श्रेष्ठि सहणपाल ने वि० सं० १४६१ में ठीक करा लिया था। अतएव प्रतीत होता है कुंभा ने भी मुख्य देवालय में जीर्णोद्धार के समय मंडप तोरण ध्वजदण्ड और कलश नये लगाये थे। इसके अतिरिक्त यहां एक विष्णु मन्दिर भी बनाया जो मीरा मंदिर के नाम से विख्यात है [55]। श्री रतन चन्द्र अग्रवाल का इस सम्बन्धी लेख राजस्थानी भारती के कुंभा विशेषांक में प्रकाशित हुआ है। विद्वान लेखक ने इस मंदिर की बाहर की बाहर की प्रतिमाओं का विशद विवेचन किया है [56]। निज गर्भ गृह के बाहर का भाग प्रतिमाओं से जुड़ा हुआ है। इसकी प्रधान ताकों में नृसिंह-वराह और विष्णु की ही त्रिमुखी प्रतिमाएं अद्यावधि विद्यमान है।

(१) सड़क की ओर प्रधान बाह्य ताक में आसनस्थ वैकुण्ठ की प्रतिमा है— इसमें दक्षिण के हाथों में गदा खड्ग, तीर व ध्वज औरवामवर्ती हाथों में कमल शख, ढाल एवं धनुष हैं।

इस प्रतिमा के ऊपर वाली ताक में ८ हाथ वाली प्रतिमा है इसमें चतुर्देव का समिश्रण किया गया है। मध्यवर्त्ती मुख के ऊपर मुकुट है व बाजू वाले मुखों के ऊपर जटा। यहां पर सूर्यकमल शंख एवं कमण्डलु है तथा दक्षिणवर्त्ती हाथों में त्रिशूल कमल तथा वरदाक्ष है।

(२) पीछे की प्रधान ताक में अनन्त प्रतिमा है जो १२ हाथ की है। बायें हाथों में ढाल, शंख, पाश कमण्डलु कमल एवं अंकुश है एवं दायें हाथों में तलवार गदा, बज्र चक्र और वरदाक्ष है। इसके ऊपर की ताक में त्रिमुखी एवं बहुभुज देव की आसनस्थ प्रतिमा है।

बाह्य भाग में विष्णु के स्वरूपों की भी बहुत सी प्रतिमाएं है। सडक की ओर के भाग में हरिहर की प्रतिमा आकर्षक है।

---

५५. कु० प्र० २४०–४१। की० प्र० श्लोक सं० १०।

५६. श्री रतनचन्द्र अग्रवाल का लेख—राजस्थान भारती कुंभा विशेषांक पृ० ११५–११६।

(३) मन्दिर के दहिनी ओर के बाह्य भाग में १६ हाथ वाली त्रैलोक्य मोहन की प्रतिमा है। उदयपुर संग्रहयालय में रखी हुई २० हाथ वाली महा विष्णु की प्रतिमा भी इसी स्थान से अवश्य सम्बन्धित होगी [57]।

नर थर में कई दृश्य हैं। प्रेमालंगन और प्रणय चित्र पर्याप्त आकर्षक है इनके अतिरिक्त, ऊष्ट्रा रोहो, युद्ध दृश्य आदि भी आकर्षक हैं।

अन्य स्थल:—

कुंभा ने वसंतपुर को सामरिक महत्व का समझ कर इसे फिर से बसाया। यहां ७ सुन्दर जलाशय बनाये। यहां वि० सं० १५०७ में श्रेष्ठि झगड़ा परिवार वालों ने शांतिनाथ का सुन्दर मंदिर बनाया [58]। गोडवाड में स्थित नाणा में वि० सं० १५०६ में महावीर जैन मन्दिर का निर्माण श्रेष्ठि दूदा ने जो वेलहरा गोत्र का था बनाया। इसकी प्रतिष्ठा झावकिया गच्छ के शाति सूरि ने की थी [59]। यह प्राचीन मन्दिर रहा होगा। द्वार पर वि० सं० १०१७ का शिला लेख भी खुदा हुआ है। मन्दिर का प्रवेश द्वार पूर्व की ओर है। इसके सुन्दर मकराकृति का तोरण है। इसमें नन्दीश्वर पट्ट विशेष उल्लेखनीय है [60]। इस शिला पट्ट की लम्बाई चौड़ाई ३॥'×३॥' है। देलवाड़ा के पार्श्वनाथ के मन्दिर में अन्य जैन मन्दिरों की तरह विशाल मडप है। श्रवणपाल द्वारा निर्मित ऋषभ देव के मन्दिर में अलंकरण की प्राचुर्यता है। इस मन्दिर का सबसे प्राचीनतम भूभाग मूलनायक की प्रतिमा है एवं उत्तरी मुख्य द्वार है। शेष भाग कुम्भा के समय का है। इनके अतिरिक्त मेवाड़ में कई और जैन मन्दिर श्रेष्ठियों द्वारा बनवाये गये हैं। इनमें मानच, उंठाला, डूंगला, लाम्बोड़ी, पडासली, केलवा का गोड़ी पार्श्वनाथ और शांति नाथ के मंदिर, सरदार गढ़, कोशीथल, रायपुर और मंगलवाड़ के मन्दिर मुख्य है। ये वि० सं० १५०० के [61] आसपास निर्मित हुये माने जाते हैं। इनके अतिरिक्त वि० सं० १५०५ आषाढ़ वद १ को सा० सालिग, आदि श्रेष्ठियों ने रूपा हेली में जैन मन्दिर

---

५७. रूप मंडन के तीसरे अध्याय के श्लोक से ५५–५६ और ६०–६२ इनके लिये दृष्टव्य है।

५८. की० प्र० श्लोक ८–९ एवं नाहर जैन लेख संग्रह ले० सं० २६५।

५९. आ० स० रि० वे० इ० वर्ष १९०८ पृ० ४५ एवं नाहर—जैन लेख संग्रह भाग १ पृ० २३०।

६०. ओपेन्ट्स आफ एन्टिक्विरियन इन्टरेस्ट इन मेवाड़ पृ० १२।

६१. जैन सर्व तीर्थ संग्रह भाग २ के परिशिष्ट में दिये गये वृतान्त के अनुसार।

बनवाया। वैष्णव मन्दिरों में वि० सं० १५०० माघ सुदि ५ को कडियाग्राम में तिल्ह भट्ट द्वारा कृष्ण का मन्दिर बनवाया गया [62]। चार भुजा के प्रसिद्ध मन्दिर का जीर्णोद्धार वि० सं० १५०१ में खरवड जाति के राव महिपाल आदि ने कराया था। इसी समय में पदराडा में भी विष्णु का मन्दिर बनाया गया [63]। सेमा की पहाड़ी पर शिव मन्दिर श्रेष्ठि वर्ग ने बनवाया।

इस प्रकार कुंभा के शासन काल में व्यापक रूप से निर्माण कार्य कराया गया था। राज्य और श्रेष्ठि वर्ग दोनों ने इस कार्य में बराबर सहयोग दिया था। मेवाड़ में कई छोटे मोटे दुर्ग भी कुंभा द्वारा बनाये गये बताये जाते हैं। इनकी संख्या ३० तक है। दुर्ग निर्माण के सम्बन्ध में राज वल्लभ मंडन में मंडन ने सविस्तार वर्णन किया है अतएव इसमें संदेह नहीं है कि उस काल में मुस्लिम सल्तानों से रक्षात्मक युद्धों के लिए दुर्गों का निर्माण कराया हो [64]। इन दुर्गों में आरास, अम्बाव के पास का किला बदनोर के पास विराट का किला, आहोर का पर्वतीय दुर्ग विशेष उल्लेखनीय हैं। देवगढ़ का पर्वतीय दुर्ग भी इसका बनाया हुआ माना जाता है। बिराट के किले से मेरों के आक्रमण को रोकने और उनको दबाने के लिये कार्य किया जा सकता था।

इन प्रसादों में सर्वत्र पश्चिमी भारतीय वास्तु शैली अपनाई गई है। इस शैली का परिवर्तित रूप गुजरात में भी विकसित हुआ। चम्पानेर की मस्जिद अहमदाबाद की मुहाफिज खां की मस्जिद, अचूत कूकी की मस्जिद और जामा मस्जिद इसी के स्वरूप हैं। श्री फर्गुसन ने अहमदाबाद की जामा मस्जिद की तुलना राणकपुर के जैन मन्दिर से की है उनका कहना है कि दोनों सम समायिक कृतियां है और एक ही शैली के स्वरूप है [65]। अचूत कूकी की मस्जिद का बाहरी भाग मुहाफिज खां की मस्जिद के सामने के भाग की तुलना चित्तौड़ के किसी भी मन्दिर से की जाय तो इन्हें एक दूसरे के

---

६२. शारदा महाराणा कुंभा पृ० १७३–४ एवं राजपुताना म्युजियम रिपोर्ट १९२६ पृ० २। वरदा भाग ६ अंक ३ पृ० २ से ८।

६३. राजस्थान भारती कुंभा विशेषांक पृ० ७६।

६४. राजवल्लभ मंडन के चौथे अध्याय में दुर्ग निर्माण का उल्लेख है। इनमें चार प्रकार के दुर्ग बतलाये हैं इनमें पर्वतीय दुर्गों का श्रेष्ठ बतलाया है। मेवाड़ के तत्कालीन दुर्ग और गढियां सब प्रायः पर्वतों पर बनी हैं।

६५. फर्गुसन—हिस्ट्री आफ इंडियन एण्ड ईस्टर्न आर्चिटेक्चर भाग १ पृ० ५२७।

बहुत समीप पायेगें। अन्तर केवल अलंकरण के लिए प्रयुक्त हिन्दू और मुस्लिम वास्तु का हैं। इन मस्जिदों में भी हिन्दू मन्दिरों की तरह रथिकाएं, पीठिका एव मंडोवर भाग बनाये गये हैं। किन्तु यहां प्रतिमाओं के स्थान पर बैलबूटे हैं। तत्कालीन इस वास्तु कला की विशेषता अलकंरण की प्राचुरता हैं। चित्तौड़ के सतबीस देवरियों, शृंगार चंवरी मोकल जी के मन्दिर एवं कीर्ति स्तम्भ में अलंकरण का प्राचुर्य हैं। किन्तु अलंकरण सामग्री में नवीनता और मौलिकता का प्रायः अभाव हैं। परम्परागत शैली ही सर्वत्र अपनाई गई हैं। देवी देवताओं, संगीतरत पुरूष झुंडों (नर थर) गज थर एवं अश्वथर बनाये गये हैं। कीर्ति स्तम्भ के बाहर एवं सिंह स्थान पर सिंह की आकृति भी प्रायः बनाई गई हैं जो निसंदेह कई स्थलों पर सुन्दर ढंग से खुदी हुई हैं किन्तु उनमें मांसलता (Vitality) का प्रायः अभाव है। सिंह की विकरालता का स्वाभाविक स्वरूप यहां नहीं आ सका है। कीर्ति स्तम्भ की बुद्ध की प्रतिमा को सारनाथ की बुद्ध की प्रतिमा से तुलना करें तो काफी परिवर्तन प्रतीत होगा। इतना होते हुये भी तक्षण कला का अद्भुत विकास सर्वत्र हुआ। यह देलवाडा (आबू) और नागदा की परम्परा का स्वरूप था। यह कहां जा सकता है कि उस समय भी आबू के कलाकारों की परम्परा मौजूद थी।

कलाकार का उद्देश्य कला के माध्यम से आनन्द की प्राप्ति है। आनन्द की खोज के लिए वह सुन्दर को सुन्दरतम बनाने के लिये प्रयत्नशील रहता है। उसका विश्वास है कि जो सुन्दर है वह रसमय एवं जो रसमय है वह आनन्दमय है एवं जो आनन्दमय है वह परमेश्वर का स्वरूप है। इस प्रकार कलाकार का साधना अद्वितीय है। वह कला के माध्यम से अमर हो जाता है। सूत्रकार जइता, उसके पुत्र नापा, पुंजा आदि के नाम जब तक लिये जावेगें जब तक कीर्तिस्तम्भ स्थिर रहेगा। उनकी साधना ने उन्हें अमर बना दिया हैं। इनके अतिरिक्त, रणकपुर का दीपा, मोकल जी के मन्दिर का मान, कुभंलगढ़ का निर्माता प्रसिद्ध शिल्प शास्त्री मंडन, नागदा की मूर्ति का निर्माता सूत्रधार मदन और उसके पुत्र धरणा बीका थे। ये लोग उच्च कोटि के कलाकार थे। इनकी कृतियां शताब्दियों तक इनको अमर रखेगा।

मूर्ति कलाः—

कुंभा का शासन काल विविध देवी देवताओं की मूर्तियों के निर्माण के लिए बड़ा प्रसिद्ध हैं। उसके आश्रित, मंडन और जैता दोनों श्रेष्ठ मूर्तिकार थे। जैता चित्तौड़ और पूर्वी भाग का स्थपित था और मंडन कुंभलगढ़ एवं पश्चिमी मेवाड़ के अन्य भागों का। जैता द्वारा बनाई हुई मूर्तियां कीर्ति स्तंभ में आज भी विद्यमान हैं। सुविधा के लिए नीचे मूर्तियों का परिचय भी दे दिया हैं अन्यथा इन्हें पहिचान ने में भी बड़ी कठिनाई हो सकती थी। यहां देवी देवताओं की प्रतिमाओं के अतिरिक्त प्राकृतिक शक्तियों, नदियों, और ऋतुओं को मूर्ति रूप (Personification) दिया हैं। ये प्रतिमाएं षट् ऋतुओं, गंगा यमुना, सरस्वती आदि की कीर्तिस्तम्भ पर बनी हैं। गंगा, यनमु

की प्रतिमाएं मन्दिर के गर्भ गृह के उत्तरंग के नीचे दिवारों में भी बनाने का उल्लेख मंडन करता हैं। पृथ्वी और पृथ्वी राज को प्रतिमाएं कुंभलगढ़ में मामादेव के मंदिर में मिली है। इनका वर्णन रूप मंडन और देवता मूर्ति प्रकरण में नहीं है। इन प्राकृतिक शक्तियों को मूर्त रूप चित्रकला में भी दिया है। इसमें बारह मासा का वर्णन मिलता है। लेकिन राग रागनियों का शिल्प में मूर्तीकरण नहीं हुआ है जैसा कि चित्रकला में है। प्राकृतिक शक्तियों के साथ-साथ मानव शक्तियों की भी प्रतिमाएं कल्पित की गई है। ये प्रतिमाएं जैता की कल्पना हैं। ये कीर्ति स्तंभ पर बनी हैं और मध्य कालीन शक्ति पूजा और शस्त्र पूजा का परिविकसित स्वरूप है। उस काल में बनी मूर्तियों में विष्णु की मूर्तियां अधिक हैं। इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है।

१. विष्णु:—विष्णु की ३ प्रकार की प्रतिमाएं प्राय: बनती है। (१) स्थानक आसनस्थ और शयन मूर्ति। ये भी योग, भोग वीर और आभिचारिक चार प्रकार की होती है। मेवाड़ में मुख्य रूप से विष्णु के विविध अवतारों की प्रतिमाएं ही अधिकांश रूप से बनी थीं। २४ रूपों की मूर्तियां कुंभलगढ से मिली है। सूत्रधार मंडन के अनुसार इनमें शंख चक्र गदा पद्म की स्थिति इस प्रकार से है [६६]।

	पीछे के दाहिने हाथ में	पीछे के बाये हाथ में	सामने के बाये हाथ में	सामने के सीधे हाथ में
१. केशव	शंख	चक्र	गदा	पद्म
२. नारायण	पद्म	गदा	चक्र	शंख
३. माधव	चक्र	शंख	पद्म	गदा
४. विष्णु	पद्म	शंख	चक्र	गदा
५. मधुसुदन	शंख	पद्म	गदा	चक्र
६. त्रिविक्रम	गदा	चक्र	शंख	पद्म
७. वामन	चक्र	गदा	पद्म	शंख
८. श्रीधर	चक्र	गदा	शंख	पद्म
९. हृषीकेश	चक्र	पद्म	शंख	गदा
१०. पद्मनाभ	पद्म	चक्र	गदा	शंख
११. दामोदर	शंख	गदा	चक्र	पद्म
१२. संकर्षण	शंख	पद्म	चक्र	गदा
१३. वासुदेव	शंख	चक्र	पद्म	गदा
१४. प्रद्युम्न	शंख	गदा	पद्म	चक्र

---

६६. डा० गोपीनाथ राव—इलेमेन्ट्स आफ हिन्दू इकोनोग्राफी भाग १ खंड १ पृ० २२९। रूप मण्डन तीसरा अध्याय श्लोक ९ से २०।

१५, अनिरूद्ध	गदा	शंख	पद्म	चक्र
१६. पुरूषोत्तम	पद्म	शंख	गदा	चक्र
१७. अधोक्षज	गदा	शंख	चक्र	पद्म
१८. नृसिंह	पद्म	गदा	शंख	चक्र
१९. अच्युत	पद्म	चक्र	शंख	गदा
२०. जनार्दन	चक्र	शंख	गदा	पद्म
२१. उपेन्द्र	गदा	चक्र	पद्म	शंख
२२. हरि	चक्र	पद्म	गदा	शंख
२३. श्रीकृष्ण	गदा	पद्म	चक्र	शंख
२४. गोविन्द	गदा	पद्म	शंख	चक्र

इनको विभिन्न वर्णों के अनुसार पूजा का आयोजन करने का मण्डन ने लिखा है [67]।

विष्णु के दश अवतारों में मुख्य रूप से वराह, त्रिविक्रम, नृसिंह, राम और कृष्ण की विविध लीलाओं की मुर्तियां बनी है। भूवराह या आदिवराह की प्रतिमा कुंभ स्वामि के मन्दिर चितौड़ में है। इसमें ४ हाथ है। वामन रूप के समय भगवान द्वारा पृथ्वी पाताल व स्वर्ग लोक को लांघने के लिए जब पांव उठाते हैं वह स्वरूप त्रिविक्रम कहलाता है। चितौड़ के कुंभ स्वामि के मन्दिर में यह मूर्ति उत्कीर्ण हैं। यह मूर्ति तीन प्रकार के भावों से उत्कीर्ण की जाती है [68]। (१) जिस मूर्ति का एक पांव घुटने तक ही उठा हो वह केवल भूलोक को लांघने की सूचक है। (२) जो छाती तक के भाग तक पांव उठा हुआ बतलाती हो वह भूलोक और अंतरिक्ष लोक को लांघने की सूचक है एवं (३) जो मूर्ति ललाट तक एक पांव उठा हुआ बतलाती हो वह तीनो लोकों को लांघने की सूचक हैं। चितौड़ वाली मूर्ति भूलोक और अंतरिक्ष लोक को ही लांघने की सूचक है। इसमें नमुचि राक्षस की मूर्ति भी बनी हुई रहती है।

---

६७. रूप मण्डन ३।३–७ व देवता मूर्ति प्रकरण ५।१–५।

६८. डा० गोपीनाथ राव—इलेमेंटस आफ हिन्दू इकोनोग्राफी भाग १ खंड १ पृ० २५७

स्वामी

विष्णु की कुछ विशेष उल्लेखनीय प्रतिमाएं बैंकुण्ठ, त्रैलोक्य मोहन, अनन्त। विश्वरूप की है। इन सर्व प्रतिमाओं में ४ मुख होते है [69]। वैकुण्ठ की प्रतिमा में सामने का मनुष्य का, दक्षिणी भाग का नृसिंह का व पश्चिमी भाग स्त्री का एवं उत्तरी भाग वराह का होना चाहिए। कहीं-कहीं ऊपर का मुख नहीं बनाया जाता है। आयुधों का क्रम रूप मंडन के अनुसार गदा, खड्ग बाण चक्र शंख, खड्ग धनुष और पद्म है। आबू के अचलगढ़ में १४ हाथ वाली और बैकुण्ठ की प्रतिमा है। रूप मडन के अनुसार बैकुण्ठ की प्रतिमा में ८ हाथ ही होते हैं जबकि इसमें ८ से अधिक हैं। श्री रतनचन्द्र अग्रवाल का कथन है कि अपराजित पृच्छा के अनुसार बैकुण्ठ की १४ हाथ वाली प्रतिमाएं भी बनाई जाती थी [70]। अनन्त की प्रतिमा बैकुण्ठ की तरह चार मुख वाली होती है केवल मात्र हाथों की संख्या में परिवर्तन होता हैं। बारह हाथ वाली इस प्रतिमा को अनन्त संज्ञा दी जाती हैं [71]। चितौड़ के कीर्ति स्तम्भ की प्रतिमा में बारह हाथ नहीं हैं। विश्व मुख की प्रतिमा में चार मुख बैकुण्ठ और अनन्त की तरह होते हैं। त्रैलोक्य मोहन की एक प्रतिमा उदयपुर संग्रहालय में हैं जिसके लिए अनुमान किया जाता है कि यह कभी एकलिंगजी के विष्णु मन्दिर में पूजार्थ काम में लाई जाती रही होगी। कुछ मूर्तियां दो या अधिक देवों के सम्मिलित भावों को भी व्यक्त करती हैं इसलिये सम्मिलित भाव सूचक (कम्पोजिट फार्म) कहलाती हैं। इनमें (१) हरिहर पितामह, (२) ब्रह्मा-सूर्य (३) मातृण्ड भैरव (४) हरिहर, (५) अर्द्धनारीश्वर (६) सूर्यनारायण, (७) कृष्ण शंकर, (८) कृष्ण कार्तिकर्य, (९) शिवनारायण (१०) चन्द्रार्क पितामह (११) त्रैम्बक आदि की मूर्तियां मुख्य हैं।

शिव की विराट मूर्ति मोकलजी के मन्दिर में हैं। इसमें ६ हाथ और ३ मुख हैं। मध्य के दोनों हाथों में से एक में बिजोरा और दूसरे में माला दाहिनी ओर के दोनों हाथों में से एक में सर्प और दूसरे में खप्पर और बांयी ओर के शेष दोनों हाथों में से एक में दण्ड और दूसरी में ढाल हैं। विष्णु की तरह देवी मूर्तियां भी बहुत बनी थी। विष्णु की २४ अवतारों की मूर्तियां के साथ-साथ

---

६९. बेकुण्ठञ्च प्रवक्ष्यामि सोऽष्टबाहुर्महाबलः।
ताक्ष्यासिनश्चतुर्वक्त्रः कर्त्तव्यः शान्तिमिच्छता :५२।
गदा खंङ्ग चक्रशरं दक्षिणे च चतुष्टयम्।
शंख खेंट धनुः पदम् वामेढ़द्याच्चतुष्टयम्।५३।
अग्रतः पुरुषाकारं नारसिंह च दक्षिणे।
अपरं स्त्री मुखाकारं वाराहस्य तथोत्तरम।५४। रूपमण्डन ३ अध्याय

७०. राजस्थान भारती कुंभा विशेषांक पृ० १०५-६।

७१. रूप मण्डन ४ अध्याय ५५ से ५६।

अष्टमातृकाओं की भी प्रतिमाएं कुम्भलगढ़ से मिली हैं। कीर्ति स्तम्भ में कई देवी प्रतिमाएं हैं। चौथी मंजिल में त्रिखण्डा, तोतला, त्रिपुरा, लक्ष्मी, नन्दा, क्षेमकरी सर्वती, महारंडा, भ्रामणी, सर्वमंगला, रेवती, हरिसिद्धि, लीला, सुलीला, लीलांगी ललिता लीलावती, उमा, पार्वती, गौरी, हिंगलाज, हिमवती आदि की प्रतिमाएं हैं। मण्डन ने १३ गोरियों की, ६ दुर्गा की, ८ मातृकाओं की, १२ सरस्वती, भद्रकाली, चण्डी आदि देवियों की मूर्तियों का उल्लेख किया हैं। इन मूर्तियों के आयुध व स्वरूप में बहुत साम्यता हैं एवं अति कठिनाई से ही पारस्पारिक भेद जाना जा सकता हैं। जैन प्रतिमाओं में राणकपुर में जैन मन्दिर में बनी मूर्तियां भी श्रेष्ठ है। मण्डन ने २४ तीर्थंकर और शासन देवताओं की मूर्तियां का उल्लेख किया हैं। इनके अतिरिक्त कई शिला पट्ट भी बनते थे। जैन प्रतिमाओं के बनाने में श्रेष्ठियों का बड़ा योगदान रहा है। इस काल में कई उल्लेखनीय जैम प्रतिमाएं बनी थी। कई बार प्रतिमायें बनी बना-बना कर बाहर भी भेजते थे। १५०८ वि० में कई प्रतिमायें बनाकर देलवाड़ा से कई स्थानों पर भेयी गई थी [72] इसी प्रकार वि० सं० १५१८ में आबू की प्रतिमायें भी कुम्भलगढ़ ले जायी गई थी। इस प्रकार मुर्ति कला का विशद और व्यापक रुप से अध्ययन ही नहीं किया गया बल्कि उसको प्रयोगात्मक स्वरूप भी दिया गया था। कुम्भा का शासन काल मुर्ति कला के विकास के लिये मेवाड़ में इतिहास में इतिहास में सबसे उल्लेखनीय हैं।

चित्रकला

चित्रकला की पश्चिमी भारतीय शैली जिसे राजस्थानी शैली भी कहते है उस समय तक विकसित हो चुकी थी। मेवाड़ में सबसे प्राचीन चित्रित ग्रन्थ "सावग परि-कमण सुत्त चूर्णि" है जिसे महारावल तेजसिंह के शासन काल में पूर्ण की थी यह आज-कल बोस्टन (अमेरिका) में है। मुनि पुण्यविजयजी ने हाल ही में "सुपासनाह चरियं" नामक ग्रन्थ के चित्रों का विवरण प्रकाशित कराया इसे वि० सं० १४८० में देलवाड़ा में मोकल के राज्य में पूर्ण किया गया था। इसमें ३७ चित्र हैं। सब चित्र सुन्दर ढंग से बने हुए हैं। कुछ चित्र तो पुस्तक का पूरा पृष्ठ घेरे हुए हैं। इनकी विशेषता रंगों की उपयोगिता है। लाल रंग का उपयोग पार्श्व में किया गया हैं। कही, २ साने का भी उपयोग किया गया है। मानव शरीर का चित्रण पश्चिमी भारतीय चित्र

---

७२. जैन लेख संग्रह भाग २ (जिनविजयजी) ले० सं० ३७२।

शैली के अनुरूप है । इसमें परम्परागत शैली का ही विकास हुआ हैं । कुमार स्वामी आनन्द का यह कथन था कि मेवाड़ में चित्र-कला का क्षेत्र नाथद्वारा तक ही निमित था । किन्तु हाल ही में इस ग्रन्थ के मिल जाने से एवं चावण्ड से रागमाला ग्रन्थ आदि मिल जाने से उक्त कथन अविश्वतस्त प्रतीत होता है ।

इनके अतिरिक्त भिति चित्र भी बनवाये जाते थे । [73] कुंभा ने संगीतराज में नाट्यशाला की दीवारों को भिन्न भिन्न चित्रों से सुसज्जित बतलाया हैं । सम सामयिक कृति सोम सौभाग्य काव्य में श्रेष्ठियों के भवनों में कई प्रकार के सुन्दर चित्रों का उल्लेख मिलता हैं । कुम्भा के महलों में चित्रों की अस्पष्ट रेखायें आज भी विद्यमान हैं । राज वल्लभ मण्डन में इस संबंध में विस्तृत सामग्री उपलब्ध हैं । उसमें लिखा है कि महलों में सुन्दर दृश्य ही चित्रित कराये जावें और भयोत्पादक दृश्य कभी भी चित्रित नहीं कराये जावें ।

मेंवाड़ में उल्लेखनीय कलाकार

कुंभा के समय मेवाड़ में उल्लेखनीय वास्तु कला एवं मूर्ति कला का विकास हुआ । इनके निर्माण हेतु कई उल्लेखनीय सूत्रधार [74] मेवाड़ में नियुक्त किये गये थे । सूत्रधार मण्डन का नाम इनमें सबसे उल्लेखनीय है । उसकी कृतियों का उल्लेख अन्यत्र कर दिया है । इसके पिता का नाम खेता था । कुंभलगढ़ से प्राप्त विष्णु प्रतिमाएं और एकलिंग मंदिर में बनी मूर्तियां रूपमण्डन से मिलती हुई है अतएव श्री रतन चन्द्र अग्रवाल इसे कुंभलगढ़ में नियुक्त हुआ मानते हैं । नाथा उसका छोटा भाई था जिसने वास्तु मंजरी की रचना की थी । मंडन के पुत्र गोविन्द और ईश्वर हुए थे । ईश्वर द्वारा जावर में रमाबाई के मंदिर का निर्माण कराया गया था । गोविन्द ने महाराणा रायमल के कलानिधि, उद्धारधोरणी और द्वारदीपिका नामक ग्रन्थ बनाये थे ।

---

७३. भिति चित्रों का सुन्दर वर्णन समसामयिक कृति सोम सोभाग्य काव्य में भी है—

आत्मीय सौधमपि चित्रकारप्रक्लृप्त–

सच्चित्रचित्रितजगत्रयय लोकचित्तम् ।

स्वः खंडगर्वहरमंडपचारुरुप–

पांचालिकाततिविमोहितविश्वविश्वम् ।। [पृ० ८३]

७४. श्री रतनचन्द्र अग्रवाल का लेख सम्मेलन पत्रिका कला अंक वर्ष ४४ अंक २–३ पृ० २८३ से २९४ ।

कीर्ति स्तम्भ का शिल्पी जइता तथा उसके पुत्र नापा, पामा और पुंजा थे । जैता के पिता का नाम लाखा है । इनका उल्लेख कीर्ति स्तम्भ में कई लघु लेखों में है और इनकी प्रतिमाएं भी बनी हैं । चितौड़ के महावीर प्रसाद की प्रशस्ति वि० सं० १४६५ में सूत्रधार नारद का उल्लेख है जो भी लक्ष या लाखा का पुत्र है । संभवतः यह भी जईता का भाई रहा हो । जइता के ३ अन्य पुत्र भूमि, चुथी और बलराज का भी उल्लेख मिलता है । बलराज वि० सं० १५५७ तक जीवित था क्यों कि अद्भुतजी के मन्दिर के पीछे शिवमूर्ति की चरण चोकी पर "सूत्रधारजीतासुतबलराजगड़ितं उल्लेख है ।

कुंभा के वि० सं १५०० के कड़िया ग्राम से प्राप्त एक शिलालेख में हादा नामक एक शिल्पी का उल्लेख है । इसे "शिल्पीमजांबुजकि:" लिखा है । इसके २ पुत्र फणा और रणा थे । यह हादा संभवतः १४८५ की "ऋंगी ऋषि" की प्रशस्ति में उल्लेखित है । मोकल की वि० सं० १४९४ के नागदा के अद्भुत जो के मुर्ति के नीचे लेख में "घटितं सूत्रधार मदन पुत्र धरणा वीकाभ्यां" । नागदा से प्राप्त एक अन्य मूर्ति में उत्कीर्णवान् सूत्रधार धरणा केन" है । अत एव दोनों एक ही प्रतीत होते हैं । इनके अतिरिक्त राणकपुर का प्रमुख शिल्पी "कृतमिद सूत्रधारो देपाकस्य" बड़ा प्रसिद्ध है । इनके अतिरिक्त देलवाड़ा से प्राप्त ए मूर्ति के चरण चोकी परै "सूत्रधार नरबद कृत:" लिखा है । आबू से प्राप्त लेखों में भी सूत्रधारों का कल्लेख है । यहां के १५ वीं शताब्दी के एक लेखों में "मेवाड़ा ज्ञाती सूत्र धार मिट्टिपा भा० नागल सुत सूत्रधार देवा भा० कारमी" आदि उल्लेख है अतएव प्रतीत होना है कि मेवाड़ से शिल्पी आबू में भी जाते थे डूंगरपुर के कलाकार "लूभा और लांपा" भी उल्लेखनीय है जिन्होंने विशाल काय पीतल की अचलगढ़ की वि० १५१८ में प्रतिष्ठित प्रतिभा बनाई थी ।

शत्रुञ्जय के वि० सं० १५८७ के लेख में चित्तौड़ के कई शिल्पियों का उल्लेख है । एक जइता का पुत्र भी प्रतीत होता है । इस प्रकार चित्तौड़ में शिल्पियों की अच्छी परम्परा विद्यमान थी ।

ग्याहरवां अध्याय

सामाजिक स्थिति

स्वच्छांभोभिः सरोभिर्दिशिदिशि धवलागारमालामहेन्द्र-
प्रासादैरुद्धतारागणपतिभिरिव प्रस्रवत्कंदरोघैः ।
नानापण्योपकीर्णै विपणिषु मणिभिर्दुर्गवर्येतिरम्ये
यस्मिन्पौरोजनोऽभीर्बहुवसति सुखं मन्यते स्वर्गवासात् ।।

कुंभलगढ़ प्रशस्ति ।।८२।।

सामाजिक स्थिति

हिन्दु समाज चिरकाल से ही चार वर्णों में विभक्त था। स्मृतिकारों ने वर्ण-व्यवस्था को स्थायी बनाने के लिए कई प्रकार के नियम बनाये जो कालान्तर से चले आ आ रहे थे। किन्तु मध्य काल तक आते-आते यह व्यवस्था बहुत ही प्राचीन प्रतीत होने लगी। इस व्यवस्था के प्रतिकूल कुछ जातियां ऐसी भी विद्यमान थी जिन्हें इनमें सम्मिलित नहीं किया जा सकता था। इनमे गुर्जर, जाट, अहीर, कायस्थ आदि जातियां थी। गुर्जर, जाट, अहीर आदि कृषि कार्य करते थे किन्तु वर्ण धर्म के अनुसार यह वैश्यों का कार्य था। इन्हें हम वैश्यों की श्रेणी में नहीं रख सकते क्योंकि उनका क्षेत्र भी संकुचित होकर कृषि के स्थान पर व्यापार तक ही मुख्य रुप से सीमित हो गया था। कायस्थों का एक नया वर्ग उत्पन्न हुआ। ये लोग राज्य कर्मचारी होते थे। माथुरों (कायस्थों) के बिजोलियां के आसपास कई लेख मिले हैं। ये लोग वहां महाकाल की यात्रा के निमित जाया करते थे।

वर्ण धर्म में इस प्रकार कुछ आंशिक परिवर्तन शुरू हो गया था। ब्राह्मणों की वित्तीय स्थिति दयनीय हो गई थी। धार्मिक कार्यों में उनको समाज में उच्चतर स्थान प्राप्त था किन्तु आर्थिक विषमता के कारण उनको लक्ष्मी की दया पर आश्रित रहना पड़ता था। कुंभलगढ़ के लेख से ज्ञात होता है कि जिन ब्राह्मणों ने पूजा पाठ और वैदिक यज्ञ कार्य बन्द कर दिया था उन्हें महाराणा मोकल ने कृषि कार्य से हटा कर पुनः वेद पढ़ाने को प्रेरित किया था [1]। युद्ध करना यद्यपि क्षत्रियों का कर्म था लेकिन उस काल में प्रायः सब ही वर्गों के लोग युद्ध कार्य में कुशल थे। वह युग व्यक्तिगत शौर्य का था। सब ही वर्गों के लोग देश रक्षा के लिए बड़ा से बड़ा बलिदान देने को तत्पर रहते थे। समसामयिक रचना अचलदास खींची की वचनिका से ज्ञात होता है कि जब अचलदास पर मांडू के सुल्तान ने आक्रमण किया था तब सब ही वर्णो के लोग युद्ध में सम्मिलित हुये थे। ब्राह्मणों में ऋषि सारंग और नारायण थे और वैश्यों में हरपति लाल बजा और वाला थे। उस काल का विश्वास था कि युद्ध में मृत्यु होने पर मुक्ति मिलती है। इसी प्रकार का वर्णन कान्डदे प्रबन्ध में भी है। समसामयिक डूंगरपुर के वि० सं०

---

१. **यो विप्रानमितान् इलं कलयतः कार्श्येन वृतेरलं।**

वेदं सांगम पाठयत् कलिगलग्रस्ते धरत्रीतले। कु० प्र० २१७।

१५३० चैत्रवदि ६ गुरूवार के एक लेख से प्रकट होता हैं कि एक भील स्वामि के आदेश नहीं होने पर भी कुलमार्ग की पालना करता हुआ युद्ध में सम्मिलित हुआ [2] ।

जाति प्रथा की जटिलता:—

भारत में मुसलमानों के आक्रमण से सामाजिक स्थिति में बड़ा परिवर्तन आ गया था । मुस्लिम आक्रमण कारी अन्य आक्रान्ताओं की तुलना में अधिक नृशंस थे एवं इन्हें धर्म में परिवर्तित नहीं किया जा सकता था । अतएव हिन्दुओं ने जाति प्रथा को सुदृढ़ और जटिल बनाना प्रारम्भ कर दिया । इसी के फलस्वरूप भारत में १००० वर्ष तक मुसलमानों का राज्य रहने पर भी कुछ ही प्रतिशत लोग मुसलमान हो सके थे, जब कि भारत के बाहर जहां कहीं भी इनका राज्य रहा सारे के सारे राष्ट्र का धर्म परिवर्तित कर दिया था । पवित्रता का आन्दोलन ऐसा चला कि एक जाति ने दूसरी जाति के साथ खाना पीना भी छोड़ दिया था । ब्राह्मणों ने अन्य सवर्णों से अपने आपको अलग मान चोका, कच्चा एवं पक्का का विधान बना दिया । मंडन ने ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों और शुद्रों के पूजनीय देव तक अलग अलग निर्देशित किये हैं । विष्णु के २४ रूपों का वर्णन करते समय वह लिखता है कि नारायण, केशव, माधव और मधुसुदन ये ४ मूर्तियां ब्राह्मणों को पूजनीय है । मधुमुदन और विष्णु क्षत्रियों को, त्रिविक्रम एवं वामन वैश्यों को श्रीधर की मुर्ति मोची, धोबी, नट आदि को पूजनीय है एवं मेद, भील, किरात, कुमार, वैश्या तेली और कलाल के लिये ऋषिकेश की मूर्ति सुखदायी है [3] । देवताओं का इस प्रकार का विभाजन उस काल की भावना के अनुकूल प्रतीत होता है ।

जातियों की संख्याओं में अनावश्यक वृद्धि हो गई थी । ब्राह्मणों में मुख्य रूप से ६ प्रकार थे जिन्हें "छन्यती" कहते है । क्षत्रियों में कई गौत्र हो गये थे । जैसे चौहानों में सोनगरा, हाड़ा, देवड़ा, मोहिल, खींची आदि । वैश्यों में भी कई शाखाएं हो गई इनमें माहेश्वरी, अग्रवाल, पोरवाल, ओसवाल आदि । ओसवालों का एक वर्ग अलग ही उदय हुआ । इनके लिए तत्कालीन लेखों में उकेश, उएसवाल, उपकेश, उसवाल और औसवाल शब्द मिलते हैं । ओसवालों में 'बीसा" और "दसा" का भेद भी उस काल में प्रचलित था ।

---

२. संवतः १५३० वर्षे शाके १३९६ प्रवर्तमाने चैत्रमासे कृष्ण पक्षे षष्ठयां तिथौ गुरूदिने बीलीआ मालासुत रातकालह मंडपाचल सुरताण गयासुदीन आवि-डूंगरपुर भाज तह स्वामि न इच्छति आपणउं कुलमार्गं अनुपालतां वीर व्रतेनप्राणछांडिसूर्यमंडलभेदीसुयोज्यमुक्तिपामि (ओझा–डू० इ० पृ० ६९) ।

३. रूप मंडन ३।४ से ६ श्लोक ।

महाजनों की ८४ जातियां

उस समय महाजनों की ८४ जातियां प्रसिद्ध थीं। सम-सामयिक पृथ्वीचंद चरित और सोम सौभाग्य काव्य में इनका उल्लेख है [4] । सोम सौभाग्य में श्रेष्ठि गोविन्द का वर्णन करते हुए लिखा है, कि इसने अपनी ८४ जातियों का उद्धार किया। इन जातियों के नामों का भी उल्लेख मिलता है। जैसे श्री श्रीमाली, ओसवाल, बघेरवाल, डींडू (माहेश्वरी) पुष्करवाल, डीसावाल, मेडतवाल, सुराणा,सोनी खण्डेलवाल, गूजर, मोढ़' नागर, दसोरा, नागदा, मेवाड़ा, नरसिंहपुरा, अगरवाल, चितौड़ा आदि है। इस ग्रंथ में भी जातियों की संख्या ८४ ही वर्णित है [जिम कलिकाल प्रवर्तमानि चउरासी जाति बोलियई [5]] सम-सामयिक कृति कान्हड़दे प्रबन्ध में इन जातियों की दो श्रेणियां [6] की हैं- जैन, और २- माहेश्वरी

महाराणा कुम्भा के समय के उल्लेखनीय श्रेष्ठिवर्ग

रामदेव नवलखा परिवार

यह परिवार मेवाड़ में बड़ा उल्लेखनीय रहा है। रामदेव राणा खेता के समय मेवाड़ का मुख्य मंत्री था। करेडा जैन मंदिर के विज्ञप्ति लेख में इसका सुन्दर वर्णन है। इसके पिता का नाम लाधु और दादा का नाम लक्ष्मीधर था। इसके २ पत्नियां थी। मेलादे से सहणपाल उत्पन्न हुआ और माल्हणदे से सारंग। सहणपाल नवलखा भी राणा मोकल और कुंभा के समय मुख्य मंत्री था। इसे शिलालेखों में "राजमंत्री धुराधौरय:" वर्णित किया है। आवश्यक वृहद वृति की प्रशस्ति में उसके ८ पुत्रों का उल्लेख है यथा-रणमल, रणधीर, रणवीर, भांड़ा, सांड़ा, रणभ्रम चउडा और कर्म सिंह इसकी मां मेलादेवी वि० सं० १४८६ तक जीवित थी। उसने ज्ञानहंसगणि से" संदेह दोलावली" नामक पुस्तक लिखाई थी। प्रशस्ति में इसकी बड़ी प्रशंसा की गई है। रामदेव की उस समय तक मृत्यु हो चुकी थी। सारंग और उसके पुत्रों का उल्लेख नागदा के अद्भुतजी की मूर्ति के लेख में हैं। इसमें उसको "माल्हणकुक्षिसरोजहंसोपम जिनधर्मकर्पूरवातसद्य धीनुकसा० सारंग" लिखा है। इसके भी २ पत्नियां थी जिनके नाम है हीमादे और लखमादे। इस परिवार के कई लेख और ग्रंथ प्रशस्तियां मिली है [7]।

---

४. सोम सौभाग्य काव्य सर्ग ७।६।

५. प्राचीन गुजराती गद्य संदर्भ पृ० १५५।

६. कान्हडदे प्रबन्ध ४।१३।

७. करेड़ा—विज्ञप्ति महालेख वि० सं० १४३१ में दीक्षा वर्णन। देलवाड़ा में मेरुनन्दन उपाध्याय की मूर्ति का लेख वि० सं० १४६६। वि० सं० १४८६ के जिनवर्द्धन सूरि एवं द्रोणाचार्य की प्रतिमाओं के लेख देलवाड़ा। संदेह दोलावली की वि० सं० १४८६ की प्रशस्ति दृष्टव्य है।

वीसल श्रेष्ठि परिवार

वीसलश्रेष्ठि ईडर का रहनेवाला था और इसका विवाह देलवाड़ा में उपरोक्त रामदेव श्रेष्ठि की पुत्री खीमाई से हुआ था। यह मेलादेवि से उन्पन्न हुई थी और सहणपाल की सगी बहिन थी "श्रीधर्मोत्किटमेदपाटसचिव श्रीरामदेवांगजमेलादेवि समुद्भूत-खीमाई रिति" वीसल के पिता का नाम वत्स था जो ईडर के राजा रणमल्ल का मंत्री था। इसके ४ पुत्र थे (१) गोविन्द (२) वीसल (३) अकुरसिंह और (४) हीरा। गोविन्द द्वारा संघ निकालने का सविस्तार वर्णन सोम सौभाग्य काव्य में है। इसमें इसके एश्वर्य का जो वर्णन किया गया है वह उल्लेखनीय है। वीसल का वर्णन भी सोम सौभाग्य काव्य में है। इसमें लिखा है कि वीसल अत्यन्त धार्मिक पुरुष था। इसके दो पुत्र थे (१) धीर और चंपक। इसने देलवाड़ा में आचार्य सौमसुन्दर सूरि से विशालराज को वाचक पद दिलाने हेतु बड़ा भारी महोत्सव किया था। इसने क्रियारत्न समुच्चय ग्रंथ की १० प्रतियां भी लिखाई। इसकी प्रशस्ति में इसे "अन्य स्त्रीविरत्, सुधर्मनिरतो-भक्तः" लिखा हैं। चित्तौड़ में इसने श्रेयांसनाथ का एक भव्य मंदिर भी बनाया जिसकी प्रतिष्ठा आचार्य सोमसुंदर सूरि से कराई थी। इसके पुत्र भी बड़े धार्मिक थे। चंपक ने ९३ अंगुल की एक मनोरथ कल्पद्रुमपार्श्वनाथ की प्रतिमा स्थापित करा इसकी प्रतिष्ठा सोमसुन्दर सूरि से कराई और चंपक ने एक बड़ा उत्सव करके [८] जिनकीर्ति को सूरि पद दिलाया।

गुणराज श्रेष्ठि परिवार

गुणराज मेवाड़ के चितौड़ का रहने वाला था और अहमदाबाद में व्यापार करता था। इसका पूर्वज बीसल बड़ा प्रसिद्ध था जो चित्तौड़ में रहता था इसका पौत्र धनपाल व्यापार करने हेतु अहमदाबाद गया थ। इसका वंशज श्रेष्ठि गुणराज [८अ] हुआ इसके भाइयों में उल्लेखनीय छोटा भाई अम्बक था जो जैन साधु हो गया था इस परिवार का सविस्तार वर्णन चित्तौड़ में वि०स० १४९५ के लेख में हैं। गुणराज के ५ पुत्र थे (१) गज, (२) महिराज, (३) वाल्हा (४) कालु और (५) ईश्वर। वाल्हा को राणा मोकल बहुत मानता था। कालू मेवाड़ राज्य में उच्चपद पर नियुक्त था। गुणराज द्वारा संघ निकालने का उल्लेख सोम सौभाग्य काव्य में है। इस संघ में राणकपुर मंदिर का निर्माता धरणाशाह भी था। इसने गुजरात का बादशाह अहमदशाह से फरमान प्राप्त

---

८. पीटरसन की छठी रिपोर्ट पृ० १७–१८ श्लोक १–१२। देवकुलपाटक पृ० ७–८। सोमसौभाग्य काव्य सर्ग ७वां सर्ग। गुरुगुणरत्नाकर काव्य श्लोक ६५ पृ० १२।

८अ सोमसौभाग्यकाव्य सर्ग ८ श्लोक १७ से ९२। राणकपुर के लेख में भी इस संघ यात्रा का उल्लेख है।

कर संघ यात्रा की थी। इसके पुत्र वाल्हा ने मोकल से आज्ञा लेकर चित्तौड़ में महावीर जैन मंदिर बनवाया जिसकी प्रतिष्ठा वि०स० १४६५ में राणा कुंभा के समय सोमसुन्दर आचार्य से कराई।

धरणाशाह

इसके पिता का नाम कुरपाल था और दादा का नाम सांगण था। माता का नाम कामल या कर्पूरदे था। ये दो भाई थे रतना और धरणा। दोनों भाई धार्मिक प्रवृति के थे। ये सिरोही के नांदियां ग्राम के रहने वाले थे। कालान्तर में मालवा चले गये और वहां से मेवाड़ में कुंभलगढ़ के समीप मालगढ़ में आ बसे जहां राणकपुर का मंदिर बनवाया। इन्होंने अजाहरी सालेरा और पिंड़वाड़ा में कई धार्मिक कार्य कराये थे। वि०स० १४६५ के पिंड़वाड़ा के लेख में और राणकपुर के वि०स० १४९६ के लेख में इसका उल्लेख है। इसके भाई रतना के वंशज सालिग ने वि०स० १५६६ में आबू में प्रसिद्ध चतुर्मुख आदिनाथ जिनालय बनाया था।

इनके अतिरिक्त देलवाड़ा का पिछोलिया परिवार जिनके वि० स० १४९४ और १५०३ के लेख मिले है उल्लेखनीय है। तीर्थ माला स्तवन में "मेघवीसलकेल्हहेमसद्धीमनिबकटुकाद्यासकैः" वर्णित है जो देलवाड़ा के उल्लेखनीय श्रेष्ठी थे। इनमें केल्ह का पुत्र सुरा वि० सं० १४८९ में जीवित था। निम्ब का उल्लेख सोम सौभाग्य काव्य के ८ वे सर्ग में है। यह संघाधिपति था। इसने भुवन सुन्दर को सूरिपद दिलाने के लिए उत्सव कराया था।

इनके अतिरिक्त चितौड़ में काबरा परिवार और कुंभलगढ़ में देवपुरा परिवार भी अच्छे प्रतिष्ठित समझे जाते थे।

उस समय श्रेष्ठियों के नाम प्रायः एक शब्दात्मक मिलते हैं उदाहरणार्थ सांगा, उदा कुंभा, आदि। स्त्रियों के कई विचित्र नाम मिलते हैं।

बहु विवाह

मध्य काल में राजाओं और श्रेष्ठियों में बहु विवाह का बहुत प्रचलन था। राजाओं के कई रानियां होती थी। बहु विवाह सम्बन्धी कई कथायें भी प्रचलित हैं। समसामयिक कृतियों में राजाओं श्रेष्ठियों और ख्याति प्राप्त पुरुषों के कई स्त्रियां वर्णित की गई हैं। सोम सुन्दर सूरि के उपदेश माला की कथाओं में भी इसी प्रकार वर्णन हैं [९]। बहु विवाह के कारण उस काल के इतिहास में बड़ा उथल पुथल हुआ है। राज

---

९. नन्दिषेण कथा में ७२००० स्त्रियों तक की कल्पना की है। ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती की कथा में ६४००० स्त्रियों के साथ विवाह करने का प्रसंग है। यह केवल मात्र वर्णन करने की परिपाटी थी। वि० सं० १४९४ के नागदा के लेख में रामदेव और सारंग नवलखां के दो पत्नियों का उल्लेख है।

परिवार में बड़े षड़यन्त्र हुये थे। महाराणा लाखा का हंसा के साथ विवाह इसी प्रकार की घटना है जिससे मेवाड़ के इतिहास में बड़ा परिवर्तन हुआ। चूंडा को राज त्याग करना पड़ा और छोटा भाई होने पर भी मोकल राज्य का अधिकारी होगया। इसी प्रकार मारवाड़ में राव चूंडा को भी मोहिली रानी के प्रेम के कारण राव रणमल को मारवाड़ से निष्कासित करना पड़ा।

कुंभा ने संगीतराज में रानियों के साथ वार नारियों का भी उल्लेख किया है [10]। राजाओं के इन दासियों या पासवानों के पुत्रों के कारण भी कई बार उथल पुथल हुए हैं। खेता के पासवानिये पुत्र चाचा और मेरा के कारण मोकल को अपनी जान से हाथ धोना पड़ा।

कन्याओं के विक्रय का उल्लेख मिलता है। विवाह के समय वरपक्ष से कन्यादान वाले अपनी कन्या विवाह के लिए देने के फल स्वरुप कुछ नगद राशि लेते थे। इसे राजस्थानी में "रीत" कहते हैं। यह संस्कृत के रीति शब्द का राजस्थानी रूप है। समसामयिक कान्हड़दे प्रबन्ध [४।१८८ एवं १।११६] में इस प्रथा का उल्लेख है। श्रावक व्रतादि अतिचार [वि सं० १४६६] में इसे घृणित माना है।[11]

कन्याओं का अपहरण कर विवाह करना गौरव की बात मानी जाती थी कुंभलगढ़ के लेख से ज्ञात होता है कि कुंभा हमीरपुर के राजा रण विक्रम की कन्या को वलात् अपहरित कर ले आया था। राठौड़ नर्बद भी सुप्यारदे को जेतारण से अपहरित कर ले आया था। नर्बद सुप्यारदे की प्रेम कथा उस समय की बड़ी उल्लेखनीय घटना हैं। नर्बद राठौड़ वंश का उल्लेखनीय योद्धा था रूण के सांखला सीहड़ की पुत्री सुप्यारदे की उसके साथ सगाई की थी। परन्तु जब मंडोवर का राज्य नर्बद के हाथ से निकल गया तो सुप्यारदे की शादि जैतारण के स्वामी नरसिंह सिंधल के साथ करदी। नर्बद चित्तोड़ में राणा कुंभा के पास आरहा। उसने राणा से कहा कि सांखला ने मेरी मांग दूसरे को परणादी है इस पर राणा ने सांखला को मांग देने को कहा। सांखला ने कहा

---

१०. पृष्टे चास्य वरांगना नरपतेः स्यु वारनार्योलसत्।
तारुण्याकरभूमयोवसतयो लावण्यलीलाश्रियाम् ॥

सं० रा० नृत्यरत्नकोश १।११८

११. बीजइ मृषावाद व्रतिपांच अतिचार—कन्याढोरभूमिसम्वन्धि लहिणइं देणइं व्यवसाय वादविढवाडिकरतां जूठउ बोलिउं ···।

(श्रावकव्रतादि अतिचार वि० सं० १४६६)

कि सुप्यारदे का तो विवाह हो चुका है। इसकी छोटी बहिन है उसको मै दे सकता हूं। नर्बद ने कहा यह मुझे जब ही स्वीकार हो सकता है कि सुप्यारदे वर वधु की आरती उतारे। भाग्य से नरसिंह सिंघल जो सुप्यारदे का पति था, उस समय चित्तौड़ में ही था। उस को जब सारा वृतान्त मालुम हुआ तो अपनी पत्नी को स्पष्ट कह दिया कि अगर तूं विवाह में जावे तो नर्बद की आरती मत उतारना और इस बात की जांच के लिये एक नाई भी साथ दे दिया। सुप्यारदे ने एक बार तो अपने पिता के समक्ष आरती उतारने से इन्कार कर दिया लेकिन राणा की सेना के डर से उसके पिता ने उसे बाध्य किया कि वह आरती उतारले। इस पर उसने वर वधु की आरती उतारली। समीप खड़े नाई ने बड़ी चतुराई से उसकी साडी पर कुछ रग के छींटे दे दिये। विवाह से लौटने पर नाई ने सारी बात नरसिंह को कहदी। इस पर वह बहुत बिगड़ा और उसने सुप्यारदे के साथ अमानुषिक अत्याचार किया। सुप्यारदे ने नर्बद से कहलाया कि आपकी आरती उतारने से मेरी स्थिति इस प्रकार की हो रही है। नर्बद ने उसका अपहरण कर लिया कुंभा के समय में ही इसी प्रकार की एक अन्य कथा जाखोड़ा के रतनसिंह नाथावत की लडकी के सम्बन्ध में प्रचलित है। लड़की की पहले सगाई खेतसी रतनसिंहोत के साथ करदी। तत्पश्चात् सुरजमल बालीसा के लड़के सगरा के साथ करदी। दोनों जगहों से बरात आगई। खेतसी ने सगरा को मार दिया। इस प्रकार की घटनाएं सामान्य थी।

सती प्रथा

सती प्रथा मध्य काल में राजस्थान में ही नहीं भारत के अन्य भागों में भी प्रचलित थी। पति के मरने पर स्त्रियां स्वेच्छा से या सामाजिक प्रतिबन्ध से पति के साथ ही जल जाती थी। "सत्यव्रत" शब्द से ही सती शब्द की व्युत्पति होना डा० गोपीनाथ जी शर्मा मानते हैं। मेवाड़ में सती प्रथा का प्रचलन काफी पुराना है। विसं० १०८५ का गोहिल का एक स्मारक जहाजपुर नामक स्थान पर मिला है। वि० सं० १३३० के चीरवा के लेख में सती होने का गोरवपूर्ण वर्णन मिलता है। इसमें "दग्धा दहनेदेहं तद् भार्या यातमन्वगगत्" वर्णित है। पति के साथ सहगमन करते समय नारी गौरव का अनुभव करती हैं। उसका विश्वास है कि उसे पति के साथ अन्य लोक में भी सुख पूर्ण जीवन व्यतीत करने को मिलेगा। अलबरूनी ने सती होते अपनी आंखों से मालवे में अमझेरा में देखा था।

सती होने से पूर्व स्त्री अपने सास श्वसुर के चरण छूती थी। बड़े उत्सव और बाजों के साथ जाती थी। वह सारे जेवर पहन कर जाती थी जिन्हें रास्ते में फेंकती जाती थी। इनमें मुख्य रानी घोड़े पर बैठती थी। हाथ में एक नारियल

---

१२. रिसर्चर भाग ३ और ४ पृ० ५४ से ५६।

होता था [13] । ये श्मसान तक जाती थी । वहां पहले चिता को पूजती थी फिर अपने पति का शव गोद में रख कर अपने आपको अग्नि की ज्वाला में जला देती थी ।

सती के साथ-साथ जौहर की प्रथा भी प्रचलित थी । जब योद्धाओं को अपने बचने की उम्मीद कम रहती और शत्रुओं द्वारा बुरी तरह से घिर जाते थे तब अपनी स्त्रियों और पुत्रियों को अग्नि के हवाला कर देते थे । खजाइन उलफतुह के अनुसार जब अल्लाउद्दीन खिलजी ने रणथम्भोर पर आक्रमण किया था तब हमीर के परिवार वालों ने जोहर किया था [14] ।

गर्भवती और छोटी अवस्था वाले बच्चों की मां कभी-कभी सती नहीं भी होती थी ।

वैश्यावृत्ति

मध्यकाल में एक ओर नारी की पवित्रता को प्राथमिकता देने के कारण जौहर और सती प्रथा प्रचलित थी तो दूसरी ओर वेश्यावृत्ति का भी काफी प्रचलन था । यह एक विचित्र सामञ्जस्य है । वैश्याओं का उल्लेख कुंभा के समसामयिक

---

१३. वही...

१४. तारीख-इ-अल्फी—[खजाइन उल फतुह]—ईलियट और डोन्सन—भाग ३ पृ० ७५ । हमीर महाकाव्य और हमीरायण में वर्णित है कि राजा हमीर को रतिपाल और रणमल के छल करने पर बड़ा दुःख हुआ । उसने सब नागरिकों को कहा कि जो किले से बाहर जाना चाहता है वह स्वेच्छा से जा सकता है । इस पर महिमाशाही को कहा कि जाजा तुम परदेशी हो तुम भी चले जाओ । उस वीर को इस पर बहुत दुःख हुआ । वह अपनी हवेली में गया और अपने बच्चों और स्त्रियों को तलवार के घाट उतारकर वापस आया ताकि वे अल्लाउद्दीन के हाथ ही नहीं पड़ सके । उसने आकर के हमीर को कहा कि जाने के पूर्व उसकी भाभी उससे मिलना चाहती है । हमीर ने जब हवेली में जाकर वह दृश्य देखा तो बड़ा विस्मित हुआ । लोटकर पद्मसार के पास आकर रंगादेवी आदि रानियों को अपनी केशराशि दी ताकि वे इनके साथ जलकर जोहर कर सके । देवल देवी को गले लगाकार वह रो पड़ा इस प्रकार सब रानियों को अग्नि प्रवेश कराके जोहर कराया ।

[हमीरमहाकाव्यम् १३।१३८–१९२ । हम्मीरायण २४१–२७७]

साहित्य में कई स्थलों पर मिलता है। मंडन ने अपने शिल्पशास्त्र के ग्रंथों में कई जगह इनका उल्लेख किया है। राज वल्लभ मंडन में "वैश्याकंचुकिशिल्पिनामपि" वेदाधिका विंशति" (६।३५) कह कर उनके आवास स्थलों का वर्णन किया गया है। रूप मंडन में "कुंभकारवणिग्वैश्याचक्रिकाध्वजिनामपि" कह कर वैश्याओं द्वारा पूजकीय विष्णु के रूप का वर्णन किया है। योगशास्त्रबालावबोध में वैश्याओं को नट विट माछी वागरी पुलिंद मातंग आदि के साथ वर्णित किया है।

वैश्यायें नर्तकियों का कार्य भी करती थी। राणकपुर के जैन मन्दिर और चित्तोड़ के शृंगार चंवरी में उत्कीर्ण मूर्त्तियों में नर्तकियों को कई प्रकार की भाव भंगिमाओं के साथ प्रदर्शित किया है। सोम सोभाग्य काव्य में "सन्नर्तकीनिकर मण्डित मंडपौधम्" वर्णित है। धार्मिक उत्सवों में भी इनका नृत्य प्राय हुआ करता था। देलवाडा (मेवाड) में जब बीसल श्रेष्ठि ने वाचक पद के लिए महोत्सव किया उसमें भी नर्तकियों के नृत्य का उल्लेख है [नृत्यति सन्नर्तकी जने सुभगं] राजाओं और श्रेष्ठिओं के वर्णन में तो यहां तक कहा गया है कि उसके घर में केवल मात्र नर्तकी स्त्री ही नहीं थी अपितु उसकी कीर्ति भी सम्पूर्ण विश्व में मृत्य करती थी [15]। वैश्याओं का यात्रा के समय मिलना शुभ माना जाता था [पण्यागना नूतनभव्यभूषणैर्विभूषिता दृक्पथमाययौ ततः]।

नर्तकियों और वैश्याओं के साथ-साथ दूती कार्य करने वाली स्त्रियों का भी उल्लेख है। महाराणा कुंभा द्वारा विरचित गीत गोविन्द की रसिक प्रिया टीका में इनका उल्लेख हैं।

दासी प्रथा

तत्कालीन राजपूत राज्यों में सर्वत्र ही दासदासियों का उल्लेख मिलता है। कुंभलगढ़ में लेख में नारदीय नगर की दासी प्रथा की ओर ध्यान आकृष्ट

---

१५. गोविंदसद्मनि मनोज्ञगभीरनाभिकूपास्फुरल्लवणिमामृतचारुरूपा।
नो केवलं श्रितकला किल नर्तकीस्त्री संस्फूर्त्ति कीर्त्तिरपितास्य ननर्त विश्वे।।
सोम सौभाग्य ।।७।२९

१६. गीत गोविन्द की टीका पृ० ७३।

किया गया है [17]। अलबरूनी ने भी लिखा है कि उस काल में व्यापक रूप से दासी प्रथा प्रचलित थी। उसे भी भेंट के रूप में १४ दासियां भेजी गई थी। उसमें एक लड़की तो लाने वाले को पुरस्कार के रूप में दे दी। कुछ उसने रखी और शेष वापस लौटादी। राजपूतों में लड़कियों को दहेज में देने का रिवाज प्रचलित था। इन लड़कियों के लालन पालन का सम्पूर्ण भार राजपूतों पर ही रहता था। दहेज में प्रदत्त लड़की का विवाह वर पक्ष के किसी दास से कर दिया जाता था। ये घर का सारा कार्य भी करती थी। वि० सं० १४६६ में लिखित श्रावक व्रतादि अतिचार ग्रंथ में दासों का भी उल्लेख मिलता है (दास कमारा छोरूनां कुद्रव्य सातिया)

समाज में स्त्रियों का स्थान

स्त्रियों को स्वाधीनता नहीं थी। जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त उन्हें पुरूषों के आधीन रहना पड़ता था। वह जन्म के समय पिता, विवाह के पश्चात् पति और वृद्धावस्था में पुत्रों की आश्रित रहती थी। स्त्रियों में शिक्षा का अभाव था। स्त्रियों को सम्पति सम्बन्धी अधिकार भी नहीं थे। रायमल के समय दक्षिण द्वार की प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि पुत्रहिनों की सम्पति को राजा ले लेता था [18]। इस प्रथा को रायमल ने मिटाया था। स्त्रियों में प्रर्दा प्रथा व्यापक रूप से प्रचलित हो गई थी। पर्दा प्रथा भद्र समाज में पहले से ही थी जन साधारण में मध्यकाल में प्रचलित हुई [19]।

सामाजिक संस्कार

हिन्दू ग्रंथों के आधार पर मनुष्य जीवन में १६ संस्कारों का उल्लेख मिलता है। ७वीं शताब्दी के पश्चात् जात कर्म, नामकर्म, विवाह तथा श्राद्ध का उल्लेख अधिकतर मिलता है। सूत्रधार मंडन राजवल्लभ मंडन में सीमांत, अन्न प्राशन, कर्णवेध आदि

---

१७. या नारदीयनगरावनिनायकस्नार्थानिरन्तरमचीकरदत्रदास्यम्।

कु० प्र० २४६

१८. धननि निधनमाप्तेपत्यहीने तदीयां धनमवनिपभोग्यं प्राहुरर्थागमज्ञाः।
विदितनिखिलशास्त्रोराजमल्लस्तदुज्झन् विशदयति यशोभिर्वाप्प भूपान्ववायं ।८३।।

दक्षिणी द्वार की प्रशस्ति

१९. पाणिनि ने "असूर्यम्पश्या राजदारा: ।३।२।३६। का उल्लेख किया है जिसका अर्थ है कि राजकुमारी पूर्ण रूप से पर्दे में रहती थी। भास के प्रतिमा नाटक में सीता को अवगुंठन के साथ वर्णित की है। मच्छकटिका में वसंतसेना जब वेश्या से भद्र महिला बनती है तब पर्दा रखना शुरू कर देती है। किन्तु इसका व्यापक रूप से प्रचार मुसलमानों के आक्रमण के पश्चात् ही हुआ था।

का उल्लेख करता है । वह लिखता है कि गर्भवती स्त्री के ८ वें अथवा छठे महिने रवि, गुरु अथवा मंगल के दिन मृगशीर्ष पुष्य, हस्तमूल और श्रावण नक्षत्र में सीमंत कर्म किया जावे । अन्नप्राशन पुत्र जन्म के छः महिने बाद एवं पुत्री के ५ महिने बाद किया जावे [२०] । इनके अतिरिक्त विद्याध्यन, चूडा पहिनना आदि के मुहुर्तों का भी उल्लेख किया है ।

वस्त्र और आभूषण

सोने के आभूषण उच्चकुलों में अधिक प्रचलित थे । मंडप स्वर्ण[२१] आभूषणों का उल्लेख करत है । शृंगार चंवरी कुंभस्वामि और महावीर स्वामी के चित्तौड़ स्थित मंदिरों में उत्कीर्ण मूर्तियों से तत्कालीन आमूषणों का ज्ञान होता है । स्त्रियों के गले में कंठीहार और माला, हाथों में बाजू और चूंड़ियां कमर में करधनी, पावों में भी जेवर पहनने का रिवाज था । पुरुष मूर्तियों के कानों में कुंडल गले में कंठी और एवं अगुलियों में मणि मुद्रिकाएं कमर में करधनी पहनने का प्रचलन था । सोम सौभाग्य काव्य में आभूषणों का सविस्तार से उल्लेख है । स्त्रियां चूड़ा पहनती थी । मंडन कांच चूड़ा मणियुक्त चूड़ा, एवं हाथीदांत [२२] के चूड़े का उल्लेख करता है । मध्यम श्रेणी के लोग चांदी के आभूषण पहनते थे । शुद्रों को सोने और चांदी के आभूषण पहनने का अधिकार नही था । वे कांस्य और पीतल के जेवर पहनते थे[२३]। रत्नों को पहनने का भी उल्लेख मिलता है ।

---

२०. रा० मं० १३। ४-५-६

२१. वहीं १३।१२ स्वर्ण से तुलादान कराने का उल्लेख मिलता है । राणा लाखा के लिए दक्षिण द्वार की प्रशस्ति में "लक्ष सुवर्णानि ददौ द्विजेभ्यो लक्षस्तुला दानविधानदक्षः एवं "ऋंगी ऋषि के लेख में मोकल के लिए "धादातुला कांचनी" का उल्लेख है । अत एव मेवाड के स्वर्ण एवं ऐश्चर्य का पता चलता है ।

२२. हैमं विद्रुमशंख काचमणयो दंतोभिरक्तां वररा० म० १३।१२

२३. शुद्रों को स्वर्ण और चांदी के आभूषण पहिनने का अधिकार नहीं था । राजस्थान बनने के कुछ वर्ष पूर्व तक यह प्रथा मेवाड़ में प्रचलित थी ।

वस्त्रों में सूती और रेशमी दोनों प्रकार के वस्त्र पहने जाते थे । सू ी वस्त्र गांवों में ही बना लिये जाते थे [24] । मंडन वस्त्रकारों का भी उल्लेख गांवों के वर्णन के साथ करता है [25] । कपाल का कई स्थलों पर संगीत राज और मंडन के ग्रंथों में उल्लेख मिलता है रेशमी वस्त्र आयात किये जाते थे । देलवाडा के वि० १४९१ के लेख के अनुसार "पट्ट सूत्रीय कर" लगा हुआ था । सोम सौभाग्य काव्य में "तेन स्वदेश परदेश समागतैः" वस्त्रों का उल्लेख है । इसी प्रकार इसमें "वैदेशिकानेक" वस्त्रों का उल्लेख हैं ।

रंगीन और छपे हुये वस्त्रों का भी प्रचार था । रंगकारों का भी उल्लेख मंडन करता है । औरतों में साडी, लहंगा और कंचुकी पहने का रिवाज था । पुरूष पगड़ी, धोती और "दगल बडी" पहनते थे । जैनों में पूजा के समय एक उत्तरीय एवं एक धोती पहनी जाती थी । जैन ग्रंथों में अंकित चित्रों के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि राजा लोग जाकेट और पांवों में जामा पहनते थे । यह पोशाक अतिप्राचीन थी सम सामयिक कृति उपदेश तरंगिणी में "स्वर्णतारी पट्टकूलयवकबाहिभूर्णका दिवस्त्र" शब्द हैं जो बड़े लोगों के प्रयोग में आता था ।

खेती

खेती अधिकांशतः सब ही वर्णों के पुरूष करते थे । ब्राह्मण भी खेती में लग गये थे । खेती में लग गये थे । खेती के लिए हलों का प्रयोग होता था । वि० स० १४६६ में लिखे "श्रावक व्रतादि अतिचार" ग्रंथ से प्रकट होता है कि भाड़े से भी हल चलाये जाते थे । कूये, तालाब और बावड़ियों द्वारा सिंचाई होती थी । उस समय में व्यापक रूप से इनका निर्माण हुआ था । कीर्तिस्तम्भ प्रशस्ति और राजवल्लभ मंडन में इनका उल्लेख मिलता है । मंडन ४ प्रकार की बावड़िये, १० प्रकार के कुये, ४ प्रकार के कुंड, एवं ६ प्रकार के तालाब बनवाने का उल्लेख करता है [26] । कुओं पर रहटों की व्यवस्था थी । भूमि दो फसली और एक फसली का अलग अलग हिसाब रहता था । खातेदारी के अधिकार खालसा की भूमि में ही थे । जागीरदारों की भूमि में काश्तकार खातेदार नहीं हो सकते थे जब तक कि जागीरदार स्वेच्छा से वे अधिकार प्रदान नहीं

---

२४. रा० मं० अध्याय ४ श्लोक १९

२५. संगीतराज नृत्यरत्न कोश २।१।१३ श्री नारायण भारती-राज वल्लभ मंडन (गुजराती अनुवाद) पृ० १५ के अनुसार वास्तु मंडन में ऐसा कई स्थानों पर प्रयोग है ।

२६. रा० मं० ४ अध्याय २६ से ३६ श्लोक

कर देवे । खेती में गेहूं, जव, ब्रीहि, कंगु, जुआर, तिल शाली एवं मूंग का उल्लेख मंडन करता है [27] । इनके अतिरिक्त चणा, उड़द, मसूर आदि का भी उल्लेख मिलता है । गन्ना सण, कपास एवं अफीम के पैदा होने का भी वर्णन मिलता है [28] । गन्ने से खांड व गुड़, कपास से कपड़ा और सण से रस्सियां आदि बनाई जाती थी । अफीम बाहर भी भेजी जाती थी । एवं यहां भी वहुत खाई जाती थी ।

व्यापार और उद्योग धन्धे

प्रत्येक गांव स्वयं की आवश्यकता की पूर्ति करने को समर्थ था । गांवों के निवासियों के लिए अनाज और वस्त्र की पूर्ति गांवों से ही हो जाती थी । इसके अतिरिक्त प्रत्येक गांव में छोटे बड़े उद्योग धन्धे प्रचलित थे । प्रत्येक नगर में हलवाई, नाई तम्बोली, ग्वाला, रंगरेज, कांस्यकार, सुनार, कुमार, लुहार, तेला, माली, खाती, सूत्रकार दर्जी, धोबी, बुनकर, शराब बेचने वाले प्रायः होते थे । मंडन नगर में इनको बसाने के लिए व्यवस्था का उल्लेख करता है । वह लिखता है कि तम्बोली, फूलों के विक्रेता (माली) हाथी दांत, सुगन्धि पदार्थों, मोती एवं रत्नों के विक्रय की व्यवस्था राजद्वार अथवा देव मन्दिर के सन्मुख करें [29] । नगर के ईशान कोण की ओर रंगकार (छीपा) वुनकर (जुलाहा) एवं धोबियों को बसाना चाहिए । अग्नि से कार्य करके आजिविका चलाने वालों को अग्निकोण में, अन्त्यज चर्मकार, बासों से आजिविका चलाने वाले घांची, कलाल आदि को दक्षिण दिशों में बसाना चाहिए नैयहृत्यकोण में वेश्याओं को बसाना चाहिए । शहरों में कुछ बड़े उद्योग भी थे । भीलवाड़ा जिले में बिगोद ग्राम में लोहे का वड़ा कारखाना था जहां लोहे को साफ करने को व्यबस्था थी । लोहे से युद्ध सामग्री बनाई जाती थी । आबू की १४०० मण की धातु प्रतिमाएं यह सिद्ध करती है कि उस समय धातु का कार्य सुन्दर ढंग से किया जाता था ।[29A]

---

२७. यवो ब्रीहिस्तथा कंगुर्न्यूर्णाहा च तिलैर्युताः ।
शालीमुद्रा समाख्याता गोधूमाश्च क्रमेणतु ।। प्रा० मं० ८।६४
रा० मं० २।२६-३० भी दृष्टव्य है ।

२८. क्षीरक्षौद्रं घृतं खण्डं पक्वान्नानि बहून्यपि । प्रा० मं० ८।६७
सण का उल्लेख राजवल्लभ मण्डन में है "वर्णानां कुशमुंजकाशशणजं सूत्र क्रमात् सूत्रेणे ।१।१८।। इसमें क्रमशः डाभ, मुंज काश और सण की डोरी का क्रमशः चारों वर्णो के लिए विधान किया है ।
वास्तु मंडन में गन्ने का उल्लेख है "केतकी चेक्ष बोरुद्वा स्वयं गेहेन सौख्यदाः ।१७६।।

२९. रा० मं० श्लोक १८-१६

२९A ऐसी प्रतिमायें आबू के अतिरिक्त अन्य स्थानों से भी मिली है ।

वि० स० १४६५ के चित्तौड़ के लेख में गुणराज श्रेष्ठि के पुत्र निलय के लिये लिखा है कि व्यापार के कारण मोकल उसे बहुत मानता था । कान्हडदे प्रबन्ध [८४।१२७ १३२] में उल्लेख है कि प्रत्येक वस्तु के अलग-अलग व्यापारी थे । जिनके पास भारी मात्रा में स्टाक रहता था । उदाहरणार्थ रामाशाह के पास गेहूं, जो, चांवल, मूंग आदि का भारी स्टाक था । वीरमशाह के पास ३० वर्ष खादे उतना घी था । जेतसिंह दोषी के लिये लिखा है या उसके पास वस्त्रों का इतना संग्रह था कि वर्षों तक काम में लिया जा सकता । शत्रुञ्जय तीर्थोद्धार प्रबन्ध में सांगा के समय चित्तोड़ में इसी प्रकार स्टाक मौजूद था । उस समय वहां बड़े २ व्यापारी मौजूद थे ।

प्रत्येक छोटे छोटे गांवों में गृह उद्योग प्रचलित थे । इनमें कपास साफ करना, एवं सूत कातना मुख्य था । इनके अतिरिक्त अफीम के दूध को साफ करने का भी काम किया जाता था । गन्ने का गुड़ व्यापक रूप से बनाया जाता था । उद्योग पतियों के सघ बने हुये थे । मेवाड़ में आयात होने वाले माल में नमक, रेशमीवस्त्र आदि थे । देलवाड़ा के वि० सं० १४९१ के लेख में आयात कर का उल्लेख है [30] । कागज, रेशमी वस्त्र, रंगे और छपे कपड़े, गुजरात से मेवाड़ में आते थे । सिरोही से तलवारें और कच्छ से घोड़े आते थे [31] । मेवाड़ से अफीम, सूती कपड़ा, गुड़, अनाज आदि बाहर निर्यात होता था । माल ढ़ोने का काम प्रायः बणजारा किया करते थे । किन्तु बैलगाड़ियों पर माल के आने जाने का भी उल्लेख मिलता है । पहाड़ी भागों में ऊंटों से आने जाने की व्यवस्था थी । इस प्रकार व्यापार बड़े व्यापक पैमाने पर होता था । कुंभा के समय व्यापार किन किन राज्यों मे होता था इसका उल्लेख तो अब नही मिलता है किन्तु एक प्राचीन सारणेश्वर के १०१० के लेख में मेवाड़ का लट्ट (लाट), ट्क्क (पंजाब) मध्य प्रदेश और कर्णाट से होने की सूचना दी है । बि० सं० १४६६ में लिखी श्रावक व्रतादि अतिचार ग्रंथ में महाजनों की स्थिति का उल्लेख किया गया है कि इन लोगों में झूंठ बोलना, कम तोलना एवं खरीददार को प्रवचन देने का रिवाज था [33] ।

---

३०. "टंका ५ बाडानी मांडवी ऊपरी टंका ४ देउलवाडा ना मणहेडावटा उपरि । टका २ देउलवाडा ना षारिवटां उपरि । टंका एक देउलवाडा ना पटसूत्रीय उपरि । ....."

३१. बेले- हि० मु० पृ २ से ४ ।

३२. कर्णाटमध्यविषयोभ्दव लाटटक्का—
अन्येऽपि केचिदिह ये वणिजोविशन्ति ।। सारणेश्वर का लेख

३३. प्राचीन गुजराती गद्य संदर्भ में छपा "श्रावक व्रतादि अतिचार" पृ ६३

मुद्रा

कुंभा के समय स्वर्ण चांदी और ताम्बे की मुद्राएं चलती थी। कुंभा के ताम्बे के ही सिक्के मिलते हैं। फरिश्ता ने उसके चांदी के सिक्कों का भी उल्लेख किया है किन्तु वे अब तक नहीं मिले हैं [३५]। उस समय मुख्य रूप से द्रम टंका रूपक, फदक और कोडियों का चलन था। द्रम सोने और चांदी दोनों का बनता था। टंका मुद्रा बहुत ही महत्वपूर्ण थी [३६]। कुंभा के समय इसका प्रचलन बहुत अधिक था। सम सामयिक उपदेश तरंगिणि में इसका बहुत ही अधिक उल्लेख हैं। ये सोने चांदी और ताम्बे तीनों के बनते थे। इनके अतिरिक्त जीर्ण और नवीन टकों का भी उल्लेख किया गया है। इसमें स्वर्ण टंकाओं का उल्लेख "हाटक टंक स्फर्द्ध कद्रम्म शतद्विशतादि ददाति'- (पृ० ४२) एवं चांदी के टंकों का कई स्थलों पर उल्लेख है। वह वस्तुपाल तेजपाल कथा में भी उल्लेखित है। ताम्बे के टंके या साधारण टंकों का उल्लेख देलवाड़ा के वि० सं० १४६१ के लेख में, एवं उपदेश तरंगिणी में भी है। दक्षिण द्वार की प्रशस्ति में हेमटकों का उल्लेख है। कान्हडदे प्रबन्ध में "टंका आप्या सोना तणा" शब्द है। संभवतः यह स्वर्ण टंके ही होंगे। जीर्ण टंके और नवीन टंकों के मुल्य में कुछ अन्तर रहता था।

---

३४. बिग्ज़ फ० जि० ४ पृ० २२१-२२

३५. एक विंशतिः शतानि द्रम्माणां दापितानि । उपदेश तरंगिणी पृ० ७६ कांस्यकारकाऽट्टे घुर्घरान् घर्षयित्वा प्रतिदिनं द्रमपंचकार्जनेनकुटुम्बनिर्वाहं करोति ..... वही पृ० १३० कांस्यकार द्वारा प्रतिदिन स्वर्ण द्रम के स्थान पर चांदी के द्रम ही उपार्जित करना ठीक प्रतीत होता है। ऐसा ही वर्णन खरतर गच्छ पट्टावली में है (वरदा वर्ष २ अंक ४ पृ० १६)

३६. उपदेश तरंगिणी के पृ० ७६, ११३, १२०, १२३-१२४, और २५८ उल्लेखनीय है। नव्य टंक का उल्लेख "३६ लक्षनव्यटङ्कव्ययः" है। जीर्णटंक का उल्लेख "तत्र पूर्वमल्प मुल्यानां दवरकाणमेव चतुरशीति सहस्त्रसंख्याजीर्णटंकास्तैरूक्तास्तदा पेथेडेन तदनुमानेना परं बहु द्रव्यं व्ययं........" है। हेमटंका और चांदी के टकों का उल्लेख इस प्रकार है" सुवर्णस्थाले हीराऽऽमलकप्रमाणमौक्तकानिकूरस्थाने, नीलचूर्णिकाहाटक-टङ्कश्चदालिस्थाने सिद्धरसोघृतस्थाने कनकघटयो वटकस्थाने रूप्यटङ्का करम्भस्थानेदत्ताः"। यह कृतिसमसामयिक है। अतएव यह उल्लेख महत्वपूर्ण हैं।

अन्य उल्लेखनीय मुद्राएं फादिये थे। ऋंगी ऋषि के लेख में फदियों का उल्लेख है। इसमें "यः पंचविंशतितुलाः समदाद् द्विजेभ्यो, हेम्नस्तथै रजतस्यव च फद्यकानां" लिखा है। इन फदियों का मुल्य २ आने के बराबर होता था [37]। इन सिक्कों का मान अलग-अलग था [38]।

कुंभा के सिक्के

कुंभा के ८ प्रकार के सिक्के मिलते हैं। संभवतः टंका एवं फद्यक मेवाड़ के सिक्के नहीं थे। कुंभा के सिक्कों में अन्य राजाओं के सिक्कों की तुलना में मौलिकता है। अबतक जो सिक्के मिले हैं वे सब चकोर है। कुंभा द्वारा चलाये गये सब सिक्के गोल भी थे। कुंभलगढ़ में कुबेर की मूर्ति के पीछे प्रतिहारी रूपयो की थैली फैलाता हुआ प्रदर्शित किया गया है [39]। वह गोल सिक्कों को लिये हुये है। संभवतः ये टंके या फद्यक रहे होंगे। फरिश्ता द्वारा वर्णित चांदी के कुंभा के सिक्के अब तक प्राप्त नहीं हुये हैं। कुंभा के ८ प्रकार के सिक्के अबतक मिले हैं। श्री रोशन लाल सामर द्वारा दिये गये इनके विवरण के अनुसार संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है [40] :—

१. सामने के भाग पर कुंभलमेरू महाराणा श्री कुंभकरणस्य" एवं पृष्ठ भाग में "श्री एकलिंगस्य प्रसादात" शब्द है। सामने के भाग में भाले का चिन्ह है और पृष्ट भाग में श्री बीच में है। इसका तोल १९६ ग्रेन है।

---

३७. श्री रतनचन्द्र अग्रवाल का लेख— मरुभारती वर्ष ५ अंक २ पृ० २५–२६ एवं शोधपत्रिका वर्ष ९ अंक ३ पृ० ९–११। डा० दशरथ शर्मा का लेख–खरतरगच्छपट्टावली में वर्णित मुद्राएं—वरदा वर्ष २ अंक ४ पृ० १४।

३८. तत्कालीन सिक्कों का मान श्रीधराचार्य के गणित सार के अनुसार इस प्रकार है—

५ कौड़ी १ पवीसा, ४ पवीसा १ बीसा, ५ बीसा १–लौहड़िया ४ लौहड़िया १ रु०, ५ रु० १ द्रम (डा० दशरथ शर्मा का लेख मरू भारती वर्ष ६ अंक २ पृ० ३)।

३९. शारदा म० कु० पृ० १८७।

४०. राजस्थान भारती कुंभा विशेषांक पृ० ९१ से ९५। श्री सामरजी का मैं बहुत आभारी हूं जिन्होंने उक्त मुद्रायें मुझे दिखाने की कृपा की थी।

२ मुख और पृष्ट भाग पर पहले की तरह बिरूद है। केवल मात्र भाले का चिन्ह नहीं है। इसका तोल ५५ ग्रेन है।

३. यह सिक्का अन्य सिक्कों की अपेक्षा कुछ परिवर्तित हैं। इसमें मुख भाग में राणा श्री कुंभकर्णस्य व श्री अंकित है और पृष्ठ भाग में श्री कुंभलमेरू शब्द अंकित है एवं नीचे भाले का चिन्ह भी बना है।

४. चौथे प्रकार का सिक्का तीसरे प्र ार से कुछ छोटा है। इसमें केवल अन्तर यही है कि बीच में भाला बना हुआ है।

५. पाचवी प्रकार का सिक्का वजन में ४६ ग्रेन है। सिक्के के मुख भाग में राणा श्री कुंभकर्ण" शब्द है और बीच में भाले का चिन्ह भी बना है। पृष्ट भाग में" श्री कुंभलमेरू" शब्द हैं और बीच में भाले का चिन्ह बना है।

६. छठी प्रकार के सिक्के तोल में ५२ ग्रेन है। सिक्के के अगले भाग में दो पंक्तियों का लेख" राणा कुंभकर्ण" अंकित है और बीच में भाला है। पृष्ट भाग में श्री कुंभलमेरू" शब्द हैं और नीचे की तरफ भाला बना हैं।

७. सातवीं प्रकार के सिक्के छठी प्रकार के सिक्कों की तरह ही है। अन्तर केवल भाले का है जो इनमें नहीं हैं।

८. यह सिक्का बिल्कुल छोटा साइज का होता था। इनमें मुख भाग में " कुभकर्ण और पृष्ट भाग में" एकलिंग" बिरूद है इनका तोल ३२ ग्रेन होता है।

क्या ये सिक्के मुल्य में परस्पर समान थे अथवा आधुनिक सिक्कों की तरह अलग अलग मुल्यों वाले थे। संभवतः इनका मुल्य सामान ही था।

नगर व्यवस्था

मंडन ने २० प्रकार के नगरों का उल्लेख [४१] किया है। ये भी ज्येष्ठमध्यम और कनिष्ट तीन प्रकार के मान के थे। ज्येष्ठ नगरो में १७ मार्ग मध्यम नगरों में १६ और कनिष्ठ नगरों में ६ मार्ग होना लिखा है। यह वर्णन प्राचीन शास्त्रोक्त प्रतीत होता है और किसी प्रान्त विशेष पर लागु प्रतीत नहीं होता हैं। मेवाड़ में उसकाल में कई

---

४१. रा० मं० चौथे अध्याय का ४ से ८वां श्लोक।

उल्लेखनीय नगर थे। इनमें चितौड़, देलवाड़ा, कुंभलगढ़ आदि मुख्य थे। चित्तौड़ राजधानी था। मंडन के अनुसार राजधानी का नगर कई देवालयों, गवाक्ष युक्त प्रासादों कीर्तिस्तंभों, कूप मंडपो से सुसज्जित [42] रहता था। दूसरा मुख्य नगर कुंभलगढ़ था। मंडन के अनुसार पर्वतीय दुर्ग बनाने पर राजाको कई तीर्थ यात्राओं के समान पुण्लफल [43] होता था। इन नगरों की समुचित व्यवस्था थी। प्रत्येक गांवों में ठहरने के लिए धर्मशाला वनी हुई थी [44]। जहां यात्रियों को ठहरने की समुचित व्यवस्था थी। दुर्गों की व्यवस्था के सम्बन्ध में सूत्रधार मंडन सविस्तार वर्णन करता है। कुंभा के समग्र चित्तौड़ का दुर्गाधिराज का उल्लेख मिलता है [45]। उस समय के प्रमुख चित्तौड़ दलवाड़ा आदि के सम्बन्ध में विचार करें तो विदित इनकी गलियां बड़ी तंग थी। मेवाड़ में नगरों में प्राय: तालाब वने हुये थे किन्तु कुये बावड़ियों की संख्या भी कम नहीं थी।

नगरों का अधिकारी "तलारक्ष" सेलहत्थ आदि थे जिनका अलग वर्णन किया जा चुका है।

घर व्यवस्था

मंडन ने घर व्यबस्था और निर्माण को अत्यन्त विस्तार के साथ वर्णित किया है। उसने एक शाला से लेकर ४ शाला तक के मकानों का उल्लेख किया है [46]। मकान बनाने के लिए भूमि परीक्षण को महत्व दिया है। भूमि परीक्षण के पश्चात विधिवत मकान बनाने का निर्देश है। घर के पास वृक्ष लगाने के सम्बन्ध में मंडन ने

---

४२. प्रा० मं० ८वें अध्याय का ३१–३२वां श्लोक।

४३. रा० मं० ४।१।

४४. यत्रसत्र प्रपा: पांथ सार्थ विश्राम भूमयः।
प्रति ग्राम प्रति पुरं प्रति पतनमावभुः कु० प्र०।।६३।।
शत्रुञ्जय तीर्थोद्धार प्रबन्ध में भी इसी प्रकार का वर्णन है।

४५. कु० प्र० ।६५।

४६. यद्यपि मंडन ने "दिक् शालांतंह्येक शालादि गेहं ।५।४७ कहकर १० शालाओं के मकानों का उल्लेख किया है किन्तु उसने वास्तविकता में ४ शालाओं के मकानों का ही वर्णन किया है है। शेष ४ से ही विस्तारित होने का विधान है।

विस्तृत वर्णन किया है [47] । इसमें प्रतिशाला बनाई जाती थी । द्वार के साथ खिड़की द्वार और बनाया जाता था [48] । मकान में पशुओं और अश्व के बांधने के लिए एक शाला का भी वर्णन है । मकान ईंटों और चूने से बनते थे । चूने के लिए लिखा है कि इसे खूब बारीक पीसकर फिर काम में लिया जाता था [49] । मकानों में कई चित्र भी दीवारों पर बनाये जाते थे । घर ऊपर से ढाल युक्त होते थे [50] । इनको ऊपर तृण, लकडी शलाएं, बांस मिट्टी आदि से ढके जाते थे [51] । राजा और श्री सम्पन्न लोगों के घर पक्के बनते थे । राजा के महल, मंत्री, राजकुमार, सेनापति, सामंतराजाओं, ज्योतिषी गुरू, पुरोहित वैद्य, वैश्या आदि के मकानों की लम्बाई चौडाई का अलग विस्तृत विवरण मिलता है [52] । राजा के महल को १०८ हाथ वाला बताया है । इसी के अनुपात से अन्य का भी सम्भवत: यह वर्णन भी प्राचीन शिल्प शास्त्रीय ग्रंथों के आधार पर लिखा गया है और मेवाड़ के नगर विशेष के लिए नहीं है । मकानों में गवाक्ष, जालियां आदि बनी हुई रहती थी । राजमहलों में रखने का सिंहासन छत्र राज सभा वेदिका दीप स्तम्भ आदि का भी उल्लेख हैं । साधारण गृहस्थ के घर में तो दीपक रखने के लिए "आलय" बनाने का उल्लेख है । वेदी ४ वर्णों के घरों में क्रम: ७, ६, ५ और ४ हाथ की बनाने का उल्लेख है ।

मन्दिर के उत्तर अथवा दक्षिण में यतयों के मठ बनाये जाने का भी उल्लेख मिलता है । शिव मन्दिर के पीछे भी ऐसे मठ मिलते हैं । ये मठ चित्तोड़ के समिधेश्वर के पीछे, मेनाल और एकलिंग जी के मन्दिर में अब भी बने हुये विद्यमान हैं । मठ के

---

४७. रा० मं० १।३० व वास्तु मंडन १।७६–७६ ।

४८. द्वाराग्रे खटकी मुखचतद धौ द्वाः षोऽशधिकं । रा० मं० ।५।२२।

४६. रा० मं० ८।१४ ।

५०. वही ५।३५ इसमें ६ प्रकार के ढालवाले मकानों का उल्लेख है ।

५१. वही ८।१७।

५२. राजा का महल १०८ हाथ, कुमार, पट्टारानी, राणी का महल ८० हाथ ८० हाथ सेनापति ६४ हाथ मंत्री का घर ६० सामंत राजाओं का महल ४० एवं ज्योतिष, राजगुरु पुरोहित, वैद्य, सभासद आदि के महल ४० हाथ के होना चाहिए । (रा० मं० ६ अध्याय ३०–३४)

वायु कोणे में धान्यका कोठार अग्निकोण में रसोड़ा, ईशान कोण में पुष्पगृह नैऋत्य कोण में पात्र और आयुध रखे जाते थे । यहां एक पाठशाला भी बनाई जाती थी [53] ।

भोजन

भोजन में[54] दूध, दही, घी, खाण्ड अनेक प्रकार के पकवानों का उल्लेख मिलता है । वास्तु पुरूष की पूजा के निमित राजवल्लभ मंडन में कई प्रकार के अन्न का उल्लेख आया है । इनमें खीचड़ी, भात, घी, गेहूं, तिली का तेल, उड़द, चणा, जव, लपसी, पुड़ी, लड्डू, गुड़, माल पुवा, बकरी और गाय का दूध, मछली, बकरे का मांस, मद्य आदि का उल्लेख हैं [55] । अतएव पता चलता है कि उस समय मुख्य रूप से गेहूं और जव खाया जाता था । शिकार और बलि देने के निमित मांस काम आता था । वैश्यों और ब्राह्मणों में इनका प्रचार नहीं था । अफीम को पानी में खूब गोट कर तैयार की जाकर आने वालों को पिलाई जाती थी इसको बड़ा आदर सूचक मानते थे । गांवों में शराब तैयार करने की भट्टियां बनी रहती थी ।

आमोद प्रमोद के साधन

आमोद प्रमोद के साधनों में उच्चकुल और साधारण वर्गो में बड़ा अन्तर था । राजा के आमोद प्रमोद के लिए एक वाटिका बनाने का उल्लेख है जिसमें वह जलक्रीड़ा आदि किया करता था । [56] इनके अतिरिक्त राजा और सामन्त वर्ग शिकार के भी शौकीन थे । शेर का शिकार करना बड़े गौरव की बात मानी जाती थी । शिकार में राजपूत लोग बड़ी कुशलता दिखाते थे । नाटक आदि का भी सर्वत्र प्रचार था । कुंभा संगीतराज में चारों वर्णों की नाट्य शाला का उल्लेख करता है । उच्च कुलों के लिए

---

५३. कोष्ठागारं च वायव्ये वह्नि् कोणे महान सम् ।
पुष्पगेहं तयेशाने नैऋत्ये पात्रामायुधम् ।।३५।।
सत्रागारं च पुरतो वारूण्यां च जलाश्रयम् ।
मठस्य पुरतः कुर्याद विद्या व्याख्यानमडपम् ।।३६।। प्रा० मं० ।।८।।

५४. क्षीरं क्षौद्रं घृतं खण्ड पक्वान्नानि बहून्यपि ।
षडरस स्वादु भक्ष्याणि सन्मानं परिकल्पयेत् ।।६७।। प्रा० मं० ।८।।

५५. रा० मं० के अध्याय २।२८—३८ ।

५६. बाला प्रोढा वधूः सुमध्य वनितागानैर्मनोहारिभिः ।
ग्रीष्मे शारदकेथशीतलजलक्रीड़ां शुभेमंडपे । रा० मं० ६।२३

चतुष्कोणात्मक एवं हीन कुल वालो के लिए त्रिकोणात्मक नाट्य शाला [57] बनती थी । नृत्य शाला का उल्लेख सूत्रधार मंडन भी करता है जो राजा के महल में ही बनाई जाती थी । नाट्य शाला में राजा के साथ सभासद, राजमंत्री, वैद्य, ज्योतिषी, कवि एवं उसकी रानियां और उपपत्नियां होती थी । जिसके बेठने के लिए विशिष्ट स्थल बने हुये थे । नृत्य का सार्वजनिक जीवन में बड़ा प्रचार था । लोक नृत्य सभी मांगलिक अवसरों पर किये जाते थे । कुंभा के अनुसार विवाह ,राजाओं के अभिषेक, यात्रा विजयोत्सव, यज्ञादि कर्मो मे नृत्य किया जाता था [58] सोम सोभाग्य काव्य में सभी धार्मिक उत्सवों में नृत्य का उल्लेख है । संगीत का सर्वत्र प्रचार था । कुंभा स्वयं अच्छा संगीतज्ञ था । उसे बांसुरी बजाने का भी शौक था । मंदिरों में उत्कीर्ण मूर्तियों में नृत्यरत्त पुरूष युग्म चित्रित किये हैं जो मृदंग, झांझ, बांसुरी आदि लिये हुये रहते थे । नट और नतकियों की प्रतिमाएं कीर्तिस्तंभ में भी उत्कीर्ण है । मंडन नटों को निम्न [59] श्रेणी के पुरूषों में मानता हैं सोमसुन्दरसूरि भी योग शास्त्र बालावबोध में इन्हें इसी श्रेणी का मानते हैं । अतएव ज्ञात होता है कि ये लोग वशपरम्परामत इसी कार्य में दक्ष थे । मेवाड़ में आज भी इन की एक जाति विद्यमान हैं जो अन्त्यजों की तरह है ये बांस पर विविध प्रकार के खेल करके गुजारा करते हैं । निम्न श्रेणी के लोगों में सार्वजनिक खेलों का प्रचार था । नैणसी जेतारण में एक इस प्रकार के खेल का उल्लेख करता है कि लोग इकठे होकर उसे देख रहे थे । खेल की परिसमाप्ति पर जब थाली फेरी जाती थी जिसमें दान देना होता था । इसके अतिरिक्त" गेर" जो गुजराती लोक नृत्य" गरबा" का रूपान्तरित स्वरूप है मेवाड़ में खेला जाता था ।

दैविक आपत्तियां

देश की अधिकांश जनता कृषि पर आधारित थी । अतएव अनावृष्टि और अति वृष्टि का उसे प्रायः शिकार होना पड़ता था । इससे प्रभावित होकर कुंभा ने

---

५७. चतुरस्त्रं च यद् दीर्घं भूपतीनां तदीरितम् ।
ब्राह्मणादेर्गृहं प्रोक्तं चतुरस्त्रं समं बुधे ।३९।।
शुद्राविहीन वर्णानां वेश्मत्रयस्त्रमिहोदितम् ।
प्रेक्षागृहाणा निर्माणे प्रमाणं विश्वकर्मणा ।४०।।

संगीतराज नृत्यरत्न कोश १ ।

५८. भूपानामभिषेचने पुरगृह प्रावेशिके कर्मणि ।१०।।
मंगलेषु च सर्व कर्मसु तथा यज्ञादि वैवाहिके मंगले ।। (उक्त)

५९. चर्मकव्रजकानाञ्च नटस्य वरट्स्य च ।।५।। रूप मण्डन तीसरा अध्याय

संगीत राज में नान्दी के मुखसे कह लाया है कि समय पर वर्षा होती रहे [60]। कुंभा के समय में वि० सं० १४९५ में भीषण अकाल पड़ा था। मेह कवि द्वारा वर्णित राणकपुर स्तवन में इसका वर्णन है कि जब १४९५ में भीषण अकाल पड़ा तब सेठ धरण ने बड़ी सहायता की थी। अकाल के समय राज्य से एवं श्रेष्ठि वर्ग से यथोचित सहायता दी जाती थी [61]। कीर्तिस्तंभ में पाडुरोग की प्रतिमा बनी है अतएव प्रतीत होता है कि यह रोग उन दिनों बहुत प्रचलित रहा होगा।

दैविक आपतियों से भी भीषण मुस्लिम सुल्तानों के नृशंस अात्याचार थे। जब जब ये लोग आक्रमण करते थे तब फसलों और पशुधन को नष्ट कर देते थे। गुजरात के सुल्तान के एक आक्रमण के समय कुंभलगढ़ के आसपास कोई भी हिन्दू के घर में पशु जीवित नहीं छोड़ा गया था। [62] इस प्रकार ये आक्रमण बड़े भयानक और आमानुषिक अत्याचारों से युक्त थे।

शिक्षा व्यवस्था

जन साधारण को उच्च शिक्षा नहीं दी जाती थी [63]। बर्नी लिखता है कि राजाओं के शिक्षकों को आदेश दे दिया गया था कि ज्ञान की अमुल्य की निधी को जन साधारण के समक्ष नहीं रखी जावे। लोगों में संस्कृत शिथा का अभाव था। कुंभा के समय कई दक्षिणी पंडित मेवाड़ में आये थे। ब्राह्मणों में कई ऐसे थे जो खेती [64] से

---

६०. काले वर्षतु पुण्यवारिजलदो नन्दन्तु गावश्चिरं।
देशः क्षेम सुभिक्षवान् भवतु नो राजस्तु सद्धर्मवन्॥२६२॥
राष्ट्रं चास्तु निरामयं च लभतां रंग प्रतिष्टां परां॥
प्रेक्षा कर्तुरिहास्तु धर्मविभवो ब्रह्मद्विषो यान्त्वध ।२६३॥
सगीतराज नृत्यरत्नकोश प्रथम परीक्षण

६१. रलीयति लखपति इण धरि
काका हिव किजई जगडू परि॥
जगडू कहीं यई रायां संधार।
आपण ये देस्यां लोक आधार॥
जगडूशाह के दान का उल्लेख समसामयिक कृति "उपदेशतरांगिणी" के पृ० ४० से ४२ में हो रहा है।

६२. ब्रिग्ज—फरिश्ता जिल्द ४ पृ० ४२ उपरोक्त पांचवा अध्याय

६३. फतवा-इ-जहान्दरी का मोहम्मद हबीब का अनुवाद पृ० ४६।

६४. कु० प्र० श्लोक २१७।

गुजर करते थे । कुंभलगढ़ लेख के अनुसार मोकल ने उन्हें पुन: वेद पढ़ने को प्रोत्साहित किया था । जैन कवियों ने उस काल में कई बालाव बोध लिखे । ये संस्कृत से जन साधारण की भाषा में अनुवाद थे । इससे पता चलता है कि संस्कृत का ज्ञान दुर्लभ हो गया था । फिर भी कुंभा के समय में कई उल्लेखनीय पंडित हुये हैं । वह स्वयं कई शास्त्रों का ज्ञाता था । श्रावकव्रतादि अतिचार ग्रंथ में "पाटी पीथी ठवणी, कमली सांपुडी, सापुडा दस्तरी बही ओलिया" आदि का उल्लेख हैं [65] । शिक्षा सिद्ध मातृका से प्रारम्भ होती थी [66] । पाठशालाएं मठों, मन्दिरों और यतियों के उपाश्रयों में प्राय: होती थी । मंडन लिखता है कि बच्चों को पाठशाला भेजने के लिए अच्छे [67] मुहुर्त का होना आवश्यक है । वह लिखता है कि गुरुवार, शुक्रवार, बुधवार, व रविवार को विद्यारंभ करना शुभ है । सोमवार को प्रारंभ करने पर मूर्खता आती है व शनि एवं मंगल को प्रारंभ करने पर विद्यार्थी की मृत्युका भय रहता है । तिथियों में एकम अष्टमी एवं चवदस शुभ है ब्राह्मणों को वेद पढने व मोजी बंधन के लिए गुरुवार, शुक्रवार, मंगलवार और बुधवार शुभ माने गये हें ।

उपसंहार

उस काल में लोग बहुत सुखी थे । कीमतें कम थी । शेरगढ के लेख से प्रकट होता है कि १ कौडी से एक दिन की व्यवस्था हो सकती थी । ब्राह्मणों का यथोचित सन्मान किया जाता था वैश्यों के पास अपार सम्पति हो गई थी । वह युग शौर्य का युग था । सभी वर्गो के लोग युद्ध में प्रसन्नता पूर्वक भाग लेते थे । उसकाल में "मरणों मंगल दाय" की मान्यता थी । इस प्रकार विश्वास किया जाता था कि युद्ध में मृत्यु होने पर मुक्ति होती थी ।

---

६५. "पढता गुणंता कुडउ, अक्षर कान्हइं मात्रि ओछवो आगलु भणिओ । कूडउ अर्थ बेकूडा कहिया । ज्ञानो पगरण पाटी पोथी ठवणी कमली, सांपुडी सांपुडां दस्तरी बही ओलिया प्रतिपगलागु थूंक लगाउं ....."

[पृष्ठ ६०]

इसी प्रकार समसामयिक कृति उपदेश तरंगिणी (१५१६ वि०) में पुस्तक लेखन का सविस्तार उल्लेख है । "सौवर्णमषीमयाक्षरा" एवं "ताड़कागद-पत्रेषु मषीवर्णाञ्चिता:" शब्द है ।

६६. प्रा० मं० ८।३६

६७. रा० मं० १३।७-८

बारहवां अध्याय

प्रशस्तियां

सहस्रवदनो यदा वदति वीतवेद्यांतरः
सहस्रकरपल्लवो लिखति वेदविश्रांतधीः ।
अथस्फुरति भारतीक्वचन देशिकेसौ यदा
पुण्यगुणसंतति र्भवति कुंभकर्णस्तदा ।।१८२।।

कीर्तिस्तम्भ प्रशस्ति

प्रशस्तियां

शिलालेख दानपत्र और पुस्तक प्रशस्तियां इतिहास के सबसे अधिक प्रमाणिक साधन माने जाते हैं। मध्यकालीन राजपूत राजाओं का इतिहास लिखते समय सबसे बड़ी कठिनाई यह आती है कि चारण भाटों द्वारा लिखे गये चाटुकारिता पूर्ण काव्यों में प्राय: उनका अशतियोक्ति पूर्ण वर्णन होता है एवं उनकी सत्यता की तुलना करने के लिये हमारे पास कोई प्रमाणिक सामग्री प्राप्त नहीं होती है किन्तु महाराणा कुंभा का शासनकाल इसके विपरीत है। लगभग १०० से अधिक लेख इसके शासनकाल के अब तक मैं देख चुका हूं जिनसे तत्कालीन राजनैतिक परिस्थिति के साथ-साथ साहित्यिक, सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों का भी अवलोकन किया जा सकता है [1]। उसके शासनकाल की लगभग सब मुख्य-मुख्य घटनायें इनमें उल्लेखित है। दुर्भाग्य से कई महत्वपूर्ण शिलालेखों के अंश नष्ट भी हो चके हैं। उदाहरणार्थ कुंभलगढ़ प्रशस्ति की ५वीं शिला एवं कीर्तिस्तम्भ प्रशस्ति की दूसरी शिला सं० १७३५ के पूर्व ही नष्ट हो चुकी थी [2] क्योंकि जब प्रशस्ति संग्रह बनाया गया उस समय इनको सम्मिलित नहीं किया गया है। ५वीं शिला का एक खंड भी हाल ही में मिला है। सं० १७३५ के पश्चात् कुंभलगढ़ प्रशस्ति की दूसरी शिला भी नष्ट हो चुकी है, किन्तु इसका कुछ अंश मिल गया है जिसे उक्त प्रशस्ति संग्रह की सहायता से पुन: सम्पादित किया गया है। इसी प्रकार की स्थिति चित्तौड़ के महावीर प्रासाद प्रशस्ति की है जिसके रचनाकार चारित्ररत्नगणि ने वि० सं० १५०८ में देवगिरी में एक प्रतिलिपि इसकी और बना ली थी, मूल शिलालेख कई वर्षों पूर्व ही नष्ट हो चुका था। अतएव उक्त प्रतिलिपि से ही इसकी जानकारी प्राप्त हो सकी थी।

---

१. राजस्थान भारती के कुंभा विशेषांक में शिलालेख की एक सूची प्रकाशित हुई। उस समय के कई शिलालेख और ग्रंथ प्रशस्तियों का परिचय इसमें छट गया है। मैंने भी एक सूची दी है इसमें भी कई मूर्तियों के लेख छोड़ दिये हैं।

२. प्रशस्ति संग्रह के अन्त में स्पष्टतः अंकित है। "इति प्रशस्तिः समाप्ता ।। संवत् १७३५ वर्षे फाल्गुन वदि ७ गुरौलिखितेयं प्रशस्तिः"। इस सम्बन्ध में प्रोसिडिंग्ज आफ इंडियन हिस्टोरिकल कांग्रेस १९४४ में डा० जी० एन० शर्मा का नोट दृष्टव्य है।

पदराड़ा का लेख वि० सं० १४९०

कुंभा के शासनकाल का सबसे पहला लेख पदराड़ा ग्राम का वि० सं० १४९० वैशाख वदि ११ का है। यह ज्ञात नहीं हो सका है कि यह संवत श्रावणादि है अथवा चैत्रादि। अगर चैत्रादि है तो इसका महत्व बहुत ही अधिक है क्योंकि मोकल को निजामुद्दीन व फरिश्ता ने वि० सं० १४८९ में शासक [3] माना है। मोकल का एक अप्रकाशित लेख वि० सं० १४८७ ज्येष्ठ सुदि ५ का साहित्य संस्थान उदयपुर में संग्रहित है। निजामुद्दीन ने तबकात-इ-अकबरी में यह तिथि रजब माह की दी है जो फाल्गुण मास के लगभग आती है। अतएव यह मोकल की मृत्यु के कुछ माह पश्चात् की ही हो सकती है। उस स्थिति में मारवाड़ की ख्यातों का यह अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन कि राव रणमल ने छः माह तक यहा के पहाड़ में घेरे रखा और विद्रोहियों को मारने के पश्चात् ही कुंभा को राजगद्दी पर बैठाया, गलत साबित हो सकता है। मेवाड़ में उस समय श्रावणादि और चैत्रादि दोनों तिथियां भी मिलती है। वि सं० १४७९।१४८० में लिखी "सुपासनाह चरियं" में इसी प्रकार तिथि दी हुई है [4]। इसमें दोनों तिथियां दी हुई है। श्रावणादि में वि० सं० १४७९ और चैत्रादि में वि० सं० १४८० अतएव प्रतीत होता है कि ये दोनों तिथियां उस समय प्रचलित थी।

देलवाड़ा का वि० सं० १४९१ का लेख

इस लेख में १८ पंक्तियां हैं। प्रारम्भ की ८ पंक्तियों में संस्कृत के छन्द है और शेष भाग में राजस्थानी भाषा का अंश है जो शिलालेख का मूल अंश है। यह लेख बहुत ही महत्वपूर्ण है। इसमें तत्कालीन शासन व्यवस्था, कर व्यवस्था और धार्मिक स्थिति पर प्रकाश डाला गया है। साह सहणपाल और सारंग नवलखा दोनों भाई थे। इनके पिता रामदेव महाराणा खेता के समय से मेवाड़ मंत्री पद पर था। इसका बहुत

---

३. ब्रि० फ० जिल्द ४ पृ० २३। तब० अक० (अ०) भाग ३ पृ० २२०। उपरोक्त पृ० ६१।

४. "संवत् १४८० वर्षे। शाके १३४५ प्रवर्त्तमाने। ज्येष्ठ वदि १०। शुक्रे बवकरणे। मेदपाटदेशे। देवकुलपाटके। राजाधिराजराणा मोकल विजयराज्ये—

नंदेमुनौ युगे चन्द्रे १४७९ ज्येष्ठमासे सितेतरे।
दशम्यां लेखयामास शुभाय ग्रंथ पुस्तकम्॥१॥
राजस्थान भारती कुंभा विशेषांक पृ० १९ से उद्घृत

ही सुन्दर वर्णन करेडा जैन मन्दिर के विज्ञप्ति लेख (१४३१ वि० में है [5] । सहणपाल महाराणा मोकल और महाराणा कुंभा के प्रारम्भिक वर्षों में पिता के पद पर नियुक्त रहा था । सारंग भी किसी उच्च राजकीय पद पर नियुक्त था । इन्होंने मंडपिका द्वारा कर संग्रहित करा धर्म चिन्तामणि पूजा के निमित दिलाने की व्यवस्था कराई है । इस प्रकार की व्यवस्था नई नहीं हैं । प्राचीन मन्दिरों के शिलालेखों और दानपत्रों में ऐसे कई उल्लेख मिलते हैं जिनमें मंडपिका से कर इकट्ठा कराया जाकर इसका कुछ अंश धर्मार्थ दिया जाता था । करेडा के जैन मन्दिर में एक लेख लगा हुआ है जिसका सारांश यह है कि नाड़ोल की मंडपिका से कुछ राशि इस मदिर में उदक के लिए भेजी जाती थी । यह लेख वि० सं० १३२६ चैत्र वदि १५ (श्रवणान्त) का है और दानदाता चाचिगदेव सोनगरा [6] है । इन मंडपिकाओं से कई बार पूरी-की-पूरी कर की राशि को न देकर इसका कुछ अंश ही दिया जाता था । मेवाड़ के प्रस्तुत लेख में मंडपिका के साथ मेवाड़ के मुख्य मंत्री का भी नाम [7] है । अतएव प्रतीत होता है कि यह मंडपिका केन्द्रीय शासन द्वारा संचालित होती थी । चाचिगदेव सोनगरा के वि० सं० १३३३ के लेख में अमात्य के साथ पंचकुल का भी उल्लेख है । वि० सं० १३७२ और १३७३ के आबू के सुरही लेखों में भी इसी प्रकार का उल्लेख है । सेलहथ द्वारा धर्म चिन्तामणि पूजा [8] के लिये १४ टंके निश्चित करना उल्लेखनीय है । "सेलहथ" स्थानीय अधिकारी होता था । वि० सं० १४७८ में लिखे पृथ्वीचन्द्र चरित में

---

५. वि० सं० १४४६ में उक्त विज्ञप्ति की केलदाड़ा (कपिलवाटक) में प्रतिलिपि की गई थी । इसमें "श्री करहेटाख्य श्री पार्श्वनाथजिनचरण-परिचर्याप्राप्तप्रसादवरेण सुधाकरेणेव सदैवगुरुसंगमस्पृह्यालुनापुराकृतसुकृत-सञ्चयोदयवशवशीभूतराज्यप्रधानसाधुरामदेवश्रावकवरेण..." वर्णित है ।

६. उपरोक्त पृ० १७५ का फुटनोट सं० ५५ में दिया गया मूल अंश ।

७. सहणपाल के लिये "राजमंत्रिधुराधौरयः" विशेषण लगा हुआ प्रशस्तियों में वर्णित है । अतएव प्रतीत होता है कि यह मोकल के समय से ही इस पद पर था ।

८. करहेड़ा जैन मंदिर के विज्ञप्ति लेख (१४३१ वि०) में सेलहथ का उल्लेख दृष्टव्य है—"श्रीशासनप्रभावकेण सेल्लहस्तबेन्नू सुश्रावकेण समाकारिता वयं सादरं शतपत्रिकादि स्वकीयग्रामेषु विजेहीयाञ्चक्रमहे चतत्र परिसरे पक्ष कल्पमेकम्" वर्णित है । इससे प्रतीत होता है कि इस पद भी जैन श्रावक ही रहे होंगे ।

नगर अधिकारियों में "सेलहथ" का नाम भी दिया गया है। दान देते समय दानदाता कई बार "सेलहथ" को भी सम्बोधित करके दान देते थे। आबू के लेखों में प्राय: [9] "श्री अर्बुदेत्य ठकुर–सेलहथ तलार प्रभृवीनां "शब्दों का प्रयोग किया गया है। इन लेखों से यह भी प्रकट होता हैं कि कर संग्रह में सेलहथ का भी हाथ रहता था। एक लेख में तलार सेलहथ आदि को सम्बोधित करके स्पष्टत: उल्लेख किया है "किमपि न याचनीयं न [10] गृहीतव्यं च"। सम्भवत: यह अधिकारी पंचकुल का भी सदस्य होता था। चाचिगदेव सोनगरा के लेख में "श्री करणीय पच सेलहथडा" शब्द है। इस लेख में १४ टंका कर लेने का उल्लेख है। टंका एक प्रकार की मुद्राएं थी जो पश्चिमी भारत में चलती थी। टके कई प्रकार के होते थे। सोने चांदी और ताम्बे के ये बने रहते थे। सोने के टंके मूल्य में बहुत अधिक होते थे। साधारण टंकों से ताम्बे के टंका का अर्थ ज्ञात होता है। समसामयिक कृति "उपदेशतरंगिणी" में कई स्थलों पर टंकों का उल्लेख है। इनमें स्पष्टत: सोने चांदी और साधारण टंकों का उल्लेख है। इनका उल्लेख अत्यन्त विस्तार से अन्यत्र कर दिया गया है।

विभिन्न स्थलों पर जो कर लगाये गये थे उनका उल्लेख इस प्रकार है—

१. देलवाड़ा की मंडपिका पर	५ टंका
२. देलवाड़ा के मापे पर	४ टंका
३. देलवाड़ा के मणहेडावटा पर	२ टका
४. देलवाड़ा के खारीवटा पर	२ टंका
५. देलवाड़ा के पटसूत्रीय पर	१ टंका
कुल	१४ टका

मापा शब्द कस्टम टेक्स का सूचक है। मेवाड़ में आज तक भी यह शब्द प्रचलित है। मणहेड़ावटा, खारीवटा और पटसूत्रीय शब्द उल्लेखनीय है। ये नगर के भाग थे। पृथ्वीचन्द चरित वि० सं० १४७८ में नगर के ८४ चौहटों का उल्लेख किया है

९. अर्बुद जैन लेख संदोह लेख सं० २ पृ० ८–९।

१०. "श्री अर्बुदेत्यठकुर—सेलहथ—तलारप्रभृतीनां कापडा प्रत्ययं देय द्र ब अष्टौ द्रम्मा तथा प्रमदाकुलसत्कनामां षट् नामकं प्रतिमल प्रत्ययंद्र पंच द्रम्मा किमपि न याचनीयं न गृहीतव्यं च [उपरोक्त]।

उनमें खारीवटा और पट सूत्रीय का भी उल्लेख है। मणहेडा भी इसी प्रकार का एक चौहटा है जहां बिकने वाली वस्तुओं पर कर लिया जाता था [11]। इस प्रकार के कर लेने की प्रथा दीर्घकाल से प्रचिलित थी।

इस लेख का भाषा के दृष्टिकोण से बड़ा महत्व है जो मध्यकालीन मेवाड़ी भाषा का प्राचीनतम नमूना है। देलवाड़ा से प्राप्त अन्य लेख संस्कृत में है। इसकी तुलना एक लिंगजी से मिली रायमल की दक्षिण द्वार की प्रशस्ति से करें तो कुछ अन्तर प्रतीत होता है। प्रस्तुत लेख के मेवाड़ी के स्थान पर प्राचीन गुजराती भाषा से प्रभावित प्रतीत होता है। इसका मुख्य कारण यह है कि जैन साधु गुजरात और राजस्थान दोनों क्षत्रों में बराबर विहार करते थे। गुजरात का उस समय के मेवाड़ से सांस्कृतिक सम्बन्ध घनिष्ट था। वि० सं० १४९५ की चित्तौड़ की प्रशस्ति में स्पष्टतः इसका उल्लेख है कि श्रेष्ठि गुणराज के पूर्वज मेवाड़ से अहमदाबाद गये थे और आते जाते रहते थे। श्रेष्ठि वीसल ईडर का रहने वाला था जिसे रामदेव की पुत्री व्याही थी अतएव यह स्थायी रूप से मेवाड़ में रहने लग गया था।

नागदा व देलवाड़ा के वि०सं० १४९१ और १४९४ के रामदेव परिवार के लेख

नागदा का अद्भुतजी की मूर्ति का लेख वि० सं० १४९४ का कई दृष्टियों से उल्लेखनीय है। इसमें श्रेष्ठि रामदेव परिवार का विशद वर्णन किया हुआ है। यह परिवार महाराणा खेता के समय से ही मेवाड़ में बड़ा प्रसिद्ध रहा है। इस लेख में वंशावली रामदेव के पूर्वज लक्ष्मीधर से दी हुई है। इसका पुत्र लाधु हुआ था। इन दोनों का कोई विस्तृत वर्णन नहीं मिलता है। रामदेव का सबसे पहला उल्लेख करेडा जैन मन्दिर के विज्ञप्ति महा लेख (वि० सं० १४३१) में दिय गया है। इस लेख से पता चलता है कि इसने वहां बड़ा दीक्षा महोत्सव कराया था। इसके बाद के कई मूर्ति लेख और ग्रंथ प्रशस्तियां मिली है। वि० सं० १४४६ में केलवाड़ा में मेरुनन्दन उपाध्याय से उक्त विज्ञप्ति ग्रंथ लिखाया गया था। इसकी प्रशस्ति में रामदेव और मेलादेवी का उल्लेख है। इन्हीं मेरुनन्दन उपाध्याय की मूर्ति के नीचे वि० सं० १४६९ का लेख है जिससे प्रकट होता है कि उक्त आचार्य की मूर्ति बनवाई गई। इसकी प्रतिष्ठा जिनवर्द्धन सूरि से कराई गई। जिनवर्द्धन सूरि की प्रतिमा भी १४८६ में उक्त परिवार द्वारा देलवाड़ा में बनाई गई जिसकी प्रतिष्ठा जिनचन्द्रसूरि ने की थी। इसी दिन द्रोणाचार्य गुरु की प्रतिमा की भी प्रतिष्ठा कराई गई। वि० सं० १४८६ में ही पं० ज्ञानहंसगणि से संदेह दोहावली लिखाई। इसकी प्रशस्ति में देलवाड़ा में कराये गये कई कार्यों का वर्णन है और मेलादेवी की बड़ी प्रशंसा की गई है।

---

११. उपरोक्त पृ० १७१–७२।

रामदेव मन्त्री के दो स्त्रियां थी। १. मेलादेवी और २. माल्हणदेवी। मेल्हादेवी से सहणपाल और माल्हणदेवी से सारंग हुआ। सहणा की स्त्री का नाम नारंगदे था जिससे रणमल रणधीर रणभ्रम कर्मसी आदि उत्पन्न हुये। वि० सं० १४९१ के देलवाड़ा के एक लेख और आवश्यकवृहदवृत्ति के दूसरे अध्याय की प्रशस्ति में इनका उल्लेख है। सारंग परिवार का उल्लेख वि० सं० १४९४ के नागदा के अद्भुतजी की मूर्ति के लेख में है। इससे पता चलता है कि इसके दो स्त्रियां थी जिनके नाम हैं हीमादे और लषमादे। वंशक्रम इस प्रकार है—
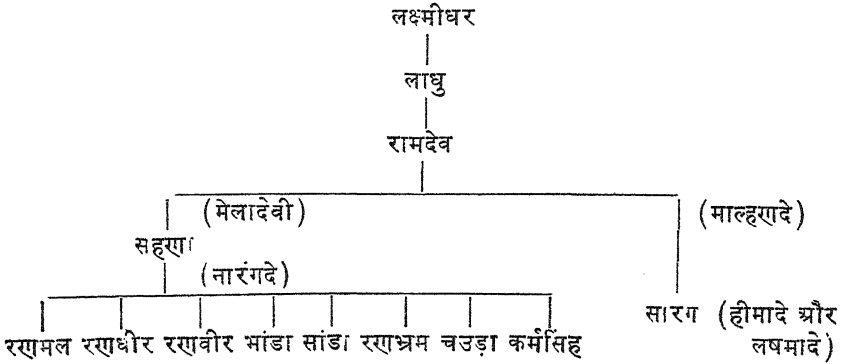
देलवाड़ा की १४९३ की प्रशस्ति

पंडित प्रवर लक्ष्मणसिंह देलवाड़ा का रहने वाला था। पर्श्वनाथ स्वामी के बड़े जिनालय में इसने दो कायोत्सर्ग पार्श्वनाथ की प्रतिमायें वि० सं० १४९३ वैशाख बदि ५ को प्रतिष्ठित कराई थीं। इसकी वंशावली इस प्रकार दी है। प्राग्वाटवंशीय गौष्ठिक श्रे० झांझा की धर्मपत्नि लक्ष्मीबाई के देवपाल नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। देवपाल की स्त्री देवलदेवी थी इसके श्रे० कुरपाल, श्रीपति नरदेव धीणा और पडित प्रवर लक्ष्मणसिंह हुआ। लक्ष्मण के पंडितप्रवर उपाधि लगी है जो उल्लेखनीय है जिससे विदित होता है कि श्रेष्ठि लोग भी पढ़ने लिखने में रुचि रखते थे। यह काछोलीवाल गच्छीय पूर्णिमापक्ष की द्वितीय शाखा के आचार्य भद्रेश्वर सूरि संतानीयान्वय में भ० श्री रत्नप्रभसूरि के पट्टालंकार सर्वानंदसूरि का श्रावकथा।

कुंभा का वि० सं० १४९४ का नांदिया का दान पत्र

महाराणा कुम्भा का यह दानपत्र वि० सं० १४९४ का है। इस दानपत्र का विशेष महत्व है। नांदिया ग्राम सिरोही राज्य के पूर्वी भाग में स्थित होने से यह कहा जा सकता है कि उक्त संवत् के आसपास कुंभा का वहां शासन

स्थित हो चुका था । सिरोही का पूर्वी भाग जिसमें पिंडवाड़ा, अजाहरी वसंतगढ़ आदि सम्मलित है, सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण था । गुजरात और मेवाड़ के मध्य में होने के कारण सिरोही के इस भू-भाग में सदैव आक्रमण की आशंकायें बनी रहती थी । कुंभा ने गोडवाड की रक्षा के लिए ही सम्भवत इस भू-भाग को जीतकर अपने राज्य मे मिलाया । ओझाजी का अनुमान है कि कुंभा ने वि० सं० १४९४ के पूर्व ही आबू जीत लिया था । लेकिन वहां से वि० सं० १४९४ और १४९७ के देवडों के दानपत्र मिले है । अतएव यह निश्चितरूप से कहा जा सकता है कि आबू पर कुंभा की विजय इस संवत के पश्चात् हुई थी ।

प्रस्तुत दानपत्र के पूरे भाग का अब तक सम्पादन होकर प्रकाशित नहीं हुआ है । इसका कुछ अंश ओझाजी के उदयपुर राज्य के इतिहास में प्रकाशित कराया था । इसमें खेतों के नाम स्पष्टतः दिये हुए है । अतएव पता चलता है कि उस समय सरकारी रेकार्ड इन खेतों के नाम से ही रखा जाता था ।

वि० सं० १४९४ का मधुआजी का ताम्रपत्र और आबू के देवड़ों के लेख

सार्वजनिक सम्पर्क कार्यालय जयपुर में मधुआजी के ताम्रपत्र का एक चित्र है । इसे मैंने ऊपर अध्याय तीन में पृ० ८१ पर वर्णित कर दिया है । इस ताम्रपत्र से यह पता चलता है कि कुंभा का कुछ समय के लिये तलहटी पर अधिकार हो गया था किन्तु मुख्य दुर्ग वह जीत नही सका होगा । दुर्ग से वेवड़ों के वि० सं० १४९४ और १४९७ के लेख मिले हैं । वि० सं० १४९४ वाला लेख दिगम्बर जैन मन्दिर का है । श्वेताम्बरों के गढ़ आबू में दिगम्बरों के एकाध मंदिर हैं । संभवतः इसे बनाते समय भी कुछ गड़बड़ हुई थी । इसलिए राजधर देवड़ा चूंडा ने इस लेख द्वारा यह निश्चित किया कि जब तक मन्दिर का काम चलता रहेगा कोई भी अधिकारी किसी भी प्रकार का कर नहीं मांगेगा [12] । इसके अतिरिक्त वि० सं० १४९७ के लेख में भोग के लिये दी जाने वाली राशि निश्चित की गई थी । इस प्रकार दोनों लेख कई बातों से महत्वपूर्ण हैं । इन लेखों से आबू दुर्ग पर देवड़ाओं के अधिकार वि० सं० १४९७ तक बने रहने का हाल ज्ञात होता है । ये देवड़ा स्थानीय शासक थे ।

---

१२. **देवड़ा चूंड़ा प्रासादनी अक्षर विधि ऐह प्रासाद नीपजतां षश्वा कोइ करवा न लहई वरसां सु १०० कमठा हुइ आडु षश्वा करिते राजधर निर्वहि देवहु सांडु ठाकरु परभु भाट सेलहुत पाईक परथु देवदा ब्रह्मदा को कोई मांगवा न लहि मांगि ते राजधर चु (चूं) डु निर्वहि ..''**

[आबू का वि० सं० १४९४ का लेख]

देलवाड़ा के देवपाल पिछोलिया परिवार के लेख (१४९४ एवं १५०३ वि०)

देलवाड़ा में १५वीं शताब्दी में देवपाल नामक श्रेष्ठि रहता था। इसके सुहड़सिंह नामक एक पुत्र था जिसकी स्त्री का नाम सुहड़ा देवी था। इसके एक पुत्र करणसिंह हुआ। करणसिंह के अतिरिक्त इसके एक पुत्र और पिछउ लिआ और होना भी कुछ विद्वान मानते हैं किन्तु यह संभवतः गलत है। यह जैन लेख संग्रह के पाठ के आधार पर लिखा है। श्री विजयधर्म सूरिजी इसे "प्राग्वट सा० देपाल पुत्र सा० सुहड़सी भार्या सुहडादे पीछउलिआ सा० करण ....." पढ़ा है। यहां पिछोलिया शब्द जाति का सूचक है। इस लेख में करणा की पत्नि का नाम चतूदेवी लिखा है। इसके सात पुत्र हुये जिनके नाम धांधा, हेमा, धर्मा, कर्मा, हीरा, काला और हीसा थे। हीसा ने वि०सं०१४९४ फाल्गुणकृष्णा ५को सतबीसकायोत्सर्गजिनप्रतिमा पट्टिका सहित स्थापित कराई थी। इसकी पत्नि का नाम लाखू और पुत्र का नाम आमदत्त था।

तृतीय पुत्र धर्मा का विवाह धर्मिणी नामक कन्या के साथ हुआ। इसके सहसा शालिग, सहजा सोना और साजण नामक पांच पुत्र थे। इन्होंने वि० सं० १५०३ में ९६ जिनप्रतिमापट्टिका चयचन्द्र सूरि से प्रतिष्ठित कराई थी। इनका वंश वृक्ष इस प्रकार है:—
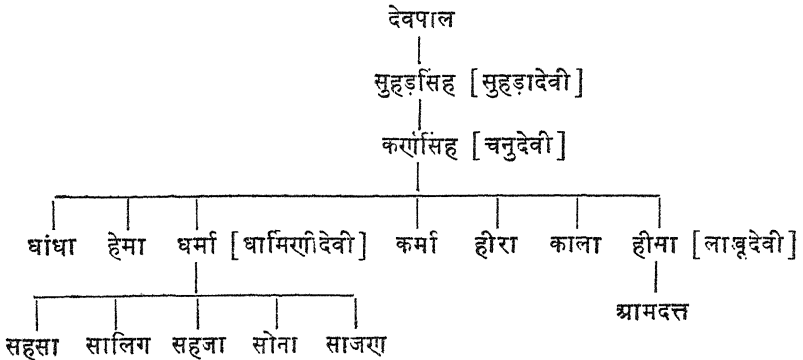
वीसल परिवार के लेख (१४९४ वि०)

रामदेव श्रेष्ठि की पुत्री खीमाई बड़ी प्रसिद्ध है। इसका विस्तृत वर्णन अन्यत्र भी किया जा चुका है। सोम सौभाग्य और गुरुगुणरत्नाकर में इसके सुसराल पक्ष का सविस्तार से उल्लेख है। वीसल के पिता का नाम इसमें वाच्छा दिया है। इसका पूरा नाम वत्सराज था [13]। जिसकी पत्नि का नाम राणी दिया है जो अन्यत्र भी मिलता है। वीसल के दो पुत्र धीर और चम्पक थे। प्रस्तुत लेख में धीरा का ही उल्लेख है।

---

१३. जैन लेख संग्रह भाग २ ले० सं० १९६८ एवं ६९। देवकुल पाटक ले० सं० १ एवं ४। प्राग्वाट इतिहास पृ० २६१।

वीसल ने क्रियारत्नसमुच्चय की १० प्रतियां लिखाई थी [14]। इसकी प्रशस्ति में गुणरत्न सूरि ने इसकी बड़ी प्रशंसा की है [15] । अन्य प्रशस्तियों में "श्रीमद्देउलवाटकेऽथ निवसञ्श्रीलक्षभूमीपतेर्मान्यः पुण्यवतां सुवर्णमुकटः संघाधिपते वीसलः" वर्णित है ।

चित्तौड़ की वि० सं० १४६५ की प्रशस्ति

इस प्रशस्ति का सम्पादन श्री देवदत्त रामकृष्ण भंडारकर ने किया था । इसका प्रारम्भ श्री सर्वज्ञ की स्तुति से होता है । इसके पश्चात् सरस्वती की स्तुति की गई है । जैनों की परम्परा के अनुसार क्रमशः वृषभदेव शांतिनाथ नेमीनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर नामक पांच तीर्थङ्करों की स्तुतियां इसके बाद की गई हैं [16]। सातवें श्लोक में मेदपाट देश का उल्लेख किया गया है जहां ऊंचे-ऊंचे प्रासादों और कीर्तिस्तम्भ शोभित हो रहे थे । इसके पश्चात् वंश वर्णन शुरू होता है । इसमें हमीर से ही वंश परम्परा दी गई है । हमीर को तुरुष्कों को जीतने वाला कहा है । यह प्रसंग महत्वपूर्ण है । इसके पूर्व किसी भी प्रशस्ति में हमीर को तुरुष्कों को जीतने वाला वर्णित नहीं

---

१४. ऊकेशाभिधवंशवारिधिविधुः संघाधिपः संपदा—
राज्ये तस्यबभूवभूपतिसम श्रीवत्सराजह्वयः ।
परन्तु प्रस्तुत लेख में इसका राजस्थानी स्वरूप "ऊकेश सा० बाच्छाराणी पुत्र वीसल" वर्णित है । वीसल की माता का उल्लेख भी इसी प्रकार मिलता है यथाः—
राणीरिति मृदुवाणीकान्ताजातास्य मेरुमूर्त्तिरिव ।
सन्नन्दना सुरमणी रमणी याभिष्ट कल्पलता ।।६।।

१५. वाच्छासंघपतेरियद्दरविभोर्मान्यस्य धन्यः सुतः
शश्वद्दानविधिर्विवेकजलधिश्चातुर्यलक्ष्मीनिधिः ।
अन्यस्त्रीविरतः सुधर्मनिरतोभक्तः श्रुतेऽलेखयत् ।
साधुर्वीसलसञ्ज्ञितो दशवरा अस्य प्रतिरादिमाः ।।६५।।
"गुरुगुणरत्नाकरकाव्यम्"

१६. मेदपाट देश का ऐसा ही सुन्दर वर्णन कुंभलगढ़ प्रशिस्त के श्लोक ५८ से ६६ और शत्रुञ्जय तीर्थोद्धार प्रवन्ध आदि में किया गया है ।

किया गया है [17] । मोकल के सपादलक्ष विजय का उल्लेख किया गया है [18] जो वहाँ के सुल्तान फिरोज के साथ युद्धों का वर्णन है । कवित्वमय यह वर्णन उल्लेखनीय है यथा—"यो दुर्द्धर्ष सपादलक्षसुमुखीवक्षस्तटेषुस्फुटायालिखन्न यनोदबिम्बुमिषत: कीर्ति-प्रशस्तां निजाम्" आदि २।। श्लोक सं० १९ में कुंभा के लिये अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन दिया हुआ है [19] । श्लोक सं० २१ में चित्तौड़ का वर्णन है जिसे यहां "श्री मेदपाट धरणी तरुणीललाटपट्टे स्फुटं मुकटतामुपटीकते" शब्द दिया गया है [20] ।

इसके पश्चात् मन्दिर के निर्माता साधु गुणराज की वंशावली दी हुई है । चित्तौड़ में श्रेष्ठि वीसल रहता था इसका पौत्र आसपाल कर्णावती गया था और वहां व्यापार करता था । इसके चार पुत्र थे । संगम, गोडा, समरा और चाचा । चाचा ने अहमदाबाद में जैन मन्दिर बनवाया था इसके दो पत्नियां थी लादी और मुक्तादे । लीदी से तीन पुत्र हुये थे और मुक्तादे से चार । गुणराज मुक्तादे का पुत्र था । अन्य भाई अम्बक लीम्बक और जयता थे । इनकी पत्नियों के नाम क्रमश: गंगा, माणिक्यदे, हेमादे और जसमादेवी था । श्लोक ३८–३९ से पता चलता था किगुणराज गुजरातके बादशाह की सभा में सदस्य था। इसनेवि०१४५७ और१४६२ में शत्रुञ्जय और रेवतंक गिरि की यात्राएं की थी । अम्बक साधु हो गया था । श्लोक ४७ में वर्णित है कि सं० १४६८ में जब भीषण दुर्भिक्ष पड़ा उस समय इस परिवार ने असंख्य धन खर्च करके लोगों की बड़ी सहायता की थी । वि० सं० १४७७ में आचार्य सोमसुन्दर सूरि के नेतृत्व में शत्रुञ्जय की यात्रा के निमित एक संघ निकाला था । इसमें बादशाह से फरमान लिया । इस संघ का सुन्दर वर्णन सोमसौभाग्य काव्य में भी दिया हुआ है । इसके ८वें सर्ग के श्लोक सं० १७ से ९२ में इसका वर्णन मिलता है । इसमें संघ यात्रा

---

१७. ओझा—उ० इ० भाग १ पृ० २३४–२३५ ।

१८. चित्तौड़ का वि० सं० १४८५ का शिलालेख श्लोक सं० ५१ । शृंगीऋषि (१४८५ वि०) का श्लोक सं० १४ । कु० प्र० श्लोक सं० २२१ । वी० वि० भाग १ पृ० ३१४–३१५ में दो युद्ध वर्णित है एक में राणा की हार और एक में जीत । ओझा—उ० इ० भाग १ पृ० २७३ । बेले—हि० गु० पृ० पृ० १४८ फु० नो० ४ में राणा की हार वर्णित है जो संभवतः गलत है । क्यामखां रासो में भी इस युद्ध का प्रसंगवश वर्णन है ।

१९. एकलिंग माहात्म्य का श्लोक सं० ८५ भी यह है ।

२०. शत्रुञ्जय तीर्थोद्धार प्रवन्ध और कु० प्र० श्लोक सं० ७० में भी इसी प्रकार का वर्णन है ।

प्रशस्ति के रचियता चारित्ररत्नगणि नामक जैन साधु थे ।

राणकपुर जैन मन्दिर की प्रशस्ति (१४९६ वि०)

यह छोटी सी किन्तु महत्वपूर्ण ऐतिहासिक प्रशस्ति है इसको हम तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं १. राजवंश वर्णन २. धरणा श्रेष्ठि वंश वर्णन ३. प्रतिष्ठादि उल्लेख ।

इसका सबसे महत्वपूर्ण अंश राजवंश वर्णन है । जैन लेखकों के पास उस समय भी ऐतिहासिक परम्पराएं विद्यमान थी । यह लेख पूर्ण शोध करके लिखा गया है । वंशावली सम्बन्धी कोई उल्लेखनीय भूल अगर है तो वह बाप्पा को गुहिल का पिता मानना । कुंभा के समसामयिक सब ही प्रशस्तिकार इस भ्रांति में बराबर पड़े ही रहे । कुंभलगढ़ की विस्तृत प्रशस्ति में भी जो बहुत ही शोधपूर्ण है उसमें भी बाप्पा की तिथि सम्बन्धी भूल विद्यमान है । यह भूल लगभग २०० वर्ष पूर्व के चित्तौड़ के रावल समरसिंह के लेख में भी विद्यमान है [25] ।

वंशावली में नीचे लिखे नाम छोड़ दिये हैं महेन्द्र, नागादित्य, अपराजित महेन्द्र II, खुमाण I, मत्तट, खुमाण II, भार्तृभट्ट II, शालिवाहन अम्बा प्रसाद शुचि वर्मा और रतनसिंह । समरसिंह के पश्चात् बाप्पा के वंश के भुवनसिंह का उल्लेख है यह शीशोदा के राणा शाखा का था, इसके पुत्र भीमसिंह का नाम छोड़ दिया है ।

वंशावली में दूसरा उल्लेखनीय अंश महाराणा कुंभा का वर्णन है । इस प्रशस्ति से ही महाराणा की प्रारम्भिक विजयों का उल्लेख मिलता है । इनमें उल्लेखनीय विजय बूंदी, गागरोण, सारंगपुर, नागौर, चाटसू, अजमेर, मंडोर, मांडलगढ़, खाटू आदि है । इन नगरों पर उसकी विजय का उल्लेख कीर्तिस्तम्भ प्रशस्ति में भी है । किन्तु इनका वि० सं० १४९६ की प्रशस्ति में उल्लेखित होने से यह माना जा सकता है कि कुंभा ने अपने पिता के हत्यारों को मारकर ही अपने कर्तव्य की पूर्ति नहीं समझी बल्कि जो अंश उसके पिता के समय में चला गया था उसे भी वापस प्राप्त कर लिया ।

---

२५. बाप्पा सम्बन्धी यह भूल वि० सं० १३३१ की चित्तौड़ की और १३४२ की चित्तौड़ की और १३४२ की आबू की वेदशर्मा की प्रशस्तियों में दृष्टव्य है । इनमें इसे गुहिल का पिता लिख दिया है । इसके पूर्व के १०२८ के नर वाहन के लेख में "अस्मिन्दभूद्गुहिलगोत्रनरेन्द्रः श्री बप्पकः क्षितिपतिः क्षितिपीठरत्नम्" वर्णित है ।

कुंभा के कई बिरुद दिये गये हैं। ये बिरुद निसंदेह बतलाते हैं कि उस समय वह वयस्क हो चुका था। इतने अधिक बिरुद कुंभलगढ़ और कीर्तिस्तम्भ की राजकीय प्रशस्तियों में भी नहीं दिये हुये हैं।

वि० सं० १४९६ के राणकपुर के लेख और वि० सं० १५६६ के आबू के अचलेश्वर के लेख में दी गई वंश परम्परा इस प्रकार है[26]:—

धरणा और रतना का परिवार पहले सिरोही से मालवे में गया था। धरणा का परिवार मेवाड़ में आ बसा किन्तु रतना का परिवार मालवा में ही रह गया। धरणा के दो पुत्रों का स्पष्टत: उल्लेख शिलालेखों में मिलता है। ऐसी मान्यता है कि उसके कोई पुत्र नहीं था जो गलत है। सालिग का पुत्र सहसा मालवे के शासक गयासुद्दीन का मंत्री था। सहसा ने अचलगढ़ में चतुर्मुख जिनालय बनाया था।

राणकपुर मन्दिर का निर्माता सूत्रधार देपाक या दीपा था। इसकी वंश परम्परा इस प्रकार है।

---

२६. श्रीदोलतसिंह लोढा—प्राग्वाट इतिहास पृ० २७५–२७६।

इस हरदास ने आबू की पित्तलमय मूर्त्तियां बनाई थी। इसके लिये वि० सं० १५६६ का उत्तराभिमुख आदिनाथ बिंब (अचलेश्वर) का लेख उल्लेखनीय है[27]। धरणा परिवार के वि० सं० १४९८ और वि० सं० १५०९ के लेख राणकपुर मन्दिर की मूल नायक प्रतिमाओं पर विद्यमान है। वि० सं० १४९८ के लेख में मूलनायकजी के घुटने पर लेख खुदा है "वि० सं० १४९८ वर्षे फाल्गुण व० ५ संघ० धरणाकेन भ्रातृज सं० लाषादि—युगादिदेवका तपागच्छनायकसोमसुन्दर सूरि" और वि० सं० १५०९ के लेखों में "सं० १५०९ वि० श्रु० आषाढ़ सु......धरणाकेन पुत्र .....का० प्र० तपागच्छ श्रीसोमसुन्दरसूरि शिष्य श्री रत्नशेखरसूरिजि:" वर्णित है।

कड़िया का लेख

उदयपुर से १६ मील दूर स्थित कडिया ग्राम की प्रशस्ति को वरदा में श्री रतनचन्द्रजी अग्रवाल ने सम्पादित करके प्रकाशित कराया है इस प्रशस्ति को सर्व प्रथम प्रकाश में लाने का श्रेय श्री ओझाजी को है जिन्होंने राजपुताना म्युजियम रिपोर्ट में इसका सारांश प्रकाशित कराया था। यह शिला पट्ट (४८×२४") इस समय साहित्य संस्थान उदयपुर के कार्यालय में संग्रहित है[28]। एक पंक्ति लगभग ९० से १०० अक्षर खुदे हैं। कुल ३६ पंक्तियां है।

इस प्रशस्ति में तिल्ह भट्ट का उल्लेख है। यह महाराणा लाखा के समय से ही इस पद पर आसीन था। मंदिर निर्माण में पर्याप्त राशि व्यय हुई थी। तिल्हभट्ट पत्नि का नाम तारा था जो चन्द्रात्रेय वंश की थी। इसमें तारा की ही प्रशंसा अधिक की गई है। श्लोक स० ३७ और ३८ में इसके पीहर के वंश का वर्णन इस प्रकार दिया है—

नादा
|
कर्णा
|
तारादेवी (तिल्हभट्ट से विवाहित)

---

२७. अर्बुद प्राचीन जैन लेख संदोह ले० सं० ४६४।

२८. वरदा वर्ष ६ अंक ३ पृ० २। शारदा—म० कु० पृ० १७३–७४। राजपुताना म्युजियम रिपोर्ट १९३२ पृ० ४ सं० ६।

तिल्हभट्ट की वंशावली इस प्रकार दी है। यह भारद्वाज वंश का था—

इस तिल्हभट्ट के लिये श्लोक सं० २५ और २६ में वर्णित है कि महाराणा लाखा ने इसको बाजवीग्राम माफी में दिया। इस उल्लेखित श्लोक में "हाट्टकपट्टवासः स्वेष्टार्थभारान्वितगादलीकं। श्री बाजवीग्राम सपारसीमं संकल्प्य तं राजकरैः प्रणीतम्" वर्णित है। इससे उस समय लिये जाने वाले करों की ओर ध्यान जाता है। हाटककर का उल्लेख पूर्व किया जा चुका है। पट्टवासकर संभवतः पट्ट सूत्रीयकर है। "स्वेष्टार्थ भारान्वितगादलीकं" से मापा या मंडपिका पर लिये जाने वाले अन्य कर ध्वनित होते हैं। इस प्रकार के कई करों का उल्लेख गोड़वाड़ से प्राप्त लेखों में उल्लेखित है। "सपारसीमं" शब्द भी उल्लेखित है। इससे यह सिद्ध होता है कि उस समय ग्रामों की सीमाएं निश्चित होती थी। दानपत्रों में "स्वसीमातृणयूतिगोचरपर्यंत स्ववृक्षमालाकुलः सहिरण्यभागभोगोपरिकरसर्वदायसमेतश्च" उल्लेखित रहता है। सपारसीमं शब्द से यहां अर्थ तृणयूतिगोचरवृक्षमाला आदि सहित लिया जाना चाहिए। श्लोक सं० ३१ भी उल्लेखित है जिसमें लीखा है कि महाराणा कुंभा गुरु का बड़ा सन्मान करता था। वर्णन वड़ा उल्लेखनीय है—"शेश्रेति भक्त्या गुरुपादमूलं तुल्यंमहेष्टाय सुगमनीति। तदंघ्रिपाथोज रसे द्विरेफः समूलकांश कर्षति स्वदस्यून्"।

प्रशस्ति के श्लोक सं० ६० में शिल्पी हादा के पुत्र करणा एवं फणा का उल्लेख है। श्रृंगी ऋषि के लेख में हादा के पुत्र फणा का उल्लेख हुआ है "उत्कीर्णाषि-[खि] ला सूत्रधारगरुणा से (यं) प्रशस्तिः शुभाविख्यातेन फनाभिधेन (सु) विद्यया हादात्मजेन। साहित्यिादिक-शिल्प-शास्त्रविलसित्पाथोधिनासाधुनाश्रीनारायणेनसेवकेन नृपतेश्रीमोकलस्याज्ञया"।

वि० सं० १५०२ का एकलिंगजी का लेख

७ पंक्तियों का यह लघुलेख हारीतराशि की मूर्ति के नीचे खुदा हुआ है और अधिकांशतः विद्वानों का ध्यान नहीं गया है। यह मूर्ति जटा, लंगोट, दाढी, मूंछ, हाथ जोड़े जनेऊ पहने हाथों में रूद्राक्ष की माला लिए और कंधे पर चद्दर डाले हुए हैं। यह लेख वि० सं० १५०२ श्रावण सुदि ५ गुरु का है। इसमें लकुलीश मतावलम्बी साधु वेदगर्भ राशि द्वारा हारीत राशि की मूर्ति को विंध्यवासिनी के मन्दिर में स्थापित कराने का उल्लेख है। यह लेख अप्रकाशित है।

वि० सं० १५०५ का भंडारी बेला का लेख

चित्तौड़ में श्रृंगार चंवरी के मन्दिर के स्तंभ पर एक लघु लेख उत्कीर्ण है जिसमें भंडारी बेला द्वारा शांतिनाथ के उक्त मन्दिर के निर्माण का उल्लेख है। इस मंदिर का उल्लेख अलग से ऊपर किया जा चुका है। शिलालेख में भंडारी बेला के लिए लिखा है कि यह महाराणा कुंभा के राज्य में रत्नों के भंडार का अधिकारी था। इसके पिता का नाम कोला था। इसके पुत्रों के नाम मूंधराज, धनराज, कुरपाल आदि थे। यह लेख महत्वपूर्ण है। इसमें प्रतिष्ठा करने वाले जिनसागर सूरि के शिष्य जिनसुन्दर सूरि का नाम है। इसमें जिनराज सूरि, जिनवर्द्धन सूरि जिनेन्द्र सूरि जिनसागर और जिन सुन्दर के नाम हैं। पं० उदयशील ने संभवतः इस निर्माण कार्य कराने में मुख्यरूप से कार्य किया था [२९]।

वि० सं० १५०५ के चित्तौड़ की मूर्तियों के लेख

वि० सं० १५०५ के कुंभश्याम के मन्दिर में कुछ मूर्त्तियों के लेख हैं। इनमें वि० सं० १५०५ माघसुदि १५ बुधवार को महाराणा कुंभा द्वारा कुछ मूर्त्तियां स्थापित करना वर्णित है। इन मूर्त्तियों के नाम तुलसीमाधव, रामलक्ष्मण, कृष्णरुक्मिणी रोही दामोदर आदि हैं। जैसाकि ऊपर वर्णित किया जा चुका है यह मन्दिर मूलरूप से ९वीं शताब्दी का है और इसके ऊपर का भाग ही महाराणा कुंभा द्वारा निर्मित हुआ है [३०]।

वि० सं० १५०५ का रूपाहेली का लेख

मेवाड़ में रूपाहेली के जैन मन्दिर में मूलनायक प्रतिमा पर उक्त लेख उत्कीर्ण है। यह आषाढ़ वदि १ का है। इसमें सालिग परिवार द्वारा मूर्ति स्थापित करने का

---

२९. "संवत् १५०५ वर्षे राणा श्री लाषापुत्रराणा श्री मोकल नन्दन राणा श्री कुंभकर्ण कोश व्यापारिणा साह कोल्हा पुत्ररत्न भण्डारी श्री वेलाकेन भार्या विल्हणदेविजयमान भार्या रतनादे पुत्र भं० मूंधराज भ० कुरपालादि युतेन..." [मूल लेख से]

३०. "स्यास्ति संवत् १५०५ वर्षे मार्ग सिर सुदि १५ बुधदिने देव श्री कृष्ण रूक्मिणीसहितप्रतिमां महाराजाधिराजश्रीकुंभकर्णेन कारापितं .." (मूल लेख से)

उल्लेख है । सालिग की पत्नि क नाम हांसू था जिसके पुत्र नरसिंह हुआ जिसकी पत्निका नाम जीवणी था । इसके पुत्र का नाम ईसर और उसकी पत्नि का नाम लीसी था । ये ओसवाल मल्य गोत्र के थे ।

आबू का वि० सं० १५०६ का लेख

आबू से प्राप्त वि० सं० १५०६ का लेख बहुत ही महत्वपूर्ण है । इसको ओझाजी ने नागरीप्रचारिणी पत्रिका के वर्ष १ अंक ४ के पृ० ४५०–५१ पर प्रकाशित कराया है । यह लेख राजस्थानी भाषा का है । "राणि कुंभकर्णि" प्रयोग तृतीया एक वचन है । यह प्रयोग अब अप्रचलित है । इस लेख की लिपि जैन ग्रंथ लिपि से मिलती है अतएव शिलालेख लिखने वाला कोई जैन साधु अथवा ग्रंथों का लिपिकार रहा होगा । तीसरी पंक्ति में "कुंभकर्ण" शब्द है जहां दो 'ण' है जबकि ७ पंक्ति में एक ही हैं । पांचवी पंक्ति आदिनाथ में 'द्' कर दिया हैं । छठी पंक्ति में 'श्रावकेदेहरे' शब्द स्पष्ट पढ़ा जाता है । कई इसे 'श्रावणकेदेहरे' पढ़ते हैं । मूललेख में ऐमा नहीं दिखाई देता है । मुंडिक के स्थान पर मंडिक पढा जा सकता है । ८वीं पंक्ति में ऊपरी शब्द भी अस्पष्ट खोदा हुआ है । विशिष्ट भंडारी शब्द में 'भ' ग्रंथ लिपि के अनुसार खोदा हुआ है ।

इस लेख में मदिर में लिए जाने वाले धार्मिक करों को क्षमा करने का उल्लेख है । ये कर मंडपिका, दाण, बलावी, रखवाली, गाड़ियों और बेलों के आने जाने पर लिए जाने वाले कर आदि थे जिन्हें पहले भी कई राजाओं ने क्षमा कर दिए थे । इस लेख से उस समय में लिए जाने वाले करों का उल्लेख मिलता है । वहां विशिष्ट भण्डारी नियुक्त था जो मुख्य भण्डारी के रूप में कार्यकर्ता प्रतीत होता है । 'सरस्वती सन्निधानि वइठां लिखितं' पद का अर्थ यह लिया जा सकता है कि मूर्ति के समीप बैठ करके लिखा गया । इस लेख के नीचे वि० सं० १५०६ आसोज सुदि १३ शनिवार का लघुलेख भी खुदा है ।

वि० सं० १५०७ का राणकपुर का लेख

यह शिलालेख उत्तर भाग में स्थित शत्रुञ्जय गिरनार पट्ट पर लगा हुआ है प्रस्तुत लेख में वि० सं० १६०७ माघ सुदि १० को ओसवाल सं० भीला भार्या देवलदेवी से उत्पन्न धर्मा एवं केल्हा के परिवार वालों द्वारा राणकपुर में त्रैलौक्यदीपक चतुर्मुख

युगादिदेव प्रासाद में उक्त पट्टिका लगाना वर्णित है । मूल लेख में उक्त परिवार के अन्य किसी कार्य का वर्णन नहीं है[31] ।

वि० सं० १५०७ का वसंतपुर का लेख

वि० सं० १५०७ माघ सुदि ११ बुद्धवार को महाराणा कुंभा के राजत्वकाल में बसंतपुर के चैत्यालय का जीर्णोद्धार कराया गया । यह जीर्णोद्धार कार्य श्रेष्ठि भगड़ा आदि के परिवार वालों ने कराया था जिनका उल्लेख इस प्रकार है । इस श्रेष्ठि भगड़ा की स्त्री का नाम मेघादेवी था । इसके एक पुत्र था जिसका नाम मण्डन था जिसकी स्त्री माणिकदे से काल्हा उत्पन्न हुआ । इस परिवार के अतिरिक्त व्य० धनसिंह की स्त्री लींबा देवी से उत्पन्न पुत्र व्य० भादा स्वसंतान जावड़ भोजराज आदि ने भी सहायता दी थी । इसकी प्रतिष्ठा रत्नशेखर सूरि ने की थी[32]।

यह लेख महत्वपूर्ण है । इस क्षेत्र से वि० सं० १४९४ के दानपत्र के बाद पहला लेख है जिसमें महाराणा कुंभा का उल्लेख है ।

वि० सं० १५०७ का राणकपुर के मन्दिर का सिंघवी भीमा का लेख

सिंघवी चाम्पा और साजण दो भाई थे । राणकपुर के मन्दिर में नैऋत्य कोण वाली महाधर देवकुलिका चाम्पा ने बनवाई थी । साजण द्वारा कराये गए निर्माण कार्य का उल्लेख नहीं मिला है । इसकी पत्नि का नाम श्री देवी था जिसके भीमा नामक पुत्र हुआ । इसके तीन स्त्रियां थी १. भामिणी २. नानलदेवी ३. पउमादेवी एवं एक पुत्र यशवंत हुआ । भीमा ने अपने काका द्वारा विनिर्मित नैऋत्यकोण की महाधर

---

३१. "सं० १५०७ वर्षे माघ सु० १० ऊकेशवंशे सं० भीला भा० देवल सुत सं० धर्मा सं० केल्हा भा० हेमादे पुत्र सं० लोल्हा गांगा मोल्हा कोल्हा आल्हा साल्हादिभिः सकुटुम्बै स्वश्रेयसे श्रीराणपुरमहानगरेत्रैलोक्यदीपिका भिधानश्रीचतुर्मुखश्रीयुगादिदेव-प्रासादे महातीर्थशत्रुञ्जयश्रीगिरिनार-तीर्थद्वयपट्टिका कारिता (मूल लेख से)

३२. "सं० १५०७ वर्षे माघसुदि ११ बुधे राणा श्री कुंभकर्ण राज्ये वसंतपुर चैत्येत्तद्धुद्धारकारको प्राग्वाट व्य० भगड़ा भा० मेघादे मूलनायक श्रीशांति नाथबिंब कारित" जैन लेख संग्रह लेख सं० ९५४ ।

देवकुलिका में चैत्र कृष्ण ५ वि० सं० १५०७ में पूर्वाभिमुख आदिनाथ प्रतिमा का परिकर बनाया। इसी प्रकार अजितनाथ बिंब का उत्तराभिमुख परिकर वि० सं० १५११ में बनाकर प्रतिष्टा रत्नशेखर सूरि से कराई थी। इसी प्रकार वायव्यकोण में शिखरबद्ध महाधर देवकुलिका में सीमंधर स्वामी की प्रतिमा को अपनी पत्नि पउमादेवी, पुत्र यशवंत आदि के सहित पूर्वाभिमुख में प्रतिष्ठित कराया।

वि० सं० १५०८ के श्रेष्ठि जगसी परिवार के लेख

नाडोल में वि० सं० १५०८ का शिलालेख उत्कीर्ण है। इसमें श्रेष्ठि जगसी परिवार का उल्लेख है। जगसिंह के पुत्र केल्हा, कडुआ, हेमा, माला, जयंत, रणसिंह और लाखा थे। लाखा की पत्नि ललितादे से साडूल हुआ जिसकी स्त्री बाल्ही देवी से नरसिंह और नगा नामक दो पुत्र हुये। इन्होंने कई चतुर्विंशति जिनप्रतिमायें बनवाई थी जिसकी प्रतिष्ठा देवकुलपाटक मे रत्नशेखर सूरिजी से कराई थी। एक शांतिनाथ चौबीस नाडोल के पद्मप्रभु जिनालय में है। इस वि० सं० १५०८ के लेख मे प्रकट होता है कि इसी अवसर पर चांपानेर, चित्रकूट, जाउरनगर, कायद्राह, नागहृद, ओसियां, नागौर, कुंभपुर, देलवाड़ा, श्रीकुण्ड आदि स्थानों पर पर भेजने के लिये भी दो प्रतिमायें प्रतिष्ठित कराई।

सूत्रधार जइता परिवार के लेख

सूत्रधार जइता परिवार के कई लेख कीर्तिस्तम्भ पर खुदे हैं। कीर्तिस्तम्भ के अतिरिक्त महलों का कुछ भाग व कुम्भ स्वामी मन्दिर भी इसी परिवार ने बनाया था। इनका सबसे पहला लेख बि० सं० १४९९ फाल्गुण सुदि ५ का है। इस में महाराणा कुंभा के शासनकाल में सूत्रधार जइता और उसके पुत्र नापा, पुंजा द्वारा समाधिश्वर को प्रणाम करना लिखा है। वि० सं० १५०७ के एक लघुलेख में जो तीन पक्तियों में दीवार पर अस्पष्ट सा खुदा है सूत्रधार जइता का ही उल्लेख है। वि० सं० १५१० के दो लेख और हैं एक ज्येष्ठ सुदि १३ और दूसरा श्रावण सुदि ११ का। पहले लेख में केवल "सूत्रधार पोमा" का ही उल्लेख है। दूसरे में सूत्रधार जइता के पुत्र नापा भूमी चूथी आदि का भी नाम है। वि० सं० १५१५ का पांच पंक्तियों का लेख खुदा हुआ है। इसमें जइता के पिता का नाम लाषा दिया है। इसे "सकलवास्तुशास्त्रविशारद" कहा गया है। वि० सं० १४९५ के महावीर जैन मंदिर की प्रशस्ति में सूत्रधार नारद को लाखा का पुत्र कहा गया है। जइता और नारद दोनों भाई रहे प्रतीत होते हैं।

दो बिना तिथि वाले लेख भी मिले हैं। इनमें महाराणा मोकल के पुत्र कुंभा के आश्रित सूत्रधार जइता आदि का उल्लेख है।

वि० सं० १५१५ के आबू के लेख

आबू की खरतरबसही में[33] मूर्तियों के १४ लेख विद्यमान हैं। इनमें महाराणा कुंभा के शासनकाल में उक्त निर्माण कराने का उल्लेख है। ये लेख विभिन्न खंडों पर लगी प्रतिमाओं पर लगी प्रतिमाओं पर हैं। चूने से पुत जाने के कारण और अंधेरे के कारण लेख अच्छी तरह से पढे नहीं जा सकते हैं। प्रथम मंजिल (भूमिस्थ) वाली पश्चिमाभिमुख प्रतिमा पर लेख स्पष्टतया पढ़ा जा सकता है। उत्तराभिमुख प्रतिमा पर केवल "सं० १५१५ वर्षे आषाढ़वदि" और दूसरी पंक्ति में "जयसागरोपाध्याय बान्धवेन" पढ़ा जा सकसा है। पूर्व की तरफ की प्रतिमा में, पश्चिमाभिमुख प्रतिमा की तरह कुछ दो लेख पढ़ा जाता है। दक्षिणाभिमुख की प्रतिमा पर "संवत् १५१५ वर्षे आषाढ़वदि १ शुक्रे राजाधिराज" स्पष्टतः पढ़ा जाता है। इसके आगे दूसरी पंक्ति स्पष्टतया पढ़ी जाती है जिसमें संघपति मंडलिक का वर्णन है। इसके आगे अक्षर बहुत ही अस्पष्ट है। इन प्रतिमाओं पर नाम और छोटे-छोटे लेख और अंकित हैं यथा—"श्री खरतरगच्छे मनोरथकल्पद्रुम श्रीपार्श्वनाथ, सं० मंडलिक कारितः" आदि २।। इनसे मूर्त्तियों के नाम ज्ञात होते हैं। यथा मनोरथकल्पद्रुमपार्श्वनाथ, चिंतामणिपार्श्वनाथ, मगलाकरपाश्वंनाथ और...पार्श्वनाथ आदि। इन मूलनायकजी के अतिरिक्त अन्य प्रतिमाओं पर छोटे-छोटे लेख और खुदे हैं यथा—'श्री महावीर श्रा० धर्माइ क (का) रितः, श्री पार्श्वनाथ सं० मंडलिक, श्री आदिनाथ आदि। ये लेख ५त्ता के हैं या मूर्ति का नाम है[34]।

द्वितीय मंजिल में प्रतिमाओं के लेख अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट है। पश्चिमाभिमुख पर "सं० १५१५ वर्षे आषाढ़ वदि १ शुक्रे राजाधिराज श्री कुंभकर्णविजयि (य) राज्ये" शब्द स्पष्टतः अंकित है। इसमें संघपति मंडलिक की पूरी-पूरी वंशावली दी

---

३३. अर्बुदाचल प्राचीन जैन लेख संदोह ले० सं० ४४१ से ४५८।

३४. कुल ६ लेख हैं। इनमें कुछ में मूर्तियों के नाम हैं जैसे श्री अजितनाथ। आदि। कुछ में कर्ताओं के नाम है जैसे "सा० पाल्हा भार्या सारु ।।आदि।।

है। उत्तराभिमुख प्रतिमाओं पर कांकरिया गोत्र के सलषा आदि का उल्लेख है [35]। यह परिवार निसंदेह मंडलिक के परिवार से भिन्न रहा प्रतीत होता है। इन्होंने आदिनाथ की प्रतिमा कराई थी। पूर्वाभिमुख प्रतिमा पर पहली पंक्ति अस्पष्ट है। दूसरी और तीसरी में स्पष्टतया मंडलिक परिवार की वंशावली दी हुई है। इसमें नवफणा पार्श्वनाथ की प्रतिमा बनाने का उल्लेख है। दक्षिणाभिमुख की प्रतिमा सुमतिनाथ की प्रतिमा है। इसे श्राविकारत्नादे पुत्री मांजू श्राविका द्वारा निर्मित कराने का उल्लेख मिलता है। इन लेखों के अतिरिक्त मूलनायकजी की प्रतिमाओं पर और भी लेख खुदे हैं जैसे— "श्री पार्श्वनाथ:। द्वितीय भूमौ", "कांकरिया सा० धन्ना श्रावकेण श्री आदिनाथ बिंब कारितं, "श्रीखरतरगच्छे श्रीपार्श्वनाथ: सा० माला भा० मांजू श्राविकाकारित एवं "पं० मांजू श्राविक या श्री सुमतिनाथ बिंब कारित" [36]। इसी खंड पर बनी अम्बिका देवी की मूर्ति पर दरड़ा गोत्रीय मंडलीक का एक लेखखुदा हुआ है। यह बहुत स्पष्ट है। इसमें भी अन्य मूर्तियो की तरह प्रतिष्ठा करने वाले आचार्य का उल्लेख है। इनके अतिरिक्त अन्य प्रतिमाओं पर छोटे-छोटे लेख और खुदे हैं जिनमें "शेषूसत्कं" शांति: लाषू, श्रीमहावीर: आदि पढ़ा जाता है [38]।

तृतीय खंड की प्रतिमाओं पर भी अन्य खंडों की प्रतिमाओं की तरह लेख हैं। पश्चिमाभिमुख प्रतिमा पर दरड़ा गोत्र के श्रेष्ठि मंडलिक का लेख है। इस प्रतिमा का नाम इसमें "नवफणपार्श्वनाथबिंब" रक्खा हुआ है। उत्तराभिमुख प्रतिया पर पश्चिमाभिमुख प्रतिमा की तरह लेख है। इस प्रतिमा का नाम भी नवफणापार्श्वनाथ दिया है। अन्य दो मूर्त्तियां भी इसी प्रकार है।

---

३५. "अर्बुदाचलमहातीर्थे उकेशवंशेकांकरियागोत्रे सा० सलषा — आमभार्या तेजलदे पुत्रसा०धन्ना सुश्रावकेण भार्या — गुणपति सा०जयता सीहा पौत्रसा० मणोर लषमादि .." उल्लेखित है।

३६. अर्बुदाचल प्राचीन जैन लेख संदोह ले० ४५१।

३७. उपरोक्त ले० सं० ४५२।

३८. कुल ले० १४ हैं। (उपरोक्त ले० सं० ४५३) इनमें कुछ में मूर्तियों के नाम हैं और कुछ में निर्माताओं के।

इस प्रकार इस मन्दिर में १२ मूलनायक प्रतिमाओं में १० पार्श्वनाथ की और एक आदिनाथ और एक सुमतिनाथ की है। इनमें से १० मूर्तियां श्रेष्ठि मंडलिक ने कराई थी। एक मूर्ति मंडलिक के छोटे भाई माला की पत्नि मांजू श्राविका ने कराई। एक मूर्ति अन्य श्रेष्ठि ने कराई। इन सब प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा खरतरगच्छ के जिनभद्रसूरि के पट्टधर जिनचन्द्र सूरि ने की थी। इन लेखों का सारांश इस प्रकार है—

महाराजाधिराज कुंभा के राज्य में अर्बुदाचल दुर्ग पर ओसवालवंशी दरड़ागोत्रीय श्रेष्ठि हरिपाल हुआ इसकी पत्नि का नाम सीता देवी था। इसका पुत्र आसराज था जिसकी पत्नि सोषू के ६ पुत्र हुये जिनके नाम हैं १. पाल्हा २. देल्हा ३. आंटा ४. सं० मंडलिक ५. माला ६. महिपति। पाल्हा की स्त्री का नाम सारू था जिससे रत्ना हुआ जिसके फिर आंबड़, सांध्याराज आदि पुत्र हुये। आंटा की भार्या अमरी थी जिससे श्रीपाल और भीमसिंह हुये। मंडलिक के दो पत्नियां थी जिनके नाम हैं हीराइ और रोहिणी। रोहिणी से सजण नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसकी पत्नि का नाम सोनाइ था। माला की पत्नि का नाम मांजू था जिससे सहसमल वस्तुपाल आदि हुए। महिपति की छोटी अवस्था में ही मृत्यु हो गई थी। देल्हा छोटी उमर में साधु हो गया था और इसका नाम जयसागर था। शिलालेखों में मंडलिक के लिए "श्री जयसागर महोपाध्याय बांधवेन" शब्द आया है जो उल्लेखनीय है।

इस परिवार वालों का एक और लेख[39] पितलहर मंदिर में गूढ मंडप में स्थित गोतम स्वामी की प्रतिमा पर है। यह लेख वि० सं० १४९५ का है। इसमें दरड़ा गोत्रीय मंडलिक माला महिपति आदि का उल्लेख है। वि० सं० १५११ में लिखे एक पत्र पर इस परिवार का बर्णन इस प्रकार दिया हुआ है[40]।

"श्री दरड़ा गोत्रे। सं० खीमसिंह। सं० हरिपाल। आसा। भार्या। सोखु। मंडलिक। पुत्र सज्जना। सं०माला। सं०रत्ना। सं० साजन। सं०सावर। सं०मांडण। सं० प्रावड़। संघवी उदय राजादि।

---

३९. "सं० १४९५ वर्षे ऊकेशबंशे दरड़ा गोत्रीय सं० मंडलिक। माला महिपति श्रावकैः श्रीगोतमस्वामि मूर्तिः कारिता श्रीखरतरगच्छे .."

[उपरोक्त ले० सं० ४२१]

४०. श्रीनाहटाजी का लेख जैन सत्यप्रकाश वर्ष ३ अंक ६।

सा० माल्हा। सा० मांडन। वेल्हा। सं० झांटा। सं० मंडलिक। सं० माल्हा। सं० महिपति। सा० गोविन्द। रत्ना हर्षा मेघराज। सा० कीहट। सा० श्रीपाल। सा० भीमसिंह। सा० साजरण। सं० पोमासिंह। सं० लषमसिंह रणमल्ल। सं० थावर। सं० गणपति। सा० आंबड। सा० उदयराज प्रमुख परिवार सहितेन। सं० १५११ वर्षे चैत्रसुदि ५ दिने"।

इन लेखों को मैं बहुत ही महत्वपूर्ण मानता हूं क्योंकि इनमें वि० स० १५१५ में आबू पर महाराणा कुंभा का अधिकार होना उल्लेखित है।

कुंभलगढ़ की प्रतिमाओं के लेख (१५१५-१५१६)

कुंभलगढ़ के मामादेव के मंदिर से कई मूर्तियों के लेख मिले हैं। ये लेख वि० सं० १५१५ और १५१६ के हैं। वि० सं० १५१५ फाल्गुण सुदि २ के दिन के दिन देवी प्रतिमायें स्थापित कराई गई थी। इन में से कुछ प्रतिमायें अब भी उदयपुर संग्रहालय में विद्यमान है। यथा, ब्रह्माणी माहेश्वरी, कौमारी वैष्णवी वराही और ऐन्द्री। इन प्रतिमाओं की उदयपुर संग्रहालय की क्रमसंख्या ६५ से ७० है। इनके अतिरिक्त महालक्ष्मी और आसनरूप गणपति प्रतिमायें और हैं जिनपर भी इसी प्रकार लेख है और ये मामादेव के मदिर में अब भी विद्यमान हैं। वि० सं० १५१६ के लेख पृथ्वीराज, पृथ्वी, विष्णु प्रतिमा सकर्षण, माधव, मधुसूदन, अधोक्षज आदिकी प्रतिमाओं पर हैं। इन में से पृथ्वीराज पृथ्वी और विष्णु की प्रतिमा अब भी मामादेव के मंदिर में विद्यमान हैं। इन सब प्रतिमाओं पर लघुलेख हैं जिनमें महाराणा कुंभा द्वारा इनको प्रतिष्ठापित करने का उल्लेख हैं। स्मरणरहे कि कुंभलगढ़ दुर्ग की स्थापना वि० सं० १५१५ चैत्रवदि १३ को हुई थी। ये लेख अधिकांशतः तीन से चार पंक्तियों में है। मधु सूदन की प्रतिमा पर अवश्य पांच पंक्तियों का लेख है। इनमें कहीं-कहीं "अस्मिन् वटे" कहीं-कहीं "मातुल वटे" आदि वर्णित है जिनका विशद वर्णन पहले ही किया जा चुका है।

मारवाड़ के लेख (वि० सं० १५१५–१५१६)

मारवाड़ पर राव जोधा का अधिकार हो जाने के पश्चात् इस क्षेत्र से कुछ राठौड़ों के लेख मिले हैं। इनमें उल्लेखनीय लेख फलोदी के पास कोलू से प्राप्त वि० सं० १५१५ का कीर्तिस्तम्भ [41] का लेख है। लेख २ स्तम्भों पर अलग अलग खुदा हुआ

---

४१. रेऊ—मा० इ० पृ० १०४। जरनल रायल ऐशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल भाग १२ पृ० १०८।

है। एक तरफ तो वि० सं० १५१५ भादवासुदि ११ वर्णित है। दूसरी तरफ 'महाराय जोधासुत राय सातल विजयराज्ये" शब्द है। इसको अधिकांशतः एक ही लेख मानते हैं। इससे उस समय तक राव जोधा का उस क्षेत्र पर अधिकार होना स्पष्ट हो जाता है। इसी प्रकार वि० सं० १५१६ का कोडमदेसर के पास कीर्तिस्तंभ का शिलालेख उल्लेखनीय [42] है। इस भादवा सुदि ६ के दिन सोमवार को महाराय जोधा ने निर्मित कराया था। इससे भी उसके वहां राज्य की स्थिति का पता चलता है। इसी प्रकार वि० सं० १५१६ का राव जोधा का एक ताम्रपत्र भी मिला है। मूल ताम्र पत्र खो जाने से वि० सं० १६३५ में उदयसिंह के समय इसे फिर से सनद दी थी। इसमें वि० सं० १५१६ मिगसर सुद २ तिथि दी हुई है [43]।

कुंभलगढ़ का शिला लेख

यह विस्तृत शिलालेख मेवाड़ राजवंश का महत्वपूर्ण शिलालेख है। मध्यकाल में वंशावली सम्वन्धी कई भ्रांतियां हो गई थी। अतएव इनका निवारण करना आवश्यक था। अतएव इसे कई प्रशस्तियों को शोध कर के बनाई गई थी।

इस प्रशस्ति का रचियता कौन था? यह अब तक ज्ञात नहीं हो सका है। श्री ओझा जी ने लिखा है कि कीर्तिस्तम्भ प्रशस्ति की रचना किसने की? यह उक्त पांचवीं शिला न मिलने से ज्ञात नहीं हो सका है परन्तु कीर्तिस्तम्भ प्रशस्ति के कुछ श्लोक इसमें भी है जिससे अनुमान [44] होता है कि इसकी रचना दशोरा जाति के महेश ने की होगी। किन्तु मैं समझता हूं कि यह वर्णन गलत है। दोनों की शैली में पूर्ण रूप से भिन्नता है। मैंने पूर्व ही इस सम्बन्ध में लिखा है कि इसके रचियता कन्हव्यास [45] ही होना चाहिए। यह उस समय कुंभलगढ़ में ही नियुक्त था। एवं

---

४२. रेऊ—भा० इ० पृ० ९४। जरनल रायल ऐशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल भाग १३ पृ० २१७–१८।

४३. रेऊ—भा० इ० पृ० ९५।

४४. ओझा—उ० इ० पृ० ३२०।

४५. उपरोक्त पृ० २२२ एवं फुटनोट सं० २६

एकलिंग माहात्म्य नामक ग्रंथ की इसने रचना की थी। शैली के अनुसार दोनों एक दूसरे से मिलते हैं। दोनों में पहले भौगोलिक वर्णन, विभिन्न तीर्थ क्षेत्रों का वर्णन एवं इसके पश्चात् राजवंश वर्णन है। राजवंश वर्णन में भी कई श्लोक मिलते हैं। एकलिंग माहात्म्य में कई श्लोक कीर्तिस्तम्भ प्रशस्ति के भी हैं। लेकिन इसका रचियता कन्ह व्यास है अतएव ओझाजी की मान्यता स्वतः खंडित हो जाती है।

इसमें कुल २७० श्लोक अब तक मिले हैं। इनमें से पहली शिला में ६८ श्लोक हैं। इसमें विषय विभाजन इस प्रकार है—श्लोक १ से १४ आशीष वर्णन १५–१७ त्रिकूट वर्णन श्लोक १८ से १९ कुटिला वर्णन, श्लोक २० से २२ विंध्यवासिनी देवी का वर्णन, श्लोक २३–२४ एकलिंग मन्दिर का वर्णन, २५–२८ इंद्रतीर्थ का वर्णन, २९ से ३३ कामधेनु और तक्षक ३४ से ३५ धारेश्वर, ३६ से ३७ बैद्यनाथ, ३८ से ४० वाघेला, ४१ से ५० समाधिश्वर, ५१ से ५४ महालक्ष्मी, ५५ से ५७ कुंभस्वामी मंदिर और ५८ से ६८ में मेदपाठ का वर्णन है। इस वर्णन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि भौगोलिक वर्णन केवल मात्र एकलिंग और चित्तौड़ का ही किया है। मेवाड़ में और भी कई उल्लेखनीय स्थल थे किन्तु लेखक ने इन्हें छोड़ दिया है। दूसरी विशेषता प्रशस्तिकार ब्राह्मण था अतएव उसने जैन मंदिरों को स्वेच्छा से छोड़ दिया है अन्यथा देलवाड़ा जैसा उन्नत स्थल का अवश्य उल्लेख आता। भौगोलिक वर्णन में चित्तौड़ के तीर्थ स्थलों का जो वर्णन आया है वह फिर चित्तौड़ वर्णन में आ गया है। अतएव यह वर्णन बौझिल सा प्रतीत होता है। फिर भी जननि-जन्मभूमि की प्रशसा कवि ने जो की है वह उल्लेखनीय है।

दूसरी शिला कई वर्षों पूर्व ही नष्ट हो गई थी। इसे वि० सं० १७३५ में लिपिबद्ध किया प्रशस्ति संग्रह नामक ग्रंथ की सहायता से फिर से सम्पादित किया है। दूसरी पट्टिका का कुछ अंश मिला है। इसमें ६ पंक्तियों का निम्नांकित अंश है[46]—

(१) द्वितीय पट्टिका २

(२) क्षः पुरुषार्थदक्षः। क्षोणीतलोलं [श्लोक ६९ का अंश]

---

४६. प्रोसीडिंग्ज आफ इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस १९५१ में डा० जी० एन० शर्मा का लेख। जरनल बिहार रिसर्च सोसाइटी के मार्च १९५५ में डा० जी० एन० शर्मा द्वारा सम्पादित।

(३) ध्रुपमुत्तमांगं । अंगातरन्यक्कर [श्लोक ७० का अंश]
(४) जयविभवस्य निजेन [,, ७१ ,,]
(५) मुष्मिन् विलोकेन सा [,, ७२ ,,]
(६) कृतात्मा [,, ७३ ,,]

इस दूसरी पट्टिका में श्लोक ६९ से १११ तक दिए हुए हैं। श्लोक ७० से १०१ चित्तौड़ दुर्ग में सम्बन्धित है। १०२ से १०५ में चित्राङ्गद तालाब का वर्णन है। १०६ से १११ में वंशवर्णन है। श्लोक ७५ में चित्तौड़ को एक वैष्णव तीर्थ के रूप में उल्लेखित किया है। वस्तुतः यह वैष्णव तीर्थ केस्थान पर जैन तीर्थ के नाम से अधिक प्रसि‍द्ध रहा है। फलोधी के एक १२वीं शताब्दी के लेख चित्रकूट की शिला पट्टिका बनाने का उल्लेख है। जैसलमेर के समसामयिक लेख में जिन महत्वपूर्ण जैन तीर्थों की यात्रा का उल्लेख है उनमें चित्तौड़ भी एक है।

तीसरी शिला श्लोक सं० १२१ से शुरू होती है और प्रशस्ति संग्रह में दूसरी प्रशस्ति में १११ श्लोक तक ही है। अब प्रश्न यह है कि क्या १० श्लोक इसमें छूट गये हैं अथवा खोदने वाले ने गलती से ११२ के स्थान पर १२१ खोद दिये हैं। इस सम्बन्ध में डा० गोपीनाथजी शर्मा की मानन्यता है कि खोदने वाले भी गलती से श्लोकों में यह भ्रांति हुई है। श्लोक सं० १२१ बाप्पा रावल के सम्बन्ध में है। बाप्पा का वर्णन इसमें भी गलत दिया हुआ है। राणकपुर के लेख में भी यह भ्राँति विद्यमान है। गुहिल का वर्णन परम्परा के अनुसार ही दिया गया है। श्लोक १३४ से खुम्माण का वर्णन आता है। श्लोक सं० १३६ में राष्ट्रकूट राजाओं के चित्तौड़ पर आक्रमण [47] करने का वर्णन मिलता है। श्लीक सं० १३९ से १४१ में राजवंश आता है। इसमें राजाओं के नाम है। ये अम्बाप्रसाद तक के नाम आ गये हैं। श्लोक सं० १४२ में अम्बाप्रसाद के तीनभाई नरवर्मा, अनन्तवर्मा और यशोवर्मा के नाम मिलते हैं। जिनमें शुचिवर्मा पहले शासक हुआ था [48]। नरवर्मा के बाद कीर्तिवर्मा शासक हुआ था। इस लेख में यशोवर्मा नाम

---

४७. मेरा लेख "चित्तौड़ पर २ अज्ञात आक्रमण" वरदा वर्ष ९ अंक ४ में प्रकाशित दृष्टव्य है।

४८. नृवर्म्मानंतवर्म्मा च यशोवर्मा महीपतिः।
त्रयोप्यंबाप्रसादस्य जज्ञिरे भ्रातरोस्य च ।। कु० प्र० श्लोक सं० १४२

दिया है। यश और कीर्ति एक दूसरे के पर्यायवाची हैं। इसके पश्चात् योगराज शासक हुआ। इसके पश्चात् इस शाखा की समाप्ति हो गई। इसलिए अल्लट के वंशजों में से वैरट शासक हुआ [49]। इसके बाद हंसपाल व वैरीसिंह शासक हुये। इनका उल्लेख श्लोक सं० १४४ में दिया है। वैरीसिंह ने आहड़ के शहर कोट बनाकर चार गोपुर बनवाये। इसके २२ गुणवान पुत्र होने का वर्णन श्लोक सं० १४५ में किया गया है [50]। राणकपुर प्रशस्ति में इसका नाम वीरसिंह दिया है जबकि भेराघाट [51] की प्रशस्ति और कुंभलगढ़ की प्रशस्ति में विजयसिंह ही नाम आया है। इसके बाद अरिसिंह, चोड़सिंह, विक्रमसिंह और रणसिंह शासक हुये। श्लोक सं० १४८ में इनका उल्लेख है। रणसिंह से दो शाखायें चलना प्रसिद्ध है। १. रावल और २. राणा। एकलिंग माहात्म्य में इसका वर्णन अत्यन्त विस्तार से दिया गया है [52]। इसमें इसके उत्तराधिकारी का नाम स्पष्टतः क्षेमसिंह दिया हुआ है। यह महणसिंह का छोटा भाई था। श्लोक सं० १४९ में इसका उल्लेख है। यह महणसिंह कौन था ? इसके बाद सामंतसिंह शासक हुआ। श्लोक सं० १४९ व १५० में इसका वर्णन है। कीतु के साथ संघर्ष करने एवं उसके छोटे भाई कुमारसिंह द्वारा वापस गुजरात के राजा की सहायता आहड़ प्राप्त करना वर्णित किया है। इसके पश्चात् मथनसिंह, पद्मसिंह, जैत्रसिंह, तेजसिंह और समरसिंह के पश्चात् चित्तौड़ पर रत्नसिंह हुआ। इसकी युद्ध में मृत्यु हो जाने पर खुमाण के वंशज लक्ष्मणसिंह ने दुर्ग की रक्षा करते हुये अपने प्राण दे दिये। इसका उल्लेख श्लोक सं० १७७ से १८०

---

४९. ततश्चयोगराजेभून्मेदपाटे महीपतिः।
अपिराज्ये स्थिते तस्मिन् [नो दिवं] गताः ॥१४३।
पश्चादल्लटसंताने वैरटोभून्नरेश्वरः ॥१४३॥ कु० प्र०

५०. ततः श्रीहंसपालश्च वैरिसिंहो नृपग्रणी ॥
स्थापितोभिनवो येन श्रीमदाघाट पत्तने ॥१४५॥
द्वाविंशतिः सुतास्तस्य बभूवु सुगुणालयाः॥ कु० प्र०

५१. पृथ्वीपतिर्विजयसिंह इतिप्रवर्द्धमानः, सदाजगतियस्ययशः सुधांशुः ॥
(ए० इ० जिल्द २ पृ० १२)

५२. अथ कर्णभूमिभर्तुः शाखाद्वितियं विभाति भूलोके।
एक राउलनाम्नी राणानाम्नी परामहती ॥ एकलिंग माहात्म्य ॥५०॥

में दिया गया है। इसके सात पुत्र भी युद्ध में काम में आ गये। एकलिंग माहात्म्य के श्लोक स० ७७ से ८० में इसी प्रकार का वर्णन है।

चतुर्थ प्रशस्ति में लक्ष्मणसिंह के उपरोक्त वर्णन से शुरू होती है। श्लोक सं० १८५–१९० में हमीर का वर्णन है। इसे विषमघाटि पंचानन कहा है और चेलावाट जीतने का उल्लेख किया है। १९१ से १९३ में खे ा के रणमल को हराने का उल्लेख है। इसके पश्चात् मोकल का वर्णन है। सपादलक्ष जीतने, जांलधर और फिरोज को हराने का इसमें उल्लेख है। यह श्लोक सं० २३२ तक चलता है। श्लोक सं० ३३२ से २७० तक महाराणा कुंभा का वर्णन है। इसमें कुंभा की विजयों का सविस्तार से उल्लेख है। इसमें उल्लेखनीय विजय योगिनीपुर, सोध्यानगरी, मंडोवर, यज्ञपुर, हमीरपुर, धान्यनगर, वर्धमान, जनकाचल, चम्पावती, वृन्दावती, गर्गराट, मलारणा, सिंहपुरी, रणस्तम्भ, सपादलक्ष, आमेर, कोटडा, बम्बावदा, मांडलगढ़, सारंगपुर आदि मुख्य है।

वि० सं० १५१७ की दसरी प्रशस्ति

कुंभलगढ़ की वि० सं० १५१७ की एक शिला और मिली है जो मूल प्रशस्ति से भिन्न है। इसमें कुल ६४ श्लोक है। इसमें कुंभलगढ़ की मूल प्रशस्ति के श्लोक ९१ तक खुदे हुये हैं। लाइन चार में कुटिला वर्णन आदि भौगोलिक वर्णन है। इसी प्रकार मेदपाट वर्णन और चित्रकूट वर्णन है। मुख्य प्रशस्ति के कुछ श्लोक छोड़कर इसमें संग्रहित किये गये हैं। इसमें तिथि दी हुई है "सं० १५१७ वर्षे शाके १३८२ प्रवर्तमाने मार्ग शीर्ष वदि ५ सोमे प्रशस्ति सम्पूर्ण श्री कुंभकर्ण महीमहेन्द्र संस्थापित है" दी हुई है। यह उदयपुर संग्रहालय में ६ नम्बर की शिला है।

कीर्तिस्तम्भ की प्रशस्ति

यह प्रशस्ति पहले कई शिलाओं पर खुदी हुई थी केवल अब दो ही विद्यमान हैं पहली और अन्त के पूर्व की यहां विद्यमान हैं। पहली शिला में १ से २८ श्लोक विद्यमान हैं एवं एक अन्य शिला में १६२ से १८७ तक विद्यमान है[53]। वि० सं० १७३५ में

---

५३. कनिंघम—आर्कियोलोजिकल सर्वे रिपोर्टस आफ इंडिया भाग २३ प्लेट २०–२१ ओझा—उ० इ० भाग १ पृ० ३१९। शारदा—म० कु० पृ० १८२।

जब प्रशस्ति संग्रह बनाया गया था। तब यहां अधिक शिलायें विद्यमान थी [54]। इनमें श्लोक एक से लेकर दो तक शिव और गणेश की स्तुति की गई है। बाप्पा के परिवार का वर्णन श्लोक तीन इसे शुरू होता है। श्लोक ४ से ८ में बाप्पा का वर्णन है जिसे शिव का भक्त और अत्यन्त बलशाली वर्णित किया है। इस परिवार में हमीर उत्पन्न हुआ। यह विषमघाटि पंचानन कहलाता था [55]। इसने चेलावाट जीता। कुंभलगढ़ प्रशस्ति में ही ऐसा ही वर्णन है। दोनों मिलते हुये हैं। इस प्रकार श्लोक २० के बाद खेता का वर्णन आता है। खेता को अमीशाह को हराने वाला वर्णित किया है और रणमल को हराया जिसने कई राजाओं को बन्दी बना लिया था। इसका वर्णन श्लोक २१ से २६ तक दिया गया है। कुंभलगढ़ प्रशस्ति में भी उसके लिये ऐसा ही वर्णन मिलता है [56]। इसका मेद लोगों से संघर्ष होना वर्णित है। और गया तीर्थ को मुक्त कराना वर्णित है[57]। यह वर्णन श्लोक ३६ तक है। इसके बाद मोकल का वर्णन है।

महाराणा कुंभा का वर्णन अत्यन्त विस्तार से किया है। श्लोक सं० ३ में मॉडव्यपुर से हनुमान की मूर्ति लाकर के स्थापित करना वर्णित है। यह मांडव्यपुर मंडोर के लिये प्रयुक्त है। इस मूर्ति की विधिवत् प्रतिष्ठा वि० सं० १५१५ में की गई थी जबकि यह मूर्ति वि० सं० १४६५ में ही वहां से ले आई गई प्रतीत होती है। इससे यही प्रकट होता है कि यह मूर्ति जिस समय दुर्ग बनना शुरू हुआ था तब लाकर के लगा दी थी। श्लोक सं० ५ में सपादलक्ष जीतने इसके बाद नराणा जीतने का वर्णन है। इन विजयों और कुंभा के संभावित मार्गों का विशद वर्णन अध्याय तीन में मैंने अलग से

---

५४. श्लोक १८७ के बाद "अनंतरवर्णनं [उत्तर] लघु पट्टिकायां अंकक्रमेण वेदितव्यं" वर्णित है।

५५. अहह विषमघाटिप्रौढपंचाननोसा–
वरिपुरमतिदुर्गं चेलावाटं विजिग्ये ॥१८॥
गीतगोविन्द की रसिक प्रियाटीका की प्रशस्ति में भी ऐसा ही वर्णन है।

५६. संग्रामाजिरसीम्निशौर्यविलसद्दोर्द्दंडहेलोल्लास-
च्चाप प्रोद्‌गतबाणवृष्टिशमितारातिप्रतापानलः।
वीरश्रीरणमल्लमूर्जितशकक्ष्मापालगर्वांतकं–
स्फूर्जद्‌गुर्जरमंडलेश्वरमसौ कारागृहेवीवसत् ॥

५७. उपरोक्त पृ० २१३ का फुटनोट ६।

कर दिया है। श्लोक सं० ८–९ में वंसतपुर का वर्णन है। एकलिंगजी के मंदिर के पूर्व की ओर कुंभ मंडप बनाने का वर्णन श्लोक सं० १० में किया गया है। इसके बाद श्लोक ११-१४ तक आबू को विजित करने का वर्णन है। वहां तेजस्वी अश्वारोहियों को लगाना भी वर्णित है। इसी प्रकार श्लोक १४ में वर्णित है कि वहां लिये जाना वाला कर मुक्त किया। श्लोक में "निजिरिकरतुष्टबन्धनात्तीर्थसंहतिमसावमोचयत्" शब्द उल्लेखनीय है। इसका अर्थ है दुर्ग जीतते ही कर क्षमा किये। ये कर वि० सं० १५०६ में क्षमा किये थे अतएव कुंभा की विजय इसके कुछ ही वर्ष पूर्व मानना चाहिये। इसलिए मैंने वि० सं० १५०० के आस-पास माना है। श्लोक १५ में विष्णु की प्रीति के निमित चार जलाशयों के निर्माण का उल्लेख है। श्लोक स० १६–१७ में मालवा और गुजरात में सैनिक प्रयाण का उल्लेख है। इनका पहले उल्लेख किया जा चुका है। श्लोक १८ से २३ में जांगल प्रदेश को जीतने का उल्लेख है। इसका विस्तृत वर्णन अध्याय तीन में पृ०७७ पर किया जा चुका है। धुंखराद्रि और खंडेला को जीतने का उल्लेख श्लोक सं० २५ तक है। श्लोक सं० २६ से चित्तौड़ दुर्ग का वर्णन शुरू होता है। सौभाग्य से कुंभलगढ़ प्रशस्ति में भी कई श्लोक चित्तौड़ सम्बन्धी लिखे गये हैं। इसी प्रकार का वि० सं० १४९५ की प्रशस्ति में भी ऐसा ही उल्लेख है। यहा उसने विशाल सरोवर बनाये। यहां के कमलों की तुलना युवतियों के मुख कमल से कर साहित्यिक रूढिगत तुलना की है। कुंभस्वामी के मंदिर का अतिशयोक्ति युक्त वर्णन है। इसकी तुलना कैलाशपर्वत और सुमेरू पर्वत से की है। श्लोक सं० २९ में वर्णित है कि क्या यह कैलाश का प्रतिनिधि है। अथवा भगवान शङ्कर का अट्टहास है अथवा श्वेतचाँदनी का समूह है अथवा हिमालय का कर्णाभरण है आदि २।। यह केवल अलंकारात्मक वर्णन है। श्लोक सं० २२ से २३ में कीर्तिस्तम्भ जलयन्त्र बावडिया आदि बनाने का उल्लेख है। इसके बाद चित्तौड़ के मार्गों और द्वारों का वर्णन आता है। यह श्लोक ४२ तक चलता है। इसके बाद श्लोक सं० १२४ तक की शिलायें नष्ट हो चुकी थी। अतएव इनका वर्णन नहीं आ सका। लेकिन इनमें भी इसी दुर्ग के अन्य महलों आदि का वर्णन रहता जो अधिक सही हो सकता था। कुंभलगढ़ प्रशस्तिकार ने कुंभलगढ़ में रहते हुये अपने निवासस्थान का विस्तृत वर्णन नहीं किया है जबकि इसने सविस्तार से उल्लेख किया है। श्लोक सं० १२६ में कुंभलगढ़ निर्माण का उल्लेख है। यह वर्णन श्लोक सं० १३५ तक चलता है। इनमें कोट गोपुर अदि के निर्माण का उल्लेख है। श्लोक सं० १४६ में किसी शत्रु दुर्ग से गणेश की मूर्ति को लाकर यहां स्थापित करने का उल्लेख है।

इसके बाद कुंभा के व्यक्तिगत गुणों का वर्णन है। इसे लेखों में दानगुरु राजगुरु और शैलगुरु लिखा मिलता है। इसने पिता के बैर को लिया यह श्लोक १५० में वर्णित है। इसके बाद इसके द्वारा विरचित ग्रंथों का उल्लेख मिलता है। चण्डीशतक और गीतगोविन्द की टीका संगीतराज और नाटकादि का वर्णन है जिनका विस्तृत उल्लेख मैं पहले ही कर चुका हूं। इसके मालवा और गुजरात के राजाओं की सम्मलित सेनाओं को हराया। यह श्लोक सं० १७६ में वर्णित है। श्लोक सं० १८० और १८१ में उसके परिवार का उल्लेख है। श्लोक १८२–१८३ में अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन है। किन्तु श्लोक सं० १८३ का वह अंश सचमुच आज भी सही है कि "तावस्तिष्ठतु कुंभकर्णनृपतितेः कीर्तिप्रशस्तिस्तथा नानाकारित कीर्तनानि सकलासाम्राज्यलक्ष्मीरपि" इसके बाद कुछ तिथियां दी है ये कीर्तिस्तम्भ कुंभलगढ़ अचलगढ़ आदि पर प्रतिष्ठा करने की है जो महत्वपूर्ण है।

प्रशस्ति के अन्त में महेशभट्ट का परिचय है जिसका मैंने परिचय साहित्य सर्जना में विस्तार से दे दिया है। यह प्रशस्ति अधूरी है अतएव इसकी कोई तिथि ज्ञात नहीं है। इसे अधिकांश विद्वान वि० सं० १५१७ ही मानते हैं। क्योंकि कुंभलगढ़ प्रशस्ति की तिथि यही थी।

शैली के हिसाब से यह प्रशस्ति उतनी व्यवस्थित नहीं है जितनी कि कुंभलगढ़ की। इसमें वंश वर्णन और बीच-बीच में भौगोलिक वर्णन क्रम नहीं है।

ग्रंथ प्रशस्तियां

(अ) देलवाड़ा में लिखे गये ग्रंथों की प्रशस्तियां

देलवाड़ा में लिखे गये ग्रंथों की प्रशस्तियों से पता चलता है कि वहाँ एक भाँडागर था जहां ग्रंथ लिखाये जाकर संग्रहित किये जाते थे। कुंभा के शासनकाल के पूर्व महाराणा खेता के शासन काल से ही यहां कई ग्रंथ प्रशस्तियां मिलती है जिनमें से कुछ का वर्णन साहित्य सर्जना नामक अध्याय कर लिया है। कुंभा के शासन काल की सबसे पहली ग्रंथ प्रशस्ति गच्छाचार नामक ग्रंथ की है। यह हुबंड जाति के श्रेष्ठि द्वारा यह ग्रंथ लिखाया गया था। इसमें लिखा है कि महाराणा कुंभा के शासन काल में श्रेष्ठि सींघा ने २०००) रु० व्यय करके यह ग्रंथ लिखाया। यह वि० सं० १४६१ चैत्र शुदि ११ की है। दूसरी प्रशस्ति वि० सं० १४६२ आषाढ़ सुदि ५ की आवश्यक बृहद वृति की है जिसका वर्णन श्रेष्ठि रामदेव के वर्णन के साथ कर दिया गया है। वि० सं०

१५०१ कार्तिक सुदि १३ बुधवार की लिखी भवभावना बालवा बोध की प्रशस्ति मिली है [58]। यह भी देलवाड़ा में लिखा गया था। इसे रत्नसिंह सूरि के शिष्य पंडित माणिक्य सुन्दर ने इसे लिखाया। वि० सं० १५०३ की लिखी जैसलमेर भडार में सुर-सुन्दरी कथा संग्रहित है [59]। इसमें महाराणा कुंभा का वर्णन बड़ा सुन्दर कर रक्खा है। इसमें उसे "प्रतापाक्रांत सकल दिक् चक्रवाल राजन्य राणा श्री कुंभकर्ण" वर्णित है। खरतरगच्छ के जिनभद्र सूरि के समय ब्राह्मण पंचानन ने इसे लिखा था।

गीत गोविन्द की प्रशस्ति

गीतगोविन्द की टीका पर साहित्य सर्जना अध्याय में विस्तार से लिख दिया गया है। इसका प्रशस्ति में कई उल्लेखनीय वर्णन है। बाप्पा रावल का वर्णन करते हुये इसे बैजयापेन गोत्र का द्विज वर्णित किया है जिसे हारीत राशि की कृपा से राज्य मिला था। इसके पुरखा आनन्दपुर के निवासी थे। मंगलाचरण में मतंगभरवादि आचार्यों की स्तुति की है। स्मरण रहे कि संगीतराज में इनका विस्तार से वर्णन किया गया है। प्रारम्भ की प्रशस्त में तोन श्लोक ऐसे दिये हुये हैं जिनसे स्पष्टतः यह ध्वनित होता है कि इसका रचियता कुंभा के अतिरिक्त कोइ अन्य व्यक्ति रहा होगा। इसकी संभावना पर अलग से विचार कर दिया है। टीकाकार ने प्रशस्ति में आरम्भ में यह भी स्पष्ट कर दिया है कि इसकी टीका उद्देश्य सगीत की रागरागनिया को निश्चित करना, जयदव द्वारा वर्णित शृंगाररस को स्पष्ट करना एवं जयदेव की अस्पष्ट ग्रंथियों को सुलझाना [60] है। प्रत्येक सर्ग के अन्त में छोटी प्रशस्तियां दी हुई है जिनमें कुंभा द्वारा इसे विरचित करने का उल्लेख किया गया है। गुर्जर और मालवे के सुल्तानो को हराने का उल्लेख है। गया तीर्थ की मुक्ति का उल्लेख है और इसी प्रकार

---

५८. वही पृ० २१५ का फुटनोट ११।

५९. "संवत् १५०३ वर्षे पोषमासे शुक्लपक्षे त्रपोदश्यां कुजे देवकुल पाटके महा-राजधिराजप्रतापाक्रांत सकलदिक् चक्रवाल राजन्यराणाश्रीकुंभकर्ण विजयराज्ये श्रीखरतरगच्छालंकारभूत षटत्रिंशदगुणोपेत महामहनीयतम श्री मज्जिनभद्रसूरीश्वरैः सुरसुन्दरी कथापुस्तकमिदंलेखयांचक्रे"। जैसलमेर भंडार ग्रंथ संख्या १६६५।

६०. गीतगोविन्द की कर्तृप्रशंसा श्लोक सं० १६ से १८।

एकलिंग मंदिर के साथ-साथ सातवें सर्ग की समाप्ति का उल्लेख है । अन्त की प्रशस्ति विस्तार से लिखी गई है । अधिकांश बिरुद संगीतराज की तरह ही दिये गये हैं । मालवा के शासक को हराने वाला, सारंगपुर में स्थित यवन सेना रूपी समुद्र को अगस्त के समान पीने वाला, सब दिशाओं के राजाओं को जीतने वाला, राजगुरु आदि विरुद वर्णित है ।

संगीतराज की प्रशस्ति

संगीतराज की प्रशस्ति बड़ी विस्तृत है । इसका अन्यत्र वर्णन किया जा चुका है एवं इसके साथ दिये गये परिशिष्ट में इसके बिरुदों का भी सबिस्तार से उल्लेख है । जैसा कि ऊपर वर्णित किया जा चुका है कि संगीतराज के दो प्रकार के पाठ मिलते हैं १. कुंभा वाला पाठ और कालसेन वाला पाठ । कालसेन वाला पाठ बाद का है और मूल कुंभा वाली प्रति में नामों का परिवर्तन किया गया है ।

कुंभा वाली प्रति में प्रारम्भ में कर्तृप्रशंसा दी हुई है । इसमें भी गीतगोविन्द की प्रशस्ति के अनुसार कुंभा के पूर्वज बाप्पा रावल से प्रशस्ति शुरू की है । हमीर खेता लाखा और मोकल का परम्परागत वर्णन है । कुंभा को यवनों को हराने वाला और चित्तौड़ भूमि का उद्धार करने वाला वर्णित किया है । सारंगपुर में गुर्जर और मालव सेनाओं को हटाकर उनको लूटने का वर्णन किया है । नाट्यशास्त्र के ज्ञाता भरतमुनि और अन्य संगीत वेताओं की स्तुति की गई है ।

लक्षण परीक्षण अध्याय कुंभा के सम्बन्ध में अधिक विस्तार से लिखा गया है । इसमें कई श्लोकों में उस की वीरता की प्रशसा की गई है । मालवा और गुजरात के सुल्तानों को हराने, कई राजकुमारियों के साथ ब्यग्हने एवं विष्णु के कई अवतारों से तुलना की गई है । इसी प्रकार का वर्णन अन्तिम प्रशस्ति में है । इसमें कई बिरूद ऐसे हैं जो गीत गोविन्द की प्रशस्ति में ही दिए गये हैं । कुछ बिरूद अवश्य नये आये हुए हैं जिनमें उसके विशिष्ठ स्थानों को जीतने का उल्लेख है । इनपर विस्तृत विचार अलग से किया जा चुका है ।

चंडीशतक की प्रशस्ति

चण्डीशतक की एक प्रति प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर के संग्रहालय में हैं और पूरी मुद्रणाधीन है । राजस्थान भारती के मार्च सन् १९६५ के अंक में श्रीनाहटाजी

ने प्रकाशित भी करा दी है। इस ग्रंथ के अन्त में एक प्रशस्ति दी हुई है। जिसमें बैजपायन गौत्र में उत्पन्न कुंभा के पूर्वजों का वर्णन है[61]। बाप्पा के वर्णन में इसे आनन्दपुर का निवासी बतलाया है। बाप्पा के वंश में उत्पन्न हमीर का वर्णन है। खेता के सम्बन्ध में कुंभलगढ़ प्रशस्ति के रणमल को हराने वाले अंश को इसमें भी उद्‌धृत कर दिया है[62]। इसी प्रकार सातलादि वैरियों को हराना वर्णित है। लाखा के लिये सुवर्ण तुलादान देने का उल्लेख है एवं गया से कर मुक्त कराने का भी उल्लेख है। कुंभा की बड़ी प्रशंसा की गई है। ऐसा वर्णन कुंभा स्वयं अपने लिये नहीं लिख सकता था। इस सम्बन्ध में पर्याप्त प्रकाश पहले ही डाला जा चुका है।

सूड़ प्रबन्ध आदि की प्रशस्तियां

श्रीनाहटाजी ने कुंभा के ग्रंथों की खोज के सम्बन्ध में बड़ा[63]प्रशंसनीय कार्य किया है। इन्होंने सूड़ प्रबन्ध और कामराज रतिसार नामक ग्रंथों की पांडु लिपियां ढूंढ निकाली है। सूड़ प्रबन्ध की रचना का उल्लेख वि० सं० १५१७ की कुंभलगढ़ की प्रशस्ति में किया हुआ है। मुनि पुण्य विजयजी के यहां के गुटकों में यह ग्रंथ और कामराज रतिसार दोनों मिले हैं। इसके प्रारम्भ में गीतगोविन्द का अंश है। सूड़ प्रबन्थ वि० सं० १५०५ में लिखा गया था। इसकी प्रशस्ति में भी "श्री कुंभस्बामि प्रसाद सोदर प्रबन्ध राज श्री गीतगोविन्द...नामा सूडक्रम सम्पूर्ण..." वर्णित है। स्मरणरहे कि कुंभस्वामी का उक्त मन्दिर वि० सं० १५०५ में पूर्ण हुआ था। कामराज रतिसार ग्रंथ वि० सं० १५१८ में पूर्ण हुआ था। इसकी प्रशस्ति में हीरानन्द नामक एक जैन साधु का उल्लेख है, कुंभा जिसका बड़ा सम्मान करता था। इसकी प्रशस्ति में भी कुंभा को संगीतशास्त्र का ज्ञाता वर्णित है। प्रत्येक सर्ग के अन्त में लघु प्रशस्तियां भी दी है– जिनमें सारंगपुर का संहर्ता, नागपुर ध्वंस कर्त्ता आदि का उल्लेख है। कुंभलगढ़ का पुराना नाम माहोर दुर्ग दिया है। समसामयिक मासिर–इ–मोहम्मदशाही में इसका नाम

---

६१. अस्ति स्वस्तिगृहं समस्तजगतां श्रीबीजवापायनाद्
ब्रह्मर्षेरुदयाचलादिव रविर्जातो निधिस्तेजासां।
वंशः कंसनिषूदन–व्रत–परप्राप्त–प्रकर्षो महान्
क्रोडाहीराश्वरकूर्म्मगोत्रगिरिदिग्नागैकधुर्यः परम् ॥

६२. कु० प्र० श्लोक १९६।

६३. शोध पत्रिका वर्ष १७ अंक १–२ में श्रीनाहटाजी का लेख।

इसी प्रकार मछिन्दरपुर दिया है। किन्तु वि० सं० १५०८ तक यह "कुंभपुर" या "कुंभलमेरु" के नाम से प्रसिद्धि पा चुका था। बीकानेर के राजकीय संग्रहालय की प्रति में भिन्न प्रशस्ति दी है।

गीतगोविन्द की मेवाड़ी टीका की प्रशस्ति

गीतगोविन्द की एक मेवाड़ी टीका की प्रति जोधपुर के संग्रहालय में है एवं एक उदयपुर में है। दोनों में प्रशस्तियां भिन्न-भिन्न है। जोधपुर वाली प्रति के अन्त में लम्बी प्रशस्ति दी है जो उल्लेखनीय है। यह प्रशस्ति संगीतराज और गीतगोविन्द की प्रशस्ति का अनुवाद है। इसमें कुछ नये बिरुद और अंकित है। महाराणा कुंभा का वर्णन करते हुये इसमें उल्लेखित है "ए नाटक राजा कुंभकर्ण नु कर्त्ता ते कुंभकर्ण जयवंत प्रवर्त्तों ते कुंभकर्ण किसुं छै। राजाधिराज संग्राम धीर मनोहर धीर उद्धत धीर चतुर्व्यूह प्रकार विचार चातुरीनैं विषै ब्रह्मा चतुरानन प्रवर्त्तों। आदि २।। वह लम्बी प्रशस्ति मूल रूप से आगे दी जा रही है इसके अवलोकन से प्रकट होता है कि वि० सं० १६७६ तक कुंभा के सम्बन्ध कई प्रकार की मान्यतायें हो गई थी। उसे भीमनल, नहुष, धुंधमार, भरत भागीरथ मान्धाता आदि के बराबर बताया है। सोलसो स्त्री का स्वामी भी वर्णित किया है। ये सब कल्पनायें समसामयिक अन्य ग्रंथों में भी ठीक इसी प्रकार से वर्णित की गई है। उदयपुर वाली प्रति में लम्बी प्रशस्ति नहीं दी गई है किन्तु प्रत्येक सर्ग के अन्त में कुछ प्रशस्तियां दी हुई है जिनमें कुंभा द्वारा इसे विरचित करने का उल्लेख किया है।

अन्य प्रशस्तियां

कई मूर्तियों के लेख और ग्रंथ प्रशस्तियां इस काल की और देखने को मिली है। इनमें उल्लेखनीय करेड़ा मंदिर के लेख, चित्तौड़ के सतबीस देवरियों के लघु लेख नाणा के मंदिर के लेख, चित्तौड़ का वि० सं० १५१५ का लेख, कीर्तिस्तम्भ के पास का लघु लेख, राणकपुर की मूर्तियों के लेख आदि हैं। ग्रंथ प्रशस्तियों में वि० सं० १५१० में लिखी नवतत्व व चूरि की प्रशस्ति उल्लेखनीय है जो चित्रकूट में मंडन द्वारा लिखी गई है। इसी प्रकार वि० सं० १५१५ में कुंभलगढ़ में लिखी आवश्यक वृत्ति की प्रशस्ति भी इसी प्रकार उल्लेखनीय है।

राजस्थानी गीत

कुंभा सम्बन्धी कुछ गीत श्री भूरसिंह शेखावत ने "महाराणा यशप्रकाश" में प्रकाशित कराये थे। इसके पश्चात् श्री सोभाग्यसिंह शेखावत ने राजस्थान भारती और तृतीय कुंभा संगीत समारोह की स्मारिका में कुछ और गीत प्रकाशित कराये हैं। "प्राचीन राजस्थानी गीत" में भी कुछ छपे हैं। चारणकवि प्रायः योद्धाओं के वीर चरित्रों और युद्ध प्रसंगों पर छंदों की रचना करते हैं। इनकी कविता ओजस्वनी होती है। इनमें इतिहास की विशिष्ट घटनाओं का उल्लेख रहता हैं। इनमें कुंभा के मालवा गुजरात और नागौर के सुल्तानों के साथ युद्धों का वर्णन है।

इनमें सबसे अधिक उल्लेखनीय पद [64] नागौर गो्त्या वन्द कराने के सम्बन्ध में है जिसमें वर्णित है कि विष्णु शिव और ब्रह्मा कामधेनु से पूछते हैं कि इतने दिनों तक तो तू घास तक नहीं चरती थी अब अधिक प्रसन्न क्यों दिखाई देती है इस पर वह उत्तर देती है कि नागदा के स्वामी राणा कुंभा ने तीन पहर तक युद्ध करके नागौर में यवनों का नाश किया। इससे गायें सुखी होगई। इस सम्बन्ध में मैं पहले ही लिख चुका हूं इस प्रकार के पदों में वर्णित घटनायें सुल्तानों संदेहास्पद है।

कुछ पद मालवा और गुजरात के सुल्तानों के साथ युद्ध के सम्बन्ध में हैं। एक गीत में मालवा के शासक गौरी हुशंग के साथ होना वर्णित है। यह राजस्थान भारतीथ के कुंभा विशेषक में पद सं० २ में वर्णीत है और श्री सौभाग्य सिंह शेखावत इसे सारंगपुर का हाकिम बतलाया है लेकिन यह गलत है। हुशंग शाह गौरी मालवा का सुल्तान था। इसके साथ कुंभा का कोई युद्ध नहीं हुआ था। समसामयिक मालवे की तवारीख मासिर-इ-मोहमद शाही में भी घटना का नहीं है सारगपुर के हाकिम मलिक शबान इमादुलमुल्क के साथ कुंभा का युद्ध हुआ था। यह केवल प्रशंसात्मक है।

तीसरा पद गुजरात के सेनापति हब्शी मलिक शबान इमादुल मुल्क और मालवे की सेना के साथ हुआ था। यह पद ऐतिहासिक तथ्यों को लिये हैं। मलिक और हब्शी के हारने पर सुल्तान स्वयं भी आया लेकिन वह भी कुंभलगढ़ नहीं जीत सका। बादशाह

---

६४. राजस्थान भारतौ के कुंभा विशेषांक में प्रकाशित श्री शेखावत का लेख।

की सेना पर तलवारों की अपार मार पड़ी। इसी प्रकार मालवा का सुल्तान भी इसे नहीं जीत सका। दुर्ग अजेय था इसलिये यहां रहने वालों पर कोई जोर नहीं पड़ा।

चोथा पद मालवा की सेना के साथ युद्ध के सम्बन्ध में है। इसमें वर्णित है कि मालवा के सुल्तान की अपार सेना मेवाड़ पर टूट पड़ी किन्तु कुंभा की इसमें विजय हुई। इसके बाद गुजरात और मालवा की सेना ने एक साथ आक्रमण कर दिया फिर भी वह विचलित नहीं हुआ और इसमें कुंभा की विजय हुई। पांचवे गीत में सुल्तान मोहम्मद खिलजी को कुंभलगढ़ की चढ़ाई की ओर इंगित किया गया है। इसमें उसको हार कर लोटता हुआ वर्णित किया है। फारसी तवारीखों में भी यह स्पष्टतः उल्लेखित है। इसी प्रकार प्रशंसात्मक पद और दिये हुये हैं।

इस प्रकार कुंभा के समय की कई महत्वपूर्ण प्रशस्तियां मिलती है जिनसे मध्यकालीन राजस्थान के इतिहास के अध्ययन के लिये पर्याप्त सामग्री मिलती है।

परिशिष्ट

प्रशस्तियों के मूल पाठ

(अ) शिलालेख

लेख सं० १ पदराड़ा का वि० सं० १४९० का लेख

१. ॐ ।। स्वस्ति श्रीमन्नृपविक्रमार्कसमया–
२. तीत संवत् १४९० वर्षे तथा शाके १३५६
३. प्रवर्तमाने उत्तरायने वसंतऋतौ वे
४. शाषमासे क (कृ) ष्णपक्षे ११ सोम उत्तरा–
५. फाल्गुननक्षत्रे एवमावि महाराणा
६. श्री कुंभकर्ण विजयराज्ये पाटकेपद्र–
७ .. .. सुनराज
८. .. .. .. स पुत्र वइसरा

["राजस्थान भारती" के सौजन्य से]

लेख सं० २ देलवाड़ा का शिलालेख १४९१ वि०

(१) ।। र्हं ।। श्रेयः श्रेणिविशुद्धसिद्धलहरीविस्तारहर्षप्रदः श्रीमत्साधुमराल-केलिरणिभिः

(२) प्रस्तूयमानक्रमः । पुण्यागण्यवरेण्यकीर्तिकमलाव्यालोललीलाधरः सोयं मानससत्सरो—

(३) वरसमः पार्श्वप्रभुः पातु वः ।।१।। गभीरध्वनिसुंदरः क्षितिधरश्रेणि-भिरासेवितः सारस्तोत्रप—

(४) वित्रनिर्ज्जरसरिद्धिष्णसजीवनः । चंचज्ज्ञानवितानभासुरमणिप्रस्तार-मुक्तालयः सोयं

(५) नीरधिवद्विभाति नियतं श्रीधर्मचिंतामणिः।।२।। रंगङ्गांगतरंगनिर्मल-यशः कर्पूरपूरोद्धुरा—

(६) मोदक्षोदसुवासितत्रिभुवनः कृतप्रमादोदयः । भास्वन्मेचककज्जलद्यु-तिभरः शेषाहि—

(७) राजांकितः श्रीवामेयजिनेश्वरो विजयते श्रीधर्मचिंतामणिः।।३।। इष्टा-र्थसंपादनकल्पवृक्षः

(८) प्रत्युहप्रांशुप्रशमे पयोद: । श्रीधर्मचिंतामणिपार्श्वनाथ: समग्रसंघस्य-
ददातु भद्रं ।४।। संवत्

(९) १४९१ वर्षे कार्तिक सुदि २ सोमे राणाश्रीकुंभकर्णविजयराज्ये उप-
केशज्ञातीय साहसह—

(१०) णासाहसारगेन मांडवीउपरिलागुकीधु । सेलहथि साजणि कीधु अंके
टंकाचऊद १४ जको

(११) मांडवीलेस्यइसु देस्यई । चिहु जणे बइसी ए रीति कीधी ।। श्रीधर्म-
चिन्तामणिपूजानिर्मित्ति । सा०

(१२) रणमल मह डुंगर से० हाला साह साडा साह चांपे बईसी विहु रीति
कीधीएह बोल

(१३) लोपवा को न लहइं । टंका ५ देउलवाडानी मांडवी ऊपरि टंका ४
देउलवाड़ा ना मापा ऊप

(१४) रि । टंका २ देउलवाड़ा ना मणहेड़ावटा ऊपरि । टंका २ देउलवाड़ा
ना षारीवटां ऊपरी ।

(१५) टंकाउ १ देउलवाड़ाना पटसूत्रीय ऊपरी ।। एवं कारई टंका १४
श्रीधर्मचिंतामणिपूजा

(१६) निमित्ति सा० सांरगि समस्तसंघि लागुकीधउ ।। शुभं भवतु ।।
मंगलाभ्युदयं ।। श्री: ।।

(१७) ए ग्रासु जिको लोपई तेहरहिं राणाश्रीहमीर राणा श्रीषेता राणा
श्रीलाषा रा० मोकल

(१८) राणाश्रीकुंभकर्णनी आण छइ। श्रीसंघनीआण । श्रीजीराउला
श्रीशत्रुंजयतणा सम ।।

लेख सं० ३ देलवाड़ा का १४९१ लेख

संवत् १४११ (१४९१) वर्षे माघ वदि ५ दिने बुध ऊकेशवंसे (शे) नवलखा गोत्रे साधु श्रीरामदेभार्या मेलादे तत्पुत्र साधुश्रीसहणपाले [न] भार्या-नारिंगदे पुत्ररणमल्लादिसहितेन देवकुलपाटके पूर्वाचलगिरौ श्रीशत्रुञ्जयावतारे मोरनागकुरिका सहिता प्रति० खरतरगच्छे श्री जिनवर्द्धन सूरिपट्टे श्रीजिनचंद्र सूरि तत्पट्टे श्रीजिनसागर सूरिभि: [देवकुलपाटक पृ० २५ से]

लेख सं० ४ देलवाड़ा का १४६१ का लेख

(१) संवत् १४६१ वर्षे माघ सुदि ५ बुधे नवलक्ष गोत्रेसा० रामदेव भार्या मेला-
(२) दे पुत्र सहणपाल भार्या नारिंगदेव्या श्री......जिनमूर्तिबिंबानि प्र
(३) तिष्ठितं श्रीखरतरगच्छे श्रीजिनचंद्रसूरि[स्तत्]पट्टे श्रीजिनसागरसूरिभिः।।

लेख सं० ५ देलवाडा का वि० सं० १४६१ का लेख

(१) ॐ ।। संवत् १४६१ वर्षे माघ सुदि ५ बुधवारे ऊकेशवंशे श्री नवलखा गोत्रे श्रीरामदेव भार्या श्राविका मेलादे पुत्र साधु श्रीसहणपाल भार्यया नारिंगदे श्राविकया पुत्र सा० रणमल्ल सा० रणधीरणभ्रम सा० कर्मसीपौत्रादि सहितया निजपुण्यार्थं जिनानाँ

(२) .. .. तत्पट्टे
श्रीजिनराजसूरिपट्टे श्रीजिनवर्द्धनसूरि [स्]तत्पट्टे जिनचन्द्रसूरि तत्पट्ट-पूर्वाचल श्रीयुतजिनसागरसूरिभिः ।। शुभं भवतु ।। छ ।। छ ।।

लेख सं० ६ देलवाड़ा का वि० सं० १४६३ का लेख

(१) ।। र्हं ।। संवत् १४६३ वर्षे वैशाख वदि ५......यवड़प्रासादगौष्ठिक-प्राग्वाटज्ञातीव व्यव० झांझा भा०
(२) लाछि पुत्र देपा भार्या देवलदे पुत्र ७ व्यव......कुंरपाल सिरिपति नरदे धीणा पंडित लषमसी श्रा ...
(३) स्वश्रेयोर्थं श्रीपार्श्वनाथजिनयुगलं कारापितः (तं) प्रतिष्ठितः (तं) काछोलीवालगच्छे पूर्णिमा पक्षे द्वितीय शाखा—
(४) यां भट्टारक श्रीभद्रेश्वरसूरिसंताने तस्यान्वये भ० श्रीरत्नप्रभसूरिस्तत्प-ट्टे भट्टारक श्रीसर्वाणं—
(५) दसूरीणांशिष्य लषमसिंहेन आत्मश्रेयोर्थं कारापितः [तं] प्रतिष्ठितः [तं] भ० श्रीसर्वाणंदसूरी—
(६) णामुपदेशेन ।। मंगलं भूयात् ।।

लेख सं० ७ नागदा का वि० सं० १४६४ का लेख

(१) संवत् १४६४ वर्षे माघ सुदि ११ गुरुवारे
(२) श्रीमेदपाटदेशे श्रीदेवकुलपाटकपुरवरे नरेश्वरश्रीमोकलपुत्र

(३) श्रीकुंभकर्णभूपतिविजयराज्ये श्रीउसवंसे (शे) श्रीनवलक्षशाषमंडन सा० लक्ष्मी

(४) धर सुत सा० गाधू तत्पुत्रसाधु श्रीरामदेव तद्भ र्या प्रथमामेलादे द्वितीया माल्हणदे । मेलादेकुक्षिसंभूत

(५) सा० सहणपाल । माल्हणकुक्षिसरोजहंसोपमजिनधर्मकर्पू रवातसद्य-धीनुक सा० सारंग । तदंगना हीमादे लषमादे

(६) प्रमुखपरिवारसहितेन सा० सारंगेन (ण) निजभुजोपार्जितलक्ष्मी-सफलीकरणार्थं निरुपममद्भुतं श्रीमहत् श्रीशांतिजिनवरबिंबं सपरिकरं कारितं

(७) प्रतिष्ठितं श्रीवर्धमानस्वाम्यन्वये श्रीमत्खरतरगच्छे श्रीजिनराजसूरि-पट्टे श्रीजिनवर्धनसूरि (स्) तत्पट्टे श्रीजिनचंद्रसूरि (स्) तत्पट्ट-पूर्वाचलचूलिका सहश्र (स्र) करावतारैः श्रीमज्जिनसागर-सूरिभिः ।

(८) सदा वंदते श्रीमद्धर्ममूर्त्तिउपाध्यायाः । घटितं सूत्रधार मदनपुत्रधरणा-वीकाभ्यां ॥ आचन्द्रार्कं नंद्यात् ॥ श्री ॥ छ ॥

लेख सं० ८ चित्तौड़ की वि० सं० १४९५ की प्रशस्ति

जिनवदनसरोजे या विलासं विशुद्धि–
द्वयनयमयपक्षा राजहंसीव धत्ते ।
कुमतसुमतनीरक्षीरयोर्व्यक्तिकर्त्री
जनयतु जनतानां भारती सा । १॥
मेरुः स्मेरप्रमोदे त्रिदशपतिगणे यस्य जन्मभिषेकं
निर्माय निर्मिमाणे घुसृणमसृणितैः स्नात्रवारिप्रवाहैः ।
प्राप्तः किं पीतिमानं कनकगिरिरिति ख्यातिमाप क्षमाया–
मक्षामाः सौख्यलक्ष्मीर्वृषभनिजपतिर्वः स पुष्याद्संख्याः ॥२॥
प्रीणन्तः सर्वकाल कुवलयमखिलं तामसस्तोमनाशे
निष्णाः पुष्णन्तु लक्ष्मीं क्रमनखशशिनः शान्तिनेतुर्नतानाम् ।
संक्रान्ता येषु हर्षप्रसरसरभसा नम्रानाकीन्द्रकोटी–
कोटीराग्रोपविष्टा मरकतमणयो लक्ष्यलीलां वहन्ते ॥३॥
भालेनीलमणीयते मुखविधौ लक्ष्मोपमामश्नुते

पुष्णात्यञ्जनमञ्जुतां नयनयोर्धत्ते तु वक्षस्तटे ।
कस्तुरीमयपत्रवल्लितुलनां सुत्रामवामभ्रुवां
यस्यांगद्युतिसंततिः स तनुतां नेमिः श्रियं नेमुषाम् ॥४॥
भीष्मे ग्रीष्म इव प्रसर्पति कलौ सर्वान्यदेवप्रभा
निश्शेषाः सरसीरिव प्रतिपदं शोषं नयत्यन्वहम् ।
युक्तं यन्महिमा महोदधिरिव स्फातिं परामश्नुते ॥
उद्धर्ता धरणीमसाविति सुखं भेजे भुजङ्गेश्वर–
श्छेत्तायं परितस्मस्ततिमिति प्रतिः प्रभाणां पतिः ।
दातायं जगतोऽपि कामितमिति स्वर्गिद्रुमाः स्वेच्छया
चेरुर्मेश्वने यदीय जनने देवः स वीरः श्रिये ॥६॥
अस्ति स्वस्तिपदं समस्तकमलाविश्रामभूर्विश्रुतो
देशः पेशलसंनिवेशकलितः श्रीमेदपाटभिधः ।
स्थानस्थानविराजमानविशदप्रासाददम्भोदहो
यो देशानितरान्विजित्य विजयस्तम्भान्समुत्तम्भयेत् ॥७॥
इह हि गुहिलराजस्तेजसामेकमोकः
सकलनृपतिमौलिः पालयामास पृथ्वीम् ।
जगति गुहिलवंशः ख्यातिमानेष यस्मा–
दजनि जनिनिमित्तं जात्यपंमौक्तिकानाम् ॥८॥
वंशे तत्र पवित्रचित्रचरितस्तेजस्विनामग्रणीः
श्रीहम्मीरमहीपतिः स्म तपति क्ष्मापालवास्तोष्पतिः ।
तौरुष्काऽमितमुण्डमण्डलमिथः संघट्टवाचालिता
यस्याद्यापि वदन्ति कीर्तिमभितः संग्रामसीमाभुवः ॥९॥
दिक्कूलकषकीर्तिधौतभुवनस्तस्याङ्गभूर्निर्भरं
भभारं बिभरांबभूव तदनु श्रीखेतनामा नृपः ॥
दृप्यत्पीवरगोपिकास्तनभरक्षुण्णां मुरारेरुर
स्त्यक्त्वा श्रीर्विललास पाणिकमले यस्यानिशं कोमले ॥१०॥
श्रीलक्षः क्षितिपालभालतिलकः प्रख्यातकीर्तिस्ततो
निर्मातिस्म तदङ्गजो वसुमतीं राजन्वतीमन्वहम् ।
न्यायश्रीः कलिकालभीषणतमग्रीष्मातपोत्तापिता

भेजे यद्भुजदण्डपतले विश्रामलीलासुखम् ॥११॥
तत्र त्रैदशधामवामनयना नेत्रत्रिभागातिथौ
पृथ्वीं पालयतिस्म तस्य तनयः श्रीमोकलः क्ष्मापतिः ॥
यो दुर्द्धर्षसपादलक्षसुमुखीवक्षस्तटेषु स्फुटा–
मालेखन्नयनोदबिन्दुमिषतः कीर्तिं प्रशस्तां निजाम् ॥१२॥
स्फातिं शत्रुकलत्रनेत्रसरसां स सूत्रयन्दीप्यते
नव्यः कोऽपि भुवि प्रतापतपनः श्रीमोकलोर्वीपतेः ।
यो यः स्वातपवारणप्रतिनृपस्तत्याज निर्व्याजधी–
र्यस्तापं न हि तस्य तस्य तनुते नित्योदयः श्रीयुतः । १३॥
निश्शेषप्रतिभूमिपालकमलालुण्टाकदोर्विक्रमः
श्रीमन्मोकलभूपतिर्विजयतां यस्त्यागलीलायतैः ।
निश्चिन्ताः सकलावनीयततीर्निम य चिन्तामहो
चक्रे व्यथितदानकौतुकमया चिन्तामणेः केवलम् ॥१४॥
गवाख्यतीर्थं जनमुक्तिदायि पुरापुराणेषु किलप्रतीपम् ।
तस्याप्यहो सप्रति मुक्तिदाता श्रीमोकलः कस्य न विस्माय ॥१५॥
कः प्रौढिमा नागपुरेश भङ्गश्लाघाभिरेतस्य महीमघोनः
यतोऽस्य कीर्तिर्दयितापिधाम्ना पराकरोन्नागपुराधिराजम् ॥१६॥
ऐश्वर्येण दिवस्पतिं मृगपतिं शौर्येण वाचस्पतिं
चातुर्येण वपुः श्रिया रतिपतिं कीर्त्या त्रियामापतिम् ।
औदार्यातिशयेन कर्णनृपतिं न्यायेन सीतापतिं
गाम्भीर्येण सरित्पतिं विजयते श्रीमोकलोर्वीपतिः ॥१७॥
तस्याङ्गजोजगदगंजितदिव्यतेजाः श्रीमान्नवार्क इव राजति कुंभकर्णः ।
विन्यस्य यः क्षितिभृतां शिरसि स्वपादान्दूरास्तदुर्णयतमा भुवनं पुनाति॥
लाटः स्विद्यल्ललाटः कटरटनपटुः भोटभूपः प्रदाता
कर्णाटः पूः कपाटं मुखपटघटितस्वाङ्गलिर्जाङ्गलेन्द्रः ।
नश्यद्रङ्गः कलिङ्गः कुरुरुरुविनयो मालवःकालवक्त्र–
स्त्यक्तौजा गूर्जरेन्द्रः समजनि जयिनस्तस्य राज्ञः प्रयाणे ॥१८॥
उच्छेत्तुं कमलं न कण्ठकमलं मित्रोपकारादपि

स्वस्यापीति ततोऽपमृत्य कमलां निष्कण्टकां मेदिनीम् ।
कुर्वाणं स्वयमेव पाणिकमलं शिश्राय यस्यानिशं
नम्रानेकमहीपतिः स जयति श्रीकुंभपृथ्वीपतिः ॥२०॥
अस्त्यद्भुतः क्षितिधरः किल चित्रकूटस्तेनावनीमघवता परिपाल्यमानः ।
श्रीमेदपाटधरणीतरुणीललाटपट्टे स्फुटं मुकुटतामुपटीकते यः ॥२१॥
नानाविकस्वरसिताम्बुजराजितानि
राजन्ति निर्मलपयांसि सरांसि यत्र ।
जानेयदुन्नतविहारविदीर्णमूर्ते-
र्व्योम्नश्च्युतानि शकलानि सतारकाणि ॥२२॥
तीर्थाधारतयारिदुर्गमतयोन्नयाद्भुतत्वेन वा
स्पर्धां भो विदधाति यः सहमयासद्यः समायातुसः ।
इत्या कारयतीव निर्झररवैरुर्वीधरान्यः परा-
न्कीर्तिस्तम्भमिषेण हस्तमतनुं प्रोतम्भ्य वादोन्मनाः ॥२३॥
व्योमाङ्गणादनवलम्बनिवासजात-
खेदेवदेवनगरी यदुपत्यकायाम् ।
चक्रेऽवतारमवनौ नगरच्छलेन
निश्रेणिदण्डमिव यं गिरिमाकलय्य ॥२४॥
वार्तापि तापविषयात्र कथं प्रजाना
श्रीकुम्भकर्णपृथिवीपतिरद्भुतौजाः ।
छित्त्वा यतः क्षितिभृतामभितोऽपि वंशा-
नेकातपत्रमयमत्र तनोति राज्यम् ॥२५॥
श्रीमानूकेशवंशः स जयतिपरमां बिभ्रदौन्नत्यलक्ष्मीं
सच्छायः प्रांशुशाखाप्रकरपरिगतो विश्वविश्रामभूमिः ॥
उत्पन्नस्तत्र मुक्तामणिरिव विमला त्रासमुक्तः सुवृत्तः
पूर्वं शोभां महेभ्यः पुरमिदमनयद्वीसलः शालितेजाः ॥२६॥
देदाह्वयः कृतनयप्रणयः प्रतीतः
स्फीतप्रभः सुविनयस्तनयस्तदीयः ।
राकाशशाङ्कविशदापि सतां मनांसि
रक्तानि यस्यगुणपङ्क्तिरहो व्यधत्त ॥२७॥

आल्हादयन्कुवलयं धनपालसाधुः
सिन्धोरिवेन्दुरुदियाय ततः कलावान् ।
धाम्ना च गुर्जरधराभरण क्रमेण
कर्णावतीं दिवमिवैषपुरीं व्यभूषत् ।।२८।।
जगदङ्गणरङ्गत्तरयशस्तरङ्गास्तदङ्गजा विदिताः ।
साङ्गणगोदासमराचाचाख्याश्चारु चातुर्याः ।।२९।।
तत्रागण्य स कर्णवर्णितगुणः कर्णावती भूषण-
श्चाचाकः सकलप्रभावकनृणाँ चूडामणिर्दिद्युते ।
तैस्तैरार्हतशासनस्य सुकृतैः श्रीतीर्थयात्रादिकै-
र्यः शोभामनिभां बभार नभसो भास्वानिवाभीशुभिः ।।३०।।
क्रीडागृहमिव पण्यश्रीणां देवालयं विशालयशाः ।
आशापल्लीपुर्यामयं मुदा कारयामास ।।३१।।
तस्य प्रथमापत्नी लाडीस्तस्यास्त्रयः सुता प्रथिताः ।
वीजड़सामलपूनानामनः स्फीतमहिमानः ।।३२।।
सौन्दर्यमन्दिरमजायततस्य मुक्ता-
देवी तु देवगुरुभक्तिपरा द्वितीया
यस्या विभूषणविधिर्व्यवहारमात्र-
मासदिसीमगुणरत्नविभूषितायाः ।।३३।।
तत्कुक्षिसरसीहंसाः सदाचारणचारवः ।
विवेकिनः सुता जाताश्चत्वारः प्रथिता अमी ।।३४।।
आद्यः श्रीगुणराजसाधुरधिपः श्रीभारतीयोषितो-
राम्बकः कलिकालजेत्रचरित्रः ख्यातोद्वितीयस्तथा ।
लीम्बाकश्च तृतीयकः स्वधिषणावज्ञातवाचस्पति-
स्तेजस्वी जयताह्वयः पुनरयं तुर्यः समर्यादिधां ।।३५।।
गुणवर्याः सोदर्याश्चत्वारोऽमी त एव रामाद्याः ।
भुर्वामिय पुनरवतीर्णाः कलिकौणपविप्लुतामवितुम् ।।३६।।
गङ्गादेर्माणिकदेर्हेमादेवी तथा च जसमादेः ।
अनुपमगुणाभिरामाः क्रमादिमाः प्रियतमास्तेषाम् ।।३७।।
तेषु श्रीगुणराजसाधुरभवच्छ्रीशासनोद्भासन-

व्यग्रो जाग्रदभङ्गभाग्यविभवः सौभाग्यलीलागृहम् ।
सर्वाङ्गीणतया प्रसन्नहृदयः श्रीगुर्जरोर्वीपति–
र्नित्यं पल्लवितां लतामिवं मधुर्यस्य प्रतिष्ठां व्यधात् ।।३८।।
मुक्तामयं वपुरयं दधदिद्धतेजाः
शोभां न केवलमपतेमलो निजस्य ।
वंशस्यहार इव सारगुणश्चकार
श्रीपातिसाहिसदसोऽपि सुवर्णशाली ।।३९।।
निर्विघ्नं सर्वदा सर्वधर्मकार्याणिकुर्वता
कलेर्गले बलेनैव वामस्तेन ददे क्रमः ।।४०।।
अयं न केषां हृदयं तनोति सविस्मयं श्रीगुणराजसाधुः ।
प्रत्यर्थिनाँ प्रत्यहमर्थिनां च ततानयो दानममानमानः ।।४१।।
भूयः कृतार्थीभवदर्थिसार्थप्रमोदवाप्यप्लवजातपङ्कम् ।
न जातु तस्याङ्गणमारुरोह स्वप्नेऽप्यलक्ष्मीरिव पातभीता ।।४२।।
बुद्धया समृद्धया विनयेन विद्यया शौर्येण धैर्येण तथा प्रतिष्ठया ।
त्यागेन भाग्येन न कोऽपि भूतले तुलामलासीदगुणराजसाधुना ।।४३।।
आद्यांसप्तशरार्णवावनिमिते (१४५७) वर्षे द्वितीयां पुन–
र्हस्ततुं (६२) प्रमिते महोत्सवभरभ्राजिष्णुसङ्घेन सः
श्रीशत्रुञ्जयरैवंताचल महाश्रीतीर्थयात्रां मुदा–
चक्रे शक्रसमद्युतिर्जिनमतं प्रौढि परां प्रापयन् ।।४४।।
शस्यःकस्य नशुद्धधीस्तदनुजः साधुः स आम्रभिधः
सौन्दर्यास्तरतिं विहाययवंतिं प्रौढां समृद्धिं च ताम् ।
रूपश्रीविजितस्मरं तरुणिमोत्कर्षेऽप्युपात्रवृतं
यं नाम्नैव विभिन्नमुन्नतधियः श्रीस्थूलभद्रा जगुः ।।४५।।
तस्य देवगुरु देवसुन्दरगिरा बुद्धस्य शुद्धात्मनो
विश्वाश्चर्यकरानचीकरदसौ शस्यांस्तपस्यान्महान् ।
तत्र श्रीमुनिसुन्दराभिधगुरु वर्षे शरतुं (६५) प्रमे
प्रत्यष्ठापयदेष पाठकपदे प्रष्ठः प्रतिष्ठावताम् ।।३६।।
नानादेशजदीनदुर्गत जनप्राज्यान्नदानायुधैः
सत्रागाररणाङ्गणे प्रगुणितैर्वर्षे गजतुं प्रभे (६८)।।

मालिन्यपङ्कः पुनरुन्मिमीलचित्रं तदीर्ष्यासजुषां मुखेषु ॥५६॥

रङ्गत्तुरङ्गमसहस्रखुरोद्धताभिस्तस्यां नभस्यनणुरेणुभिरावृतोऽपि ।
चित्रं प्रतापतरणिर्गुणराजसाधोर्देदीप्यते स्म परितोऽप्यधिकप्रकाशः ॥५७॥

जिनसद्मसुतत्र यष्टिभिः पटुनिस्वानतलिः स्मकुट्यते ।
कलिकालमहीपतेः पुनर्हृदयेन स्फुटितं महाद्भुतम् ॥५८॥

नानानीवृदुपागतानवधिकश्रीसंघसंमानमना
दिव्यानेकदुकूल दानविविध प्राज्यान्न पानादिकैः ।
निस्सीमैर्निरमीमपन्मधुमतीपुर्यामतुच्छोत्सवै–
स्तस्यां श्रीजिनसुन्दराभिधगुरोः सूरिप्रतिष्ठामसौ ॥५६॥

दानाद्यद्भुततत्तदुत्सवपरैः सङ्घाधिस्तन्मुखै–
र्देवेन्द्रै रिवदिव्यवेषसुभगैरिभ्यैरमर्त्यैरिव
तस्यां तज्जिनमञ्जुमञ्जनविधिः श्रीरवेतः पर्वतः
स्फूर्ज्जज्जैनजतुमहः सुरगिरिं नस्मारयामास किम् ॥६०।

कां कां श्रीगुणराजसंघपतये स्तोत्रोपदाँ कुर्महे
तत्तद्धर्मगुणप्रयोगवशतः स्वं धारयित्वादृढम् ।
प्रत्येवोत्तमचितगुप्तिषुधृतान्यो मोचयामासिवान् ।
श्रीसारङ्गकुमारसम्प्रतिनृप श्रीवस्तुपालादिकान् ॥६१॥

भ्रातः किं कलिकालकालवदनः किं दुष्षमे दुःखिता
विघ्नाः किं भयनिघ्नतां भजथ किं तृष्णेऽसि कृष्णानन ॥
जानिषे किमु नो सखेऽलिलजत्य (?) स्माकमुज्जृम्भितं
सर्वेषां गुणराजसंघपतिना निर्मूलमुन्मीलितम् ॥६२॥

प्रख्याप्यते कथमयं नयनोदश्री–
रस्तोकयाचकजनाञ्जलिशुक्तिकासु
यः स्वातिवृष्टिमुपकप्य यशस्ततान–
मुक्तोज्ज्वलं सकलविश्वमलङ्करिष्णु ॥६३॥

युक्तं गभीरिमगृहं गुणराजसाधुः
स्फातिं परामधित नित्ययमं न दीनः ।
यस्यप्रकाशमभितो जनयन्ति गावः
श्रीसोमसुन्दरगुरोः सततोदयस्य ॥६४॥

व्यालुप्तदर्शनबलः कलिविप्लुतौजा
ज्यायान सज्जचरणः शरणप्रहीणः ।
हस्तावलम्बमधिगम्य चिरादमुष्य
धर्मः क्षमोऽजनि विहर्तु मयं जगत्याम् ॥६५॥
राजन्ति पञ्चतनया गुणराजसाधोः
ख्याताः सुमेरुवद भङ्गर गौरवाद्याः ।
सन्नन्दना स्थिरतयाकलिताः सभद्र—
शालाः सुवर्णवपुषः सु मनोनिषेव्याः ।६६॥
तत्रादिमो गजइति प्रथिताभिधानो
दानोपशोभितकरस्य महोन्नतस्य
भद्रात्मकस्य कमनीयगतेर्विशाल—
वंशस्य यस्य गजताऽनुगुणैव जज्ञे ।६७॥
चातुर्यधैर्यादिभिरद्वितीयो गुणैर्द्वितीयो महिराजनामा ।
देवादयं यौवनवर्तमानः स्वस्त्रैणनेत्रातिथितामवाप ॥६८॥
धर्मोन्नतिं वितनुतेऽद्भुतभाग्यभङ्गि—
बालह्वय शुभाधियां निलयस्तृतीयः ।
श्री मोकलः क्षितिपतिर्बहु मन्यतेस्म
यं चित्रकूट वसतिं व्यवसायहेतोः ॥६९॥
कालूः प्रभावकपथे पथिकश्च तुर्यः
स्यात श्चतुर्षु पुरुषार्थ विधिष्वमन्दः ।
यं शैशवेऽपि पुरुषोत्तममालि लिङ्ग
गाढ़ानुराग वशगेव महत्वलक्ष्मी॥७०॥
पञ्चमो विजयतेऽयमीश्वरः सर्वदा कलित सर्व मङ्गलः
यो जिगाय मदनं निजद्युता रज्यते च वृषभानसेऽनिशम् ॥७१॥
एते गुण राजसुता जयन्ति विदिता विशुद्धगुण कलिताः
असम नदानललिताः प्रशस्तचरिताः समा भ्युदिताः॥७२॥
गङ्गेव शस्या न हि कस्य गङ्गादेवीति नाम्ना गुणराज भार्या
यस्याःप्रवाह इव सूनवोऽमी स्वर्णश्रियाद्या भुवनं पुनन्ति॥७३॥
आम्वाकस्या भवत्सुनुरनूनागुण संपदा
सुमनो जनसंमान्यो मनाकः सुकृतोन्मना:॥७४॥

यशस्वी जयताकस्य तनयो विनयोज्ज्वलः।
जिनराजसती भक्तिर्जिनिराजो विराजते ।।७५।।

इतश्च—

सिद्धयै श्रीवर्धमानप्रथमगणधरो गोतमः सत्तमश्रीः
सिद्धांतस्वर्गिसिन्धोस्तुहिनगिरिरथोपञ्चमः श्रीसुधर्मा ।।
जम्बूरम्बूपमानस्तदनु शमबने दिद्युतेऽथ क्रमेण
श्रीवज्रस्वामिनामा गुरुरवगणितस्वर्गिगिरिगौरवेण ।।७६।।
विख्यातस्तस्य शाखातिलकम विकलोल्लसिंसवेगरङ्गः
सूरिः शोभामदम्भां जिनमतमनयच्छ्रीजगच्चन्द्रनामा ।।
स्वच्छैः श्रीचन्द्रगच्छं जगदतिशयिभिर्दुस्तपैस्तैपोभिः
क्षोणौ ख्यातिं तपेति क्षितिपतिजनितां प्रापयामासि वाचः ।।७७।।
श्रीमान्देवेन्द्रसूरिः प्रसरदुरमहा भासयामास भास्वां
स्तत्पट्टप्राच्यशैलं दिशि दिशि कमलोल्लासनेऽलम्भविष्णुः ।
अद्यापि ग्रंथसार्थः किरणनिकर वन्निर्मिमीते यदीय—
श्चित्रंदेदीप्यमानः शिवपुरपदवीः सवतः सुप्रकाशाः ।।७८।।
सम्यक्त्वं प्रतिपाद्य गोमुखसुरं शत्रुञ्जयेस्थापय—
न्निन्ये प्रौढिमसौ ततो जिनमतं श्रीधर्मघोषः प्रभुः ।
विद्योन्मादिकुवादिनां मदगदापस्मारनिस्सारणे
यो धन्वन्तरितां दधारबहुधा सिद्धीर्दधानोऽद्भुताः ।।७९।।
श्रीसोमप्रभसूरयः शुशुभिरे शोभाप्रद स्तत्पदे
सूत्रार्थोभयशालिनी प्रतिकलं कण्ठे लुण्ठन्तीतमा ।
मुक्तावल्लिरिवोज्ज्वला सुभगतामेकादशाङ्गी तथा
यान्निन्ये जगदुत्तमत्व कमला वव्रे स्वयं सा यथा ।।८०।।
तत्पट्टैकललाम सोमतिलकः सूरिस्ततोदिद्युते
धावानून्नविचित्र शास्त्ररचने श्वेताम्बराधीश्वरः ।
एकच्छत्रमसूत्रयत्त्रिजगतिश्रीधर्मभूमीभुजः
साम्राज्यं दुरपोहमोहनृपतिं निर्जित्य यो धैर्यभूः ।।८१।।
तेजः श्रीवसतिस्तपागणसमुद्भासैकनिष्णस्ततो
दीपोऽदीप्यत देवसुन्दरगुरुः श्रेयोदशाभासुरः ।

श्रीधर्मार्हतशासनं कलिनिशि प्राकाशयद्यस्तथा
जज्ञे मन्ददृशामपि स्फुटतया सद्य: सुदर्शं यथा ।।८२।।
तत्पट्टपूर्व गिरि मण्डन चण्डभास: श्रीसोमसुन्दरगुरुप्रभवो जयन्ति
विश्वत्रयोत्तमगुणैर्जिनशासनं यै: प्रत्याप्तगौतमाव प्रतिभासतेऽद्य ।।८३।
शृण्वन्धर्मसमाया गुरुराज इमान्रराजगुणराज:
[शृण्वन्धर्मसभायां गुणराज इमान्नराजगुरुराजान्]
श्रीहेमाचार्यानिव कुमारपाल: क्षमापाल: ।।८४।।
धत्तां श्रीगुणराजभानसभुवि स्फातिं न कां कां परां
सच्छायं फल शालिपुण्यविपिनं विश्वैकविश्रामपदम् ।
तैस्तै: श्रीवरसोमसुन्दरगुरोर्यत्पुण्यवाक्यामृतै–
र्लोकं प्रीणयदागमप्रसृमरै: सेषिज्यते सर्वत: ।।८५।।
उच्चैर्मण्डपपंक्ति देवकुलिकाविस्तीर्यमाणश्रियं
कीर्तिस्तम्भसमीपवर्तिनममु श्रीचित्रकूटाचले ।
प्रासादंसृजत: प्रसादम समं श्रीमोकलोर्वीपते–
रादेशाद्गुणराजसाधुरमितस्वर्द्ध्योदधार्षीन्मुदा ।।८६।।
नानान्तरायतिमिराणि निहन्तुमत्र
यस्योद्यमस्तरुणतिग्मकरांचकार ।
बालाभिधोऽस्य तनय: सनयश्चिरायु–
रस्तुप्रशस्तगुणसंपदकम्पकीर्ति: ।।८७।।
नेत्राणाममृताञ्जनं त्रिजगत: श्रीचित्रकूटाचला–
लङ्कार: सविहार उज्ज्वलवपुर्विभ्राजतेऽभ्रंलिह:
जाने श्रीगुणराज साधु यशसां विश्वेऽप्यमाताभयं
पिण्डीभूय महोच्छ्रय: समुदय: स्थेमानमास्तिघ्नुते ।।८८।।
अस्य त्रिलोकैक विलोकनीयां सौन्दर्यलक्ष्मीमवलोकमान: ।
व्याक्षिप्त चेता इव सप्तसप्तिर्मध्यं दिने यातिविलम्बमान: ।।८९।।
मूर्तोऽयं किमु सोमसुन्दरगुरो: पुण्योपदेशोच्चय:
प्राप्तो वा गुणराजसाधुसुकृतस्तोम: किमध्यक्षताम् ।।
पिण्डीकृत्यसुधारस: सुकृतिनां दृक्पारणेवोन्नत–
स्थानेऽस्थापि जगत्कृतेतिकृतिभिर्नो तर्क्यते कैरयम् ।।९०।।

तत्र श्रीजिनशासनोन्नतिकरैरत्यद्भुतैरुत्सवै–
र्नव्यां श्रीवरसोमसुन्दरगुरुप्रष्ठैः प्रतिष्ठापिताम् ।
वर्षे श्रीगुणराजसाधुतनयाः पञ्चाष्टरत्नप्रभे
न्यास्थन्त प्रतिमाभिमामनुपमां श्रीवर्धमानप्रभोः ॥६१॥
शोभाबन्ध्यः स विन्ध्यः सुरगुरु—नोच्चकूटस्त्रिकूटः
कैलासश्चाविलासो हिमगिरिरमहान्वाभनाभः सुनाभः ।
मैनाकः पाकरुपः सकलवसुमतीदत्तनेत्रप्रसादे
प्रसादे द्योतमाने रविरथतुरगप्राप्तविश्रांतिकेऽस्मिन् ॥६२॥
उकेशवंशतिलकः सुकृतोरुतेजा–
स्तेजात्मजः प्रतिवसन्निह चित्रकूटे ।
चाचाह्यः सुजनलोचनदत्त शैत्यं
चैत्यं च चारु निरमीमपदत्तरस्याम् ॥६६॥
सर्वत्रागञ्जिता कीर्तिगुणराजस्य गर्जतु ।
येन श्रीधर्म साम्राज्यमसृज्ज्यत कलौयुगे ॥६७॥
यः कल्लोलवतीपतेः कलयितुं कल्लोलमालां प्रभु–
र्निष्णातश्च नभोगणे गणयितुं यस्तारकाणां गणम् ।
यो मातुं सिकताकणांञ्च सरितां शक्तः स एव ध्रुवं
संख्यातुं गुणराजसाधु विहित श्रीधर्मकार्याण्यलम् ॥६८॥
तेजस्विनो विजयिनो गुणराज सुता जयन्ते चिरमेते
श्रीजिनशासन सौधे स्तम्भा इव ये विभासन्ते ॥६९॥
यद्विद्यानां विनेया यदुरुगुणनुतेराननान्युत्तमानां
श्राद्धा यद्बोधशक्तैः सकल वसुमती यद्यशोमण्डलस्य ।
ब्राह्मी यत्प्रौढ़ि मोक्तेर्गुरुरपि मरुतां तत्व वादस्य येषां
यद्बुद्धेर्बौध्दभावा न हि विषयतया यान्ति पर्याप्तियोगम्
शिष्य प्रशास्तमेतं तेषां श्री सोम सुन्दर गुरुणाम्
शर निधिमनु (१४९५) मितवर्षे चक्रे चारित्र रत्नगणिः ॥१०१॥
लक्षस्य सूत्र दक्षस्य नन्दनो नारदः प्रशस्ति भिमाम्
उत्कीर्णं वान्सुवर्णां लिखितां संवेगजयतिना ॥१०२॥
श्री चित्रकूटाचल मौलिमौलिरमोधितोर्वी जन दृष्टिसृष्टिः

देयदमेया: शार: प्रमोदं सतां महावीर बिहारराज: ।।१०३।।
यावल्लीलां विधत्ते सततमुदयिभिर्दीप्ततेज: प्रतानै-
र्युक्ता मुक्तावलीयं हृदि विशदगुणा सिद्धिलक्ष्मी स्मिताक्ष्या:
प्रासादस्तावदेषोऽभ्युदयतु विदुषां हर्षमेषाप्रशस्ति-
र्दत्तां धत्तां नितान्तं जिनमतमदयं प्रथितां सर्वलोक: ।।१०४।।

[ज० बं० ब्रा० रा० ए० के सौजन्य से]

लेख सं० ९ राणकपुर मंदिर का शिलालेख

(१) (।।) श्रीचतुर्मुखजिनयुगादीश्वराय नम: ।।
(२) (वि) क्रमत: १४९६ संख्यवर्षे श्रीमेदपाटराजाधि–
(३) रा (ज) श्रीबप्प १ श्रीगुहिल २ भोज ३ शील ४ कालभोज
(४) ५ भर्तृभट ६ सिंह ७ महायक ८ राज्ञीसुतयुतस्वसुव–
(५) र्णतुलातोलक श्रीखुम्माण ९ श्रीमदल्लट १० नरवाह–
(६) न ११ शक्तिकुमार १२ शुचिवर्म १३ कीर्तिवर्म १४ योगराज
(७) १५ वैरट १६ वंशपाल १७ वैरीसिंह १८ वीरसिंह १९ श्रीअरि–
(८) सिंह २० चोडसिंह २१ विक्रमसिंह २२ रणसिंह २३ क्षेमसिंह
(९) २४ सामंतसिंह २४ कुमारसिंह २६ मथनसिंह २७ पद्मसिंह
(१०) २८ जैत्रसिंह २९ तेजस्विसिंह ३० समरसिंह ३१ चाहु
(११) मान श्रीकीतूकनृप श्रीअल्लावदीनसुरत्राणजैत्रबप्प–
(१२) वंश्य श्रीभुवनसिंह ३२ सुतश्रीजयसिंह ३३ मालवेश
(१३) गोगादेवजैत्रश्रीलक्ष्मीसिंह ३४ पुत्र श्रीअजयसिंह
(१४) ३५ भ्रातृ श्रीअरिसिंह ३६ श्रीहम्मीर ३७ श्रीखेतसिंह ३८
(१५) श्रीलक्षाह्वयनरेंद्र ३९ नंदसुवर्णतुलादिदानपुण्य–
(१६) परोपकारादिसारगुणसुरद्रुमविश्रामनंदनश्रीमोकल–
(१७) महीपति ४० कुलकाननपंचाननस्य । विषमतमाभंगसारंग -
(१८) पुरनागपुरगागरणनराणकाऽजयमेरुमंडोरमंडलकरबूंदि
(१९) खाटूचाटसूजानादिनानामहादुर्गलीलामात्रग्रहणप्रमाणि–
(२०) तजितकाशित्वाभिमानस्य । निजभुजोर्जितसमुपार्जितानेकभ–

(२१) द्रगजेन्द्रस्य । म्लेच्छमहीपालव्यालचक्रवालविदलनविहंगमें-

(२२) द्रस्य । प्रचण्डदोर्दण्डखंडिताभिनिवेशनानादेशनरेशभालमा-

(२३) लालालितपादारविंदस्य । अस्वलितलन्वितलक्ष्मीविला-

(२४) सगोविंदस्य । कुनयगहनदहनदवानलायमानप्रतापव्या-

(२५) पलायमानसकलबलूलप्रतिकूलक्ष्मापश्वापदवृन्दस्य ।

(२६) प्रबलपराक्रमाक्रांतढिल्लीमंडलगूर्जरत्रासुरत्राणदत्तातप

(२७) त्रप्रथितहिंदुसुरत्राणबिरुदस्य सुवर्णसत्रागारस्य षड्दर्श-

(२८) नधर्माधारस्य चतुरंगवाहिनीवाहिनीपारावारस्य कीर्तिधर्मप्र-

(२९) जापालनसत्वादिगुणक्रियमाणश्रीरामयुधिष्ठिरादिनरेश्वरानुका-

(३०) रस्य राणाश्रीकुंभकर्णसर्वोर्वीपतिसार्वभौमस्य ४१ विजय-

(३१) मानराज्ये तस्य प्रसादपात्रेण विनयविवेकधैर्यौदार्यशुभकर्म-

(३२) निर्मलशीलाद्यद्भुतगुणमणिमयाभरणभासुरगात्रेण श्रीमदहम्मद-

(३३) सुरत्राणदत्तफुरमाणसाधुश्रीगुणराजसंघपतिसाहचर्यकृताश्च-

(३४) र्यकारिदेवालयाडंबरपुरःसरश्रीशत्रुंजयादितीर्थयात्रेण । अजा-

(३५) हरीपिंडरवाटकसालेरादिबहुस्थाननवानजैनविहारजीर्णोद्धार

(३६) पदस्थापनाविषमसमयसत्रागारनानाप्रकारपरोपकारश्रीसंघस-

(३७) त्काराद्यगण्यपुण्यमहार्घक्रयाणकपूर्यमाणभवार्णवतारणक्षम-

(३८) मनुष्यजन्मयानपात्रेण प्राग्वाटवंशावतंससं०मांगणसुतसं०कुर-

(३९) पाल भा० कामलदे पुत्र परमार्हत सं० धरणाकेन ज्येष्ठभ्रातृ सं० रत्ना भा०

(४०) रत्नादे पुत्र सं० लाषामजासोनासालिग स्वभा० सं० धारलदे पुत्रजाझा (जा)—

(४१) जावडादिप्रवर्द्धमानसंतानयुतेन राणपुरनगरे राणाश्रीकुंभकर्ण-

(४२) नरेंद्रेण स्वनाम्ना निवेशित (ते) तदीयसुप्रसादादेशतस्त्रैलोक्यदीपका-

(४३) भिधानः श्रीचतुर्मुखयुगादीश्वरविहारः कारित प्रतिष्ठितः

(४४) श्रीवृहत्तपागच्छ श्रीजगच्चन्द्र (सू) रिश्रीदे (वेंद्रसूरिसंतानेश्रीमत्)

(४५) (श्रीदेवसुन्दर) सूरि (पट्टप्रभा) कर परमगुरु सुविहितपुरंद-
(रगच्छा) धि—

(४६) राजश्रीसो [म] सुन्दरसूरि [भिः] ॥ ॥ [कृत] मिदं च सूत्रधार-
देपाकस्य

(४७) अयं च श्री [चतुर्मुखप्रासाद आचंद्रार्के नंद] [ता] त्
॥ शुभ भवतु ॥

लेख सं० १० करेड़ा जैन मंदिर का लेख

(१) ॐ ॥ सं० १४९६ वर्षे ज्येष्ठ सुदि ३ बुधवारे श्रीऊकेशवंशे नाहट शाखायां सा० माजरण पुत्र सा० व

(२) णवीर पुत्र सा० भीमा । वीसलरणपालप्रमुखपौत्रादिपरिवारसहितेन श्रीकरहेटकस्थाने श्रीपार्श्व-

(३) नाथभुवने श्रीविमलनाथदेवस्यदेवकुलिका कारापिता । प्रतिष्ठिता श्रीखरतरगच्छे श्रीजिनवर्द्धन सू-

(४) रीणामनुक्रमे श्रीजिनचन्द्रसूरिपट्टकमलमार्त्तंड मंडलिः श्रीमज्जिन सागरसूरिभिः । शिवमस्तु ॥

(५) वरसंगदेवराज पुन्यार्थः ॥

लेख सं० ११ कड़िया का लेख

(१) ॥५०॥ ओ नमो गणेशाय ॥ जयति जगदुपास्यः कोपि दन्तावलास्यः । कट तट मद नीर प्रोच्चरद् भृंगराजिः । विशद दशन शोचिः शुचिता यस्य मौलौ ललितकलमराली पोतकालीव भाति ॥१॥ पर्यंकीकृत कुण्डलीन्द्रनिबिड़प्रद्यतफणमंडलीलीलादेश विभूषणीकृतपयो—

(२) राशिप्रसूतातनुः । शुद्धानंदघनः प्रसादितपरश्रीकामराजोत्सवोदेवः श्रीसरसीरुहाक्षि युगलपाद्यादपायात्सवः ॥२॥ अवतु सततम्बा कापि कारुण्यदेहास्वरसमुदितशर्वाखंडितारातिगर्वा । प्रणतसमसुपर्वा योगिभिर्बोध पूर्वा त्रिनयनरमणी सा गुप्त सौहार्दसर्वा ॥३॥ प्रसावित्रीश्चा—

(३) र्याणां हंत्री—भक्ताद्विषां मुदांदात्री । श्रितसुकृति कल्पलतिका भुवि काव्यकापि रेणु का यस्तात् ॥४॥ श्रीमद्भरद्वाजमुनींद्र वंशः श्रुति

श्रवंति कलराज हंस: । कंसारि पादाब्ज-कृतावतंस: श्रिया जगत्याद्यतर प्रकाश: ॥५॥ वेदार्थ पीयूष: रसावसिक्तो महीभृतां मौलिषु सर्व्ववास: सुस्पष्टमूल: कमनीय—

(४) शब्दो जीयाद्भरद्वज मुनींद्र वंश: ॥६॥ तस्मिन् कश्चिद्विपश्चित् प्रथितगुणगणो धर्मनिर्माण दक्ष: साक्षाद्दक्षावतार: परमगरिमभृत् लोकशोकापहार: । सौन्दर्य क्षीर सिन्धुर्विजित गुरुल्लसत् कीर्त्तिपूर्ति द्विजन्म, श्रेणी भूयाग्रणीशो महित कृत मति: सीहड़ो (ऽ) भूद्विजेश: ॥६॥ लोकं

(५) हैरण्यगर्भं गतवति सुकृत प्रक्रियाभि: कृतीन्द्रे तज्जन्मा स्वीयधाम्ना तरणि-सरणि भृत् भूभृदर्च्या धिपद्म: । सद्म श्री संततार्थी कृत विनतमही देववृन्द: प्रभिन्दन् धर्मारीन शर्म-कर्म-प्रकट पटुतरो राम नामाधिविज्ञो ॥८॥ वेद प्रव्यक्त वर्चा:....स्ता परिलसत्सर्वकालो विशाल प्रोद्यत्वाडव्य भव्य

(६) प्रसरदतिल सत्कीर्त्तिपूर्त्तिप्रवृत्ति: । सौराचार प्रसार प्रवुरतर जित प्रार्थ्य वृत्तावदार: श्रीमान्तेजोभिरीड्यो (ऽ) जनि धरणितले कोपि राम द्विजेश: ॥६॥ विपक्षवृंद विभयां चकार द्रव्यानि योग्नौ जुह्वां बभूव । स व्यास कीर्त्ति विभरां चकार स जिह्वयामास भवं हि राम: ॥१०॥ तज्ज: स्फु—

(७) रतर पवित्र चरित्र संघ: सद्य: कृतार्थित समस्त-निजान्ववाय: । श्रेय: श्रुति स्मृति पथ प्रथित प्रबन्ध: श्री तिल्हभट्ट उदित: कृतिषु प्रकृष्ट: ॥११॥ वाचा देव गुरूयते स्थिर तया गागेय गोत्रायते धर्येणाम्बुनिधी- यते करुणया श्री चद्रमौलीयते

(८) श्रीमान् तिल्ह सुधीश्वरो नृपशिर: कोटीरहीरायते ॥१२॥ य प्राचां रम्यवाचां बहुल रसमुचां सत्प्रवाचां सुवाचा-मर्वाचामप्य वाचीं गति- मिह दिशति स्वीय वाणी विलासै: यद्दष्ट चैव प्रकृष्ट प्रकट पटु वचश्चाटुता कृष्ट पुष्ट: क्ष्माधीशोयं सुधीशो जगति विजयते ध्वस्तवादि प्रवाद: ॥१३॥

(९) यो वा वेत्ति समग्रवाग्विलसित जोज्येष्टियं राजकं येन द्राक्करितोरू प्रीति गुणिकः शुश्लोकि यस्मै जनः। यस्माच्छं किललालसीति नृगणश्चा-कृष्ट यस्याद्य शै तस्मिन् तोक्ष्यति सपदः।··महत श्री तिल्ह वा··ह ॥१४॥ यो भूभृन् मूर्ध्नि नित्यं रविरिव नियतं स्वांघ्रिदाने समर्थः,

(१०) संप्राप्य स्योदयौथ प्रतिवदति ये रसनिह्न था वभाति। तच्चित्रं नात्र मन्ये लसति परमिव विस्मित यः सदैव, स्वोदित— स द्विजेशः प्रचुर रुचि लसत् ताडितो-ल्लास कृत्यः ॥१५॥ भूदेव हारेद्य दवाग्निभार-जालो-पशान्त्यै नववारिदौघः। दुर्वादि शास्त्रार्णव राज-शोष घटोद्भवः तिल्ह गु—

(११) रुःस जीयत् ॥१६॥ यद्ब्रह्म वर्चसभरं दिन-नायकोपि सासाविनयिका (?)....चेत.....चाकशीति। तस्थाति यद्वह्नपदो स महीभृदाद्य प्रणोदयोपि चिरमाशु विचाचलीति ॥१७॥ एतं वीक्ष्य वाह्यमार्गं प्रवृत्तं मन्ये मान्यो प्येष रुद्रा हि येव तत्पादृश्ये—नाश्रया सो वि—

(१२) मानः प्रावर्त्तिष्ट प्रोच्चकैर्बाह्यमार्गे ॥१८॥ यत्सार्वज्ञ वीक्ष्यतेऽसौ मुनीशो विन्दनुच्चैर्गां तमाख्यां स्वमौर्ख्यात्। धार्योधन्यां लब्धवर्णैः कथं स, धीमान् श्रीमान् तिल्हभट्टो मुनीन्द्रः ॥१९॥ भट्टैकः प्र· भ्वस्य प्रकट द··प· र्वकत कोणतर्के च कीर्त्तिस्वैर वादे पदति सु—

(१३) वदो हतु वेदांत तंत्रं। द·न्य पर्व्वतोच्चं रचयति सुमतिः सर्पराजस्य सूक्तैः श्री तिल्हभट्ट प्रकटित पतुटं वाङ्मये सान्वयेन ॥२०॥· क्ते·· कक्षा कुरिमणिमद शकरे वर्कराषि श्वकस्मा··ल प्रवलमतिभिः यौवना तनीषि क्षीर। ··नीरभाव··हि हिरसभ—

(१४) रेत्वं रसालां ससारे माधुर्ये किन्न वर्या कलयसिर्जायिनीं तिल्हभट्टस्य वाणी ॥२१॥ त्रवा·····कलरव सुरसा काकली काकली····माना शि····गणना कापि के कापि वाचः। वाचालं····त्र लयनं स···· भृगश्रृंगारिणी ते भाषा चैषाग्रणी य—

(१५) द्विलसति सुरसा तिल्हभट्टस्य वाणी ॥२२॥ यो दीनान् व्यथिताधिपा-लसद्दशान् योढोपकारतर्बोढर्तज पुलत्तणणु तुलितात् द्वेष्यो नाजाभरैः।

व्यक्तानीदथ च हो रूप सरणीन् साक्षा (द्) वृणोद् कल्याणी शत-धर्म्म····प विशन जागर्त्ति तिल्हसुधोः ।।२३।।

(१६) श्री भूगल कुलावतंसित पादांभोजः स्त्र (?) युग्मः सदा प्रेक्षावत् प्रकटोत्तमांग विलसत्कोटीशहोरामणिः । विद्वद्वात् मनोरथार्पण विधौ प्रव्यक्त कल्पद्रुमो नित्यं वरधित साश्रनो विजयते तिल्हभट्टो गुरुः ।।२४।। श्रां मेदपाटे भट लक्षसिंहः श्री तिल्हभट्टं गुरुमाततान । स्वगायसिद्धयैज सकष्टलेवृद्धयं यथा

(१७) दिलीपः कृतिमत्प्रसिद्धः ।।२५।। तस्मै ददौ हाटक-पट्ट-वासः स्वेष्टार्थ भारान्वित गादलीकं । श्री वाजवो-ग्राम-मपारसीमं संकल्प्ये तं राजकरैः प्रणीतम् ।।२६।। तत्पादपाथोजयुगार्चनाथ बुभोज भूमि सागरांतां । तुलाविदा सन्मतिदः कृतींद्रो जघान विद्वेषिगणं सुधांशुः ।।२७।। प्रमोच—

(१८) य मास गयादितीर्थवृन्दं परं धर्मगणं च कार्यं । ऐन्द्रं पदं जग्मुः किं तु तस्मिन् श्री मोकलेंद्रापि गुरुं प्रसाद्य ।।२८।। विधाय नक्तं दिवमाच-चार पूजां तदीया सुकृतीशमौलिः । ग्रामं कटीति प्रथितं दिदेश ततः कृतार्थः स जिगावशत्रून् ।।२६।। अवाप राज्यं रघुश्रुतः (?) स शिश्राय सक्रा—

(१६) सनमाद्यकीर्त्तिः । तदीयसूनुधरणीश मौलिः श्री कुंभकर्णोपि गुरुं तमेव ।।३० । शेश्रेति भक्त्या गुरुपादमूलं तुल्यं महेष्टाय सुगम नीति । तदंघ्रिपाथोजरसे द्विरेफः समूलकाशं कर्षति स्वदस्यून् ।।३१।। बोभोक्ति या दः प्रतिगामि लालसकात्यंत शतमन्युभोग्यान् मोमोक्ति बोभोक्ति

(२०) गिरां रहस्यं स तिल्हभट्टो भुवि तेजयोतु ।।३२।। यो यज्ञानुवय······ धि·····विध प्रक्रियाभिः समग्रा····त्सा लक्ष हीमान् यममदनि (?) गयादि तीर्थोथयात्रां । दातान्युच्चैव तारा ? सुरसदन समावापिका-राम कूपः प्रोद्यत्कासारवारान्वयरचयदतुलस्तत् प्रतिष्ठा

(२१) योचर्कः सप्ततं यस्वरगचरि करोत् कीर्तनोयं समभि····तं न्यर······ ····जी··सार्थं समर्थः । इष्टं पूर्तं व्यादधात् सकलमपि गिरां

गुंफमुच्चैरबोभोत्. श्रीमान् श्री तिल्हभट्टो भुवि सरसधी: सज्जनै र्लालसी तु ।।३४..........युग्रेस्य मित्रा .... वे स्वीयीदय: स—

(२२) वंदो धातद्विसकल प्रकृष्ट धरणीभृत् सर्वकालोदय: । येनास्य प्रकाशं चतुरो विद्यौघ विच्छेदक:, कोयं तिल्हगुरु: पर: समशुचि: संमानित: भूपति: ।।३५।। चंद्रात्रेयसुवंशजामुक्तिभू: पत्नी तदीया सदा गृह्याचारविचारचारुचतुरामन्दाकिनीवोज्वलां । पूर्णा प्रोन्नति—

(२३) हृत शिवाध (थ) श्रयलसत् सन्मार्ग संमागंण पातिवृत्य महोदया विजयते तारामिधानापरा ।।३६।। नादानामायस्या: समग्रगुणभू: पितामह: समह: । स्वाचारं श्रुति विख्यात: ख्यातकीर्त्ति पुतियुत: ।।३७।। यस्यापितापरमशर्मनिदानसूमि: सर्वद्विजातिजनताकृत चारुकीर्त्ति: । आ—

(२४) चारचारुचरणार्णवतुल्यमूर्ति: कर्णाख्ययो भुविबभूव स सुप्रसिद्धः ।।३८।। कमला कमलदृश: किं गिरिजा गिरिराज भवनस्य । यस्या: किमिति विरोत्स्यति सतीं श्री तिल्हभट्टस्य सहचरीं तारां ।।३९।। या जह्नुकन्येवसमुद्रनीयाद्विजेशसंगत्युदितप्रकाशा । चतुर्भुजस्योल्लसितांघ्रितो—

(२५) या सौभाग्यभाग्यैकनिधि: सुनारा ।।४०।। त्रिलोचनाख्यं किल साद्विजेश तारापरं मजुषतां सदैव । चित्रं न तद्विस्मितमत्र मन्ये, तेन प्रकाशं लभते सुनारा ।।४१।। तारापति: श्री द्विजराज तिल्ह: अर्क प्रभभि: कृतनीं विधत्ते । तारां विचित्र कथमेव तस्मै वाच: सुधा: सा दिशति प्रसूता: ।।४२।।

(२६) कृष्णे हि पक्षे महितात्रतारापक्षेद्वये सा कथमेव पूज्या । श्रितञ्च तस्मिन् द्विजराजतिल्ह: स्ववाक् प्रसादेन नुत: सुपूर्ण: ।।४३।। श्रितापि सा धर्मधिया सदैव सत्कृष्णपक्ष निजपुण्याभाभि: । द्विजेष तोषं विदधाति चित्रं तदिष्ट दानेन महाप्रभावा ।।४४।। त्रिलोचनागार यत्राम्बुधौ तरीब या

(२७) शैलसुतेवभातिलोकाभिवंद्यामहनीयकीर्त्ति: प्रसिद्धमाहात्म्य गुणानुरागा ।।४५।। स रुद्रमेवाश्रयता हि तिल्ह: स्फुटं द्विजेशत्वमभि-

व्यनक्ति । मत्कृष्णायक्ष-अर्थितापि तारा कथं द्विजेशत्वनथाश्नुते (ऽ) सौ ॥४६॥ भर्तुं प्रोच्चांघ्रिपंकेरुहयुगविलसत् मार्गका.......... हृ-

(२८) ष्ट पुष्टा तदधिक जलद प्रोन्नतौ सन्मदा । पातिव्रत्यैक भूमिः सतत सुकृतधीः दैवनालि द्विजो य द्भक्तिः सीमा स ···· मगणित करुणा पूर्णतां याति तारा ॥४७॥ श्री तिल्हार्य स्य सर्वदोदय महेगाढ़ प्रकाशा-सदा प्रोच्चैरर्थि मुभांबुजोलसत् कृत ··· जत् ।

(२९) भिर्भाभिरपि स्वमंडल लसत् रक्षाविधौ देवता, क्षीणानैव कदापि कापि महिता देवी हि ताराभिधा ॥४८॥ तारादेवि······प्रमदा या श्राध्यतीव वहिष्टाप्य महि विभवसनाथो नाथो यस्यास्त्रिलोचनः को पि ॥४९॥ धौरेयकी सा च पतिव्रतानां, ग्रामे कटीति प्रथितो व-

(३०) सक्ता रत्नाकरस्यांघ्रिसरो विशालं ··· तथा नंदन-निंदकं च ॥५०॥ आरामे रम्ये स्ववतेरं तुङ्गा (?) संप्राप्य कासारमचीकरोत् सा । व्यतीतनव्योनवनं वृजं ··ताराख्य देवो धृतभर्तृभक्तिः ॥५१॥ युग्म धनं सुतान् कीर्त्तिमथायुरिष्टं, अस्मिन्भवे प्राप्य पु-

(३१) नर्यथाहं श्री स्वामिति धिया सकीर्त्तिः ॥५२॥ ऐहिकामुष्मिक सत्फलौघ दात्रीं सुमूर्ति विरच्य भव्यां श्री कृष्णदेवस्य चतुर्भुजस्य विद्वद्भिराति-ष्ठिपदद्य देशे ॥५३॥ तदालयं भूरिधन- व्ययेन व्यदीतत

(३२) पर्वतवोथ पूर्वं । गणेशमुख्यानभं (थ) पंचान्यदेवान् तत्र प्रक्लृप्तयन् स्वमतिष्टिपच्च ॥५४॥ पूज्यां त्रिसंध्यं भर्गाद्विरे र्या स्थाप्ना विधत्ते विविधोपचारैः । श्री तिल्हभट्टस्य च मूर्तिर्विष्णोः सा पुत्रिणीस्तान् महितात्र तारा ॥५५॥ शिवया सहितो

(३३) यावद् विलसति भुवने शिवः परः शिवदः । तारा-देव्याः सहितस्तावत् श्री तिल्हकोविदो जीयात् ॥५६॥ यावत् जह्नुकन्या बहुल जलभरं सवरीति भूमौ, यावत् स्वर्णाद्रिरुच्यै रमरवरपुरीसुन्दरीर्धतिमूर्ध्नि, यावद् भास्वान् प्रभाभिर्हि—म रुचिरं पिवां संबरी कीर्त्तिकालस्तावत् श्री कृष्णमूर्तेः स्थितिमयेह सदा सत्प्रकाशस्ति शिाढ्वया ॥५७॥

आगात्रैमिषं पात्रपु जनगराकात्यायनीयाग्रणी, वाक्यतर्कगता वहींद्र समते: साहित्यरत्नाकर: । श्रौतस्मार्च यते:

(३५) कृत श्रीमन्मुरारे: सुत: श्री कल्याणकरो-तनिष्टशिवदां कृष्णप्रशस्ति परां ॥५८॥ नभ-ख-भूतेंदु विराजताब्दे पंचम्यहे माघ-सिताद्य पक्षे । गुरौ भुवं रक्षति कुंभभूपे कृष्णप्रतिष्ठां (व्यतनोत्सुतारा) ॥५६॥

(३६) नागह्रदीय[४] परजाति नसत् प्रसिद्धि र्हादाख्यक: सकल-शिल्पिमतां बुज: । जातौ तदीय तनुजौ करणा( )( )( ) फ णाभ्यां प्रशस्तिरुदकारि कलौघविभ्यां ॥६० [वरदा के सौजन्य से]

लेख सं० १२ वि० सं० १५०२ एकलिंग जी का लघुलेख

१. स्वास्ति श्री रंवत् १५०२
२. वर्षे श्रावणसुदि ५ गुरौ
३. श्री आथर्वणगुरो धारात
४. स्य शिष्य श्री वेदगर्भगुरु
५. श्री हारीतराशिस्य मूर्ति
६. श्री विध्यवासिना
७. तपस्यार्थे कारातितं

वि० सं० १५०६ आबू का लेख

संवत १५०६ वर्षे आषाढ़ सुदि २
महाराणा श्री कुं (कुं) भकरण विजय—
राज्ये श्री अर्बुदाचले देलवाड़ा ग्रामे विम—
ल वसही श्री आदिनाथ तेजलवसही श्री नेमिनाथ
तथा बीजे आव्य (व) के देहरे दाण मुंडिक वलानी रषवालो
गाड़ा पोठ्यारु राणि कुंभकर्णि मंह डूगर भोजा जो—
ग्यं मया उधारो जिको ज्यात्रि आवि तिहिरु सर्वमु
कावु ज्यात्रा समंधि आचंद्राक लगि पायक इको कोई
मांगवा न लहि राणि श्री कुभकर्णि मं० डूगर भो—
जा ऊपरि मया उधारी यात्रा मुगति कीधी आ

घाट थापु सुरिही रोपावी जिको आविधि लो-
पसी तिईंह सुरिहि भांगीरु पाप लागसि
अनि सहू जिको जात्रि आविसई स फद्यु एक देव
श्री अचलेश्वरि अन दुगाणी ४ च्या [र] देवि श्रीविशिष्टि
भंडारि मुकस्यइं । अचलगढ उपरि देवी ।
श्री सरस्वती सन्निधानो वइठ्ठां लिखितं । हुए
श्री स्वय । श्री राम प्रसादातु । शुभं भवतु ।
दोसी स (र) मणं नित्यं प्रणमति

लेख सं० १४ वि० सं० १५०७ का वसन्तगढ़ का लेख—

सं० १५०७ वर्षे माघ सुदि ११ बुधे राणा श्री कुंभकर्ण राज्ये वसंतपुर चैत्येतदुद्धार कारकोप्राग्वाट व्य० झगड़ा भा० मेघादे पुत्र व्य० संडनेन भा० माणकदे पुत्र कान्हा पौत्र जोणादि युतेन प्राग्वाट व्य० घणसी भा० लींबी पुत्र भादकेन भा० आल्हू पुत्र जावडेन भेजादियुतेन मूलनायक श्री शांतिनाथ बिंब कारितं प्रतिष्ठितं तथा श्री सोमसुन्दर सूरि तत्पट्टालंकरण श्री मुनि सुन्दर सूरि श्री जयचन्द्र सूरि पट्ट प्रतिष्ठितं गच्छाधिराज रत्नशेखर सूरि गुरुभिः ।

[जैन लेख संग्रह से]

लेख सं० १५ कीर्तिस्तम्भ के लघु लेख—

(१)
१. संवत् १४९९ वर्षे फागुण सुदी ५
२. महाराजाधिराज राणा श्री कुंभकरण विजई (य)
३. राज्ये देव श्री समाधेश्वरसुत्र
४. धार जइतो पुत्र नापा—पुंजा
५. प्रणमतं

(२)
१. संवत् १५०७ वर्षे श्रावण सुदि ११ रवौ राणा श्री
२ कुंभकर्णा (र्ण) काराविंतं (पितं)
३. सूत्रधार जइता

(३)
१. स्वास्ति श्री संवत् १५१० वर्षे श्रावण सुदि ११
२. सोमवारे कीर्तिस्तंभ राणा श्री कुंभकरणं
३. काराविंतं (पितं) सूत्रधार जइता पुत्र नापा भूमि चूथी

(४) १. संवत् १५१० वर्षे
ज्येष्ठ सुदि १३ शनिदिने
सूत्रधार पोमालिखितं

(५) १. स्वस्ति श्री संवत् १५१५ वर्षे चैत्र शुदि ७ रवौ महाराजाधिराज
श्री कुंभ
२. कर्ण श्री समाधिस्वरश्रुतः महामेरु श्री कीर्तिस्तम्भ कारापितं श्रीवि-
३. स्वकर्मा प्रसादात् सकलवास्तुशास्त्रविसारद सूत्रधार लाषासु--
४. त जइता श्री कीर्तिस्तंभ कारितं पुत्र नापा पूंजा पोमा सहतन
(सहितेन) श्री चित्र--
५. कोटमुष प्रतोल्यां श्रीराणपोलि श्री कुंभस्वामिसहतेन ....

(६) १. महाराणा श्री मोकलस्यसुत
२. श्रीकुंभकर्ण करमाषित (श्रित) सूत्र
३. धार जइता पुत्र नापा
४. पूंचोली समषा
५. .... सुभं कल्याणमस्तु
६. कल्याणमस्तु ।।

(७) १. श्री महाराणा श्री कुंभकर्ण
२. श्री माहामेरु श्री कीर्ति
३- स्तंभं कारापितं सूत्रधार ......
४. सुत जइता पुत्र नापा की ......
५. र्त्तिस्तंभं कारितं"

लेख सं० १६ मामादेव के मंदिर से प्राप्त मूर्तियों के लेख—

(क) देवीप्रतिमाएं—

(१) ब्रह्माणी (उदयपुर संग्रहालय सं० ६५)

१ ।। स्वस्ति श्री संवत् १५१५ वर्षे तथा शाके १३८० प्रवर्त्तमानो(नै)
फाल्गुन शुदि १२ बुधे
२. ।। पुष्यनक्षत्रे श्री कुंभलमेरु महादुर्गेमहाराजाधिराज श्री कुंभकर्ण
पथ्वी

३. ॥ पुरंदरेण श्री ब्र(ब्र)ह्माणी मूर्ति: अस्मिन् वटे स्थापिता ॥ शुभं भवत (तु) ॥श्री:॥

(२) **माहेश्वरी [उदयपुर संग्रहालय सं० ६६]**

१. ॥ स्वस्ति श्री संवत् १५१५ वर्षे तथा शाके १३८० प्रवर्त्तमानो(ने) फाल्गुन शुदि १२ बुधे पुष्य–

२. ॥ नक्षत्रे श्री कुंभलमेरुमहादुर्गे ॥ महाराजाधिराजश्रीकुंभकर्ण पृथ्वी पुरंदरे–

३. ॥ ण श्रीमाहेश्वरीमूर्ति: अस्मिन् वटे स्थापिता ॥श्री:॥ शुभं भवत (तु) कल्याणमस्तु ॥

(३) **कौमारी [उदयपुर संग्रहालय सं० ६७]**

१. ॥ स्वस्ति श्री संवत् १५१५ वर्षे तथा शाके १३८० प्रवर्त्तमानो(ने) फाल्गुन शुदि १२

२. ॥ बुधे पुष्यनक्षत्रे श्री कुंभलमेरु महादुर्गे महाराजाधिराजश्रीकुंभ–

३. ॥ कर्ण पृथ्वीपुरंदरेण श्रीकौमारीमूर्ति: अस्मिन् वटे स्थापिते (ता) शुभं ॥

(४) **वैष्णवी [उदयपुर संग्रहालय सं० ६८]**

१. ॥ स्वस्ति श्री संवत् १५१५ वर्ष तथा शाके १३८० प्रवर्त्तमानो(ने) फाल्गुन शुदि १२ बुधे पुष्यनक्ष–

२.॥ त्रे श्री कुंभलमेरु महादुर्गे ॥ महाराजाधिराज श्रीकुंभकर्ण पृथ्वी पुरंदरेण श्री वैष्ण–

३. वीमूर्ति: अस्मिन् वटे स्थापिता "शुभं भवत् (तु) कल्याणमस्तु" ॥श्री:॥

(५) **वाराही [उदयपुर संग्रहालय सं० ६९]**

१. स्वस्ति श्री संवत् १५१५ वर्ष तथा शाके १३८० प्रवर्तमानो (ने) फाल्गुन शुदि–

२. १२ बुधे पुष्यनक्षत्रे श्री कुंभलमेरु महादुर्गे महाराजाधिराज

३. महाराणा श्री कुंभकर्णपृथ्वीपुरंदरेण श्री वाराही मर्ति:

४. अस्मिन् वटे स्थापिता ।। शुभं भवत् (तु)

(६) **ऐन्द्री [उदयपुर संग्रहालय सं० ७०]**

१. स्वस्ति श्री संवत् १५१५ वर्षे शाके १३८० प्रवर्तमानो (ने) फाल्गुन शुदि (१२)

२. बुधे पुष्यनक्षत्रे श्री कुंभलमेरु महादुर्गे महाराजाधिराज–

३. श्री कुंभकर्ण पृथ्वी पुरंदरेण श्री ऐन्द्रा (द्री) मूर्तिः स्थापिता ।। षभ (शुभं) ।।

(७) **महालक्ष्मी [मामादेव के मंदिर के मन्दिर के मंडप में]**

१. ।। स्वस्ति श्री संवत् १५१५ वर्षे तथा शाके १३८० प्रवर्तमाने फाल्गुन शुदि १२ बुधवासरे पुष्यनक्षत्रे श्री कुंभ–

२. लमेर महादुर्गे श्री महाराजाधिराज महाराणा श्री कुंभकर्ण पृथ्वो पुरंदरेण श्री महालक्ष्मीमूर्तिः प्रति–

३. स्थापिता ।।श्रीः।।

(८) **आसनस्थ गणपति [मामादेव के मंडप में]**

१. स्वस्ति संवत् १५१५ वर्षे शाके १३८० प्रवर्त्त माने फाल्गुन शुदि १२ बुधवासरे

२. पुष्यनक्षत्रे श्री कुंभलमेरु महादुर्गे श्री महाराजाधिराज श्रीकुंभकर्ण पृथ्वी–

३. पुरंदरेण श्री गणेशमूर्तिः अस्मिन् वटे स्थापिता ।।शुभं भवतु ।। कल्याणमस्तु ।।

(९) **पृथ्वीराज प्रतिमा [मामादेव के मंदिर के मंडप में]**

१. संवत् १५१६ वर्षे शाखे १३८२ प्रवर्तमाने–

२. श्री महाराजाधिराज श्रीकुंभकर्णेत श्री कुंभल [मेर महादुर्गे]

३. मामावटे पृथ्वीराजमूर्त्तिः संस्थापिताः

(१०) **पृथ्वी प्रतिमा [मामादेव के मंदिर के मंडप में]**

१. (सं)वत् १५१६ शाके १३८२ प्रवर्त्तमाने आश्विन् शुदि ३ ति ....

२. श्री महाराजाधिराज श्री कुंभकर्णेन श्री कुंभलमेरु म–

३. महादुर्गे मात्तुल वटे पृथ्वीमूर्तिः स्थापिता ।। शुभं भवतु ।।

(११) विष्णु प्रतिमा [मामादेव के मंदिर के मंडप में]

१. संवत् १५१६ वर्षे शाके १३८२
वर्त्तमाने आश्विनशुद्ध ३ श्री कुं...
भलमेरौ महाराज श्री कुंभकर्ण
न वटे विष्णुमूर्तिः संस्थापिता ।।
शुभं भवतु ।।

(१२) संकर्षण [उदयपुर संग्रहालय सं० ७१]

१. संवत् १५१६ वर्षे शाके १३८२ वर्त–
२. माने अ (आ) श्विन शुद्ध (दि) ३ श्रीकुम्भमेरु
३. महाराजश्रीकुंभकर्णेन वटे संक
४. र्षणमूर्त्तिः संस्थापिता (शु) भं (भवतु)

(१३) माधव [उदयपुर संग्रहालय सं० ७२]

१. संवत् १५१६वर्षे शाके १३८२ वर्तमा–
२. ने आश्विनशुद्ध (दि) ३ श्रीकुंभमेरौमहा–
३. राज श्रीकुंभकर्णेन वटे माधवमू–
४. र्त्ति संस्थापिता ।। शुभं भवतु ।।

(१४) मधु सूदन [उदयपुर संग्रहालय सं० ७३]

१. (संवत्) १५१६ वर्षे शाके १३८२
२. (—) माने अश्विन शुद्ध ३ श्री कुं–
३. ... रौ महाराज श्रीकुंभकर्ण (न)
४. .... वटे मधु सूदन मूर्त्तिः सं
५. स्थापिता ।।शुभं भवतु।।

कुंभलगढ़ प्रशस्ति में महाराणा कुंभा का वर्णन

(४थी शिला का अंश)

(३२) अथमहाराजाधिराजरायराया राणेरायमहाराणाश्रीकुंभकर्ण्ण वर्णनं मूलंधर्मतरोः फलं श्रुतवतां पुण्यस्यगेहं श्रियामाधारः सुगुणोत्करस्य जनिभूः सत्यस्य धामौजसः ।। (१) धैर्यस्या–

(३३) पि परावधिः प्रतिनिधिः कल्पद्रुमास्याखिलां वीरस्तत्तनयः प्रशास्ति जगतीं श्रीकुंभकर्ण्णोनृपः ॥२३३॥ समस्तदिङ्मंडललब्धवर्ण्णः स्फुरत्प्रतापाधारितार्क्कवर्ण्णः । स्वदानभूम्नाजितभोजकर्ण्णस्ततोमहीं रक्षति कुंभकर्ण्णः ॥२३४॥ उपास्य ज मन्त्रियते गजास्य कनीयसो मातरमेकशक्तेः । श्रीकुंभकर्ण्णोयम

(३४) लंभि साध्व्या सोभाग्यदेव्या तनयत्रिशक्तिः ॥२३५॥ अतः क्षितिभुजांमणेनिजकुल स्य चूडामणिः प्रसिद्धगुणसंभ्रमो जगति कुंभनामानृपः । प्रवीरमदभंजनः प्रमुदितः प्रजारंजनादजायत निजायतेक्षणजितेंदिरामंदिरः ॥२३६॥ वेदानुद्धृत्य पश्चाद्भुविमपि भुजयोस्तां विभर्ति क्षिणोति क्षुद्रान् बद्धा—

(३५) बलिद्विङ्बलमहिततरक्षत्रमुच्छाद्य हत्वा । रक्षोरूपारिमुर्वीभरनृपशमनः सुक्षमीम्लेच्छघाती जीयात् कुंभकर्ण्णो दशविधकृतिकृत् श्रीपतिः कोपिनव्य ॥२३७॥ लक्ष्मीशानंदकत्वात् त्रिभुवनरमणीचितसंमोहकत्वाल्लावण्यावासभूत्वाद्वपुरमलतया कुंभकर्ण्णो महीन्द्रः । कामं कामोस्तु सोस्त्रीकुरुत इहपरं

(३६) स्त्रीजनं जेतुकामः संग्रामेनेन साक्षात्क्रियत इतिनवं स्त्रीजनोस्त्रीजनोपि ॥२३८॥ विभ्राजते सकलभूवलयैकवीरः श्रीमेदपाटवसुधाद्धरणैक धीरः । यस्कैकलिंगनिजसेवक इत्युदारा कीर्तिप्रशास्तिरचलां सुरभीकरोति ॥२३६॥ एकलिंगनिलयं च खंडितं प्रोच्चतोरणलसन्मणिचक्र । भानुबिंब—

(३७) मिलितोच्चपताकं सुन्दरं पुनरकारयं नृ (यन्नृ) पः ॥२४०॥ मा भूत्क्षुभ्यदतुच्छदुग्धजलधिस्वच्छोच्छलद्वीचिरुक्तन्नः शत्कृतपूर्वपूरुषयशस्तंतसकुच [द्] वृतिमत् । इत्थं चारुविचार्य कुंभनृपतिस्तानेकलिंगेव्यधात्रम्यान् हेमदंडकलशांस्त्रैलोक्यशोभातिगान् ॥२४१॥ निः शंककाव्यसंदर्भे रणरंभे च निर्भ—

(३८) यः । विख्यातः कुंभकर्ण्णोयमिति निःशंक निर्भयः ॥२४२॥ व्रजतिविजययात्रां पत्रवित्रस्तशत्रौ हय खुरष (ख) र घातोत्खातधूलीनिलीनं । गगनतलममेशेषं वीक्ष्य संजातमोहो नयतिरविरथाश्वान् सारथिः साह-

सिक्यात् ॥२४३॥ श्रीचित्रकूटविभुरयमुन्नततरवारिशातितारातिः । गिरिजाचरणसरोरुहरो

(३६) लंबः कूंभभूपतिर्जयति ॥२४४॥ विख्यातकीर्तिगुहदत्तपुमाणशालिवाह-जयप्रभृतिभूपतिवंशरत्नं । श्रीक्षेत्रलक्षनृपमोकलभूमिपालसिंहासनं सफलयत्यवकुंभकर्णः ॥२४५॥ या नारदोयनगरावनि नायकस्य-नार्यानिरंतरमत्रोकरदत्रदास्यं । तां कुंभकर्णनृपतेरिह कः सहेत बाणावलीमसम–

(४०) संगरसंचरिणो: ॥२४६॥ योगिनीपुरमजेयमप्यसौ योगिनीचरणकिंक-रोनृपः । कुंतलाकलिनवैरिसुन्दरीविभ्रमैरमितविक्रमोग्रहीत् ॥२४७॥ अरिंदमः स्त्राद्रिसरोजलग्नं विशोध्यशोध्याधिपतिप्रतीपं । अहतुंदं-कंटकमिद्धतेजा भंक्त्वाक्षिपद्भूमितलेसशूच्या ॥२४८॥ येनवैरिकुलं हत्वा–

(४१) मंडोवरपुरगृहे । अनायिशांति रोषा [ग्नि] र्नागरीनयनांबुभिः ॥२४६॥ विगृह्य हम्मीरपुर शरोत्करैनिगृह्य तस्मिन् रणवीरविक्रमं । पर्यग्रही-दंबुजमंजुलोचना महीमहेन्द्रोनरपालकन्यका: ॥२५०॥ नानादिभ्यो [ग्भ्यौ] राजकन्याः समेत्य क्षोणीपालं कुंभकर्णंश्रयंते सत्यं रत्नं जायते सागरादौ–

(४२) युक्तं विष्णोर्वक्ष एवास्यधाम ॥२५१॥ आता: काश्चिद्धठेन प्रतिनृपति-भटान् दंडयित्वा कश्चित् काश्चिद्राजन्यवर्यैर्द्धनगजतुरगैः सार्द्धमानीय-दत्ताः । अन्याप्रोद्ध विधाटीबलकृतहरणाः प्रत्यहं राजकन्यानव्यानव्या-महीभृत्सुविधिपरिणयत्येष कामोनवीनः ॥२५२॥ स धा धान्य नग–

(४३) रमामूलदुदमूलयत् । पुरारिविक्रमोयागपुरं पुरमिवाजयत् ॥२५३॥ ज्वालावली वलयितां व्यतनोद्यवालीं मन्नीरवारमुदवीवहृदेषनीरं । यो वर्द्धमानगिरिमाशु विजित्य तस्मिन्मेदान्मंदमदबद्धविभीनधाक्षीत् ॥२५४॥ जवालीदवाली शिखावच्छीखालीसमालीढभालीकराली-प्रताली । गं–

(४४) भीराधंकारं क्षणाद्यस्य संख्येक्षिप्तमन्यैर्नयद्भूपदीपैः ॥२५५॥ जनकाचलमुच्चशेष (ख) रं बलवान्मालवनाथमस्तके । प्रबरंगिरिदुर्ग-

मुद्धतश्चरणंवामभिवन्यधादयं ।।२५६।। महोच्चजनकाचले निखिल-मालवक्ष्मापतेर्गलेपदमिवन्यधाद्मित विक्रमोभूपतिः । सरांशि जयवर्द्धने कृत पुरेपि यो

(४५) वर्द्धने महामहिमशेखरे विपुलवप्रमुग्रद्युतिः ।।२५७।। जनकाचलमग्रहीदलं महतीं चम्पावतीमतीततपत् । गिरिसुन्दरखोलखंडनावनि वज्रायुध एष भूपतिः ।।२५८।। प्रत्यर्थिपार्थिवपराजयजन्महेतु वृंदावतीपुरमदीदहदेषवीरः । तद्गर्गराटगिरिदुर्गमपिक्षणेन संक्षोभमाप यदपार पराक्रमेण ।।२५९।।

(४६) मल्लारण्यपुरं द (व) रेण्यमनलज्वालावलीढं व्यधाद्वीरः सिंहपुरीमबीभरदसिप्रध्वस्तवैरिव्रजैः । यत्नं रत्नपुरं प्रभंजनविद्यावाधाय धीमानतो नायं नायमनेक राजानिकरानकारागृहेवीवसत् ।।२६०।। पदातीनाँ पादलक्षं सपादलक्षनीवृतं । कृत्वा मल्लारणवीरोरणस्तंभं तथाजयत् ।।२६१।।

(४७) आम्रादिदलेनदारुणः कोटडाकलहकेलिकेशरी । कुंभकर्ण्णनृपतिर्बिंबावदोधूलनोद्धत भुजो विराजते ।।२६२।। नम्र नेकनृपालमौलिनिकरप्रत्युप्तहीरांकुर श्रेणीरश्मिमिलन्नखद्युतिभरः शत्रून् रणप्रांगणे । दीर्घांदोलितबाहुदंडविलसित्कोदंड दंडोल्ल [स] द्वाणास्तान्–

(४८) [विरच] य्य मंडलकरं दुर्गं क्षणेनाजयत् । जित्वादेशमनेक दुर्गविषमं हाडावटीं हेलया तन्नाथान् करदन्विधाय च जयस्तंभानुदस्तंभयत् । दुर्गं गोपुरमत्र षटपुरमपि प्रौढां च वृन्दावतीं श्रीमन्मण्डलदुर्गमुच्चविलसच्छालां विशालांपुरीं ।।२६४।। उत्खातमूलं सलिलैः प्रभजनइव द्रुमं ।

(४९) विशालनगरं राजा समूलमुदमूलयत् ।।२६५।। तन्नागरीनयन्न (न) नीर तरंगिणी नामंगीकृतं किमु समुत्तरणं तुरगैः । श्रीकुंभकर्ण्णनृपतिः प्रवितीर्णझंपैरालोडयद्गिरिपुरं यदभीभिरुग्रः ।।२६६।। यदीयगज्जद्गजतूर्यघोषसिंहस्वनाकर्ण्णननष्टशौर्यः । विहाय दुर्गं सहसापलायां चकार

संतताधिगतधर्मशासनेनावृकोदर इयं विचित्रता ।।१७०।।
श्रीभारतीयरससमुद्भवकैरवोद्यदुद्यान (नाय) कतमः समः स्यात् ।
श्रीकुंभकर्णजगतिपतिना नवीननिर्माणचारुमतिना विधिनेव साक्षात्
स्फूर्ज्जद्गुर्जरमालवेश्वर सुरत्राणारुसैन्यार्णव–
व्यस्ताव्यस्तसमस्तवारणानप्राग्भारकुंभोद्भवः ।
(औधत्य प्रथमान) प्रार्थिवरणप्रारंभदीक्षागुरु–
र्वण्यः कुंभमहीपतिर्वसुमतीविश्वेश्वरो राजते ।।१७२।।
अमंदमदसंभ्रमभ्रमितभृंगमालामिल–
त्कपोलतलवेल्लितः श्रवणतालवृंतानिलैः ।
रणापहृतकुंजरैरमित गूर्जराधीश्वरा–
·· भुजश्रमाः समिति कुंभभूमीभुजा ।।१७३।।
मेदपाटाब्धिसंजातरोहिणीरमणो नृपः ।
कस्य नो नयनानंदं तनुतेऽवनिमंडले ।।१७४।।
विमतभूधरकुंजरकेसरी, यवनसैन्यतृणौघदवानलः ।
अकलयत्कलिकालकदर्थना परवशं···मनो न मनागपि ।।१७६।।
प्रत्यर्थिपार्थिवतमोनिचयप्रचंडचंडद्युतिर्जयति यस्य भुजप्रतापः ।
सामंतभूपतिनितंबवतीविलास,
प्रोल्लासिसारसतुषारकरः शरोपि ।।१७६।।
समस्तीजगतितलप्रबलवैरिकंठाटवी
नवीनदहनोच्चयोधरणिमंडलाखंडलः।
कुरंगनयनामनः कुमुदवृंदशीतद्युतिः
प्रतापजितभानुमान् जयति कुंभकर्णोद्भुवं ।।१७७।।
हयेशहस्तीशनरेशराजत्रयोल्लसत्तोडरमल्लमुख्यं ।
विजित्य तानाजिषु कुंभकर्णमहीमहेन्द्रो विरुदं बिभर्त्ति ।।१७८।।
तौरुष्कवृजवाहिनीपरिलसत्पाथोधिवेलावलि–
व्यालीनावनिमुद्धरंतमवन्नाद्यं वराहं बुधाः ।
यं शीतांशुकलावतंससकलितप्राज्यप्रसादप्रभं
माद्य मालवमेदिनीश्वरमदछेदैकदीक्षागुरुं ।।१७६।।
यः मोकलभूपतेः समुदितः सौभाग्यभूपावपि

यं प्रासूतलसत्प्रतापतरणिं सौभाग्यदेवीसुतं
येनासाद्यगुरोः कलाश्चसकला दत्ता द्विजेभ्यो भुवं
भुंक्ते कुंभनरेश्वरः कुचभरा (भुग्ना) मिव प्रेयसीं ॥१८०॥
वेणीव्याजवलद्भुजंगललनालावण्यलीलालया
सौन्दर्यामृतदीर्घिकापरिलसन्नालीकनेत्रद्वया ।
कुंभारंभकुचद्वयोपरिचलन्नामुक्तमुक्ता च या
यस्यानंगकुतूहलकपदवीकुंभलदेवीप्रिया ॥१८१॥
सहस्रवदनो यदा वदति वीतवेद्यांतरः
सहस्रकरपल्लवो लिखति वेदविश्रांतधीः ।
अथस्फुरति भारतीक्वचनदेशिकेसौ यदा
गणयगुणसंततिर्भवति कुंभकर्णस्तदा ॥१८२॥
यावच्चंद्रदिवाकरौ हिमगिरिर्यावच्चहेमाचलो
यावत्सागरभूपणा वसुमती यावच्च सेतुर्महान् ।
तावत्तिष्ठतु कुंभकर्णनृपतिः कीर्तिप्रशस्तिस्तथा
नानाकारितकीर्तनानि सकला साम्राज्यलक्ष्मीरपि ॥१८३॥
वर्षे पंचदशे शते व्यपगते सप्ताधिकेकार्त्तिक-
स्याधानंगतिथौ नवीनविशिखां श्रीचित्रकूटे व्यधात्
उद्यत्तोरणचारुहीरनिकरस्फीतप्रभाभासुर-
प्रोदं चेत्कपिशीर्षकांकितशिरो रम्यां महीवल्लभः ॥१८४॥
श्रीविक्रमात् पंचदशाधिकेस्मिन् वर्षेशते पंचदशे व्यतीते
चैत्रासितेनंगतिथौ व्यधायि श्रीकुंभमेरुर्वसुधाधिपेन ॥१८५॥
पुण्ये पंचदशे शते व्यपगते पंचाधिकेवत्सरे
माघे मासि वलक्षपक्षदशमी देवज्यपुष्यागमे ।
कीर्त्तिस्तंभमकारयन्नरपतिः श्रीचित्रकूटाचले
नानानिर्मितनिर्जरावतरणैर्मेरोर्हसतं श्रियं ॥१८६॥
सत्प्राकारप्रकारं प्रचुरमृगगृहाडंबरं मंजुगुंज-
द्भृंगश्रेणीवरेण्योयवनपरिसरं सर्वसंसारसारं ।
नंदव्योमेषु शीतद्युतिमिति रुचिरे वत्सरे माद्यमासे
पूर्णायांपूर्णरूपं व्यरचदचलंदुर्गमुर्वीमहेन्द्रः ॥१८७॥

अत्रिस्तत्तनयो नयैकनिलयोज्ञानीवेदान्तस्थिति–
र्मीमांसारसमांसुलातुलमतिः साहित्यसौहित्यवान्
रम्यां सूक्तिसुधासमुद्रलहरीं सामिप्रशस्तिं व्यधात्
श्रीमत्कुंभमहीमहेंद्रचरिताविष्कारिवाक्योत्तरां ॥१६०॥
येनाप्तं मदगंधसिंधुरयुगं श्रीकुंभभूमीपतेः
सच्चामीकरचारुचामरयुगच्छत्रं शशांकोज्ज्वलं
तेनात्रेस्तनयेन नव्यरचना रम्याः प्रशस्ति कृता
पूर्णापूर्णतरं महेशकविना सूक्तैः सुधास्यन्दिनी ॥१६१॥
अत्रेः सूनुदर्शनांभोज भानुवीक्षं श्रेणीवाक्यवल्लीकृशानुः।
एतां पूर्णा श्रीमहेशोति पूर्णो निर्माति सनाति प्रशस्तां प्रशस्ति ॥१६२॥

परिशिष्ट संख्या १

मेवाड के राजाओं का वंश वृत्त

गुहिल से लेकर कुंभा तक

१. गुहिल
२. भोज
३. महेन्द्र
४. नागादित्य
५. शीलादित्य
६. अपराजित
७. महेन्द्र II
८. कालभोज (बाप्पा)
९. खुम्माण
१०. मत्तट
११. भर्तृपट्ट
१२. सिंह
१३. खुम्माण II
१४. महायक
१५. खुमाण III
१६. भतृपट्ट II (वि० सं० ९९९–१००१)
१७. अल्लट (१००८, १०१०)
१८. नरवाहन १०२८
१९. शालिवाहन
२०. शक्तिकुमार
२१. अम्बाप्रसाद
२२. शुचिवर्मा
२३. नरवर्मा

२४. कीर्तिवर्मा
२५. योगराज
२६. बैरठ
२७. हंसपाल
२८. वैरिसिंह
२९. विजयसिंह
३०. अरिसिंह
३१. चोड़सिंह
३२. विक्रमसिंह
३३. रणसिंह

३४. क्षेमसिंह (रावल शाखा)

३५. सामंतसिंह — डूंगरपुर को गया लेकिन वंश नहीं चला

३६. कुमारसिंह
३७. मथनसिंह
३८. पद्मसिंह
३९. जैत्रसिंह
४०. तेजसिंह
४१. समरसिंह
४२. रत्नसिंह (शिशोदा शाखा) का
४३. हमीर (अरिसिंह का पुत्र)
४४. खेता
४५. लाखा
४६. मोकल
४७. कुंभा

राणा शाखा (शीशोदा)

(१) राहप
(२) राहप
(३) नरपति
(४) दिनकर
(५) जसकरण
(६) नागपाल
(७) पूर्णपाल
(९) भुवनसिंह
(१०) भीमसिंह
(११) जयतसिंह
(१२) लक्ष्मसिंह
(१३) अजयसिंह
(१४) अरिसिंह

परिशिष्ट संख्या २

कुंभा के बिरुद

मेवाड़ के राजाओं के कई शिलालेख अब तक प्रकाशित हो चुके हैं इनमें राजाओं के लिये कई बिरुद प्रयुक्त हुये हैं। वि० सं० ७०३ के सामोली के लेख में शीलादित्य के लिये "श्रीशीलादित्यो नरपतिः स्वकुलाम्बरचन्द्रमा" प्रयुक्त हुआ है। अपराजित के कुण्डा ग्राम के बि० सं० ७१८ के लेख में "राजा श्रीगुहिलान्वयामलपयो–राशौ स्फुरद्दीधिति ध्वस्तध्वान्तसमूहदुष्टसकलव्यालावलेपान्तकृतश्रीमानित्यपराजितः क्षितिभृतामभ्यर्चितोमूर्धभिवृ त्तस्वच्छतयैवकौस्तुममणिर्जातो जगद्भूषणं" वर्णित है। डबोक से प्राप्त धवलप्पदेव के लेख में उसे (जो गुहिलवंशी नहीं था)—"परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर" कहा है किन्तु मेबाड़ के राजाओं के किसी अन्य लेख में ये विरुद प्रयुक्त नहीं है। प्रतापगढ़ के वि० सं० ९९९ के भर्तृपट्ट के लेख में उसके लिये "समस्तराजावलिपूर्वमग्रे (द्ये) ह महाराजाधिराज" बिरुद प्रयुक्त किया है। सारणेश्वर के लेख में अल्लट के आगे "मेदनिपति" ही वर्णित किया है। आटपुर के लेख में नरवाहन का वर्णन बड़े ही गोरव पूर्ण ढंग से कर रखा है।

१३वीं शताब्दी में लिखी पाक्षिक वृति की प्रशस्ति महारावल तेजसिंह के लिये "महाराजाधिराज भगन्नारायणदक्षिणउत्तराधीशमानमर्दन" आदि लिखा है। रावलसमर-सिंह के लेखों में भी "श्रीचित्रकूटमेदपाटधिपति" वर्णित है।

करेड़ा के जैन मंदिर के विज्ञप्ति-लेख में महाराणा खेता के इसी प्रकार कई बिरुद प्रयुक्त किये गये है।

श्री ओझा ने कुंभा के बिरुद महाराजाधिराज, रायराय, राणेराय, राजगुरु, दानगुरु, शैलगुरु, परमगुरु, चापगुरु, तोडुरमल्ल, अभिनव भरताचार्य और हिन्दू सुरत्ताण बतलाये हैं। हिन्दू सुरत्ताण का उल्लेख राणकपुर के १४९६ के लेख में ही है अन्यत्र नहीं। कुंभलगढ़ प्रशस्ति की ४थी शिला की ३२वीं पंक्ति में जहां कुंभा का वर्णन प्रारम्भ होता है वहां कुंभा के लिए महाराधिराज, रायराया, राणेराय महाराणा" प्रयुक्त हुए हैं। सम्भवतः ये शब्द बिरुद के रूप मे न होकर केवल मात्र राजाओं के विशेषण रूप में प्रयुक्त होते हैं। कवि लोग प्रायः इस प्रकार के विशेषण लगा देते हैं। राजगुरु, दानगुरु और शैलगुरु शब्द कीर्ति स्तम्भ की प्रशस्ति एवं संगीतराज की प्रशस्ति

में भी वर्णित है। राजगुरु शब्द का अर्थ संभवत: सर्व राजाओं में श्रेष्ठ है। दानगुरु का अर्थ अत्यन्त दान शील है। भरताचार्य शब्द से नाट्य शास्त्र का ज्ञाता होने का संकेत मिलता है। संगीतराज में रस निष्पति सम्बन्धी विस्तृत वर्णन किया है। यद्यपि संगीत का क्षेत्र "गीतवाद्यरागादि" ही है किन्तु रस निष्पति सम्बन्धी वर्णन करने से कुंभा के भरत के सम्बन्धी अपने दृष्टिकोण का पता चलता है। रसिक प्रियाटीका को प्रारम्भ करते समय भरताचार्य की स्तुति की है। तोडुरमल्ल "गंगादास प्रतापविलास" में भी प्रयुक्त हो रहा है। इसी भाव को संगीतराज की प्रशस्ति में भी व्यक्त किया है। इसमें "गजनरतुरगाधीशराजत्रियतोडुरमल्लेन" लिखा है। इसी भावको कीर्तिस्तम्भ की प्रशस्ति में अधिक स्पष्ट किया है। इसके अतिरिक्त संगीतराज में कुंभा के लिए कई शब्द बिरुद के रूप में प्रयोगित हुये हैं। इनकी विस्तृत सूची डा० प्रेमलता शर्मा ने दी है। सगीतराज में दिये गये बिरुदों में कुछ इस प्रकार हैं—

(१) सरस्वतीरससमुद्भूतकैरवोद्याननायक:। कीर्तिस्तम्भप्रशस्ति के श्लोक संख्या १७१ में "श्रीभारतीरससमुद्भवकैरवोद्यदुद्यान [नाय] कतम: समस्यात्" के अनुरुप है।

(२) मालवाम्भोधिनाथमन्थमहीधर:। कालसेन वाली प्रतियों में प्राय: मालव के स्थान पर गुर्जर शब्द है। अतएव यहाँ भी गुर्जराम्भोधि शब्द अंकित है। कीर्तिस्तम्भ प्रशस्ति के श्लोक संख्या १७ में "श्रीकुंभो मालवाँभोधिनाथमथलु महीधर:" शब्द भी इसी भाव के वाचक हैं।

(३) "योगिनीप्रासादसादितयोगिनीपुर:। पुरातत्व मंदिर जोधपुर में संग्रहित रसिकप्रियाटीका की मेवाड़ी टीका में "योगीणी भणिये महामाया तेहनो प्रासाद पाम्यो योगिनीपुर जाउर" लिखा है। कुंभा ने जावर को विजय करके माताजी का मंदिर बनवाया था। कुंभलगढ़ प्रशस्ति के श्लोक २४७ में "योगिनीपुरमजेयमप्यसौ योगिनी चरणकिंकरो नृप:" अंकित है।

(४) मण्डलदुर्गोद्धररणोद्धतसकलमण्डलाधीश्वर:। काल सेन वाली प्रति में यह बिरुद नहीं है। कालसेन वाली प्रतियां में "अगस्तिपुरनिरस्तसमस्तवैरिवर्ग" वाला बिरुद इसके अनुरूप कहा जा सकता है। कुंभलगढ़ प्रशस्ति के श्लोक सं० २६३ और २६४ में माण्डलगढ़विजय का उल्लेख है।

(५) अजयमेरुजयाजयविभवत:—राणकपुर प्रशस्ति के लेख में अजमेर विजय का उल्लेख है। संगीतराज के पाठ्यरत्नकोश कुंभकर्ण वाली प्रति में "जित्वावाजयमेरुदुर्गसहितं नागसरन्नाङ्गदम्" वर्णित है।

(६) यवनकुलाकालकालरात्रिरुप:—यवनों के साथ निरन्तर युद्ध करने का प्रतीक है।

(७) "शाकम्भरीरमणपरिशीलनपरिप्राप्तशाकम्भरीतोषितशाकम्भरीप्रमुखशक्तित्रय:"। रसिक प्रियाटीका की प्रशस्ति में यह उल्लेखित नहीं है। कालसेन वाली प्रतियों में अवश्य है।

(८) नागपुरोद्धूलनधर्षितनागपुर:।—नागपुरविजय का उल्लेख कीर्तिस्तम्भ प्रशस्ति के श्लोक संख्या १८ से २३ में है। पाठ्यरत्नकोश की कुंभा वाली प्रति में "जित्वा नागपुरं बलादथहृता शाकम्भरीहेलया" पाठ है।

(९) गुर्जराधीशधीरत्वोन्मूलनप्रचण्डपवन:। कालसेन वाली प्रतियों में गुर्जराधीश के साथ-साथ मोहम्मद सुल्तान और जोड़ा हुआ है। राणकपुर के लेख में इसके विपरीत गुर्जर सुल्तान और दिल्ली के बादशाह द्वारा कुंभा को "हिन्दु-सुरत्ताण" बिरुद देना वर्णित है।

(१०) "श्रीमत्कुंभलमेरुनवीननिर्मितपराजितसुमेरु"। कुंभलगढ़ दुर्ग वि० सं० १५१५ में बनकर पूरा हुआ था। संगीतराज वि० सं० १५०९ में ही। अमरकाव्य के अनुसार वि० सं० १४९५ से ही कुंभलगढ़ दुर्ग का निर्माण शुरू हो गया था। इसका पहला नाम "माहौर–दुर्ग" था।

(११) श्रीचित्रकूटभौमस्वर्गतयार्थीकरणचारुतरपथ:।—कालसेन वाली प्रतियों में चित्रकूट के स्थान पर ब्रह्मशैल शब्द अंकित है। कीर्तिस्तम्भ प्रशस्ति में "भव्यां सद्रथ-पद्धतिं जनसुखायाचूलमूलं व्यधात्" शब्द इसी के सूचक हैं।

(१२) मेदपाटसमुद्रसंभवरोहिणीरमण:—कीर्तिस्तम्भ प्रशस्ति के श्लोक संख्या १७४ में "मेदपाटाब्धि संजात रोहिणी रमणोनृप:। बिरुद उल्लेखित है। कालसेन वाली प्रति में मेदपाट के स्थान पर त्रिसंध्यक्षेत्र वर्णित है।

(१३) आरिराजमतमातंगपंचानन:। दक्षिण द्वार की प्रशस्ति में यह बिरुद खेता के लिए प्रयुक्त हुआ है"। तीण रो पुत्र अरिराजमत मातंग पंचानन खेतो हुओ ·"

(१४) प्ररूढ़पत्रयवनदबदहनदावानल:। "कीर्तिस्तम्भ प्रशस्ति का 'यवनसैन्य तृणौघद-वानल:" बिरुद इसी का सूचक है।

(१५) प्रत्यर्थिपृथिवीपतितिमिरततिनिराकरणप्रौढप्रतापमार्तण्ड:। कीर्तिस्तम्भ प्रशस्ति का यह पद" प्रत्यर्थिपार्थिव तमोनिचय प्रचंडचंडद्युतिर्जयति यस्य भुजप्रताप:" इस सम्बन्ध में उल्लेखित है।

(१६) वैरिवनितावैधव्यदीक्षादानदक्षोद्दण्डकोदण्डदण्डमण्डिताखण्डभुजा दण्डेनभूमण्डल-खण्डल:—कीर्तिस्तम्भ प्रशस्ति के श्लोक १६९ के अनुरुप है।

(१७) अध्युष्टतमनरेश्वर:।-कीर्तिस्तम्भ प्रशस्ति केश्लोक सं० १४९ का भाव इसी के अनुरुप है।

शिलालेखों में दिये गये विरुद

(१) कुलकाननपंचाननः ।

(२) निजभुजोर्जितसमुर्जितानेकभद्रगजेन्द्रः ।

(३) म्लेच्छमहीपालव्यालविदलनविहगमेंद्रः ।

(४) प्रचडदोर्दडखंडिताभिनिवेशनानादेशनरेशभालमालाललितपादारविंद ।

(५) अस्खलितललितलक्ष्मीविलासगोविंदः

(६) कुननगहनगहनदहनदावानलायमानप्रतापव्यापलायमानः ।

(७) प्रबलपराक्रमक्रमांतढ़िल्लीमंडलगुर्जरत्रासुरत्रणदत्तातपत्रप्रथिहिन्दुसुरत्राणबिरूदः ।

(८) सुवर्णसत्रागारः

(९) षड़दर्शनधर्माधरः

(१०) चतुरंगवाहिनीपाराधारः

(११) कीर्तिधर्मप्रजापालनसत्वादिगुणक्रियमाणश्रीरामयुधिष्ठिरादिनरेश्वरानुकारः

कीर्ति स्तंभ प्रशस्ति में इसी प्रकार कई विरूद दिये हैं जोउल्लेखनीय है

(१) भार्गवः (श्लोक १५१)

(२) हिन्दूकराजगजनायकः (१५२)

(३) विऽणुरिवावतीर्णः

(४) आद्यवराहः

इन सब विरुदों में कुंभा की अद्वितीय शक्ति का वर्णन किया गया है। कही २ कुंभा को "जलश" उपनाम भी दिया गया हैं। एक लिंग माहत्म्य स्तुति वाले भाग में जगह २ कलश शब्द प्रयुक्त हुआ हैं। कुंभलढ़ के लिए भी कलश मेरु शब्द प्रकार उल्लेखित किया गया है।

———

परिशिष्ट सं० ३

भीलजाति

मेवाड़ के इतिहास में भीलों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। ऐस प्रतीत होता है कि महाराणा हमीर ने इन्हें जीत कर अपने आधीन बनाया था। शृंगी ऋषि के वि०स० १४८५ के लेख में वर्णित है कि हमीर ने भीलों आदि को जीत कर अपने आधीन किया। १५वीं शताब्दी के प्रारम्भ से भील एक उल्लेखनीय जाति के रुप में प्रकट होती है। वि०स० १४८५ में लिखित प्रद्युम्न चरित्र से पता चलता है कि इन्हें यात्रियों से कर लेने का अधिकार था। इसमें एक रोचक वृतान्त दिया हुआ है कि प्रद्युम्न ने भील का वेष बनाकर मार्ग में जाति हुई राजकुमारी से शुल्क मांगा जब उसने देने से इन्कार किया तो यह कहा कि इस पर उसका अधिकार है। (पद सं० ३०० से ३०३)। वि०सं० १४११ में लिखित श्रावकनावार व्रत कथाओं में भीलों के तीर बाण लेकर जंगल में निवास करने का उल्लेख है [तेह नइ पाइलागु भीलु एकु धनुष्कि चढाविइ सरि सांधिइ आविइ] कीर्ति स्तम्भ में भील की मूर्ति बनी हुई है। रत्न मन्दिर गणि ने उपदेश तरगिणी में भीलों का अच्छा वर्णन किया है। इनकी सैनिक शक्ति भी बढ़ी हुई थी। वि०सं० १५३० के डूंगरपुर के लेख में भीलों का प्राण त्याग उल्लेखनीय है। फारसी तवारीखों में कुंभा के समय भीलों का सहायता देना वर्णित है।

ऐसा प्रतीत होता है कि कुंभा ने इनकी नियुक्ति सीमाओं की रक्षा के लिये भी की थी। फारसी तवारीखों में इनके साथ संघर्ष का कई बार उल्लेख आया है।

साधन सामग्री

(अ) प्रमुख साधन सामग्री

(१) कुम्भा के ग्रन्थ—

संगीतराज—(सरस्वती भवन उदयपुर ह० लि० प्र० सं० १४७२ एवं १८०५]

,, भाग १ डा० प्रेमलता द्वारा सम्पादित

,, (पाठ्यरत्नकोश) डा० कुन्हनराज द्वारा सम्पादित

पाठ्यरत्न कोश—[प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर से शीघ्र प्रकाशित होने वाला है]

नृत्यरत्न कोश भाग १—[उक्त संस्थान द्वारा प्रकाशित]

,, भाग २— ,, ,, केवल कुछ पृष्ठ ही

गीत गोविन्द की रसिक प्रिया टीका—[श्री मंगेश रामकृष्ण तैलंग एवं वासुदेव लक्ष्मण शास्त्री द्वारा सम्पादित]

चंडी शतक—[प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर की ह० प्र० सं० १७३७६]

कामराज रतिसार—(श्री जावलिया के संग्रह की ह० प्र०)

गीतगोविन्द की मेवाड़ी टीका—(सरस्वती भवन की ह० प्र० सं० २५६५-६४)

,, ,, (प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर की ह० प्र० सं० २३५२५)

(२) सूत्रधार मंडन के ग्रन्थ—

प्रासाद मंडन—मूल पाठ कलकत्ता से प्रकाशित पं० भगवानदासजी द्वारा गुजराती हिन्दी अनुवाद वाली प्रतियां

राज वल्लभ मडन—श्री नारायण यशवन्त भारती द्वारा गुजराती अनुवाद

,, सरस्वती भवन की ह० प्र० सं० १५६२

,, पं० भगवानदासजी की ह० प्र०

रूप मंडन—श्री बलराम श्री वास्तव द्वारा सम्पादित

,, देवता मूर्ति प्रकरण के सहित उपेन्द्र मोहन देव शर्मा द्वारा सम्पादित

वास्तु मंडन—जैन ज्ञान मन्दिर बड़ोदा की प्रति सं० १३११

(३) अन्य समसामयिक ग्रन्थ—

कन्हव्यास—एकलिंग माहात्म्य—(सरस्वती भवन की ह० प्र० सं० १४७७ एवं १४७८)

,, ,, (पं० कृष्णचन्द्र शास्त्री की प्रति)

नाथा सूत्रधार—वास्तु मंजरी—(पं० भगवानदासजी की ह० प्र०)

पद्मनाभ—कान्हडदे प्रबन्ध—(प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान द्वारा प्रकाशित)

प्रतिष्ठा सोम—सोम सोभाग्य काव्य—(भावनगर से प्रकाशित)

माणिक्य सुन्दर गणि—पृथ्वीचन्द्र चरित्र

मुनिसुन्दर—अध्यात्म्य कल्पद्रुम—(गुजराती और हिन्दी अनुवाद)

मेहकवि—राणकपुर स्तवन (ह० प्र०)

,, तीर्थमाला स्तवन ,,

शिवदास गाड़ण—अचलदास खींची की वचनिका (सार्दूल रिचर्स इन्स्टीट्युट बीकानेर)

सोमसुन्दर सूरि— उपदेश बालावबोध—प्राचीन गुजराती गद्य संदर्भ में दिये गये अंश)

योगशास्त्र बालावबोध ,, ,,

(४) कुछ पश्चात्कालीन ग्रन्थ—

अमरकाव्य—(सरस्वती भवन उदयपुर की ह० प्र० सं० १६६१, १६४२ एवं १४६३)

एकलिंग पुराण— ,, ,, ३८२)

गीतसंग्रह— ,, ,, ७१७)

राजरत्नाकर ,, ,, ७१७, ६०७ एवं ६०६)

राजप्रकाश ,, ,, ३५५)

रावल राणाजी री बात ,, ,, ८७६)

राज विनोद काव्य—(प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान द्वारा प्रकाशित)

वंशावलिया—(उदयपुर संग्रहालय ४०७ ८७८, ६०७, ८६७, ८७२)

गुरु गुण रत्नाकर काव्य—(काशी से प्रकाशित)

शत्रुञ्जय तीर्थोद्धार प्रबन्ध—(भावनगर से प्रकाशित)

राणारासो—(विद्यापीठ उदयपुर की ह० प्र० सं० २४)

संस्कृत ग्रन्थ

कुमारपाल चरित—(जयसिंह सूरि) कान्ति विजयजी द्वारा सम्पादित

कीर्ति कौमुदी—(सोमेश्वर) ए० वी० कथावाटे द्वारा सम्पादित

खरतरगच्छ पट्टावली—(सिंघवी जैन ग्रंथ माला)

चतुर्विशति प्रबन्ध—(उपरोक्त)

नाभिनन्दन जिनोद्धार प्रबन्ध—

पुरातन प्रबन्ध संग्रह—(सिंघवी जैन ग्रंथ माला)

प्रबन्ध चिन्तामणि—(उपरोक्त)

पृथ्वीराज विजय—(गोरीशंकर हीराचन्द ओझा और चंद्रधर शर्मा द्वारा सम्पादित)

विष्णु पुराण—(गीता प्रेस गोरखपुर)

विज्ञप्ति महालेख—(सिंघवी जैन सिरीज)

हमीर मद मर्दन—(जयसिंह सूरि गायकवाड़ ओरियण्टल सिरीज)

फारसी

अबुल फजल—आइने अकबरी (ब्लोच मेन का अनुवाद)
एवं अकबरनामा (बेवरीज का अनुवाद)

अमीर खुसरो—खजाइन उल फतुह (अलीगढ़)

निजामुद्दीन अहमद—तबकात-इ-अकबरी (प्रथम भाग बी डे० का अनुवाद भाग ३
हिदायत हुसेन मूल और बेनी प्रसाद का अनुवाद)

फिरिश्ता महम्मुद कासिम हिन्दूशाह—तारीख-इ-फरिश्ता (बिग्ज का अनुवाद)

बर्नी—तारीख-इ-फिरोजशाही कलकत्ता से प्रकाशित (इलियट डोनसेन का अनुवाद)

शैख सिकन्दर—मिरातइ सिकन्दरी (सतीश सी मिश्रा द्वारा सम्पादित फरीदी का अंग्रेजी
अनुवाद

अरबी

अब्दुल मोहम्मद बिन ओमर अली मक्की अल असफी—जफर-उल-वालिया (हिन्दी अनुवाद
रिजवी द्वारा)

अंग्रेजी की मुख्य पुस्तकें

Banerji A. C.—Rajput studies

Day U. N.—Medieval Malawa

Mishra S. C. Rise of Muslim power in Gujarat,

Majumdar, Delhi Sultanate

Dashrath Shsrma—Early Chauhan dynasties

Elliot H. M. Dounson J. History of India as told by its Historians vol IV and V

Haig. Sir, wolseley—The Cambridge History of India vol III

Fergussion James—History of Indian and Eastern Architecture

Panbey A. B.—The first Afghan Empire in India

Lal K. S.—Alauddin Khilji

Ray H. C.—The dynastic Histories of Northen India vol II

Rai Chouddary G. C.—Early History of Mewar

Sharada H. B. Maharana Kumbha. (second ed.)

Sharma G.N.—Mewar and Mughal Emprors

Sha-U. P.—Studies in Jain Art

Shri Vastava A.L.—Delhi sultanate

Sitaram—History of Sirohi State

Tod James—Annals and Antiquities of Rajasthan vol I and II

मुख्य हिन्दी ग्रन्थ

आसोपा रामकर्ण—मारवाड़ का मूल इतिहास

ओझा—उदयपुर राज्य का इतिहास भाग १ एवं २
जोधपुर राज्य का इतिहास भाग १
सिरोही राज्य का इतिहास
प्रतापगढ़ राज्य का इतिहास
डूंगरपुर राज्य का इतिहास

ओझा—ओझा निबन्ध संग्रह भाग १ से ४

कासलीवाल—प्रशस्ति संग्रह

गेहलोत—राजपूताने का इतिहास भाग १ और २

जयन्त विजय—अर्बुद प्राचीन जैन लेख संदोह

जयकुमार जैन—कला मंदिर राणकपुर

जिन विजय—जैन पुस्तक प्रशस्ति संग्रह भाग १

जिन विजय—प्राचीन गुजराती गद्य संदर्भ

दौलतसिंह लोढ़ा—प्राग्वाट इतिहास

मथुरालाल शर्मा—कोटा राज्य का इतिहास भाग १

पूर्णचन्द नाहर—प्राचीन जैन लेख संग्रह भाग १ और २

रेऊ—मारवाड़ का इतिहास भाग १ और २

विजय धर्म सूरि—देवकुल पाटक

विजय धर्म सूरि—जैन लेख संग्रह

श्यामलदास—वीर विनोद भाग १ से ४

हनुमान शर्मा—नाथावतों का इतिहास

रिपोर्टस् पत्र-पत्रिकाएं

आर्कियो लोजिकल सर्वे रिपोर्टस आफ इंडिया सन् १८७२-७३, १८८३-८४ एवं १९०७-८

राजपुताना म्युज़ियम रिपोर्टस अजमेर के प्रतिवेदन—(विशेष रूप से १९१७, १९१८, १९२१, १९२२, १९२४, और १९२६)

इंडियन एन्टिक्वेरी

एपिग्राफिआ इंडिका

आर्कियोलोजिकल सर्वे आफ वेस्टर्न इंडिया

वरदा—(बिसाऊ से प्रकाशित)

राजस्थान भारती—(बीकानेर से प्रकाशित विशेष रूप से इसका कुंभा विशेषांक बहुत ही उपयोगी है)

शोधपत्रिका—(उदयपुर)

मरु भारती—(पिलानी)

कुंभा संगीत समारोह की स्मारिकाएं

शिलालेख

(अ) पूर्वार्द्ध

नान्दशा का वि० सं० २८२ का शिलालेख (ए० इ० भाग २७ में प्रकाशित)

नगरी का वि०सं० ४८१ का लेख (वरदा वर्ष ५ में प्रकाशित)

छोटी सादड़ी का वि०सं० ५४७ का लेख (ए० इ० भाग ३४ में प्रकाशित)

मानमोरी के ७७० वि० के लेख (टॉड द्वारा अनुदित एवं एक अन्य लेख राजस्थान भारती में प्रकाशित)

कुक्कडेश्वर का ८११ का लेख (टॉड द्वारा अनुदित)

धौड के लेख (वरदा वर्ष ८ में प्रकाशित)

कुमारपाल का १२०७ का लेख— (ए० इ० भाग २ में प्रकाशित)

तेजसिंह का वि०सं० १३१७ का (लेख इंडियन हिस्टोरिकल क्वाटरली १९६१ में प्रकाशित)

तेजसिंह के १३२२ एवं १३२४ के लेख (वरदा में प्रकाशित)

चीरवा का १३३० का लेख (ए० इ० भाग २४ में प्रकाशित)

समरसिंह का १३३१ का लेख (वीर विनोद में प्रकाशित)

आबू का १३४२ का लेख (उक्त)

समरसिंह का वि० स० १३५८ का लेख (वरदा वर्ष ९ अंक १ में प्रकाशित)

चित्तौड़ के अल्लाउद्दीन और तुगलक शाह के समय के लेख (अजमेर म्युजियम रिपोर्टस में अनुदित)

करेड़ा मन्दिर का विज्ञप्ति लेख वि० १४३१

शृंगी ऋषि का लेख वि० सं० १४८५ (ए० इ० भाग २४ में प्रकाशित)

चित्तौड़ का १४८५ का लेख (ए० इ० भाग २ में प्रकाशित)

(ब) कुम्भा के शिलालेख

तिथी	स्थान	प्रकाशन
१४९० वैशाख वदि ११	पदराड़ा	राजस्थान भारती मार्च १९६३ पृ० ७६
१४९१ कार्तिक शुक्ला २ सोमवार	देलवाड़ा यतिजी के पास	नाहर जैन लेख संग्रह भाग २ पृ० २५५-५६ विजय धर्म सूरि-देव कुल पाटक पृ० ३३-३४
१४९१ माह वदि ५	आदिनाथ मंदिर देलवाड़ा	विजय धर्म सूरि-देवकुल पाटक पृ २३ एवं प्राचीन लेख संग्रह पृ० ४५
१४९१ माह सुदि ५ ,,	पार्श्वनाथ मंदिर देलवाड़ा आचार्य की मूर्तिपर	उपरोक्त क्रमशः पृ० २२ एवं ४४ नाहर जैन लेख संग्रह ले० सं० १९७७
१४९२ पोष वदि १३	मांडल के ऋषभदेव के मन्दिर में धातु प्रतिमा लेख	विजय धर्म सूरि-प्राचीन लेख संग्रह पृ० ४५
१४९३ वैशाख वदि ५	पार्श्वनाथ मंदिर देलवाड़ा में काले पत्थर पर	उपरोक्त पृ० ४७ एवं देव कुल पाटक पृ० २९-३०
१४९४ माघ सुदि ११ गुरुवार	नागदा शांति नाथ की मूर्ति पर (अदभुतजी)	विजय धर्म सूरि देवकुल पाटक पृ० २५ पीटरसन भावनगर इन्स० पृ० ११२ नाहर जैन लेख संग्रह पृ० २४३-४४

१४९४ फाल्गुण वदि ५	देलवाड़ा (चोबीसी पर)	विजयधर्मसूरि—देवकुलपाटक पृ० १३-१४
१४९४ आषाढ वदि अमावस्या	मांदिया का दानपत्र	अप्रकाशित/ओझा उ० इ० पृ० २८४ में कुछ अंश दिया है।
१४९४	देलवाड़ा पार्श्वनाथ मंदिर में मूलनायक प्रतिमा पर	देवकुलपाटक पृ० १५
१४९५ माघ सुदि १५	लाखा का गुड़ा के मंदिर में	उ० इ० पृ० २४३
१४९५ जेठ सुदि १४	देलवाड़ा पार्श्वनाथ मंदिर	देवकुल पाटक पृ० २४
१४९५ जेठ सुदि १४	उदयपुर शीतलनाथ मंदिर में धातु प्रतिमा पर	विजय धर्मसूरि–प्राचीन लेख संग्रह पृ० ५०
वि० १४९५	महावीर जैन मंदिर चित्तौड़	ज० ब० ब्रा० रा० सो० भाग २३ पृ० ४१
१४९६	राणकपुर जैन मंदिर की प्रशस्ति	आ० स० रि० वर्ष १९०७-८ पृ० २१ पीटरसन-भावनगर इन्स० पृ० ११
१४९६ जेठ सुदि ३ बुधवार	करेड़ा पार्श्वनाथ मंदिर का लेख	विजय धर्मसूरि-प्राचीनलेखसंग्रह पृ० ५०
१४९६ जेठ सुदि १०	सादडी (गोड़वाड़) के जैन मंदिर की धातु प्रतिमा का लेख	उपरोक्त
वि० सं० १४९७	नागदा	आ० स० वे० इ० वर्ष १९०५-६ पृ० ६३
१४९८ माघ सुदि ४	मांडल के वासुपुज्य मन्दिर की धातु प्रतिमा	जैन लेख संग्रह पृ० ५१
१४९८ फाल्गुण वदि ५	राणकपुर मन्दिर के प्रथम मंजिल की मूलनायक प्रतिमा का लेख	(अप्रकाशित)
१४९९ माघ सुदि ५	मांडल के पार्श्वनाथ मंदिर की धातु प्रतिमा का लेख	प्राचीन लेख संग्रह पृ० ५२
१४९९ फाल्गुण वदि २	मांडल के शांतिनाथ मंदिर का धातु प्रतिमा का लेख	वही

१४६६ फाल्गुण सुदि ५	कीर्ति स्तम्भ चित्तौड़	राजपुताना म्यूजियम रिपोर्ट्स १९२०-२१ पृ० ४
१५०० माघ सुदि ५	कड़िया	वरदा वर्ष ६ अंक ३
१५०१ माघ सुदि १३ गुरुवार	मांडल शांतिनाथ मंदिर धातु प्रतिमा का लेख	प्राचीन लेख संग्रह पृ० ५३
१५०१ माघ वदि ५ गुरुवार	उदयपुर गौड़ी पार्श्वनाथ मंदिर की धातु प्रतिमा का लेख	वही
१५०२ श्रावण सुदि ५	एकलिंगजी का लेख	अप्रकाशित (मूल पाठ इसमें दिया हुआ है।)
१५०३ आषाढ़ सुदि ७	आदिनाथ मंदिर देलवाड़ा की एक मूर्ति पर	प्राचीन लेख संग्रह पृ० ५९ देवकुल पाटक पृ० १७
१५०३ आषाढ़ सुदि ७	पार्श्वनाथ मंदिर देलवाड़ा के अतीत, अनागत वर्तमान तीर्थङ्करों के पट्ट पर	वही क्रमशः पृ० ५९ एवं १५ नाहर जैन लेखसंग्रह भाग २ पृ० २४८
वि० सं० १५०३	करेड़ा श्रेयांस नाथ की मूर्ति पर	नाहर जैन लेख संग्रह भाग २ पृ० २३७
१५०४ फाल्गुण सुदि ८	मांडल के पार्श्वनाथ मंदिर की धातु प्रतिमा का लेख	प्राचीन लेख संग्रह पृ० ६९
१५०४ बैशाख सुदि ६	उदयपुर के गौड़ी भंडार की प्रतिमा का लेख	प्राचीन लेख संग्रह पृ० ६०
१५०५ मार्गशीर्ष पूर्णिमा	चित्तौड़ के कुंभश्याम के मंदिर में मूर्तियों पर चार लेख	राजपूताना म्यूजियम रिपोर्ट अजमेर वर्ष १९१७-१८ पृ० २
वि सं० १५०५ माघ वदि ९	नाणा के मन्दिर में	नाहर-जैन लेख संग्रह भाग १ पृ० २३
वि सं० १५०५ आषाढ़ वदि १	रुपा हेली के मन्दिर में	राजपूताना म्यूजियम रिपोर्ट वर्ष १९२६ पृ० २, शारदा म० कु० पृ०, १७४ ओझा उ० इ० पृ० ३१८

वि० सं० १५०६ आषाढ़ सुदि २	आबू (सुरही लेख)	जयन्त विजय–अर्बुद प्राचीन जैन लेख संदोह लेख संख्या २४४
वि० स० १५०६	आबू गोमुख	अप्रकाशित/इसमें खराडी ग्राम दान देने का वर्णन है।
वि० सं० १५०६ माघ वदि १० गुरुवार	नाणा	नाहर–जैन लेख संग्रह भाग १ पृ० २३० अर्बुदाचल प्रदक्षिणा जैन लेख संदोह सं
वि० सं० १५०६ फाल्गुण सुदि ९	देलवाड़ा पार्श्वनाथ मन्दिर में गिरिनार और शत्रुञ्जय पट्ट पर	विजयधर्मसूरि–देवकुलपाटक पृ० ११
१५०७ श्रावण सुदि ११	कीर्तिस्तम्भ का लघु लेख	भंडारकर सूची सं ७९७
वि० सं० १५०७ माघ सुदि ११ बुधवार	वसंतगढ़	नाहर–जैन लेख संग्रह भाग १ लेख सं० ९५४ पृ० २६५
वि० सं० १५०७ चैत्र कृष्णा ५	राणकपुर महाधर देवकुलिका में आदिनाथ प्रतिमा का लेख	अप्रकाशित
वि० सं० १५०७ ज्येसुष्ठ० ९	मांडल के पार्श्वनाथ मंदिर में धातु प्रतिमा का लेख	विजय धर्मसूरि–प्राचीन लेख संग्रह पृ० ६९
वि० सं० १५०८ चैत्र शुक्ला १३	राणकपुर मंदिर का लेखा	अप्रकाशित
वि० सं० १५०८	नाडोल की प्रतिमा का लेख	जिनविजयजी–प्राचीन जैन लेख संग्रह भाग २ पृ०
वि० सं० १५०९ वै० शु० २	राणकपुर जैन मन्दिर मूलनायक प्रतिमाओं पर	जयराज जैन–कला मन्दिर राणकपुर में दिया लेख
वि० सं० १५०९	राणकपुर शत्रुञ्जय और गिरि-नार पट्ट पर	जयराज जैन-कला मन्दिर राणकपुर के परिशिष्ट में दिया लेख
१५१० श्रावण सुदि ११ सोमवार	कीर्तिस्तम्भ चित्तौड़	आ० स० वे० इं० वर्ष १९०३-३ पृ० ५७ ले० २०६०
वि० सं० १५१० माघ सुदि ११	कुंभा का कछार का ताम्रपत्र	शोध पत्रिका वर्ष ७ अंक १ पृ० ६५-६६

वि० सं० १५१० ज्येष्ठ सुदि १३ शनि	कीर्ति स्तम्भ का लेख	आ० सं० वे० इ० वर्ष १९०३-३ पृ० ५७ ले० सं० २०६० भंडारकरसूची सं० ८११
वि० सं० १५१२ आसोज सुदि २ २ लेख	चित्तौड़ में शृंगार चंवरी में अलाकों पर	अप्रकाशित
वि० सं० १५१३	चित्तौड़ में शृंगार चंवरी में आलाको पर	वही
वि० सं० १५१४ माघ सुदि ३	चित्तौड़ में एक चट्टान पर लेख	आ० स० वे० इ० वर्ष १९०३-४ पृ० ५९
वि० सं० १५१४ पोष बुदि १२	मैंनाल में समाधि पर	आ० सं० वे इ० वर्ष १९०३-४ पृ० ५८
वि० सं० १५१५ चैत्र सुदि ७ रवि	कीर्तिस्तम्भ चित्तौड़	वही वर्ष १९०३-४ पृ० ५६ ले० सं० २०५६
वि० सं० १५१५ आषाढ़ वदि १ (१४ लेख)	खरतरवसही आबू	अर्बुद प्राचीन जैन लेख संदोह ले० सं० ४४१ से ४५७ तक
वि० सं० १५१५ आषाढ़ वदि १ (६ लेख)	कुम्भलगढ़ के अष्ट मातृकाओं के लेख	आ० सं० वे० इ० वर्ष १९०५-६ पृ० ६२
वि० सं० १५१५	कुम्भलगढ़ हनुमान पोल पर	वही वर्ष १९०८-९ पृ० २६
वि० सं० १५१६ आश्विन सुदि ३	कुम्भलगढ़ में मामादेव मंदिर की मूर्तियों के लेख	शोध पत्रिका वर्ष ८ में श्री रतनचन्द्र अग्रवाल द्वारा प्रकाशित। भंडारकर सूची सं० ८२६
वि० सं० १५१७ माघ सुदि ५ सोमवार	मामादेव मंदिर कुम्भलगढ़	(१) पहली और तीसरी शिला ए० इ० भाग २४ पृ० ३०४-३२८ (२) दूसरी पट्टिका-जरनल बिहार रिसर्च सोसाइटी १९५५ में प्रकाशित (३) चौथी पट्टिका—ए० इ० भाग २१ पृ० २७७-२७८

उपरोक्त	उपरोक्त	एक शिला उदयपुर संग्रहालय में सं० ६ पर संग्रहित है। मूल रूप से उपरोक्त प्रशस्ति के ही श्लोक है। यह अब तक अप्रकाशित है ।
वि० सं० १५१८ वैशाख वदि ५	अचलगढ़	मुनिजिनविजय–प्राचीन जैन लेख संग्रह भाग २ पृ० १५५ ले० सं० २६४ जयंत विजय के अर्बुद प्राचीन जैन लेख संदोह में भी प्रकाशित ।
१५वीं शताब्दी	कीर्ति स्तंभ प्रशस्ति	इस समय २ शिलाएं लग रही है। जिनके चित्र आ० स० रि० भाग २३ चित्र सं० २०-२१ में दिये हैं। प्रशस्ति संग्रह में कुछ शिलाओं के पाठ है।
,,	खंडित शिला लेख चित्तौड़ (स्तम्भों सम्बन्धी)	उदयपुर संग्रहालय सं० १०। जरनल ओरियन्टल इन्स्टीच्यूट बडोदा भाग ८ अंक १ एव मरू भारती बर्ष १९५८ में प्रकाशित ।
,,	नागदा की प्रतिमा का लेख	उदयपुर संग्रहालय प्रतिमा सं० ५७ राजस्थान भारती कुम्भा विशेषांक में प्रकाशित ।

(स) कुछ पश्चात्कालीन लेख

रमा बाई का जावर के मन्दिर का वि० सं० १५५४ का लेख	वीर विनोद में प्रकाशित
नाड़लाई के आदिनाथ मंदिर का वि० सं० १५४७ का लेख	भावनगर इन्सस्क्रिप्शन्स पृ० १४०-४२
घोसूंडा की बावड़ी का १५६१ का लेख	जनरल बंगाल रा० ए० सो० जिल्द ५६ पृ० ७९-८२
शत्रुञ्जय का वि० सं० १५८७ का लेख	ए० इ० भाग १ में एवं जिन विजय-शत्रुञ्जय तीर्थोद्धार प्रबन्ध के परिशिष्ट में प्रकाशित

———————

शुद्धि पत्र

पृष्ट	अशुद्ध शब्द	शुद्ध शब्द
१	तथा	तया
८	गलथ	गलत
	भून्दोजना	भूद्भोजना
१०	समुछेश	समुद्देश
११	पठनपाटन	पठन पाठन
"	धणवदू	धणवइ
१२	जेज्जय	जेज्जप
१३	पण्णतिका	प्रज्ञप्ति
"	मण्ड़यिका	मण्ड़पिका
१५	मोहपराजय नामक नाटक से पता चलता है कि	रासमाला में वर्णित है कि
१६	अमृत सूरपाल	अमृतपाल
"	पद्मसिंह	पद्मसिंह
"	विरुद्ध	विरुद
१७	१३८४	१२८४
१८	७०१	७०२
१८	आमयतं	आमयतं
२१	विद्यानिदान	विद्या विधान
२३	मोहम्मद खिलजी	मोहम्मद तुगलक
२५	स्वामा	स्वामी
२८	हसा	हंसा
२६	राज्यरोहण	राज्यारोहण
३९	ब्रह्मस्त	ब्रह्मदत्त
४९–५०	उदा	ऊदा
५०	शत्र	शत्रु
६३	अम्मकाव्य	अमर काव्य
६५	१९४६	१४९६
७२	खटक्ड़	खटकड़
८७	ई० सं०	हि० सं०
९२	चित्ता	चिन्ता
९५	ह धक	ढ्ढ धक
९७	अधेह	अद्येह
१०४	राज्यरोहण	राज्यारोहण

माडंग	भाडंग
कांघल	कांधल
सुधारदे कि	सुप्यारदे की
हरमू	हरभू
भास	भाग
ईदा	दूदा
चाथकदेव	चाचकदेव
पूरसी	वयरसी
खेत	ख्यात
प्रोत्साहित करके	(delete)
गास	मांस
काम कतिसार	कामराज रतिसार
पावां	पावाँन
बरबुरदार	बरखुरदार
यह बारा	(Delete)
उसने	इसमें
करना	करता
गयाना	बयाना
कुतुबद्दीन न	कुतुबुद्दीन के
युजराज	गुजरात
अभिष्ट	अभीष्ट
चामार	चामर
वादित्र	वाजित्र
मडन	मंडन
नवलखाँ	नवलखा
धमी	धर्म
शस्त्र	शास्त्र
मुर्ख	मूर्ख
पद्यपि	यद्यपि
लागु	लागू

१७८	शरणागते	शरणागत
	असंख्या	असंख्य
१८३	धनाना	बनाना
१८५	उपास्प	उपास्य
१८६	उर्द्ध-रता	उर्द्ध-रेता
	सम्बन्धित	समन्वित
१८७	प्रदार्थ	पदार्थ
	जट	जूट
१९१	पंचदेवीपासाना	पंचदेवोपासना
	समवतः	सम्भवतः
१९२	म	में
१९३	मैथून	मैथुन
,,	गोगराण	गागरोण
१९४	शक्तिमतावलम्बी	शाक्तमतावलम्बी
१९५	रहाता	रहता
१९६	सुर्य	सूर्य
१९९	चैत्रा	चैत्र
	फालगुण	फाल्गुन
२०१	गच्छचार्य	गच्छाचार्य
२०३	कालिका	कलिका
	म	में
	अप भ्रश	अपभ्रंश
२०७	भगवंत	भगत
२११	उपदेश बालावबोध	उपदेशमाला बालावबोध
२१२	बालावबाध	बालाव बोध
	तिरंगिणी	तरंगिणी
२१५	भरत बाहुबलि	भरत बाहुबलि
	स्वाध्याय	स्वाध्याय वृत्ति
२१६	जिनराज	जिनराजसूरि
२१८	हसमणि	हंसगणि